

भूमिका

✓यथा भूमि समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत् ॥

'नारद पुराण' का यह श्लोक उसके सिद्धान्त और विशेषताओं पर अच्छी तरह प्रकाश डालता है। वह विष्णु भक्ति प्रधान रचना है। उसमें आदि से अन्त तक विविध कथाओं द्वारा यही प्रतिपादित किया है कि मसार में सबसे अधिक महिमा भक्ति की है और उसका अवलम्बन करने वाला सदेव लोक और परलोक में कल्याण का भागी होता है। भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता में तो कोई सन्देह नहीं। ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग पर तो अध्ययन और मननशील विद्वान्, बुद्धिमान व्यक्ति ही भली प्रकार चल सकते हैं। सामान्य स्तर का जो जन समुदाय अधिक सख्या में पाया जाता है, वह न तो उन सिद्धान्तों के वास्तविक मर्म को समझ सकता है और न व्यावहारिक रूप में उनका पालन कर सकता है। परमात्मा के अशरीरी क्रियाकलाप उसकी समझ में नहीं आ सकते। वह यह कल्पना कर सकने में भी असमर्थ रहता है कि निराकार परमेश्वर किस प्रकार करोड़ों पदार्थों और जीव जन्तुओं में धरे हम मसार की रचना कर देता है ?

इसका कारण यही कि उसकी मोटी बुद्धि सूक्ष्म पदार्थों का रहस्य समझने में असमर्थ रहती है। आत्म शक्ति, सकल्प-शक्ति, विचारों की शक्ति जैसे अति सूक्ष्म विषयों को समझने की बात तो दूर, वह विद्वत्-शक्ति और एहनशक्ति जैसी प्रत्यक्ष प्राकृतिक सूक्ष्म शक्तियों की

कार्य-प्रणाली के रहस्य को भी नहीं जान पाता। ऐसे व्यक्तियों को यह समझाना कि यह समस्त ससार भगवान का ही स्वरूप है और इसमें जो करोड़ों पदार्थ और कार्य दिखाई पड़ते हैं वे सब "माया" अथवा हमारी बुद्धि और नेत्रों के भ्रम हैं, एक असम्भव सी बात है। इसलिए उनको परमात्मा, उसकी सृष्टि और मनुष्य के कर्तव्य-कर्म के सम्बन्ध में जो कुछ बताया जा सकता है, उसका आधार स्थूल ही होना आवश्यक है। इसीलिये हमारे देश के प्राचीन मनीषियों ने भगवान की मूर्ति बनाकर उसके माध्यम से ध्यान और उपासना का विधान बनाया। जब तक मूर्तियों की कल्पना और निर्माण नहीं हुआ तब तक नेत्रों से दिखाई पड़ने वाली यज्ञाग्नि को ही उपासना और पूजा का माध्यम माना जाता था। कारण यही था कि ऐसे किसी प्रत्यक्ष उपकरण को सामने देखकर ही सामान्य बुद्धि का व्यक्ति उसके प्रति अपनी मानसिक भावना को प्रेरित कर सकता है और उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करके उसे अपना भक्तिभाजन बना सकता है।

भक्ति का स्वरूप और उसकी महिमा—

यही कारण है कि जहाँ शैव-पुराणों में विशेष रूप से योग तथा तंत्र साधना को विशेष महत्त्व दिया गया है, वहाँ वैष्णव पुराणों—जैसे भागवत, विष्णु, नारद आदि में भक्ति को ही सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसके मुख्य अङ्ग पूजा, उपासना, नाम-स्मरण, भजन, कीर्तन आदि माने गये हैं। निम्न स्तर के सकाम भावना वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिये सामान्य व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, मन्दिर निर्माण या जीर्णोद्धार आदि बातों का महत्त्व बहुत बड़ा-चड़ा कर बनाया गया है। ऐसी बातों पर आजकल के नवशिक्षित व्यक्ति विश्वास करने को तैयार नहीं हाय। हम भी उनको अधरम मान लन का आग्रह नहीं करते। पर जिस प्रकार बालकों को मुनाई जाने वाली बाल्पनिक और भव

कहानियों से भी लाभकारी शिक्षायें प्राप्त हो सकती हैं, उसी प्रकार पौराणिक कथाओं में मनुष्यों को अनेक सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। पुराणकारों में भी यह नहीं कहा है कि मनुष्य भक्ति करने के साथ दुष्ट कर्म भी करता रहे, फिर भी उसका कल्याण ही होगा। उन्होंने प्रायः यही उपदेश दिया है कि भगवान् की भक्ति करने से दुष्ट प्रवृत्तियाँ स्वयमेव छूट जायेंगी और मनुष्य में माधुर्य के गुण उत्पन्न हो जायेंगे। "नारद पुराण" के आरम्भ में ही यह कहा गया है कि "भगवान् की प्रसन्नता के लिए वेद शास्त्रों द्वारा बतलाये सद्-अनुष्ठानों को करना आवश्यक है। मनुष्य निष्काम हो या सकाम उसे विधिपूर्वक कर्म अवश्य करने चाहिये। सदाचार परायण ब्राह्मण अपने ब्रह्म तेज के साथ वृद्धि को प्राप्त होना है। यदि वह भगवान् के चरणों में भक्ति रखता है तो उस पर विष्णु भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।" इससे आगे चल कर भक्ति की जो महिमा और प्रणाली बतलाई है उससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

हरिभक्तिः परानृणा कामधेनुपमा स्मृता ।

तस्या सत्या पिवन्तजाः ससारं गरलं ह्यहो ॥

“भगवान् की भक्ति मनुष्यों के लिये कामधेनु के समान कल्याणकारी मानी गई है। पर कितने आश्चर्य की बात है कि अज्ञानी जन उसे त्याग कर सासारिक मोहकामी विष को ग्रहण करते हैं।” मनुष्य को सत्कर्मों का अनुष्ठान सदैव श्रद्धा और भक्ति की भावना में ही करना चाहिये जैसे सूर्य का प्रकाश समस्त जीवों को कर्मरत करने में कारण बनता है, उसी प्रकार समस्त सिद्धियों का आधार भक्ति ही होती है। जैसे जन मन्मूर्ख लोगों का जीवन कहा गया है वैसे समस्त महान लाभ भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वी का आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्ति का सहारा लेकर सब जातों का साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुष को धर्म का

नाम होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धा से ही कामनाओं की सिद्धि होती है, तथा श्रद्धालु पुरय ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ भी यदि भक्ति से रहित हों, तो उनके द्वारा भगवान् संतुष्ट नहीं होते। मेघ पर्वत के द्वारा सुवर्ण की करोड़ों सहस्र राशियों का दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्ति के किया तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति के जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीर को सुखाना मात्र है। बिना भक्ति जो हविष्य हवन किया जाता है, वह राख में डाली हुई आहुति के समान है। श्रद्धाभक्ति के साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा सा भी मत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त बाल तक अक्षय सुख देने वाला होता है।”

इस प्रकार पुराणों ने भक्ति को जो महत्व दिया है वह दिखा-वटी पूजा-उपासना अथवा दान-पुण्य के आधार पर प्राप्त नहीं हो सकता। उसका मारतत्त्व हार्दिक श्रद्धा और निष्काम परोपकार की भावना ही हाता है। पौराणिक उपाख्यानो और रामायण आदि में बड़े-बड़े पापियों के अन्त समय में राम कह लेने से मुक्ति प्राप्त होने की बात लिखी है। पर साथ ही यह भी लिखा है—

जन्म-जन्म मुनि जतन कराही ।

अन्त राम कहि आवत नाही ॥

इसका आशय यही है कि उन “पापी” कहे जाने वाले व्यक्तियों को सभी सद्गति प्राप्त होती है जब अन्त समय में ही किसी घटनावश उनकी जीवनधारा बदल जाती है और उनके भीतर छिपा भक्ति का धरना फूट उठता है।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति मार्ग लोक और परलोक के माधनी के लिये सरल और प्रभावशाली है। विशेष रूप में जो लोग ज्ञान मार्ग के गहन तथ्य को समझ सकने में अक्षम हैं और कर्मपाण्डों के लिये जिनके पास पर्याप्त साधन नहीं हैं, उनका सर्वश्रेष्ठ

सम्बन्धभक्ति ही है। यह वास्तव में ऐसी कामधेनु है जिसमें मनुष्य अल्प-साधनों और अल्प प्रयत्न द्वारा ही बहुत बड़ी सिद्धियाँ पा सकता है। पर इसके लिये हृदय की सच्चाई और शुद्धता अनिवार्य है। जैसे छोटा शिशु माता पर पूर्ण रूप से भरोसा रखता है और उसके लिये किसी प्रकार का अविश्वास का भाव कभी उसके हृदय में आ ही नहीं सकता, इसी प्रकार जो लोग अन्तःकरण में भगवान को अपना सच्चा सहायक और रक्षक समझ लेते हैं और उसके आदेशानुसार सदाचार के मार्ग पर चलते हैं, वे ही सच्चे भक्त माने जा सकते हैं और भगवत्-भक्ति उन्हीं की भव सकटों में रक्षा करती है।

पर यह मार्ग उनके लिये नहीं है जो इसे केवल दलीलों तकों से जानना और प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिये ऋषियों ने ज्ञान-मार्ग चतल दिया है, जिसकी पहुँच आधुनिक विज्ञान से भी ऊँची है। रह गये आधुनिक शिक्षा का गुमान रखने वाले आलोचक उनके लिये तो प्राचीन ज्ञान की सभी बातें और सिद्धांत "निकम्मे" जान पड़ते हैं और सभी "मार्गों" में दोष ही दोष दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे सज्जन महात्मा गाँधी के कथनानुसार उस "गटर-इन्स्पेक्टर" के समान हैं जिनका कार्य सड़क गन्दगी ढूँढना ही है। हम कभी इस बात से इनकार नहीं करते कि पुराणों में "कथा-व्यासनों" ने सँकड़ों भले बुरे कथानक, उपाख्यान समय-समय पर जोड़ दिये हैं, जिनमें से कुछ वास्तव में 'भ्रष्ट' भी कहे जा सकते हैं। पर साथ ही पुराणों में सँकड़ों उपयोगी, धर्मार्थ लाभकारी बातें भी हैं, उनकी ओर से आँखें बन्द कर लेना कोई बुद्धिमानों अथवा प्रणसा की बात नहीं। हम अपनी 'पुराण-सौरीज' का सम्पादन इसी दृष्टि कोण में कर रहे हैं और सन्तोष का विषय है कि पाठकों ने इसे पूरी तरह अपनाया है।

समन्वय की प्रवृत्ति—

पर भक्ति-मार्ग का अनुयायी होने पर भी "भारतपुराण"

की नीति समन्वयवादी है और इसमें अध्यात्म-योग तथा ज्ञान-योग की भी महिमा भली प्रकार बतलाई गई है। मुक्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में कहा है।

“योग में स्थित होने पर साधक ब्रह्म में लीन होकर फिर अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता। मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयो में आसक्त होने पर वह बन्धन का कारण होता है और विषयो से दूर हट कर वही मोक्ष का द्वार बन जाता है। इसलिये ज्ञानी वही कहा जायगा जो मन को विषयो से हटा कर परमेश्वर का चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को खींचकर अपने में संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्म चिन्तन करने वाले साधक के चित्त को परमात्मा अपने स्वरूप में लीन कर लेता है। आत्मज्ञान के उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखने वाली मन की विशिष्ट गति को ही ‘योग’ कहा जाता है। जिसका योग इस प्रकार की विशेषता वाले धर्म से युक्त होता है वह योगी “मुमुक्षु” कहलाता है। पहले पहल योग का अभ्यास करने वाला योगी ‘युञ्जा’ कहलाता है। जब उसे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है तब वह ‘विनिष्पन्न-समाधि’ (युक्त) कहा जाता है। ऐसा “विनिष्पन्न समाधि” योगी अपनी योगाग्नि से समस्त कर्म राशियों को भस्म कर डालता है। योगी को चित्त से ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तय तथा अपरिग्रह का निष्काम भाव से सेवन करना चाहिये। इनके साथ ही शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा परमात्मा में सलग्नता का पालन करे। इनका पूर्ण रूप से सेवन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

—इसी प्रकार जडभरत द्वारा मोवीर नरेश को ज्ञान याग का उपदेश कराने हुए कहा है—“राजन् ! सिर और हाथ-पंर आदि लक्षणों वाला यह शरीर आत्मा से पृथक् ही है, इसलिये ‘अह’ (मैं) शब्द का प्रयोग इसके लिय केंस किया जा सकता है ? यदि मुझसे भिन्न

कोई और भी सजातीय आत्मा हो तोभी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है,— ऐसा कहना उचित हो सकता था। पर जब सब शरीरो मे एक ही आत्मा विराजमान है तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्न-वाक्य व्यर्थ ही हे। महाराज। 'तुम राजा हो, यह पालकी है, ये सामने पालकी ढोने वाने खड़े हैं और यह समस्त देश आपके अधिकार मे है'— ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तव मे यथार्थ नहीं है। वृक्ष से लकड़ी उत्पन्न हुई और उससे यह पालकी बनी, जिम पर तुम बैठते हो। यदि इसे 'पालकी' ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहा चला गया ? यह तुम्हारे मेवकगण ऐसा नहीं कहत कि महाराज पेड पर चढे हैं अथवा 'लकड़ी' पर सवार ह, सब कोई पालकी मे बैठे हुआ ही कहते हैं। किन्तु पालकी क्या है—लकड़ियो का समुदाय। अगर इसमे से लकड़ियो के समुदाय को अलग करदें तो फिर खोजो तुम्हारी पालकी कहाँ है ?

यही न्याय (सिद्धान्त) तुम्हारे और मेरे ऊपर भी लागू होता है। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोडा हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरो के लिये ही रखे गये हैं। पर यह आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब काल्पनिक है। जो वस्तु परिणाम आदि के कारण होने वाली किसी नई सजा को कालान्तर मे भी प्राप्त नहीं होती, वही वस्तु पारमाथिक है। विचार करो वह क्या है ? तुम सचके लिए राजा हा, अपने पिता के लिये पुत्र हो, शत्रु के लिये शत्रु हा, पत्नी के लिए पति और पुत्र के लिये पिता हो। अब मैं तुम्हें क्या समझूँ। इस प्रकार आत्म-तत्त्व सब से पृथक होकर ही स्थित है और उसे 'अह' इस नाम से नहीं बताया जा सकता।

इसी प्रकार आगे चल कर श्रेय और परमार्थ की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि "जो मनुष्य देवत्व की आराधना करने धन-

सम्पत्ति चाहता है, पुत्र अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हें परमार्थ नहीं कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से सयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको है, पर इनमें से किसी को परमार्थ नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों किया जाता ? यज्ञों में जिस समिधा, घृत, कुशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील है, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नहीं हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म-ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं है, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरों में विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमार्थ-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्त्व को जान लेता है और वैसा ही आचरण करता है वही परमार्थी है।"

इस प्रकार "नारद-पुराण" में भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनों की उपेक्षा नहीं की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक करोड़ों में से कोई एक विरले ही पहुँच सकते हैं। मसार के समस्त सम्बन्धों तथा भले-बुरे, छोटे-बड़े के भेदों को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी सम्भव नहीं, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनको भी है। इसलिये पुराण-कार ने "भक्ति" को सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिसमें मनुष्य सब सामा-रिक बाधों को घटाशक्ति करता हुआ उन्हें भगवदापण करता रहता है, इससे उसकी स्वायं वृद्धि दबती रहती है और वह सब को एष ही

भगवान की सन्तान समझकर सेवा और परोपकार के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता रहता है। इस मार्ग में जब उसकी अधिक वृद्धि हो जाती है, तब वह भी उमी लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है जिसे योगी और ज्ञानी अपना अभिप्रेत मानते हैं। इस प्रकार पुराणकार ने जिस समन्वय की भावना का प्रतिपादन किया है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

शैवागम का परिचय—

“नारद पुराण” पूर्ण रूप से वैष्णव पुराण है, फिर भी उसमें “शैवागम” का परिचय और भगवान शिव की महिमा का वर्णन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचयक है। हमने कितने ही पुराणों में ऐसे भी वर्णन देखे हैं जिनमें अपने इष्ट देव के अतिरिक्त अन्य देवों को हीन सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। ऐसी ही मनोवृत्ति के कारण लोगों में प्रतिस्पर्धा और अन्त में द्वेष बुद्धि उत्पन्न होती है, जिसका परिणाम धार्मिक क्षेत्र में आक्षेप और निन्दा, कुत्सा की गन्दगी फैलाने के सिवाय और कुछ नहीं निकलता। पर “नारदपुराण” में ऐसी भावना का चिह्न भी नहीं है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचन्द्रजी को अपना प्रमुख इष्टदेव मानते हुये भी शिवजी के प्रति आन्तरिक भक्तिभाव प्रकट किया है और रामचन्द्रजी के मुख से ही यह कहलाया है कि “जो शिवजी से विरोध रखता है और मेरे प्रति भक्ति रखता है ऐसा मनुष्य गुण स्वर्ग में भी स्वीकार नहीं हो सकता।” उसी प्रकार “नारदपुराण” में भी काशी-क्षेत्र तथा शिव पूजा का वर्णन करते हुए कहा है—

“काशीपुरी तीर्थों में उत्तम तीर्थ और क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। काशी के गुणों के विषय में यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ, जो काशी का नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। शिवलिङ्ग

सम्पत्ति चाहता है, पुन अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हे परमार्थ नहीं कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से सयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको हैं, पर इनमे से किसी को परमार्थ नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों किया जाता ? यज्ञो मे जिस समिधा, घृत, कृशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील है, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नहीं हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमे जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं है, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरो मे विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमाथ-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्व को जान लेता है और वैसे ही वाचरण करता है वही परमार्थी है।”

इस प्रकार “नारद-पुराण” मे भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनो की उपेक्षा नहीं की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक वरोडो मे से कोई एक विरले ही पहुँच सकते हैं। समार के समस्त सम्बन्धो तथा भले बुरे, छोटे-बडे के भेदो को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी सम्भव नहीं, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनका भी है। इसलिये पुराण-कार ने “भक्ति” का सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिममे मनुष्य सब सासारिक कार्यों को यथाशक्ति करता हुआ उन्हे भगवदापण करता रहता है, इससे उसकी स्वार्थ वृद्धि दूरी रहती है और वह सब को एक ही

यद्यपि सम्भूत भाषा के पुराणों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध में हम सब से अधिक श्रेय गो० तुलसी-दाम जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण में आदि से अन्त तक भगवान् शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान् विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्हीं को माना है। हमें यह कहने में भी कुछ सकोच नहीं कि इस विषय में वैष्णव पुराणों में अधिक उदारता दिखलाई है। शैव पुराणों में “स्वन्द पुराण” इस क्षेत्र में अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर में एक स्वन्त्र “वैष्णव खण्ड” का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रों का सविस्तार वर्णन किया है। “कूर्म पुराण” को भी शैव माना जाता है, पर उसमें कहीं विष्णु के प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नहीं किया गया है। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप से होता है।

गंगा और गायत्री के प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गंगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनों ने मन्त्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गंगा, गायत्री, सीता और गौ को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गंगा की महिमा कहने-कहत ता पुराणकार थकते ही नहीं। अन्त में यह कह दिया है—

नास्ति गंगा सम तीर्थं नास्ति मानृसमो गुरु ।
नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्॥

गंगा से बढकर कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि वह लोगों को परलोक के मुधारण का ही विश्वास नहीं दिनाती वरन् इस लोक में भी मान-सिक् शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करके बितना ही का कष्टो

साक्षात् श्री हरि रूप है और श्री हरि साक्षात् शिवलिङ्ग रूप है । इन दोनों में थोड़ा भी अन्तर नहीं है । जो यह भेद करता है उसकी बुद्धि खोटी है । अज्ञान के समुद्र में डूबे हुए पापी मनुष्य ही भगवान् विष्णु और शिव में भेद करते हैं । जो सम्पूर्ण जगत के स्वामी और कारणों के भी कारण, वे भगवान् विष्णु ही प्रलय-काल में रुद्र रूप धारण कर लेते हैं । इसी प्रकार भगवान् रुद्र ही विष्णु रूप से सम्पूर्ण जगत का पालन करते हैं । वे ही ब्रह्माजी के रूप में ससार की सृष्टि करते हैं, तथा अन्त में हर रूप से वे ही तीनों लोकों का सहार करते हैं । जो मनुष्य भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजी में भेद बुद्धि करता है वह अत्यन्त भयकर नरक में जाता है ।”

यद्यपि वर्तमान समय में हमको इन बातों में कोई विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं होता, पर अबसे हजार-डेढ़ हजार वर्ष पूर्व देश की धर्मनीति ही नहीं वरन् समाजनीति और राजनीति का निर्णय भी इन्हीं भावनाओं पर आधारित था । शैव और वैष्णव अपने-अपने सम्प्रदायों के नाम पर एक दूसरे पर शान्दिक आक्षेप—गाली-गलीज ही नहीं करते थे, वरन् वे प्रायः आपस में भिड़ भी जाते थे, जिसमें सैकड़ों व्यक्तियों की प्राणहानि होती थी और अनेक निर्दोष व्यक्ति भी कष्ट पाते थे । यह सद्यपि इससे भी प्राचीन समय में उपस्थित हो गया था जिसकी स्मृति दक्ष प्रजापति और शिवजी के चुले युद्ध के रूप में वर्णन में मौजूद है । बाद में यह मनोवृत्ति कुम्भ जंमे धार्मिक भेदों में प्रकट होने लगी जिनमें शैवों और वैरागियों के सैनिक संगठन आपस में लड़ जाते थे । इस प्रकार यह साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना सैकड़ों-हजारों वर्षों से हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न और कमजोर करती चली आती थी । अन्त में जब अनुभव होने पर विद्वानों ने इस दृष्टि को समझा तो उन्होंने विष्णु और शिव में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया ।

यद्यपि संस्कृत भाषा के पुराणों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध में हम सब से अधिक श्रेय गो० तुलसीदास जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण में आदि से अन्त तक भगवान् शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान् विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्हीं को माना है। हमें यह बहने में भी कुछ सकोच नहीं कि इस विषय में वैष्णव पुराणों ने अधिक उदारता दिखलाई है। शैव-पुराणों में "स्कन्द पुराण" इस क्षेत्र में अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर में एक स्वतन्त्र "वैष्णव खण्ड" का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रों का सविस्तार वर्णन किया है। "कूर्म पुराण" को भी शैव माना जाता है, पर उसमें कही विष्णु के प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नहीं किया गया है। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप में होता है।

गंगा और गायत्री के प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गंगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनो ने मन्त्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गंगा, गायत्री, गीता और गो को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गंगा की महिमा कहते-कहते तो पुराणकार बकते ही नहीं। अन्त में यह कह दिया है—

नास्ति गंगा सम तीर्थ नास्ति मातृसमो गुरुः ।

नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्॥

गंगा से बढकर कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि वह लोगों को परलोक के सुधारने का ही विश्वास नहीं दिलाती वरन् इस लोक में भी मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करके कितनों ही का कष्टो

से उद्धार करती है। गायत्री वेदमाता है, जिसकी साधना करने से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फल प्राप्त होते हैं। विद्वानो के मतानुसार गायत्री की उपासना करने वाले भी 'वैष्णव' ही कहे जा सकते हैं क्योंकि चारो वेदो का लक्ष्य भी विष्णु स्वरूप परब्रह्म ही होता है।

सामान्य धर्म का पालन--

पर इस प्रकार की देवोपासना और साम्प्रदायिक क्रिया-कर्म से बढ कर वे कर्तव्य और व्यवहार हैं जो मनुष्य को प्रतिदिन अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे आकर करने पडते हैं। यदि कोई व्यक्ति मन्दिर मे बैठकर घटा-भाघ घटा पूजा पाठ करता है, पर लोगो के सज्जनता के कार्यों मे महयोग नही देता, विपत्तिग्रस्त भाइयो की सेवा सहायता को तैयार नही होता तो उसकी उपासना-पूजा व्यर्थ ही समझनी चाहिये। भगवान की पूजा और आराधना का वास्तविक उद्देश्य यही है कि मनुष्य के हृदय मे श्रेष्ठ और सज्जनता के भाव उत्पन्न हो और वह अपने दैनिक व्यवहारो मे इस बात का ध्यान रखे कि उससे अन्य लोगो को प्रसन्नता हो। इस बात को 'नारदपुराण' मे बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है—

सर्वलोक हितोषित्व भगल प्रियवादिता ।

अनायासो मनोहर्षस्तितक्षा नातिमानिता ।

सामान्य सर्व वर्णाणा मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥

“सब लोगो का हित चाहना, सबका मङ्गल साधन करना, प्रिय वचन बोलना, किसी को बट्ट न पहुँचाना, मन का प्रसन्न रहना, महन-शील होना, व्यर्थ का घमण्ट न करना—यही श्रेष्ठियो ने सब मनुष्यो या सामान्य धर्म बतनाया है।” इनका पालन करके प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण का हो मुनियो के समान माननीय हो जाता है।

इसके विपरीत आचरण करने वाला नागरिकता के भी अयोग्य माना जाना चाहिए। प्राचीन समय में समाज का संगठन वर्ण-धर्म के आधार पर किया गया था और प्रत्येक व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। जो इसमें ढील करता था अथवा ऐसा व्यवहार करता था जिससे अन्य लोगों का अकल्याण हो, समाज की शान्ति भंग हो, उसमें विभ्रूलता उत्पन्न हो, तो ऐसे व्यक्ति को दंडित किया जाता था, या उसे समाज से बाहर समझा जाना था। प्राचीन समय में गाँवों और कस्बों तक का नागरिक जीवन ऐसा संगठित और अनुशासन युक्त था कि उसमें रहकर कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता था। इसमें उसको समाज हितकारी मार्ग पर ही चलना पड़ता था।

वर्तमान समय को यद्यपि हम उन्नतिशील मानते हैं और उद्योग-धंधों की वृद्धि तथा वैज्ञानिक उपकरणों के व्यवहार के आधार पर यह कहने लगते हैं कि अब मनुष्यों का जीवन पहले की अपेक्षा बहुत सुख-सुविधापूर्ण हो गया है, पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। इस समय समाज की व्यवस्था नियम तथा कर्तव्य पालन के बजाय धन तथा सम्पत्ति पर आधारित हो गयी है। जो जितना ही अधिक धन सम्पन्न होगा वह उनका ही समाज की परवाह किये बिना स्वेच्छापूर्वक रह सकेगा। सर्व साधारण में ऐसी कहावतें प्रसिद्ध हो गयी हैं कि 'पैसा हो तो शेरनी का दूध भी मिल सकता है' अथवा "सर्वगुण कचन मात्प्रयन्ति" (सब प्रकार के गुण सुवर्ण द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं)। हम नहीं समझते कि जड़ सदाचार और विद्या के बजाय धन की मनुष्य की उत्कृष्टता की कसौटी बना दिया गया तो मानव सभ्यता और संस्कृति की उन्नति कैसे मानी जा सकती है। धन तो मनुष्य भले बुरे काम भी उपाया में प्राप्त कर सकता है अथवा वह उसे जुआ, लाटरी वही पडा हुआ आदि के रूप में भी मिल सकता है। पर हममें उसमें

सद्गुणों की वृद्धि कैसे होगी ? हम तो प्रायः यही देखते हैं कि इस प्रकार अनायास धन पाजाने वाले प्रायः तरह-तरह के दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं और अनेक प्रकार के कुकर्म करने लगते हैं । इसलिये प्राचीन ज्ञानी जनो ने “धर्म” अथवा मानव कर्तव्य के जितने भी लक्षण बतलाये हैं उनमें धन की अधिकता को कही स्थान नहीं दिया गया है । “श्रीमद्-भागवत्” में धर्म के निम्न तीस लक्षण लिखे हैं—

सत्य दया तप शौच तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
 अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागाः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
 सतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहो परमः शनैः ।
 नृणां विपर्यये हेक्षा मौनमात्म विमर्शनम् ॥
 अन्नाद्यदि सविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
 तैष्वात्म देवता वुद्धिः मुक्ता नृपु पाडव ॥
 श्रवण कीर्तन चास्य स्मरण महताम् गतेः ।
 सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
 नृणामय परो धर्मः सर्वेषां समृदाहतः ।
 त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा ये न तुष्यति ॥

“सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुभव का विचार, मन का सयम, इन्द्रियो का सयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सासारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान, पूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, सब जीवों में आत्मा तथा अपने इष्टदेव का भाव, भगवान का श्रवण, कीर्तन, सेवा, पूजा, नमस्कार, दास्यभाव, सख्य-भाव और आत्म समर्पण । ये सभी मनुष्यों के परम धर्म हैं । इनके पालन से सर्वात्मा भगवान प्रसन्न होते हैं ।”

पाठक देखेंगे कि इन तीस लक्षणों में कहीं भी धन का उल्लेख

नहीं है और भगवान की भक्ति का नाम भी अन्त में आया है। वास्तव में जिसने आरम ही में एक सज्जन व्यक्ति के सामान्य गुणों—सत्य, दया, क्षमा, सहनशीलता, सयम, सन्तोष, परोपकार आदि का अभ्यास नहीं किया वह भगवान् की भक्ति क्या करेगा ? और भगवान भी ऐसे मनुष्य को क्या अपनाये ? फिर जो व्यक्ति उपर्युक्त सब धर्मों का यथोचित रीति से पालन करेगा उसे जीवन निर्वाह के लायक साधन स्वयम् ही मिल जायेंगे। अगर कम भी मिलें तो वह यह देखकर सतोष रखेगा कि सप्ताह में करौटो व्यक्ति ऐसे भी मौजूद हैं जिनको उतना भी प्राप्त नहीं है।

“भगवद् गीता” में भी समस्त वर्णों के धर्मों का वर्णन इसी से मिलता जुलता किया गया है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिराजवमेव च ।
 ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥
 शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम् ।
 दानमीश्वररभावश्च क्षान्ति कर्म स्वभावजम् ॥
 कृपि गौरक्ष्य वाणिज्य वैश्य कर्म स्वभावजम् ।

“शम, दम, शौच, क्षमा, सत्य, स्वभाव, ज्ञान-विज्ञान ब्राह्मणों के स्वभाविक धर्म हैं। शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से परामुख न होना, दान, सुशासन क्षत्रियों के धर्म नहीं हैं। सेती, गोपालन, वाणिज्य आदि वैश्यों के धर्म हैं।”

गीता में तो पूजा पाठ का नाम भी नहीं लिया है। इसका आशय यही है कि जो मनुष्य मचाई के साथ अपने उत्तरदायित्व का पालन कर देता है, वही वास्तविक भगवान की पूजा और उपासना है। उसके पुरा करने के बाद अगर समय मिले और रुचि हो तो मन्दिरों के दर्शन, भगवान की स्तुति और भजन भी किये जा सकते हैं। पर अपने पारिवारिक, समाजिक राष्ट्रीय और मानवीय कर्तव्यों को त्याग कर

केवल पूजापाठ में लग रहना और उसी आधार पर अपने को धार्मिक या भगवद्-भक्त समझ लेना एक बहुत बड़ी गलती या आत्म वचना है। इस तथ्य का निरूपण करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में कहा है।

“कुछ लोगों की ऐसी समझ हो गयी है कि सच्चा भगवद् भक्त वही है, जो सासारिक कर्मों को छोड़ कर विरक्त हो, केवल भक्ति में ही निमग्न हो जावे। इस सम्बन्ध में हम यह बतलाना चाहते हैं कि भक्तिमार्ग वालों का 'ब्रह्म' समुण भगवान माना गया है। जब वह सारे ससार का संचालन कर्ता है और समय-समय पर अवतार लेकर साधु-जनो की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने का कार्य किया करता है, तो उसके भक्तों को उसका अनुकरण करके कर्म करते रहना आवश्यक है या नहीं? हनुमानजी श्रीराम के बड़े भक्त थे, पर क्या उन्होंने रावण आदि दुष्टों को नष्ट करने का कर्तव्य-कर्म त्याग दिया था। इसी प्रकार भीष्म पितामह की गणना परम भगवद्-भक्तों में की जाती है, पर क्या वे आजन्म राज्य-रक्षा का कार्य नहीं करते रहे? यह सच है कि जब भक्ति द्वारा परमेश्वर का ज्ञान हो जाता है, तब भक्त में स्वयं अपने हित के लिये कोई कामना या वासना शेष नहीं रह जाती। परन्तु इससे दया, करुणा कर्तव्यनिष्ठा आदि श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का नाश नहीं हो सकता, बल्कि वे और भी अधिक शुद्ध हो जाती हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न तो उठता ही नहीं कि कर्म करे या नहीं। वरन् भगवान का यथार्थ भक्त तो वही है जिसके मन में ऐमा अभेद भाव उत्पन्न हो जाय—

“जिसका कोई न हो हृदय से उमे लगावे,
प्राणिमात्र के लिये प्रेम की ज्योति जगावे।
सबमें विभु को व्याप्त जान गवको अपनावे,
हे वस ऐसा वही भक्त की पदवी पावे ॥”

सच्चे दान का स्वरूप—

दान की प्रणसा पुराणों में बहुत अधिक पाई जाती है। पर्वों, व्रतों और सस्कार आदि के अवसरों पर तो दान देना आवश्यक माना ही जाता है, पर अन्य समय भी जब कोई याचक सामने आजाय तो उसको विमुख लौटाना बड़ा हीमता का कार्य समझा जाता है। पुराणों में अपनी हड्डियों का दान करने वाले दधीचि, सम्पूर्ण राज्य का दान करने वाले कर्ण और पुत्र को सिंह के भक्षणार्थ दे डालने वाले मारुध्वज का अत्यन्त भावपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। यहाँ दान की महिमा इतनी अधिक बतलाई गई है कि उसके फल से लोच-परलोच की सब विभूतियाँ अनायाम प्राप्त हो जाती हैं। पर साथ ही यह भी शर्त है कि सत्पात्र को दिया गया दान ही उत्कृष्ट परिणाम उत्पन्न करता है, कुपात्र और अपात्र को दिया गया दान निरर्थक ही जाता है। कभी तो दान का ऐसा दुरुपयोग होता है कि उसके कारण दाता को और भी अशोभति का भागीदार बनना पड़ता है। 'नारद पुराण' में अनुचित दान के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुये लिखा है—

“सदान्तरी ब्राह्मण दान का श्रेष्ठ पात्र है। पर जो ब्राह्मण क्राधी, दम्भाचार परायण, तथा अपने कर्म का त्याग करने वाला हो, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो परायी स्त्री में आसक्त, पराये धन का लोभी तथा ज्योतिष का धन्धा करने वाला हो वह भी दान का पात्र नहीं होता। जिसके मन में दूसरों के दोष देखने का दुर्गुण भरा है, जो हिंसक, दुष्ट और रम का विक्रय करने वाला है, उसको दिया दान व्यर्थ जाता है। जो गीत गायन जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है, जो दूसरों को बध्न दन वाला है, जो स्याही से निर्वाह करता है, जो दक्ष पुत्रों की नौकरी करता है, समूचे गाव का पुगेहित है, घावन (हरवारा) का वाग करता है रसोश्चे का काम

करता है, कविता द्वारा लोगों की झूठी प्रशंसा करता है, चिकित्सा का पेशा करता है, अभक्ष भक्षण करता है उसको दिया दान व्यर्थ होता है। जो भगवान के नाम-जप को बेचता है, सध्या-कर्म को त्यागने वाला है, दूषित दान ग्रहण करता है, दिन में मैथुन करता है, जो अत्यन्त दुष्ट है, शरावी, मासखोर, स्त्री लम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खाने वाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो कोई भी पाप पराधन हो, सज्जन पुरुषों द्वारा सदा निन्दित हो, उनसे न तो दान लेना चाहिये और न उन्हें देना ही चाहिये।”

यदि इन नियमों का मिलान वर्तमान स्थिति से किया जाय तो सब बातें उल्टी ही दिखाई पड़ती हैं। आजकल जो साधु-सन्यासी, पंडा पुजारी, ब्राह्मण और पंडित दान ले रहे हैं वे प्रायः सुलफा, गाजा, तम्बाकू, भाग आदि का नशा करने वाले ही होते हैं। उनमें क्रोधी, कामी लोभी, दम्भी व्यक्तियों की ही संख्या अधिक होती है। कपट, ठगी, झूठ, चुगलखोरी आदि के दुर्गुण भी उनमें कम नहीं होते। फिर ऐसे लोगों को दान देने से दाता का क्या भला हो सक्ता है? इसलिये दान वही कल्याणकारी कहा जा सकता है जो सत्पात्र को, सत्कर्म के लिये, सद्भावना से दिया जाय। दान लेने वाला यदि सत्पात्र भी मिल जाय, पर दान दाता की मनोभावना शुद्ध न हो तब भी उसकी गणना उत्तम दान में नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने कहा है—

“जो ब्राह्मण सत्कर्म में लगा हो उसे स्वयम् प्रयत्न करके दान देना चाहिए। जो दान श्रद्धापूर्वक तथा भगवान को समर्पण पूर्वक दिया गया हो एवम् जो उत्तम पात्र के याचना करने पर दिया गया वह सर्वोत्तम है। इहलोक तथा परलोक में लाभ का उद्देश्य रखकर जो दान गुपात्र को दिया जाता है वह मध्यम माना गया है। जो दम्भ से, दूसरों की हिंसा के लिये, अविधिपूर्वक, क्रोध से, श्रद्धा से

धीरे अपना को दिया जाता है, वह दान अधम माना गया है।" "भगवद् गीता" में भी दान के विषय में ऐसी ही मान्यता मन्त्र की गई है—

यज्ञं दानं तप कर्म न त्याज्यं कायमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।

कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चिन मत्भुक्तामम् ॥

अथर्द्धया हुतं दत्ता तपस्तप्त कृतं च यत् ।

अगदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेक्ष्य नो इह ॥

अर्थात्—“यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग न करना चाहिए क्योंकि ये सब दाते श्रेष्ठ पुण्यों के लिये भी कल्याणकारी हैं। पर इन कर्मों को भी बिना आसक्ति रखे, फलाना का त्याग करके, कर्तव्य भावना में करते रहना चाहिये। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि जो यज्ञ, दान अथवा तप अथवा पूर्वक किया जाता है, वह 'असत्' है और लोक अथवा परलोक में कहीं भी कल्याणकारी नहीं होता।”

दान, सत्कर्म अवश्य है, और उसमें समाज का हित होता है, पर उसी दान में जब उसे जरूरतमन्द का बिना किसी स्वार्थ या लाभ की भावना के दिया जाता है। इस दानों केवल आत्म-कल्याण का हेतु ही नहीं मानते बल्कि अप्रत्यक्ष रूप में इसके द्वारा समाज में सम्पत्ति का अनुचन भी बना रहता है। धन का केन्द्रीकरण हाना समाज के लिये कभी हितकर नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसमें बहुमध्यक लोगो में कष्ट और अन-तोष की वृद्धि होती है और उसमें अन-समाज की शक्ति बढ़ जाती है। इसलिये निम्न प्रकार आजकल कानून द्वारा अग्रिम सम्पत्ति वाला पर लगन-बन्द के टैक्स लगा कर उसकी सम्पत्ति को मार्बजनिव हित के कारणों में व्यय किया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समाज विनाश के शानावा ने दान

की प्रेरणा ही थी, जिससे घन एक जगह एकत्रित न होकर समाज में वितरित होता रहे। हम हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों में ऐसे संकड़ी धनी व्यक्तियों का वर्णन पढ़ते हैं जिन्होंने अरनी लाखों अथवा करोड़ों की सम्पत्ति लोक कल्याण अथवा धर्म-कर्म के लिये दे दी। यहाँ हमें जैसे राजा भी हो चुके हैं जो अपनी आय में से त्रयें धन को प्रति वर्ष दान के रूप में अभावग्रस्त लोगों में बाँट देते थे। वर्तमान समय में जब कि लोगों को कानून द्वारा अपना धन देने को बाध्य किया जाता है तब वे तरह-तरह की चालाकियाँ करके कम से कम देने का प्रयत्न करते हैं। पर प्राचीन समय में जब उनको दान की प्रेरणा दी जाती थी तब वे स्वेच्छा से अपना धन देते थे जिससे सब साधारण में भी बेईमानी और धूर्तता के बजाय उदारता और त्याग की भावना बढ़ती थी। इस दृष्टि से उचित रीति से किये दान को आत्मा को शुद्ध बनाने के अतिरिक्त समाज में सामञ्जस्य और मतुलन का साधन भी माना जा सकता है।

गृहस्थ धर्म के विशेष नियम

यद्यपि देश-काल में परिवर्तन हो जाने से अब गृहस्थ जनों के रहन-सहन और व्यवहार में बहुत अन्तर पड़ गया है, तो भी 'नारद पुराण' में इस सम्बन्ध में जो नियम बतलाये हैं उनमें से कितने ही अब भी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिये उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि पूर्ण करके गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के लिये 'उत्तम कुल में उत्पन्न, रूप, लावण्य से युक्त, सद्गुणवती, सुशीला तथा धर्म परायण कन्या' के साथ विवाह करने की, सम्मति दी है जो उचित ही है। साथ ही उन्होंने विवाह-सम्बन्ध करने के लिये अयोग्य कन्याओं के जो कितने ही लक्षण बतलाये हैं वे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

'जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोग से युक्त कुल में उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक हों या बहुत कम हों, जो

सर्वथा केश रहित हो, जो बहुत बोलने वाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो बहुत क्रोध करने वाली, बहुत नादो या बहुत बड़े शरीर वाली, अग्नि कुरूप, किसी अङ्ग से हीन या अधिक अङ्ग वाली, उन्मत्त और चुगली करने वाली हो अथवा जो कुबडो हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरों के घर में रहती हो, झगडालू हो, मति-भ्रान्त हो, निष्पूर स्वभाव वाली हो, बहुत खाने वाली हो, जिसके दाँत ओर ओठ मोटे हो, जिसकी नाक से घुंघुंराहट की आवाज जाती हो और जो धूत हो, विद्वान् पुरुष उससे भी विवाह न करे। जो छत्र कण्ठ करने वाली हो, जो बहुत घमडी और बगुला-वृत्ति वाली (ऊपर से साधु और भीतर से दुष्ट) हो उससे भी विवाह करना उचित नहीं है।'

पुराणकार ने जिस प्रकार की लडकियों को विवाह के लिये अनुपयुक्त बतलाया है अब भी जानबूझ कर और सुविधा रहने पर उनसे विवाह करने को कोई तैयार नहीं होता। पर एक अन्तर अवश्य है कि जहाँ 'नारद पुराण' में स्वभावगत दोषों पर ज्यादा जोर दिया है वहाँ आजकल बाहरी रूप रङ्ग और बनाव चुनाव की दृष्टि से ही अधिक छानबीन की जाती है। इस समय पदा पुष्ट्या में और पदा स्थियों में चरित्र की शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता आदि की नजाय फैंशन, सजाबट बातूनीपन और ज्ञान शौकत को ही अधिक महत्व दिया जाने लगा है। इससे गृहस्थों के मुख और स्थिरता में ही कमी नहीं आई है परन्तु सामाजिक मुश्किलें, सहायण और सङ्गठन में भी कमी पड़ती जाती है। क्योंकि ऊपर लिखी प्रवृत्तियाँ मनुष्य के व्यक्तिगत लाभ और आराम की मनोवृत्ति का बढ़ावा देती हैं और जब अधिक जनसंख्या इन बातों को अपना लेती है तो उनमें हानि-कारक प्रतिस्पर्धा और अनैतिक साधनों से अपने लक्ष्य को पूरा करने की भावना जड़ पकड़ लेती है। ऐसा समाज जिसके सदस्य अपने-

अपने स्वार्थ को समष्टि की सुख-सुविधा की अपेक्षा प्रधानता हैं उन्नत और सुखी नहीं बन सकता ।

आगे चलकर सामान्य नागरिकों के लिये खाने, पीने, पहिनने और शिष्टाचार के जो नियम बनलाये हैं, उनमें से बहुत सी बातें अब भी अशिक्षित वर्ग के बहुसंख्यक लोगों में पाई जाती हैं, पर नवीन शिक्षा प्राप्त लोगों को वे अजीब ही लगेंगी । कहा गया है कि 'गृहस्थ व्यक्ति दो यज्ञोपवीत, दुपट्टा (बड़ा अँगोछा), सोने के कुण्डल और धोती जोडा रखे । उदटना, चन्दन, तेल लगाता रहे । केश, नाखून आदि कटाता हुआ पवित्र रहे और छड़ी लाठी तथा जल-पात्र रखे । स्वच्छ पगड़ी, छाता और जूता पहिने, पुष्पमाला धारण करे, सुगन्धित वस्तु का व्यवहार करे । ऐसा वेश रखे जो सबको भला जान पड़े । सदा स्वाध्याय करता रहे, अपने धर्म के अनुसार आचरण करता रहे, दूसरों का अन्न खाने और दूसरों की निन्दा करने से बचे । पैर पर पैर न रखे, झूठे पदार्थों को न लाधे, दोनों हाथों से शिर को न छुजावे । द्विज और देवालय के बायीं ओर होकर चले । देव पूजन, आचमन, स्नान, व्रत, श्राद्ध आदि में रुले केश अथवा चोटी न रखे । एक ही वस्त्र न पहिने रहे, गधा आदि घराब सबारी पर न चढे और निरयंकर वाद-विवाद न करे । व्यभिचार और चुगली से बचे और गौ, पीपल, अग्नि और पर्वत इनका बायीं ओर लेता चले ।

'अमूया, मत्सरता और दिन का सोना त्याग दे । दूसरे के पापों का वर्णन न करे अपने पुण्य को किसी में न बहे । अपने नाम, नक्षत्र तथा घन बल आदि का जिक्र किसी के सामने न करे । दुष्टों के साथ निवास न करे, शास्त्र के विरुद्ध चर्चा न मुने तथा भय, जुआ और गाने-बजाने में आसक्ति न रखे । गीली हड्डी, जूटी वस्तु, पाँता, मुर्दा और कुत्ते को छूकर वस्त्र सहित स्नान करे । चिता, चिता की लकड़ी, यूप (पशुओं को मारने का स्तम्भ)

चाटाल का स्पर्श कर लेने पर वस्त्र महित स्नान करे । दीपक, घाट और शरीर की छाया, बैश, वस्त्र और चटाई का जल, तथा बकरी, बिन्नी तथा झाड़ू की धूल, इन सबसे बचे क्योंकि ये सब प्रारब्ध का हरण करते हैं । सूप की हवा, शव-दाह का धुआँ, शूद्रा स्त्री के पति से दूर रहे तथा नाखून तथा बाल का शीशों से चवाना, नङ्गाहोकर मोना त्याग दे । तिर में लगाने से बचे तेल को शरीर में न लगावे, अपवित्र (बाजार से लाये) पान को न खाय, बाँयें हाथ अथवा केवल मुख से जल न पिए । गुरु की छाया पर पैर न रखे, उनकी आज्ञा भी कभी न टाले, योगी, यती, ज्ञानी पुरुषों की कभी निन्दा न करे । शाम, प्रात उपासना, हवन आदि अवश्य करे ।”

प्राचीन समय के लोग दैनिक जीवन में जित बातों को अनुचित, हानिकारक अथवा सामान्य शिष्टाचार के विपरीत समझते थे उनका यह काफी विस्तृत विवरण है । स्मृतियों में और भी बहुत सी बातें त्याग्य बतलाई हैं । वर्तमान समय में रहने सहने की परिस्थितियों में अन्तर पड़ जाने से इनमें से अनेक बातों का अनावश्यक अथवा बहम समझा जाता है । इस समय के शिक्षित व्यक्ति छुआछूत की बातों का एक डरीसला मानने लगे हैं और अस्पृश्यता को हटाने के लिये कानून द्वारा भी प्रयत्न किया जाता है । पर इसमें विचारणीय विषय यह है कि जन्म से किसी को शूद्र, अस्पृश्य या चाण्डाल आदि मान लेना तो प्रत्यक्ष में अनुचित है, पर जो व्यक्ति किसी गन्द पशु का करन क कारण प्रायः गन्दी हालत में रहता है, उनसे दूर रहने के नियम को घुरा नहीं बहा जा सकता । उदाहरण के लिये जो बधिन या बग्याई पशुआ का माटन और उनका मीम बेचने का कार्य करत हैं, अथवा जा मृत्त पशुआ के दान और उनका चमड़ा आदि निकालने का कार्य करत हैं, उनसे बचने तथा हाथ, पैर आदि में इन पदार्थों का कुछ अंश लगा ही रहता है । उनसे पृथक् रहना स्वच्छता की दृष्टि में आवश्यक मानना चाहिये । इसमें

नोच ऊँच का प्रश्न उठाना ठीक नहीं। इसी प्रकार गौली हड्डी, पशु वधके स्तम्भ, मुर्दा जैसी जैसी वस्तुओं के स्पर्श से मन में घृणा उत्पन्न होती है। उस अवसर पर स्नान करके ग्लानि को मिटा देना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

कुछ बातें बहम की तरह लगनी हैं पर विचार करने से उनके पालन में कोई दोष नहीं जान पड़ना। दीपक, खाट और शरीर की छाया अपने ऊपर न पड़ने देना, केश, वस्त्र और चटाई से टपकते जल को अशुद्ध मानना, बकरी, बिल्ली तथा झाड़ू की धूल से बचना चाहे सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण न हो पर स्वास्थ्य और स्वच्छता की निगाह से इनका पालन अनुचित नहीं कहा जा सकता। हाँ इसमें जो 'कुत्ते को छुआर स्नान करने की बात लिखी है, वह रितने ही आधुनिक 'बाबुओं' और "मिस्ट्रो" को अनुचित लग सकती है। क्योंकि वे छोटे कुत्ते को प्रायः गोदमें लेते रहते हैं। पर हमको समझ लेना चाहिये कि पुराणकार का आशय ऐसे विशेष वृत्ता से नहीं है, वरन् रास्ते में घूमने वाले 'गन्दे कुत्ते से है'।

यह भी आवश्यक नहीं कि हम इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन अवश्यमव करे। देशकाल की परिस्थितियाँ बदल जाने से बहुत से नियम हमको कोई दूसरा उपाय न होने से स्थगने ही पड़ते हैं। उदाहरणार्थ पहने पैदल अथवा बैलगाड़ी आदि पर यात्रा करनेका चलन था। उस समय लोग दोहर या सायङ्काल को किसी पड़ा पर ठहर कर अपना भोजन थाप बनाते थे। उसके लिये स्वयम् कुएँ से पानी खींच कर भूमि की झाड़ कर तथा जल छिड़र कर शुद्धतापूर्वक भोजन की व्यवस्था की जाती थी। ऐसा भोजन शास्त्रीय विधि के अनुसार शुद्ध तथा स्वास्थ्यदायक हो सनता था। पर आजकल यात्रा का प्रधान साधन रेल या मोटर बगैँ बन गई है। इन सवारियों में बैठने लायक स्थान पाने के लिये भी सपर्श करना पड़ता है, तब उनमें से उतर कर

भोजन बनाना और खाना सम्भव कैसे हो सकता है ? रेलवे स्टेशन पर तो हमको आँखों से यह देखते हुये कि वहाँ के खाद्य पदार्थ नीचे दर्जे के लोगों द्वारा बनाए और स्वच्छता की दृष्टि से अस-तापजनक हैं. खाचार होकर उन्ही को उचित से ज्यादा मूल्य देकर खरीदना और काम में लाना पड़ना है ।

शहरों में भी परिस्थितिवश हाटलो और भोजन की दुकानों का प्रचार निरन्तर बढ़ता जाता है और उनमें सभी जानियों और श्रेणियों के लोग काम करते हैं । उनमें भोजन करने वाला के लिये छुआछूत के प्राचीन नियमों का पालन करना किसी प्रकार सम्भव नहीं होता । बिस्कुट, उबलरोटी, टास्ट आदि जैसी नई खाद्य वस्तुओं को तो गणोंको द्वारा बड़े-बड़े कारखानों में बनाया जाता है जहाँ सैकड़ों व्यक्ति बिना जाति या धर्म के भेदभाव के नौकर रख लिये जाते हैं । इस लिये अब भोजन करते समय हमेशा खाद्य पदार्थों के भले या बुरे स्रोत अथवा कार्यकर्ताओं के श्रेष्ठ अथवा अध-न्य चरित्र का पता चलना प्रायः असम्भव है । इस अवस्था में एक मात्र माग यही रह जाता है कि हम स्वयम् तन, मन, धन की दृष्टि से शुद्ध रहे और किसी प्रकार का बुरा काम न करें । आप भला तो जग भला वाली कहावत यहाँ भी चरितार्थ हो सकती है ।

ज्योतिष और मंत्र विद्या—

ज्योतिष और मंत्र-शास्त्र का विवेचन "नारदपुराण" की एक प्रसिद्ध विशेषता है । इसमें गणित [सिद्धान्त], जातक [होरा] और संहिता तीनों शाखाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । गणित-ज्योतिष तो सर्वमान्य है और पश्चिमीय वैज्ञानिक भी उन्हीं के द्वारा सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र आदि ग्रहों की गति का ठीक ठीक हिसाब लगाकर उन तक अपने अन्तरिक्ष-यानों को पहुँचाने में सफल हो सके हैं । चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, सूर्योदय और सूर्यास्त का समय आदि का निर्णय भी गणित ज्योतिष द्वारा किया जाता है जो बिल्कुल ठीक निष्पत्ति है ।

“जातक-शाखा” का सम्बन्ध व्यक्तियों की भाग्य गणना और उनके जीवन में घटित होने वाले भावी परिवर्तनों तथा विशेष घटनाओं से माना गया है। सर्व साधारण को ज्योतिष की इसी शाखा का विशेष परिचय है और बाजार में बैठ कर लोगो० का राशिफल और भाग्य-फल बतलाने वाले ‘ज्योतिषी’ इसी के आधार पर हिसाब लगाया करते हैं। हमारे देश में इसको “फलित ज्योतिष” भी कहते हैं। तीसरी शाखा “संहिता” में देशव्यापी घटनाओं, वर्षफल, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। पचासवीं की रचना इसी के आधार पर की जाती है और भारतीय-समाज में प्रचलित षोडश-संस्कारों के समय का निर्णय इसी के द्वारा किया जाता है।

ज्योतिष-शास्त्र एक बहुत प्राचीन विद्या है। वैदिक काल में यज्ञों के कालनिर्णय में उसका प्रयोग किया जाता था और राज्य तथा राष्ट्र सम्बन्धी सभी कार्य उसी के द्वारा उत्तम मुहूर्त का निश्चय करके किये जाते थे। इस कार्य के लिये केवल भारतीय राजा ही ज्योतिषियों को अपने दरबारों में नहीं रखते थे, वरन् मिथ्र, यूनान और रोम जैसे पश्चिमीय देशों के बादशाह और राष्ट्रपति भी इस विद्या पर पूरा विश्वास रखते थे और युद्ध, विग्रह, मधि, सैन्य-संचालन का काल निर्णय ज्योतिषियों के मतानुसार ही किया जाता था। ‘वाइचिल’ में अनेक स्थानों पर भविष्य बचनावों का जिक्र आता है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस विज्ञान युग में भी, जो दूसरा विश्व युद्ध १९३६ से १९४५ तक वायुयानों और एटम बमों में लड़ा गया, सैन्य-संचालन में ज्योतिषियों की सलाह ली जाती थी। जर्मनी के मुख्य पत्रा-पत्रां हिटलर को, जो रायोगों की बदौलत अफिरारी में अधि-नायक (डिक्टेटर) बन गया था, ज्योतिष पर विश्वास था। वह युद्ध-संचालन सम्बन्धी अपने सभी निर्णय ज्योतिष विभाग की सलाह से करता

था। इस विभाग में पाच ज्योतिषी काम करते थे जिनका प्रधान विलियम क्राफ्ट था जो हिटलर का बड़ा विश्वासपात्र था।

जब अपने गुप्तचरो द्वारा इस रहस्य का पता इङ्गलैण्ड के अधिकारियो को लगा तो वहाँ के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल ने सोचा कि चाहे यह एक नई बात है और शायद मजाक ही हो पर इसमें फायदा क्यों न उठाया जाय। वस इंग्लैण्ड के सेना विभाग ने भी अपने देश में सुई डी० व्होल नामक ज्योतिषी का खोज निकाला जो वास्तव में हगरी का निवसी था, पर अब कई वर्षों से लन्दन में जाकर रहने लग गया था। उसने कुछ समय तक जर्मनी में रह कर हिटलर के ज्योतिषी विलियम क्राफ्ट के साथ काम किया था और वह उसकी ज्योतिष विधियो को अच्छी तरह जानता था। डी० व्होल को अंगरेजी सेना विभाग में भर्ती करके कप्तान का पद दे दिया गया और उसने लगातार कई वर्षों तक हिटलर के युद्ध सम्बन्धी निर्णयों का भेद अंगरेज सेनापतियों का बतलाकर जर्मनी की पराजय में पर्याप्त सहयोग दिया। ✓

ज्योतिष विद्या में वहाँ तक सच्चाई है और ज्योतिषी लोग जो भाग्यफल या भविष्यफल बतलाया करते हैं वे कितने अशोभे सत्य अथवा असत्य सिद्ध होते हैं, इस विषय में अधिक विवेचना करना यहाँ अप्रासङ्गिक होगा। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी अभी बहुसंख्यक लोगों का ज्योतिष विद्या पर विश्वास है और अच्छे समझदार और शिक्षित व्यक्ति भी किसी ज्योतिषी या हस्तरेखाज्ञाता को सामने देखकर अपना भविष्यफल पूछने का लोभ सम्बरण नहीं कर पाते। इस दृष्टि से 'तारक पुराण' का यह 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष वर्णन' वाला प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें गणित ज्योतिष के वर्णन में विभिन्न प्रकार के अकर्मणत, रेखा-गणित, क्षेत्र गणित आदि का जो सूक्ष्म रहस्य बतलाया गया है उसने लेखक की विद्वता प्रमाणित होती है। जातक और महिता विभाग में बतलाई गई विधियाँ भी स्पष्ट और सरल हैं जिनमें सभी श्रेणी के कम या अधिक अच्छे निरूपण लाभ उठा सकते हैं।

मन्त्र-शास्त्र का तो हमारे देश में अब भी बहुत अधिक प्रचार है और बड़े-बड़े विद्वान् भी उसकी सचाई में विश्वास करते हैं। यहाँ हजारों ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जिनकी सफलता का मुख्य आधार किसी मन्त्र का जप करना बतलाया जाता है। विद्या-प्राप्ति, धन लाभ, विवाह और सन्तान प्राप्ति, मुकदमा आदि में विजय इत्यादि सब कार्यों के लिये मन्त्रों का प्रयोग बतलाया गया है और लोग उसे बड़ी श्रद्धा और उत्साह से करते भी हैं, "नारदपुराण" में "मन्त्र" शब्द के 'म' का अर्थ मनन अथवा सर्वज्ञता तथा 'त्र' का नाण [रक्षा] बतलाया गया है। तदनुसार मन्त्र वह शक्ति है जिससे मनुष्य विविध प्रकार की सासारिक सफलतायें प्राप्त कर सकता है और अपनी रक्षा में भी समर्थ हो सकता है। वैसे वर्तमान समय में प्रचलित अधिकांश मन्त्र शाक्त और तांत्रिक मत के देखने में आते हैं, पर 'नारदपुराण' वैष्णव आम्नाय का है, इसलिये इसके सभी मन्त्र विष्णु, राम-सीता, कृष्ण, हनुमान से सम्बन्धित हैं। ये मन्त्र सवाम हैं, जिनका अनुष्ठान किसी भौतिक लाभ की इच्छा में किया जाता है। संभव है कि जो व्यक्ति दृढ श्रद्धा और एकाग्रनिष्ठा से इनका विधिवत् अनुष्ठान करते हैं उनको वैसा लाभ होता हो, फिर भी आध्यात्मिक विषयों में निष्काम भावना रखना ही सर्वोत्तम है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का निम्न कथन विचारणीय है—

"जो पुरुष किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान नहीं है। वह वस्तु साध्य है, और भगवान तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी कारणवश उसने अभीष्ट की प्राप्ति में देर होगी तो वह भगवान की भक्ति छोड़ सकता है। अतएव सवाम भाव से की हुई उपासना एक प्रकार में वाच्य वस्तु की ही उपासना है, भगवान की नहीं। इस बात का समझ कर भगवान की उपासना निष्काम प्रेम में ही करनी चाहिए।

'इहो धर्माग्निं यद्वात भी है त्रि सवाम अनुष्ठान का फल

प्रतिबन्धक की प्रबलता अथवा सरलता के अनुसार विलम्ब से या शीघ्र होता है। एक आदमी को किसी विशेष वस्तु या स्थिति की आवश्यकता है। वह उसके लिये गकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थिति की प्राप्ति में बाधक पूर्व जन्म का कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है, तो एक ही अनुष्ठान से अभीष्ट फल नहीं मिलता, बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकल के स्वामी पुरपा में इतना धैर्य हो सकता, अतएव वे देवता में ही अविश्वास कर बैठते हैं, तथा उसकी अवज्ञा करने लगते हैं, जिससे लाभ के बदले उलटी हा न हो जाती है।”

वास्तव में भक्ति के सम्यन्ध में कुछ मम्प्रदाय वालों ने बहुत भ्रांति उत्पन्न करदी है। वे लोगों को यही बतलाते हैं कि भगवान का दर्शन करने, तीर्थों में स्नान करने और एकादशी आदि के व्रत करने से सद्गति मिलना अवश्यम्भावी है। चाहे अपन कर्म भी पाप क्यों न किये हो इसमें पुराणकारों का दोष भी कम नहीं है। उन्होंने अपनी वक्षाओं का प्रभाव जमाने के लिये जगह-जगह लिखा है कि अमुक व्यक्ति जन्म भर पाप करता रहा, पर अन्त समय किसी प्रकार व्रत या तीर्थ स्नान कर लेने से ही उसे उत्कृष्ट गति प्राप्त हो गई। “वाराह पुराण” में कृब्जा-अक्र तथा कोकामुख आदि तीर्थ-क्षेत्रों में मरने से ही सपिणी, यौला, गृद्ध, शृगाल आदि जीवों को राजा और घनवानों की यानि में सद्गति प्राप्ति होने की बात बतलाई गई है।

इसी तरह के अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों के कारण अनेक लोगों को पुराणों पर शका और अश्रद्धा हा जाती है। पर जैसा हम बराबर कहते आये हैं वे पुराणों की उपदेशात्मक धर्म कथाओं अथवा उपाख्यानों के रूप में पड़ तो ऐसी कोई समस्या उत्पन्न होने की आशका नहीं रहती। हमने पुराणों में म ऐसे वर्णना को कम करने की यथाशक्ति चेष्टा की है, जिससे उनकी उपयोगिता बढी है और प्रचार भी होने लगा है। यदि पाठक ऐसा बुद्धिमत्त भाव रखकर पुराणों को पढ़ ग ता उनसे बहुत से कल्याणकारी उपदेश मिल सकेंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

भूमिका	३
१ सूत-ऋषि सवाद वर्णन	३३
२ सनक-नारद सवाद और विष्णु स्तुति	४६
३ भूगोल वर्णन और भारतवर्ष की श्रेष्ठता	६१
४ मृकण्डु मुनि को भगवान का वर देना	७७
५ मारकण्डेय की कथा और वर प्राप्ति	६६
६. प्रयाग और गङ्गाजी माहात्म्य वर्णन	११२
७ राजा वाहु का चरित्र	१२६
८ भगीरथ द्वारा गङ्गाजी का लाया जाना	१४१
९ मौदास चरित्र	१६६
१०. दैत्यो का अग्नि प्रकट कर भस्म होना	१६४
११ वामनावतार चरित्र	२०५
१२ इष्टापूर्त फल एव वीरभद्र नृप चरित्र	२४२
१३ नाना प्रकार दान-निरूपण	२६१
१४ द्विज धर्म निरूपण	२८६
१५ पापियो को नरक दण्ड वर्णन	३०५
१६. भागीरथ द्वारा गङ्गाजी का लाना	३३५
१७ शुक्ला द्वादशी व्रत का उद्यापन	३५७
१८ पूर्णिमा व्रत का उद्यापन	३७६
१९ ध्वजारोपण व्रत	३८५
२० मुमति-विभाण्डव सम्वाद	३९४
२१. हरि पञ्चरात्र व्रत	४१०
२२ मासोपमास व्रत	४१५
२३. एकादशी व्रत—भद्रशील उपाख्यान	४२०
२४ चारो वर्ण तथा स्त्रियो के सदाचार का वर्णन	४४०
२५ स्मार्त-धर्म वर्णन	४४७
२६ वेदाध्ययनादि वर्णन	४५६
२७ गृह्य वानप्रस्थ और गन्यामी के धर्म	४६८
२८ श्राद्ध-कृत्य विवरण	४८६

नारद पुराण

दृष्ट्वा सावनी

ननु अशुभं मो सं मुक्त मः पुत्रं हे उत सावनी पूर्वकपदं चारुम

॥ सूत-ऋषि संवाद वर्णन ॥

- ✓ ॐ नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।
 देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥
 वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम् ।
 उपेन्द्र साद्रकारुण्य परानन्द परात्परम् ॥१
 ब्रह्मविष्णुमहेशाद्य यस्याशा लोकसाधका ।
 तमादिदेव चिद्रूप विशुद्ध परम भजे ॥२
 शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिन ।
 नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेतुर्मुमुक्षव ॥३
 जितेन्द्रिया जिताहारा सन्त सत्यपराक्रमा ।
 यजन्त परया भक्त्या विष्णुमाद्य सनातनम् ॥४
 अनोप्या सर्वधर्मज्ञा लोकानुग्रहतत्परा ।
 निर्म्ममा निरहकारा परस्मिन्तमानसा ॥५
 न्यस्तकामा विवृजिना शमादिगुणसयुता ।
 कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला ब्रह्मचारिण ॥६
 गृणन्त परम ब्रह्म जगच्चक्षु समीजस ।
 धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तेपुर्नैमिषकानने ॥७

ग्रन्थ के आरम्भ में सब प्रथम विघ्न विनाशनाथं मङ्गलाचरण किया जाता है। भगवान् श्री नारायण—नरो म परम श्रेष्ठ नर—वाणी की देवी सरस्वती की प्रणाम करके फिर जो शब्द वा उच्चारण

करना चाहिए । भगवान् वेद व्यास देव के लिये प्रणाम है । अपने ललित केलि के स्थल वृन्दावन में विराजमान, श्री लक्ष्मीदेवी को आनन्द प्रदान करने के मन्दिर स्वरूप, इन्द्रदेव के अनुज (उपेन्द्र नाम वाले) वामन अवतार धारण करने वाले, अत्यधिक करुणा के केन्द्र, परमाधिक आनन्द के स्वरूप एव पर से भी पर सर्वोत्तम एव सर्व शिरोमणि भगवान् विष्णु की वन्दना करते हैं ॥१॥ जिस परम ब्रह्म की प्रभा का सृजन करने के ही कारण से 'ब्रह्मा' यह नाम हो गया है, प्रजा का पूर्ण परिपालन करने के कारण से 'विष्णु' यह नाम पड गया है तथा सृष्टि का सहार करने के कारण से 'शिव' यह नाम हो गया है । इस सम्पूर्ण लोक के साधन करने के वास्ते जिसके अश से इन्द्र वरुण आदि प्रतिष्ठित हुए हैं उन्ही आदिदेव परम विशुद्ध चित्स्वरूप भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥२॥ ब्रह्म के विषय में वाद करने वाले शौनक आदि महान् आत्मा वाले ऋषि वृन्द मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से नैमिष अरण्य में तपश्चर्या किया करते थे ॥३॥ वे लोग अपनी इन्द्रियो को विषयो की ओर न जाने देकर भोजन पर भी विजय प्राप्त कर सत्यस्वरूप पराक्रम से सुसम्पन्न होकर अत्यधिक भक्ति की भावना से आदि देव श्री सनातन विष्णु भगवान् की अर्चना कर रहे थे ॥४॥ ये लोग परम गन्धी थे और किसी से डाह नहीं किया करते थे । धर्म के दश प्रकार के धृति, क्षमा आदि समस्त धर्मों को अच्छी तरह से जानते थे । ससार में जो भी अधिकारी योग्य प्राणी थे उन पर सर्वदा अनुग्रह करने के लिये तदपर रहा करते थे । उनकी ममता किसी भी वस्तु पर नहीं थी और न वे ममत्व को जताते ही थे । उनके हृदय में अहङ्कार तो नाम मात्र को भी नहीं था और सदा उनका हृदय परब्रह्म में ही रमण किया करता था ॥५॥ सभी प्रकार के सङ्कल्पों का उन्होंने परित्याग कर दिया था । वे लोग पूर्णतया पापों से रहित और शमदम आदि सद्गुणों से भूषित थे । उनके मस्तक पर जटाएँ थी और वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले कृष्ण मृग के चर्म को धारण किया

करते थे ॥६॥ सम्पूर्ण लोक के चक्षु मूर्य के समान तेजस्वी निरन्तर वेदा का स्वाध्याय करते हुए धर्मशास्त्र के तत्व का भर्म जानने वाले वे मुनिगण उस नैमिषारण्य में तपस्या कर रहे थे ॥७॥

यज्ञैर्यज्ञपति केचिज्ज्ञानंज्ञानात्मक परे ।

केचिच्च परया भक्त्या नारायणमपूजयन् ॥८

एकदा ते महात्मान समाज चक्रुस्तमा ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायाञ्ज्ञातुमिच्छव ॥९१

पड्विंशतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरतसाम् ।

तेषां शिष्यप्रशिष्याणां सख्या वक्तुं न शक्यते ॥९०

मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजस ।

लोकानुग्रहकर्तारो वीतरागा विमत्सरा ॥९१

कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले ।

कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तंचेतसाम् ॥९२

कथं हरौ मनुष्याणां भक्तिरव्यभिचारिणी ।

केन सिद्ध्यते च फल कर्मणास्त्रिविधात्मन ॥९३

इत्येव प्रष्टुमात्मानमुद्यतान् प्रेक्ष्य शौनक ।

प्राञ्जलिर्वाक्यमाहेदं विनयावनत सुधी ॥९४

कतिपय मुनिगण यज्ञ के यजन करने के द्वारा यज्ञ के स्वामी भगवान् श्रीविष्णु का पूजन किया करते थे उनमें कुछ ऐसे थे जो ज्ञान शास्त्र की चर्चा के ज्ञान स्वरूप वाले ईश्वर की उपासना किया करते थे और मुद्दब भक्ति की भावना में श्री नारायणदेव की पूजा किया करते थे ॥८॥ एक बार उन सब महानुभावा ने मिलकर एक परमोत्तम सम्मेलन किया था । उस सम्मेलन में धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारा पुरुषार्थों की प्राप्ति के नियम उपायो क जानने की इच्छा रखने वाले छत्रीस सहस्र ऊर्ध्वरता मुनिगण सम्मिलित हुए थे । उस सम्मेलन में इन मुनियों के शिष्य प्रशिष्य भी सब आय ध जिनकी सख्या अगणित

धी । ६॥ ससार के प्राणियो पर अनुकम्पा करने की इच्छा वाले—
 राम द्वेष और भात्सर्य जैसे सब अवगुणो से रहिन पवित्र हृदय वाले,
 अत्यन्त ओजस्वी सम्मेलन मे सम्मिलित हुए गुनिवृन्दो को इस भूतल
 मे कौन कौन क्षेत्र एव तीर्थ पवित्र है तथा आधिभौतिक, आध्यात्मिक
 और आधिदैविक तापो के कारण होने वाले सन्तापो से सन्तप्त चित्त
 वाले प्राणियो को मुक्ति किस रीति से प्राप्त हो सकती है एव मनुष्यो
 की श्री विष्णु भगवान् के चरणो मे अनन्य भक्ति किस विधि से हो
 सकती है तथा नित्य और नैमित्तिक काम्य कर्मों का फल कैसे प्राप्त
 हो सकता है—इत्यादि अनेक प्रश्नो को पूछकर अपनी जिज्ञासा शान्त
 करने के लिए समुद्यत देखकर परम विनयशील और महान् बुद्धिमान
 श्री शौनकजी हाथ जोड कर कहने लगे थे ॥११—१४॥

आस्ते सिद्धाथमे पुण्ये सूत पौराणिकोत्तम ।

यजन्मखैर्बहुविधैर्विश्वरूप जनार्दनम् ॥१५

स एतदखिल वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनि ।

पुराणसहितावक्ता शान्तो वै रोमहर्षणि ॥१६

युगे युगेऽल्पकान् धर्मात् निरीक्ष्य मधुसूदन ।

वेदव्यासस्वरूपेण वेदभाग करोति हि ॥१७

वेदव्यासमुनि साक्षान्नारायण इति द्विजा ।

शुश्रुम सर्वशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासित ॥१८

तेन सशासित सूतो वेदव्यासेन धीमता ।

पुराणानि स वेत्त्येव नान्यो लोके तत पर ॥१९

स पुराणार्थविल्लोके स सर्वज्ञ स बुद्धिमान् ।

स शान्तो मोक्षधर्मज्ञ कर्मभक्तिकलापविद् ॥२०

वेदवेदाङ्गशास्त्राणा सारभूत मुनीश्वरा ।

जगद्धितार्थं तत्सर्वं पुराणेपूक्तवान् मुनि ॥२१

ज्ञानार्णवो व सूतस्तत्सर्वं त्वार्थंकोविद ।

तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन् ॥२२

महा महर्षि प्रवर श्री शौनकजी ने कहा—पुराणों के प्रवक्ताओं में परम श्रेष्ठ श्री सूतजी सिद्धाश्रम में रहते हैं । वहाँ पर वे सत्सार में व्यापक भगवान् जनादेन का विविध भाँति के यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं ॥१५॥ समस्त पुराणों के प्रवक्ता महर्षि लोमहर्षण के आत्मज अत्यधिक शान्ति से सम्पन्न श्री कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी के प्रिय शिष्य महामुनि के इन सभी बातों को भली भाँति पूर्णतया जानते हैं ॥१६॥ स्वयं श्रीविष्णु भगवान् ही युग २ में धार्मिक तत्वों का अधिक हास देखकर वेदव्यासजी के स्वरूप में आकर वेदों की संहिताओं का विभाग किया करते हैं ॥१७॥ हे द्विजगणों ! समस्त शास्त्रों में हमने यही श्रवण किया है कि श्री वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण के ही अवतार हैं । “ द्विवाहुरपरो हरि ” अर्थात् यह दो भुजाओं वाले दूसरे हरि भगवान् ही हैं और सूतजी उन्हीं व्यासदेव जी के प्रमुख शिष्य हैं ॥१८॥ इसलिए अपने गुरु श्री व्यासदेवजी से शिक्षा प्राप्त करते हुए सूतजी जिस प्रकार का उत्तम ज्ञान पुराणों का रखते हैं वैया या उनसे अधिक पुराणों का महान् ज्ञाता इस सत्सार में अन्य कोई भी नहीं हो सकता है ॥१९॥ वे सूतजी इस मन्सार में इस समय पुराणों के यथार्थ अभिप्राय को समझते हैं और वे पुराणों की समस्त बातों के भ्रमंज मनीषी हैं तथा परम बुद्धिमान, अत्यधिक शान्त, मोक्ष-धर्म के समुचित जानकार एवं कर्मबाण्ड और भक्ति-मार्ग को पूर्णतया जानने वाले भी हैं ॥२०॥ हे मुनिगण ! मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग स्वरूप वेद, ज्यातिग, मीमांसा, न्याय आदि वेद के अङ्गों का सम्पूर्ण सार सत्सार के हित को सिद्ध करने के लिये महामहर्षि श्री व्यासदेव जी ने पुराणों में ही सब कुछ कह कर बना दिया है । ज्ञान के जलनिधि श्री सूतजी उन समस्त तत्वों के अर्थ एवं अभिप्राय को समझने में बहूत ही कुशल हैं । इसलिए अब उन सूतजी से यहाँ सब बातें पूछना उचित है । इस प्रकार से शौनकजी ने उन सम्पुष्टित समस्त मुनियों से यही कहा था ॥२१॥२२॥

ततस्ते मुनय सर्वे शौनक वाग्विदा वरम् ।
 समाश्लिष्य सुसम्प्रीता साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२३
 अथ ते मुनयो जग्मु पुण्य सिद्धाश्रम वने ।
 मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभि परिशोभितम् ॥२४
 मनोजमूहलताफलपुष्पविभूषितम् ।
 युक्त सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसकुलम् ॥२५
 ते तु नारायण देवमनन्तमपराजितम् ।
 यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशू रोमहर्षणिम् ॥२६
 यथाहर्माचितास्तेन सूनेन प्रथितौजस ।
 तस्यावभृथमीक्षन्तस्तत्र तस्थुर्मन्डालये ॥२७
 अधरावभृथस्नात सूत पौराणिकोत्तमम् ।
 यप्रच्छुस्ते सुखासीन नैमिषारण्यवासिन ॥२८

उस समय समस्त मुनिगण परम प्रसन्न होगये थे और वक्ताओं में श्रेष्ठ शिरोमणि श्री शौनकजी से आतिङ्गन कर कहने लगे 'साधु-साधु' ॥२६॥ इसके पश्चात् वे सब मुनिवृन्द वन में स्थित पवित्र सिद्धो के आश्रम की ओर चल दिये थे । वह सिद्धो का आश्रम हिरनो के समूहो से गूँथा हुआ था । उसमें मुनिगण के विराजमान होने से परम शोभा हो रही थी । अति सुन्दर लता और वृक्ष, फल और पुष्प आदि से वह परम शोभा से सम्पन्न दिखाई देता था । वहाँ स्वच्छ एव परिपूर्ण सरोवर विद्यमान थे और वहाँ की कुटियों ने अतिथियो का स्वागत मन्वार मदा होता रहा करता था ॥२४ २५॥ वहाँ पर मुनिगण ने श्री सूतजी का दर्शन प्राप्त किया था जो अग्निष्टोम यज्ञ के यज्ञ के द्वारा अनन्त, अपराजित भगवान् नारायण की अर्चना में व्यस्त हुए रहे थे ॥२६॥ श्री सूतजी ने उन समागत वाजस्वी मुनियो का समुचित स्वागत-मन्वार किया था । वे सब मुनिगण यज्ञ के अव-भृथ अर्थात् यज्ञान्तर स्नान की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ विराजमान

हो गये थे ॥२७॥ ने अवभृथ स्नान करने के पश्चात् पौरा-
णिको मे परम श्रेष्ठ श्री मृतजी से मुख पूर्वक उपविष्ट होजाने पर उक्त
मुनिशो से वात्सल्य का आरम्भ किया था ॥२८॥

वय त्वतिथय प्राप्ता आतियेयास्तु सुव्रत ।
ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान् यथाविधि ॥२६
दिवोकसो हि जीवन्ति पीत्वा चन्द्रकलामृतम् ।
ज्ञानामृत भूसुरास्तु मुने त्वन्मुखनि मृतम् ॥३०
येनेदमखिल जात यदाधार यदात्मकम् ।
यस्मिन्प्रतिष्ठित तात यस्मिन् वा लयमेप्यति ॥३१
केन विष्णु प्रसन्न स्यात् स कथ पूज्यते नरै ।
कथ वर्णाश्रमाचारश्चातिथे पूजन कथम् ॥३२
सफल रथाद्यथा कर्मा मोक्षोपाय कथ नृणाम् ।
भक्त्या किं प्राप्यते पुभिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी ॥३३
वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदमशयम् ।
कस्य नो जायते श्रद्धा श्रोतु त्वद्वचनामृतम् ॥३४
शृणुध्वमृषय सर्वे यदिष्ट वो वदामि तत् ।
गीत सनकमुद्ययस्तु नारदाय महात्मने ॥३५
पुराण नारदोपाद्यमेतद्वेदायसम्मिमत् ।
सर्वपापप्रशमन दुष्टग्रहनिवारणम् ॥३६

श्रुतियो ने कहा—ह सुव्रत ! हम लोग अतिथि सत्कार को
प्राप्त करने के पाद्य अतिथि आपकी गवा म उपस्थित हुए हैं । अब
आप हम लोगो का आतिथ्य ज्ञान के प्रदान स्वरूप भेट के द्वारा ही
पृषा कर गरिए ॥२६॥ दक्षिण ता चन्द्र की कलाभा ने शरण करते
हुए अमृत का पान करके सदा जीवित रहा करते हैं । ह मुनिवर ।
हम तो ब्राह्मण हैं ना आपने मुख से उतरने वाली ज्ञान पीषूप का ही
पान करके जीवित रहने की आशा तैकर यहाँ प्राप्त हुए हैं ॥३०॥

आप यह बताइये कि जिनसे यह ससार उत्पन्न हुआ है, जिनका अवलम्ब ग्रहण कर यह सम्पूर्ण ससार टिका है, जो इसमें आत्मा रूप से व्याप्त है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें प्रतिष्ठित है। हे तात ! यह सब विश्व अन्त में जिसमें आकर लीन हुआ करता है वह भगवान् विष्णु किस रीति से प्रसन्न हुआ करते हैं और मनुष्यो वा उनका सम-चर्न किस विधि से करना चाहिए ? वर्णों और आश्रमों का वास्तविक स्वरूप कैसा हाता है तथा स्वनिवास भूमि पर समागत अतिथियो वा स्वागत-सत्कार किस प्रकार से करना चाहिए ॥२१-३२॥ मानवो द्वारा किया हुआ काशं कैसे सफल हुआ करता है और मानवो को मोक्ष की प्राप्ति करने का उपाय किस तरह से करना चाहिए। भगवान् की भक्ति से क्या प्राप्त हुआ करता है ? उस भक्ति का स्वरूप कैसा होता है ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी ! आपसे यही प्रार्थना है कि इन हमारे द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर इस रीति से समझाते हुए प्रदान कीजिए कि फिर हमारे हृदय में कोई भी सन्देह शेष न रहे। ऐसा कौन सा जीवात्मा होगा जो आपके वचनमृत वा पान करने में श्रद्धालु न होवे ? अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ॥३४॥ श्री सूतजी ने उत्तर दिया—हे समस्त ऋषिगण ! आपके मन में जो भी कुछ बातें हैं उनको मैं बतलाऊंगा उसका आप लोग श्रवण करे। एक बार सनकादि महा-पुरुषो ने श्री देवर्षि नारद जी से वेद सम्मत नारदोपाख्यान नाम वाले पुराण को कहा था। यह पुराण सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाला और दुष्टग्रहों के कुफलों को दूर भगा देने वाला है ॥३५-३६॥

दुःस्वप्ननाशन धर्म्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

नारायणवयोपेत सर्वकल्याणकारणम् ॥३७

धर्मार्थकाममोक्षाणा हेतुभूत महाफलम् ।

अपूर्वपुण्यफलद शृणुष्व सुसमाहिता ॥३८

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकः ।
 श्रुत्वंतदार्ष्यं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात् ॥३६॥
 यस्यैकाध्यायपाठनाद् वाजिमेघफलं लभेत् ।
 अध्यायद्वयपाठेन राजसूयफलं तथा ॥४०॥
 ज्येष्ठमासे पूर्णिमायां मूलर्क्षे प्रयतो नरः ।
 स्नात्वा च यनुनातोये मथुरायामृषोपितः ॥४१॥
 अभ्यर्च्यं विधिवत् कृष्णं यत्फलं लभते द्विजाः ।
 तत्फलं समवाप्नोति अध्यायत्रयपाठतः ॥४२॥

इस पुराण की महिमा कहा तक बतलाई जावे । यह बु स्वप्न के, फल को दूर कर देने वाला है । यह धर्म प्रदायक और मोक्ष रूपी फल का प्रदाता है एव भगवान् नारायण की कथा से पूर्ण यह सभी प्रकार के कल्याणों का देने वाला है ॥३७॥ यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ त्रुष्टय के हेतु रूप है । परमोत्तम फल के देने वाला और पुण्य का अपूर्व फल प्रदायक है । अब आप सब लोग इसका ही परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥३८॥ जो पुरुष ब्रह्म हत्या, मदिरापान, गुरुनलागमन आदि महान् पातकों से दूषित है तथा लहमन का भक्षण और शराब पीने वाली स्त्री से समागम आदि अनेक उग्र पातकों से भ्रष्ट हो गया है वह भी इस श्रुति प्रणीत पुराण का श्रवण कर परम पवित्र एव शुद्ध हो जाया करता है ॥३९॥ इस प्रमुख पुराण की केवल एक अध्याय का पाठ करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हुआ करता है तथा दो अध्यायों के पाठ से राजसूय यज्ञ का फल मिला करता है । अभिप्राय यही है कि इस ग्रन्थ में कहे हुए धर्मों का समाचरण करने से समस्त पातकों-महापातकों और उपपातकों से शुद्धि के साथ साथ अश्वमेघ और राजसूय यज्ञों के यजन करने के बराबर फल भी प्राप्त हो जाता है ॥४०॥ जो पुरुष मूल नक्षत्र से सम्बन्धित ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन परम साधुधारी के साथ

मथुरा में श्री यमुना में स्नान करके तथा व्रत करके सविधि श्रीकृष्ण का अर्चन करने पर जो फल प्राप्त करता है । हे द्विजगण ! वही फल इस पुराण के तीन अध्यायों के पठन या श्रवण से प्राप्त हो जाता करता है ॥४१॥४२॥

तत्प्रवक्ष्यामि व सम्यक् शृणुध्व गदतो मम ।

जन्मायुतार्जितं पापैर्मुक्तं कोटिकुलान्वित ॥४३

ब्रह्मण पदमासाद्य तत्रैव प्रतितिष्ठति ।

श्रुत्वास्य तु दशाध्यायान् भक्तिभावेन मानव ॥४४

निर्वाणमुक्तिं लभते नात्र कार्या विचारणा ।

श्रेयसा परम श्रेयं पवित्राणामनुत्तमम् ॥४५

दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतो द्विजा ।

श्रद्धया सहितो मर्त्यं श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥४६

पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातकराशिभिः ।

सतामेव प्रवक्तव्यं गुह्याद् गुह्यतरं यत ॥४७

हे द्विजश्रेष्ठा ! मैं अब इसी परम पावन पुराण का वर्णन आप लोगों के समक्ष में करता हूँ आप लोग सावधान होकर भली भाँति मुझ से श्रवण करें। भक्ति भावना से इस पुराण के दश अध्यायों के पाठ से दश सहस्रों जन्मों में किये हुए पापों में मुक्ति पाकर अपने कोटिश कुलों के साथ मुक्त होकर ब्रह्माजी के लोक में सीधा चला जाता करता है और वह वहीं पर निवास किया करता है ॥४३-४४॥ इस पुराण के श्रवण करने वाली को निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है। इसमें कुछ भी विचार या गणना की बात नहीं है। यह परम श्रेयस्कर, अत्यधिक पवित्र तथा दुःस्वप्नों का निवाश करने वाला पुराण है। हे द्विजगण ! इस पुराण को यत्न यत्न के साथ सुनना चाहिए। जो कोई मनुष्य श्रद्धा के साथ यदि इसके एक या आधे श्लोक या भी पाठ कर लेता है तो वह इसमें वर्णित विषय जानने वाले सब धर्मों का पावन कर लेता

है और सुवर्ण आदि की चोरी प्रभृति महा पातकों के समुदाय से विमुक्त होजाया करता है । यह पुराण परम गोपनीय वस्तु है । अतएव इसका श्रवण भी सज्जन पुरुषों को ही करना चाहिए ॥४५॥ ॥४६॥४७॥

वाचयेत् पुरतो विष्णो पुण्यक्षेत्रे द्विजान्तिके ।
 ब्रह्मद्रोहपराणा च दम्भाचारयुतात्मनाम् ॥४८
 जनाना वकवृत्तीना न ब्रूयादिदमुत्तमम् ।
 त्यक्तकामादिदोषाणा विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥४९
 सदाचारपराणा च वक्तव्य मोक्षसाधनम् ।
 सर्वदेवमयो विष्णु स्मरतामातिनाशन. ॥५०
 सद्भक्तिवत्सलो विप्रा भक्तघा तुप्यति नान्यथा ।
 अश्रद्धयापि यन्नाम्नि कीर्तितेऽथ स्मृतेऽपि वा ॥५१
 विमुक्त पातकैर्मर्त्यो लभते पदमव्ययम् ।
 ससारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदन ॥५२
 स्मरता सर्वपापानि नाशयत्याशु सत्तमा. ।
 तदयंद्योतकमिद पुराणा श्राव्यमुत्तमम् ॥५३
 श्रवणात् पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत् ।
 यस्यास्य श्रवणे बुद्धिर्जायते भक्तिसयुता ॥५४
 स एव कृतवृत्त्यस्तु सर्वशास्त्रार्थकोविद ।
 यदाजित तप पुण्य तन्मन्ये सफल द्विज ॥५५
 यदस्य श्रवणे भक्तिरन्यथा न हि जायते ।
 सत्कथामु अवर्तन्ते सज्जना ये जगद्विता ॥५६

किसी भगवान् विष्णु के मन्दिर में, पवित्र तीर्थ स्थल में किसी विद्वान् सुवक्ता ब्राह्मण से इसकी कथा कहनवानी चाहिए । जो ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले हों, वे वैश्व प्रदर्शन कर दोग दिखाने के लिये ही धर्म का आचरण करें, यगुता भगत हो अर्थात् ऊपर के कुछ और—

और मन मे कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए । यह तो मोक्ष का साधन पुराण है । इसे तो जो सदाचारी और कायादि दोषों से रहित विष्णु भक्त पुरुष हो उन्ही को इसका श्रवण कराना चाहिये । भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते है । वे सद्भक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्ही बातों या साधनों से ऐसे परम प्रसन्न नहीं होते है मनुष्य के हृदय मे भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन या उनके गुण एवं लीलाओं का स्मरण करने मात्र से समस्त पातकों से बच कर वह अव्यय पद का प्राप्त कर लिया करता है । मधु नामक दैत्य का वध करने वाले प्रभु इस ससार रूपी (पाप पूर्ण) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुषा । ये भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर दिया करते हैं । उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्ही उपायों को यह नारद पुराण बताता है । इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा कराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढाने एवं सुनने-सुनाने से सभी पापों का विनाश हो जाया करता है । जिसकी बुद्धि मे भक्ति की भावना से इसके श्रवण करने की बात बँट जाती है वह सभी शास्त्रों का तात्पर्याय समझने मे चतुर पुरुष वृत्तवृत्त्य ही होजाता है । हे द्विज-गण । उमने जो कुछ भी तपश्चर्या और पुण्य किया है उमको मैं सफल हुआ ही समझता हूँ ॥५४-५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनन की श्रद्धा-भक्ति बँसे कभी भी हो ही नहीं सकती है । जो मनुष्य इस गमन के हित के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं । ऐसे सज्जन मनुष्यों की ही गलतियों की आर प्रवृत्ति हुआ करती है ।

निन्दाया कलहे वापि ह्यमन्त पापतत्परा ।

पुराणेऽप्यथैवादेव ये वदन्ति नराधमा. ॥५७

- तैरजितानि पुण्यानि क्षय यान्ति द्विजोत्तमाः ।
- समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८
- पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते ।
- अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५९
- पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
- अनायासेन य. पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०
- श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।
- पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुस. प्रजायते ॥६१
- पुराजितानि पापानि तस्य नश्यत्यसंशयम् ।
- परागे वर्तमानेऽपि पापपाप्मेन यन्त्रितः भादरेणा-
- न्यगाथासु सक्तबुद्धि पतत्यधाः ॥६२

जो महापापी एव सज्जनता के सदगुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और कलह में ही फँसे रहा करते हैं । ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं । तात्पर्य यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का मण्डार कह कर मिथ्या कहते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन लोगों के जो भी कुछ सचित पुण्य है वे सध नष्ट हो जाया करते हैं । जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरोपार्थ के साधन हैं उन पुराणों को जो मिथ्या कहने हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं । मनुष्य धर्म्य कर्मों को तो विधि के साथ मिट्ट कराने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में घुस बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णन किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं । हे द्विजगण ! बिना किसी दृष्ट के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखना हो उसे चाहिए कि भक्ति भाव से माय पुराणों का श्रवण करे । जो मनुष्य पुराणों के श्रवण करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के सचित सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । पुराणों के विद्यमान रहते हुए भी जो मनुष्य

और मन में कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए। यह तो मोक्ष का साधन पुराण है। इसे तो जो सदाचारी और कायादि दोषों से रहित विष्णु भक्त पुरुष हों उन्हीं को इसका श्रवण कराना चाहिये। भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते हैं। वे सदाभक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्हीं बातों या साधनों से ऐसे परम प्रसन्न नहीं होते हैं मनुष्य के हृदय में भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन या उनके गुण एवं लीलाओं का स्मरण करने मात्र से समस्त पातकों से बच कर वह अव्यय पद को प्राप्त कर लिया करता है। मधु नामक दैत्य का वध करने वाले ब्रह्मा इस सप्ताह रूपी (पाप पूर्ण) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुषो। वे भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर दिया करते हैं। उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्हीं उपायों को यह नारद पुराण बताता है। इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा कराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढ़ाने एवं सुनने-सुनाने से सभी पापों का विनाश हो जाया करता है। जिसकी बुद्धि में भक्ति की भावना से इसके श्रवण करने की बात बँठ जाती है वह सभी शास्त्रों का तात्पर्यार्थ समझने में चतुर पुरुष कृतकृत्य ही हो जाता है। हे द्विज-गण ! उसने जो कुछ भी तपश्चर्वा और पुण्य किया है उसको मैं सफल हुआ ही समझता हूँ ॥५४-५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनने की श्रद्धा-भक्ति जैसे कभी भी हो ही नहीं सकती है। जो मनुष्य इस सागर के हित के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं। ऐसे सज्जन मनुष्यों की ही सत्कथाओं की ओर प्रवृत्ति हुआ करती है।

निन्दाया कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्परा ।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥५७

तैरर्जितानि पुण्यानि क्षय यान्ति द्विजोत्तमाः ।
 समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८
 पुराणान्यर्थवादेन द्रुवन्नरकमश्नुते ।
 अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५९
 पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
 अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०
 श्रोतवधानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।
 पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुंसः प्रजायते ॥६१
 पुराजितानि पापानि तस्य नश्यत्यसशयम् ।
 परागे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः आदरेणा-
 न्यगाथामु सक्तबुद्धिः पतत्यधाः ॥६२

जो महापापी एव मज्जनता के सदगुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और कलह में ही फँसे रहा करते हैं । ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं । तादृश्यं यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का भण्डार कह कर मिथ्या करते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन लोगों के जो भी कुछ सचित पुण्य है वे मग्न नष्ट हो जाया करते हैं । जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के साधन हैं उन पुराणों को जो मिथ्या कहते हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं । मनुष्य अन्य कर्मों को तो विधि के साथ मित्र करने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में ग्रस्त बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णन किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं । हे द्विजगण ! बिना किसी पक्ष के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो उसे चाहिए कि सति भाव के साथ पुण्यों का श्रवण करे । जो मनुष्य पुराणों के श्रवण करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के गश्चिन्त सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । पुराणों के विद्यमान रहने हुए भी जो मनुष्य

पापो के जाल में बँधे रहा करते हैं और व्यर्थ की अन्य बातों में बुद्धि लगाये रहते हैं उनका निश्चय ही अध पतन हुआ करता है ॥५७—६२॥

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्य ।
 प्रयातिविष्णो परम पद यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजा ॥६३
 तस्मादिदं नारदनामधेय पुण्य पुराण श्रुणुत द्विजेन्द्रा ।
 यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिहीनो नरो भवेदच्युतनिष्ठचेता ।६४
 वर वरेण्य वरद पुराण निजप्रभाभावितसर्वलोकम् ।
 सकल्पितार्थप्रदमादिदेव स्मृत्वा ब्रजेन्मुक्तिपद मनुष्य ॥६५
 ब्रह्मेशविष्णवादिशरीरभेदैर्विश्व सृज्यति च पाति विप्रा ।
 तमादिदेव परम परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥६६
 यो नाम जास्यादिविकल्पहीन पर पराणा परम परस्माद् ।
 वेदान्तवेद्य स्वजनप्रवाण समीड्यते सर्वपुराणवेदै ॥६७
 तन्मात्तमीश जगता विमुक्तिमुपासनायालमज मुरारिम् ।
 पर रहस्य पुरुषार्थहेतु स्मृत्या नरो याति भवाब्धिपारम् ॥६८

जो लोग साधुओं की सङ्गति, दबों का यजन और परम श्रेष्ठ कथा तथा हितकारी उपदेश देने में सलग्न रहता है वह मनुष्य इस पापिब शरीर के पात हो जाने पर अच्युत भगवान् के महेश तेज सम्पन्न होकर सीधा श्री विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त किया करता है ॥६३॥ इसलिये हे द्विजवरो ! आप सब लोग परम पावन इन नारद पुराण का श्रवण करिए । इनके गुणन का ऐसा प्रभाव है कि इसका श्राता भगवान् अच्युत में अपना चित्त लगा दिया करता है और फिर इन पित्त की भगवत्परण में गलनाता के कारण से जन्म-मरण और बाधकन के धारम्यार आवृत्ति हान के सम्पूर्ण दृष्ट ग मुक्त हो जाता है ॥६४॥ यह परम श्रेष्ठ पुराण है और यह वरण करने के योग्य साधान् वरदान देन योग्य है । इन पुराण की प्रदीप्त प्रमत्त

सम्पूर्ण लोकां भावित् रहा करते हैं । मनोवाञ्छित (धर्म, काम, मोक्ष आदि) प्रयोजनों को पूर्ण कर देने वाले आदिदेव विष्णु भगवान् का भजन करने से मनुष्य छुटकारा पा जाता है और उसकी मुक्ति होजाया करती है ॥६५॥ हे विप्रवरो ! जो सर्व शक्तिमान् भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के स्वरूपों में भिन्न २ शरीरों से इस समस्त विश्व का उद्भव, पालन और सहार किया करते हैं । उस परमेश्वर आदि देवेश्वर को अपने हृदय में स्थापित कर लेने से निश्चय ही मनुष्य की मुक्ति हो जाती है ॥६६॥ जो भगवान् नाम, जाति, रूप आदि के विकल्प से रहित है, जो सूक्ष्मात्सूक्ष्म एव परमाधिक सूक्ष्म है जो श्रेष्ठ शिरोमणियों से भी परम श्रेष्ठतम है, जिनका ज्ञान वेदान्त के ग्रन्थों के परिशीलन से प्राप्त होता है जो परम प्रिय भक्तों के हित-सम्पादन के लिए पारम्बार प्रकट हुआ करते हैं और जिनका समस्त वेद और पुराण पूजन किया करता है ॥६७॥ उन जन्म से रहित भगवान् मुरारि जगदीश्वर की ही सदुपासना मुक्ति के लिये पर्याप्त साधन है । इन धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय क हतुभूत, परम रहस्य एव अत्यधिक गाय भगवान् का स्मरण करने से प्राणी इस महान् घोर सगर रूपी सागर से पार हो जाया करता है ॥६८॥

वक्तव्य धार्मिकेभ्यस्तु श्रद्धवानेभ्य एव च ।

मुमुक्षुभ्यो वतिभ्यश्च वीतरागेभ्य एव च ॥६६॥

वक्त्रेण पुण्यदेशे च सभाया देवनागृहे ।

पुण्यक्षेत्रे पुण्यतीर्थे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥७०॥

उच्छिष्टदेशे वक्त्रार आख्यानमिदमुत्तमम् ।

पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसप्लवम् ॥७१॥

मृषा शृणाति यो मूढो दम्भो भक्तियवर्जित ।

सोऽपि तद्वन्महाघोरे नरके पच्यतेऽक्षये ॥७२॥

नरो य सत्कथामध्ये सम्भाषा धुरतेऽन्यत ।

स याति नरकं घोरं तदेनाग्रमना भवेत् ॥७३॥

श्राता वक्ता च विप्रेन्द्रा एष धर्म. सनातन ।
 असमाहितचित्तस्तु न जानाति सि किञ्चन ॥७४
 तत एकमना भूत्वा पिवेद्वरिकथामृतम् ।
 कथ स भ्रान्तचित्तस्य कथास्वाद. प्रजायते ॥७५

इस गोपनीय पुराण के सुनने के अधिकारी भी परम धार्मिक-
 श्रद्धालु-मुमुक्षु-स-यासी और रागादि रहित पुरुष ही होते हैं । अतएव
 ऐसी योग्यता के पात्र उनको ही यह पुराण सुनना चाहिए अर्थात्
 इनके अतिरिक्त इनके सुनने के अधिकारी नहीं हैं । इस पुराण की
 कथा ऐसे ही किसी परमोत्तम स्थल में कहनी चाहिये जो या तो
 देवालय हो, या सभामण्डप हो, या पवित्र क्षेत्र एव तीर्थ हो । इसकी
 कथा देवों और ब्राह्मणों के समक्ष में कहना चाहिए ॥६६॥७०॥ जो
 कोई कथा वाचक मनुष्य इस परम श्रेष्ठ पुराण की कथा किसी अप-
 वित्र स्थान में कहते हैं वे वहाँ प्रलय काल तक घोर नरक में कष्ट
 भोगा करते हैं ॥ ७१ ॥ जो दम्भ में भर कर महामूढ भक्ति के भाव
 से शून्य हो और दिना भाव के व्यर्थ ही इस पुराण की सुनता है वह
 भी अक्षय महान् घोर नरक में निवास कर पीडित होता है ॥७२॥
 जो कोई श्रोता कथा के बीच में अन्य चर्चाओं किया करते हैं वे भी
 घोर नरक में गिरते हैं, अतएव कथा का श्रवण चित्त की एकाग्रता से
 ही करना चाहिए ॥७२॥ हे विप्र शिरोमणियो ! यह धर्म सनातन है
 चाहे कोई श्रोता है या प्रवक्ता हो यदि उनका हृदय समाहित नहीं
 होता है तो उसका कुछ भी शान नहीं बढ़ना है और श्रवण जो
 अगाधघानी में किया है पनशून्य ही होजाता है ॥७४॥ अतएव सदा
 अपने मन का एकाग्र करने ही हरि की कथारूपी पीयूष का पान
 करना चाहिए । त्रिरसा चित्त अन्धिर और अनायमान हे उनकी
 कथा के सुग्म का कुछ भी स्वाद नहीं आता है ॥७५॥

किं सुखं प्राप्यते लोके पुंसां सम्भ्रातचेतसा ।
 तस्मात् सर्वं परित्यज्य कामं दुःखस्य साधनम् ॥७६॥
 समाहित मना भूत्वा कुर्यादच्युतचिन्तनम् ।
 येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोऽव्ययः ॥७७॥
 अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न सशयः ।
 यस्य नारायणे भक्तिर्विभौ विश्वेश्वरेऽव्यये ।
 तस्य स्यात्सफल जन्म मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥७८॥
 धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्था द्विजोत्तमाः ।
 हरिभक्तिपराणा वै सम्पद्यन्ते न सशयः ॥७९॥

क्या सर्वदा अस्विर चित्त वाले पुरुष को कभी कोई सुख प्राप्त होता है ? अर्थात् कभी भी नहीं मिलता है इसीलिये सब प्रकार की इच्छाओं को और सकल्पों को त्यागकर इस दुःखदाता चित्त को ही भगवच्चरणों में यत्नपूर्वक लगा देना चाहिये ॥७६॥ परम सावधान हृदय से भगवान् विष्णुदेव का ध्यान करे । चाहे किसी भी प्रकार से उस अविनाशी नारायण की आराधना की जावे वे ऐसे दयालु हैं कि पातकी पुरुष पर प्रसन्न ही होते हैं ॥७७॥ जिस पुरुष की उस अविनाशी व्यापक विश्वेश्वर भगवान् विष्णुदेव में सुदृढ भक्ति होती है उसका जन्म धारण करना ही सफल हो जाता करता है और मुक्ति तो फिर अपने ही मुट्ठी में आ जाती है ॥७८॥ हे श्रेष्ठतम विप्रो ! श्री हरि की भक्ति में तत्पर पुरुषों को धर्मार्थकाम मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टयप्राप्त हो ही जाता है ॥७९॥

॥ सनक-नारद संवाद और विष्णु स्तुति ॥

कथं सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने ।

प्रोक्तवान् सकलान् धर्मान् कथं तौ मिलितावुभौ ॥९॥

कस्मिन् स्थाने स्थितौ सूत तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।

हृग्गिगीनसमुद्गाने चक्रतुस्तद्वदस्व न ॥२

सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसा सुता ।

निर्गमा निरहङ्कारा सर्वे ते ह्यूध्वरेतस ॥३

तेषा नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दन ।

सनत्कुमारश्च विभु सनातन इति स्मृत ॥४

विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणा ।

सहस्रसूर्यसंकाशा सत्यसन्धा मुमुक्षव ॥५

एकदा मेरुशृङ्गं ते प्रस्थिता ब्रह्मण सभाम् ।

इष्ट मार्गेश्च ददृशु गगा विष्णुपदी द्विजा ॥६

ता निरीक्ष्य समुद्युक्ता स्नातु सीताजलेऽभवन् ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षिनारदो मुनि ॥७

आजगाम द्विजश्रेष्ठा दृष्ट्वा भ्रातृन् स्वकाश्रजान् ।

तान् दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान् नमस्कृत्य कृताञ्जलि ॥८

श्रृष्टिगणा न ब्रह्मा—सनत्कुमारजी ने महात्मा देवर्षि श्री नारद जी से इन सब घमों का वणन किस तरह से किया था और इन दोनों का सम्मिलन कहा किस कारण से हुआ था ? ॥१॥ हे सूत जी ! आप यह भी बतनाइय कि इन दोनों ब्रह्मवादियों ने जो भगवत् चर्चा की थी वह विष्णुदेव के गुणा का गान किस स्थान पर विराजमान होकर किया था ? ॥२॥ श्री सूतजी न ब्रह्मा—श्री सनकादि महापुरुष श्री ब्रह्माजी का मानस पुत्र हैं । उदम न तो किसी प्रकार का ममत्व है और न अहं बुद्धि ही है । य सब ऊँचरता महागुभाव हैं ॥३॥ अब हम दो तारों का परम गुण नामा की भी धारणा बतनात है— सारक—सन दा—सन कुमार और विभु सनातन य चारों के पार नाम हैं । य चारों ही भगवान् का परम भक्त महान् आत्माना होते थे तथा सबदा श्रेष्ठ के ध्यान में निरत रहा परत

ये ये सहस्रो सूर्य के सह शभजानान्धकार के नाशक, सदैव प्रतिज्ञ और मुमुक्षु हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजगण ! एक नमम की घटना है वे ब्रह्माजी की सभा में गमन करने के वास्ते अपने इच्छित मेरु शृङ्ग की ओर चल दिये थे । मार्ग में उन्होंने श्री विष्णुदेव के चरण कमल से प्रकट हुई भागीरथी गङ्गा का दर्शन करके उस पाट पर इनकी पद्धति के गुल्य वहन करने वाली गङ्गा में ध्वसाहन के लिये प्रस्तुत हुए थे । हे द्विजवरो ! उसी समय में वहाँ पर देवपि नारदजी आगये थे । उन्होंने अपने ज्येष्ठ भाइयो को स्नान करने को उद्यत हुए देखा तो उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया या ॥७॥८॥

शृणन् नामानि सप्रेमभक्तियुक्तो मधुद्विप ।

नारायणच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन ॥६

यज्ञेश यज्ञपुरुष कृष्ण विष्णो नमोऽस्तु ते ।

पद्माक्ष कमलाकान्त गङ्गाजनक केशव ।

क्षारोदशायिन् देवेश दामोदर नमोऽस्तु ते ॥१०

✓ श्रीराम विष्णो नरसिंह वामन प्रद्युम्न सकर्षण वासुदेव ।

अजानिरुद्धामलरुद् मुरारे त्व पाहि न सर्वभयादजसम् ॥११

इत्युच्चरन् हरेर्नाम नत्वा तान् स्वाग्रजाम् मुनीन् ।

उपासीनश्च तै सार्धं नस्तौ प्रीतिसमन्वित ॥१२

ते चापि तु सीताया जले लोकमलापहे ।

स्नात्वा सन्तर्प्य देवपिपितृन् विगनकल्मषा ॥१३

उत्तीर्य सन्ध्योपास्त्यादि कृत्वाचार स्वक द्विजा ।

कथा प्रचक्रु विविधा नारायेणगुणाश्रिता ॥१४

इसके अनन्तर बहून् ही भक्तिभाव के साथ मधुदेव्य के वध करने वाले उमके शत्रु भगवान् के निम्नलिखित नामों का उच्चारण करने लग । उन्होंने कहा—हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपने (हमारा) प्रणाम है । हे यज्ञ पृथ्व ! हे यज्ञेश !

हे कृष्ण । हे विष्णो । आपको (हम सबका) प्रणाम है ॥६॥१०॥
 हे कमल पत्राक्ष । हे लक्ष्मीकान्त । हे गङ्गाजनक । हे केशव ।
 हे क्षीरोदि शायिन् । हे देवेश । हे दामोदर । आपकी सेवा मे
 हमारा सबका प्रणाम समर्पित है । हे श्रीराम । हे प्रद्युम्न । हे
 सङ्कर्षण । हे वासुदेव । विष्णो । नरसिंह । वामन । अज । अनिरुद्ध ।
 निर्मल कान्ति सम्पन्न । आप ही विश्व के पदार्थ जगत म व्याप्त है
 ऐसे आप हमारी सभी तरह के भयो स रक्षा करे ॥११॥ इस रीति
 से देवर्षि नारदजी नेथी हरि भगवान् के नामो का उच्चारण करके अपन
 ज्येष्ठ भाई मुनियो को प्रणाम किया था और फिर उन्ही के साथ
 अवगाहन करके वही पर बंठ गये थे ॥१२॥ हे द्विजगणो । सनकादि
 भी सासारिक मल को धो डालने वाले भागीरथी के जल मस्नान करके
 देवर्षि पितृगण का तर्पण करने लग और फिर जल से बाहिर आकर
 उम पापरहित मुनिगण ने अपना सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म सम्पा-
 दित करके नारायण के गुणो से पूरित अनेक कथार्यो कहना आरम्भ
 कर दिया था ॥१३॥१४॥

कृतक्रियेषु मुनिषु गङ्गातीरे मनोरमे ।

चकार नारद प्रश्न नानाद्य्यानवधान्तरे ॥१५

सर्वज्ञा स्य मुनिश्चेष्टा भगवद्भक्तितत्परा ।

यूय सर्वे जगन्नाथा भगवन्त सनातना ॥१६

साकोटारपरान् युष्मान् दीनेषु वृतसौहृदान् ।

पृच्छे ततो वदत म भगवल्नक्षग युधा ॥१७

यादमघिल जात जगत् स्थात्परजङ्गमम् ।

गङ्गा पादोदर यम्य स कथं जायते हरि ॥१८

यथ च त्रिविध सफल जायते नृणाम ।

ज्ञानस्य सक्षणं यत् तपसश्चापि मानद ॥१९

अतिथे पूजनं चापि येन विष्णु प्रसादनि ।

एवमादीनि गुह्यानि हरितुष्टिकराणि च ।
 अनुग्रह्य च मा नाथा तत्त्वतो वक्तुमर्हथ ॥२०॥
 नम पराय देवाय परस्मात् परमाय च ।
 परावरनिवासाय सगुणायागुणाय च ॥२१॥

इसी समय में जब कि वे लोग नित्य कर्म की पूर्ण करके विविध श्री हरि कथाओं का प्रवचन कर रहे थे श्री नारद ने प्रश्न किया था ॥१५॥ दर्शय न पूछा था— हे परम श्रेष्ठ भुनिजनो ! यह तो परम निश्चित है कि आप सभी सर्वज्ञ हैं और सर्वदा भगवद्भक्ति में सलग्न रहा करते हैं । सम्पूर्ण ऐश्वर्य—वीर्य—यश—श्री—ज्ञान—वैराग्य इन छै (षडैश्वर्य अर्थात् भग) से सम्पन्न हैं और भगवान् हैं । षडैश्वर्य स्वरूप भग से युक्त हैं । आप सनातन और जगन्नाथ हैं ॥१६॥ हे विद्वज्जनो ! आप तो सर्वदा सासारिक प्राणियों के उद्धार में लगे रहने वाले हैं । आप सदा दीना पर मुहूर्द भाव रक्खा करते हैं। आप ऐसे एक परम महान् विशिष्ट महापुरुष हैं आप मेरे प्रश्नका समाधान करते हुये भगवान् के लक्षण का वर्णन कारये ॥१७॥ जिनसे यह चराचर सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है । गङ्गा जिनके पावन चरणों का जल है वे श्री हरि का ध्यान किस प्रकार से होता है ॥१८॥ इस सन्दर्भ में मनुष्यों के जो नित्य, वैयक्तिक और काम्य इन तीनों प्रकार के कर्म किस विधि से सफल हुआ करते हैं । हे मानद ! आप कृपया मुझको ज्ञान और तप का वास्तविक स्वरूप समझाइये ॥१९॥ अतिथि के वर्चन का क्या विधान होता है ? यह बतलाइये क्योंकि इसके करने से श्रीहरि बहुत प्रसन्न हो जाते हैं । इसी प्रकार श्री हरि के प्रसन्न कर देने वाली परम गुप्त बातें मुझ पर अनुग्रह करके ठीक ठीक समझाइये ॥२०॥ इस पर श्री शौनकजी ने कहा— प्रवृत्ति से परे, श्रेष्ठो से भी परम श्रेष्ठ देव । उत्कृष्ट एव निकृष्ट

साधको मे आत्मा रूप से निवास करने वाले सगुण एव निर्गुण भगवान् के लिये प्रणाम है ॥२१॥

अमायायात्मसञ्जाय मायिने विश्वरूपिणे ।
 योगीश्वराय योगाय योगगम्याय विष्णवे ॥२२
 ज्ञानाय ज्ञानगम्याय सर्वज्ञानीकहेतवे ।
 ज्ञानेश्वराय ज्ञेयाय ज्ञात्रे विज्ञानसम्पदे ॥२३
 ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृपापहराय च ।
 ध्यानेश्वराय सुधिये ध्येयध्यातृस्वरूपिणे ॥२४

आदित्यचन्द्राग्निविधातृदेवा. सिद्धाश्च यक्षामुरनागसघा ।
 यच्छक्तियुक्तास्तमज पुराण सत्य स्तुतीश्च सतत नतोऽमि ॥२५
 यो ब्रह्मरूपी जगता विधाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी ।
 कल्पान्तरुद्राढ्यतनुः स देवः शैतेऽङ्घ्रिपानस्तमज भजामि ॥२६
 यन्नामसङ्कीर्तनतो गजेन्द्रो ग्राहोश्रवन्धान्मुमुचे स देव ।
 विराजमान. स्वपदे पराङ्घ्ये त विष्णुमाद्य शरण प्रपद्ये ॥२७
 शिवस्वरूपी शिवभक्तिभाजा यो विष्णुरूपी हरिर्भावितानाम् ।
 सङ्कल्पपूर्वात्मिकदेहेतुस्तमेव नित्य शरण प्रपद्ये ॥२८

माया के प्रलेप रहित (ब्रह्म.) आत्मा नाम वाले मायोपाधिधारी ईश्वर विश्व के स्वरूप मे वर्तमान-योगीश्वर-योगात्मक और योग के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२२॥ स्वयं ज्ञान के स्वरूप वाले, ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले, सम्पूर्ण ज्ञान के अनन्य कारणस्वरूप, जानने के योग्य, ज्ञाता, विभाग के सम्पत्ति स्वरूप भगवान के लिए प्रणाम है ॥२३॥ ध्यानात्मक, ध्याता, ध्यान से प्राप्त होने वाले ध्यात्री के पापको दूर भगा देने वाले, ध्यान के ईश्वर, सद्बुद्धि ध्येय सर्व ब्रह्ममय जगत् भगवान् के लिए प्रणाम है ॥२४॥ चन्द्र, सूर्य, अग्नि और विधाता, सिद्ध, असुर, यक्ष तथा नागों के समुदाय जितनी शक्ति से सम्पन्न होने के

कारण ही अपना कार्य पूर्ण कर सकत है । उन जन्म रहित पुराण पुरुष, सत्य स्वरूप, स्तुतियों के स्वामी, सनातन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ जो ब्रह्मस्वरूप स इस ससार के विधाता हैं व ही द्विज विष्णु के रूप से इस ससार का पालन किया करते हैं और वे ही कल्प के अन्त में रद्र का स्वरूप बनाकर इसका महार करत हैं । उन चरणागुष्ठ का पपाल कर शयन करते हुए पान करने वाले उत्पत्ति से रहित भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥२६॥ गजराज जिनके पवित्र नाम का कीर्तन करने से प्राण परम भयकर बन्धन से मुक्त हो गया था उन परम पद पर विराजमान आदि देव भगवान् विष्णु की शरण में ग्रहण करता हूँ ॥२७॥ जो शिव के स्वरूप की भक्ति करने वाले के लिए शिव स्वरूप में विद्यमान है और हरि का ध्यान करने वाले पुरपा के लिए विष्णु के स्वरूप में वतमान हैं । अपने भक्तों की भावना के तुल्य सकल्प के कारण से ही जो इस प्रकार के शरीर धारण किया करते हैं उन नित्य परमात्मा की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२८॥

य केशिहन्ता नखान्तकश्च वालो घुजाग्रेण दधार गोयम् ।
 देव च भूमारयिनोदशील त वासुदेव सतत नतोऽग्निम् ॥२९॥
 लेभेऽप्रतीर्योग्रनृसिहृत्पी यो दैत्यवक्ष कठिन शिलावत् ।
 विदार्य सारक्षितवान् स्वभक्त प्रह्लादभीश तमज नमामि ॥३०॥
 व्योमादिभिर्भूषितमात्मसज्ज निरञ्जन नित्यमयेयतत्यम् ।
 जगद्विधातारमकमक च पर पुराण पुरुष नतोऽग्निम् ॥३१॥
 ✓ ग्रहोन्द्रद्रानि नरायुमत्यगन्धर्वमशामुरदेवार्थम् ।
 स्वमूर्तिभेदे स्थित एक ईशन्त-मादिमात्मानमह भजामि ॥३२॥
 यातो भिन्नामिद सर्वे समुद्भूत स्थित च वै ।
 यस्मिन्नेष्यति पश्चाच्च तमग्नि शरण गत ॥३३॥
 य स्थितो विश्वरूपेण सद्गोवाय प्रतीयत ।

असङ्गी परिपूर्णश्च तमस्मि शरणं गतः ॥३४
 हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम् ।
 न ज्ञायेत परः शुद्धस्तमस्मि शरणं गतः ॥३५

जो केशी नामक दैत्य का बध करने वाले हैं जो महान अत्याचारी नरकामुर का सहार करने वाले हैं, और भक्तों की रक्षा हेतु जिनने वचपन में ही अपने हाथ की छोटी-सी अगुली पर ही गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था और जो भूमडल के भार को हटाने के लिए विनोदपूर्ण स्वभाव वाले हैं, उन्ही वसुदेवजी और देवकी के पुत्र भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ॥२६॥ जिन प्रभु ने परम भयकर नृसिंह रूप में प्रकट होकर पापाण के तुल्य कठोर हिरण्यकश्यपु दैत्य का हृदय अपने नखों से विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी उन उत्पत्ति से रहित भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥ आकाश आदि की अनेक उपमाओं से विभूषित आत्मा की सजा वाले, नित्य निरजन, अप्रमेय तत्व से युक्त, जगत् के विधाता, कर्मों के फलादि बन्धन से शून्य-परम प्राचीन पुरुष भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३१॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि वायु, मनुष्य, गन्धर्व, असुर, देव-वृन्द आदि अपनी ही मूर्ति के भेदों से जो एक आदि आत्मा ईश्वर विराजमान है उनका मैं सेवन करता हूँ ॥३२॥ यह सम्पूर्ण विश्व की रचना का प्रयत्न जिनसे पृथक् है और समस्त प्रपञ्च जिनसे ही प्रकट हुआ है—जिनमें स्थित है और पीछे जिनमें ही मीन हो जाता करता है उन्ही भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३३॥ जो इस विशाल विश्व के स्वरूप में विराजमान होने के कारण से लिप्त से प्राणित होने हैं किन्तु वास्तविकता से वह सदा निर्लप और परिपूर्ण हैं उन्ही परम प्रभु भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३४॥ जो परम विशुद्ध परमात्मा समस्त प्राणीमात्रों के अन्तःकरण में वर्तमान रहते हैं तथापि चित्त को माया से मोहित होने के कारण से

ही लिये पत्थर के तुल्य परम कठोर हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण कर दिया था उन नृसिंह भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥
 जिनने अपने दो ही पदों से इस समस्त भूमण्डल को नापकर विरोचन के पुत्र महाबली दैत्यराज बलि से छीन कर ब्रह्मलोक का सम्पूर्ण राज्य देवगण को दे दिया था । उस अजित वामन भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ॥ ४० ॥ जिन्होंने हैहय वंश वाले कात्तवीर्य अर्जुन के अपराध करने पर इक्कीस बार क्षत्रियों का सहार किया था, उन जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ जिन्होंने त्रेता में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार स्वरूपों में प्रकट होकर दानवों की सेना बना कर राक्षसों की सेना का सहार किया था उन श्री राघवेन्द्र प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४२॥

मूर्तिद्वय समाश्रित्य भूभारमपहृत्य च ।

सजहार कुल स्वयस्त श्रोक्वणमह भजे ॥४३

भूम्यादिलोकत्रितय सतृप्तात्मानमात्मनि ।

पश्यन्ति निर्मल तमीशान भजाम्यहम् ॥४४

युगान्ते पापिनोऽशुद्धान् भित्त्वा तीक्ष्णसुधारया ।

स्थापयामास यो धर्मं कृतादौ त नमाम्यहम् ॥४५

एवमादीन्य कानि यस्य रूपाणि भूसुरा ।

न शक्यं परिसंख्यातु कोट्यब्दरपि त भजे ॥४६

महिमानं तु यन्नान्न पर गन्तु मुनीश्वर ।

देवासुराश्च मनस्य कथं त क्षुल्लको भजे ॥४७

यन्ना श्रवणेनापि महापातकिनो नरा ।

पवित्रता प्रपद्यन्ते त कथं स्तौमि चाल्पधी ॥४८

यथाकथञ्चिच्चन्नाग्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा ।

पापिनस्तु विशुद्धा स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥४९

जिन प्रभु ने कृष्ण और वलराम दो स्वरूपों को घ्राण करके पृथ्वी का भार उतारा था और अन्त में आपने यादव कुलका भी संहार करा दिया था उन भगवान् श्री कृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥४३॥ जिनको भूलोक आदि तीनों भूवत निर्मल विशुद्ध अपने स्वरूप में तृप्त देखा करते हैं उन प्रभु का ही मैं भजन करता हूँ ॥४४॥ जो इस घोरतम कलियुग के अन्त में दुष्ट पापियों का तीक्ष्ण धार वाली तलवार से संहार करके सत्ययुग के आरम्भ काल में धर्म की स्थापना किया करते हैं उन्हीं भगवान् की सेवा में मैं अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥४५॥ हे विप्रो भगवान् के इस तरह मैं अनेकों ही स्वरूप हैं जिनकी गणना करोड़ों वर्णों में भी नहीं की जा सकती है ऐसे भगवान् का मैं भजन किया करता हूँ ॥४६॥ बड़े से बड़े देवगण और महर्षि मनु भी जिनके नाम की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं उनका मुझ जैसे क्षुद्र जीव क्या भजन स्मरण कर सकता है ॥४७॥ जिनके शुभ परम पावन नाम का श्रवण मात्र करने ही से महा पातकी मनुष्य भी अशुचिता का त्याग कर पवित्र हो आया करते हैं उन प्रभु की मैं अल्प बुद्धि वाला क्या स्तुति कर सकता हूँ ॥४८॥ जिन भगवान् के नाम का जैसे-तैसे भी कीर्तन करके या श्रवण करके महान् पापी एक दम विशुद्ध हो जाया करते हैं और शुद्ध होकर वे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४९॥

आत्मन्यात्मानमाधाय योगिनो गतकल्मषा ।
 पश्यन्ति य ज्ञानरूप तमस्मि शरण गत ॥५०॥
 साखया सर्वेषु पश्यन्ति परिपूर्णत्मिक हरिम् ।
 तमादिदेवमजर ज्ञानरूप भजाम्यहम् ॥५१॥
 सर्वसत्त्वमय शान्त सर्वद्रष्टारभीश्वरम् ।
 सहस्रशीर्षक देव वन्दे भावात्मक हरिम् ॥५२॥
 यद्भूत यच्च वै भाव्य त्याग्य जङ्गम जगत् ॥

✓दशागुल योज्यतिष्ठत्तमीशमजर भजे ॥५३

अणोरणीयासमज महत्तश्च महत्तरम् ।

गुह्याद्गुह्यतम देव प्रणमामि पुन पुन ॥५४

ध्यात स्मृत पूजितो वा श्रुत प्रणमितोऽपि वा ।

स्वपद यो ददातीशस्त वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥५५

इति स्तुवन्त परम परेश हर्षाम्बुसरुद्धविलोचनास्ते ।

मुनीश्वरा नारदसयुतास्तु सनन्दनाद्या प्रमुद प्रजग्मु ॥५६

य इद प्रातहृत्थाय पठेद्वै पौरुष स्तवम् ।

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोक स गच्छति ॥५७

निष्पाप योगीजन अपने चित्त को आत्मा में सत्गन करके जिस ज्ञानस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार किया करते हैं उमी ईश्वर की मैं शरण को ग्रहण करता है ॥५०॥ साख्यवादी लोग हरि को सबसे परिपूर्ण देखा करते हैं उन्ही आदि देव, अजर, अमर और ज्ञानस्वरूप ईश्वर की शरण में ग्रहण करता है ॥५१॥ सर्व सत्त्वमय, शांत-स्वरूप, सबके दृष्टा, सहस्रो शिर वाले भावात्मक श्रीहरि की मैं वन्दना करता है ॥५२॥ जो भूत और भविष्यत् काल के स्वरूप वाले हैं, जो स्थावर (धर) और जङ्गम (चर) सम्पूर्ण जगत् में दश अगुल प्रमाण मूर्ति में विद्यमान रहा करते हैं उन जरा रहित भगवान् विष्णु का मैं भजन करता है ॥५३॥ जो सबत्र व्यापक होने के कारण से अणु से भी अणु है तथा मूढम से भी मूढम है और महान् से भी महान् है तथा गुह्य से भी परम गुह्य है । उन देव को मैं बारम्बार सादर प्रणाम समर्पित करता है ॥५४॥ जो दयालु भगवान् केवल ध्यान धरने पर, स्मरण करने पर, श्रद्धा से यजन करने पर, सुतने और प्रणाम मात्र करने पर अपने लोक का निवास प्रदान कर दिया करते हैं उन्ही परम वारुणिक पुरुषोत्तम भगवान् की मैं वन्दना करता है ॥५५॥ हे मुनीश्वरो ! देवपि श्री नारद जी इस रीति से परश परमात्मा का

आदि की सृष्टि आदि काल में जिस प्रकार की थी उस सृष्टि की रचना का वर्णन आप मेरे समक्ष में कीजिए ॥१॥ श्री महा महर्षि सनकजी ने कहा—भगवान् नारायण अनन्त, अक्षर, निरञ्जन और सर्वव्यापी हैं । यह सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् उनसे ही व्याप्त है ॥२॥ स्वकीय तेज से ही प्रकाशित होने वाले जगन्मय महाविष्णु देव ने इस सृष्टि के आदि काल में गुणगान के भेद होने के अनुसार तीन मूर्तियों की रचना की थी ॥३॥ हे मुनिवर ! उस देवेश्वर ने अपने दक्षिण अङ्ग से प्रजापति ब्रह्मा जी को प्रकट किया था तथा अपने मध्याङ्ग से इस विश्व का सहार करने वाले ईशान रुद्रदेव को प्रकट किया था ॥४॥ इस सम्पूर्ण विश्व का पालन एवं संरक्षण करने के लिए अपने ही बायें अङ्ग से अविनाशी विष्णु को समुत्पन्न किया था । उन अजर अमर आदिदेव को ही कोई शिव नाम से पुकारते हैं । कोई महाविष्णु और कोई मदा मत्य (विष्णु) ब्रह्मा कहा करते हैं । इन्हीं भगवान् विष्णु देव की सर्वथेष्ट शक्ति का ही प्रभाव है कि इस जगत् का उसी से सब कार्य चलता रहता है वही भाव और अभावात्मक दिव्या इस नाम से कही जाती है ॥६॥ जिस समय में यह विश्व विष्णु भगवान् से भिन्न प्रतीत होता है उस समय में वह शक्ति अविद्या के रूप में सिद्ध होकर दुःख का कारण हो जाता करती है ॥७॥

शातृज्ञेभाछुपाधिस्ते यदा नश्यति नारत ।

सर्वरुभावना वुद्धिः सा विद्येत्यभिधीयते ॥८॥

—एव माया महाविष्णोर्भिन्ना ससारदायिनी ।

अभेदबुद्ध्या दृष्टा चेत् ससारक्षयकारिणी ॥९॥

विष्णुशक्तिसमुद्भूतमेतत् सर्वं चरान्तरम् ।

यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेद्भेद्यच्च नैङ्गति ॥१०॥

उपाधिभिर्यथाकाशो भिन्नत्वेन प्रतीयते ।

अविद्योपाधियोगेन तथेदमपि न जगत् ॥११॥

यथा हरिर्जगद्ध्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने ।

दाहशक्तिर्यथाङ्गारे स्वाश्रय व्याप्य तिष्ठति ॥१२

✓ उमेति केचिदाहुस्ता शक्ति सक्ष्मी तथा परे ।

भारतीत्यपरे चंना गिरिजेत्यम्बिकेति च ॥१३

दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरीत्यपि ।

कीमारी वैष्णवी चेति वाराहपैन्त्री च शाम्भवी ॥१४

हे नारद । जिस समय मे ज्ञाता और ज्ञेय की उपाधि विनष्ट हो जाती है और फिर सब को एक विचारने की बुद्धि उत्पन्न होजाया करती है वही अभेदमयी अवस्था विद्या कही जाती है ॥८॥ इस तरह से माया को विष्णु से भिन्न देखा जावे तो वह इस ससार में डालने वाली होती है और उसी को अभेद बुद्धि, ब्रह्म बुद्धि देया जावे तो वह ममार का धय करसे वाली हुआ करती है ॥९॥ यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् भगवान् विष्णु की शक्ति से ही प्रवट हुआ है और यह सम्पूर्ण जड जङ्गम जगत जो भी कुछ है वह सब विष्णु से भिन्न नहीं है ॥१०॥ घर, भवन, मठ आदि अनक उपाधियो से यह आकाश भी मठाकाश प्रभृति भिन्न २ दिखाई देता है ऐसे ही अविद्या रूपी उपाधि के योग से यह सम्पूर्ण जगत् भिन्न दीया पडता है विन्तु वास्तव में यह यह सभी पृष्ठ विष्णुमय है ॥११॥ हे मुनिवर । जिस प्रकार से श्रीहरि जगत् में व्यापक हैं उसी भाँति उनकी शक्तियो भी जगद व्यापिनी होती हैं । देखने में आता है कि अग्नि की दाह शक्ति के स्वरूप को कोई लक्ष्मी तो कोई उमा एव मरम्बती कहा करते हैं । कोई २ इसी को गिरिजा अथवा जगदम्बा भी कहते हैं ॥१३॥ इसी शक्ति को कोई २ दुर्गा, मद्रा नी, माहेश्वरी, चण्डी, कीमारी, वैष्णवी, ऐन्त्री, वागही और शाम्भवी कहा करते हैं ॥१४॥

प्राप्तीति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे ।

प्रवृत्तिश्च परा चेति यदन्ति परमपंथ ॥१५

शेषशक्ति परा विष्णोर्जगत्सर्गादिकारिणी ।
 व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥१६॥
 प्रकृतिश्च पुमाश्चैत्र कालश्चेति विधिस्थितिः ।
 सृष्टिस्थितिविनाशानामेक कारणता गतः ॥१७॥
 येतदमखिल जात ब्रह्मरूपधरेण वै ।
 तस्मात् परतरो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१८॥
 रक्षा करोति यो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१९॥
 रक्षा करोति यो देवो जगता परतः पुमान् ।
 तस्मात् परतर दत्तदव्यय परम पदम् ॥२०॥
 अक्षरो निर्गुणः शुद्धः परिपूर्णः सनातनः ।
 यः परः कालरूपाख्यो योगिष्ठ्येयः परात्परः ॥२१॥
 परमात्मा परानन्दः सर्वोपाधिविर्वाजितः ।
 ज्ञानैकवेद्य परमः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥२२॥

कतिपय लोग इसी शक्ति को ब्राह्मी विद्या और अविद्या माया कहते हैं । कुछ श्रेष्ठ ऋषिगण इस को परा तथा प्रकृति कहा करते हैं ॥१५॥ यह भगवान् विष्णु की परम श्रेष्ठ परा शक्ति ही इस विश्व की रचना आदि का कार्य किया करती है और यह प्रकट एवं अव्यक्त रूप से इस जगत् में व्याप्त होकर स्थित रखा करती है ॥१६॥ एक भगवान् विष्णु ही सविधि जगत् में स्थित होकर प्रकृति-पुरुष और वात के रूप से जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण हुआ करते हैं ॥१७॥ कारण यह है कि ब्रह्म के स्वरूप को धारण करने वाले परमात्मा ही से यह सम्पूर्ण विश्व प्रादुर्भूत हुआ है । अतएव यह परम श्रेष्ठ निरोमणि देव नित्य बहे जाया करते हैं ॥१८॥ यही देव रक्षा किया करते हैं अतएव नित्य बहे जाया करते हैं ॥१९॥ जो देव पर भेद युद्ध से जगत् की रक्षा किया करते हैं इसी कारण से ये परम श्रेष्ठतम अव्यय परम पद होते हैं ॥२०॥ जो निर्गुण, अक्षर शुद्ध परि-

पूर्ण और सनातन हैं योगीजन काल के स्वरूप से जिस परम श्रेष्ठ का ध्यान किया करते हैं वह परमानन्द स्वरूप परमात्मा समस्त उपाधियों से रहित है और वे एकमात्र ज्ञान के द्वारा ही जाने जाया करते हैं और वे सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं ॥२१॥२२॥

योऽसौ शुद्धोऽपि परमो ह्यहङ्कारेण संयुतः ।
 देहीति प्रोच्यते मूढैरहोऽज्ञानविडम्बनम् ॥२३॥
 स देव परम शुद्ध सत्त्वादिगुणभेदतः ।
 मूर्तित्रय समापन्न सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥२४॥
 योऽसौ ब्रह्मा जगत्कर्ता यन्नाभिवमलोद्भवः ।
 स एवानन्दरूपात्मा तस्मान्नास्त्यपरो मुने ॥२५॥
 अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वसाक्षी निरञ्जनः ।
 भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वर ॥२६॥
 यस्य शक्तिर्महामाया जगद्विस्रम्भधारिणी ।
 विश्वोत्पत्तेर्निदानत्वात्प्रकृति प्रोच्यते बुधैः ॥२७॥
 आदिसर्गे महाविष्णोर्लोकान्कर्त्ता समुद्यतः ।
 प्रकृति पुरुषश्चेति कालश्चेति त्रिधा भवेत् ॥२८॥

परमात्मा का स्वरूप परम शुद्ध है तथापि अहङ्कार से संयुक्त होने के कारण मूढ़ पुरुष उसको देहधारी समझा करत है । यह केवल अज्ञान की ही एक विडम्बना मात्र है ॥२३॥ वे परम शुद्ध भगवान् विष्णुदेव ही सत्त्वादि तीनों गुणों के द्वारा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन स्वरूपों की मूर्तियाँ धारण करने इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और गहारा का कारण हुआ करत हैं ॥२४॥ हे मुनियर ! इस जगत् का सृजन करने वाले ब्रह्माजी जिन भगवान् की नाभि कमल में समाप्त हुई है वही परमानन्द स्वरूप विष्णु ही हैं क्या कि उन से श्रेष्ठ अन्य कोई ही नहीं सकता है ॥२५॥ वे भगवान् परम ईश्वर, सर्वान्तर्यामी, जगत् व्यापी, सर्व साक्षी तथा निरञ्जन हैं । वे उपाधियों के

भेद होने के कारण सब से भिन्न और निरुपाधि स्वरूप से अभिन्न स्वरूप में स्थित रहते हैं ॥२६॥ उन की महामाया शक्ति से इस जगत् में विश्वास हुआ करता है और इस विश्व की उत्पत्ति का वही मूल कारण है अतएव विद्वान् लोग उसको 'प्रकृति'—इस नाम से कहा करते हैं ॥२७॥ जिस समय में सृष्टि का आदि काल था और महा-विष्णुदेव इस विश्व की रचना करने के लिए उद्यत हुए थे । उस समय में वे ही प्रकृति और पुरुष कारण के स्वरूप से तीन स्वरूप वाले भागों में बँट गये थे ॥२८

पश्यन्ति भावितात्मानो य ब्रह्मेत्यभिसञ्जितम् ।
 शुद्ध यत्परमा धाम तद्विष्णो परमा पदम् ॥२६
 एव शुद्धोऽक्षरोऽनन्त कालरूपी महेश्वर ।
 गुणरूपी गुणाधारो जगतामादिकृद्विभु ॥३०
 प्रकृति क्षोभमापन्ना पुरुषाख्ये जगद्गुरी ।
 महान्प्रादुरभूदबुद्धिस्ततोऽह समवर्त्तत ॥३१
 अहङ्काराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
 तन्मात्रेभ्यो हि जातानि भूतानि जगतः कृते ॥३२
 आकाशवाय्वग्निजलभूमयोऽङ्गभवात्मज ।
 यथाक्रम कारणनामेकैकस्योपयान्ति च ॥३३
 ततो ब्रह्मा जगद्धाता तामसानसृजत्प्रभु ।
 तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्पशुपक्षिमृगादिकात् ॥३४
 तमप्यसाधक भत्वा देवसर्गं सनात्नात् ।
 ततो वै मानुष सर्गं कल्पयामास पद्मज ॥३५

जिनका अन्त वरण परम पवित्र है, वे लोग जिसका ब्रह्म के स्वरूप में देगा करते हैं, जो परम विष्णुधाम है वही भगवान् विष्णु-देव या परम पद हाता है । इस रीति से यह समझ लेना चाहिये कि विष्णु, शुद्ध, अक्षर, अनन्त काल रूपधारी महेश ही गुणों के रूप वाली

एव गुणो वा आश्रय होकर आदि काल मे इस जगत् का सृजन किया करते हैं ॥२६-३०॥ जगत् गुरु पुरुष नामधारी मे क्षोभ होने पर ही प्रवृत्ति उत्पन्न या प्रादुर्भूत हुआ करती है। उग प्रवृत्ति से महत् उत्पन्न होता है, महत् से बुद्धि और बुद्धि मे अहङ्कार की उत्पत्ति हुआ करती है ॥३१॥ इस अहङ्कार से मूढम तन्मात्राये समुत्पन्न हुआ करती है, इन्द्रियां होती है और जगत् के लिये उन तन्मात्राओं से ही भूतो की उत्पत्ति हुआ करती है ॥३२॥ हे ब्रह्मपुत्र ! इन भूतो मे भी आकाश, वायु, अग्नि, जल ये सभी क्रमश एव-एक के कारण अर्थात् उत्पादक हुआ करते हैं और उसी क्रम मे ये लीन भी हो जाया करते हैं ॥३३॥ इन आकाशादि पाँच महाभूतो की रचना करने के पीछे इस जगत् के धाता ब्रह्माजी ने तिर्यक् योनियो मे रहने वाले पशु पक्षी आदि तमोगुण प्रधान प्राणियो की सृष्टि की थी ॥३४॥ किन्तु जब ब्रह्माजी ने देखा कि इनकी सृष्टि से सृजन के कार्य का साधन सम्पन्न सम्पन्न नहीं हो सकता है तब फिर उन्होंने देवभागो की रचना की थी और सनातन पुरुष से ही मिलने वाली मनुष्यो की सृष्टि की थी ॥३५

ततो दक्षादिवान्पुत्रान्मृष्टिसाधनतत्परान् ।

एभिः पुत्रैरिदं व्याप्तं सदेवानुरमानुषम् ॥३६

भूर्भुवश्च तथा स्वश्च महश्चैव जनस्तया ।

तपश्च मत्स्यमित्येव लोकाः सत्योपरि स्थिता ॥३७

अतरा वितलं चैत्रं मुतलं च तन्नातलम् ।

महानत्र च विप्रेन्द्र ततोऽधश्च रगातलम् ॥३८

पातालं चेति गण्येयं पानानानि क्रमादथ ।

एष सर्वेषु लोकेषु लोचनायाश्च नृष्टयात् ॥३९

पुत्राश्चान्नादीशचागौ तत्तत्रोचनिवाहिनाम् ।

यस्यानादीनि शब्दाणि यस्यायोग्यगान्धवत् ॥४०

भूताने मध्यगो मेरुः सर्वदेवममाश्रयः ।

लोकालोकश्च भूम्यन्ते तन्मध्ये सप्त सागराः ॥४१

द्वीपाश्च सप्त विप्रेन्द्र द्वीपे द्वीपे कुलाचला ।

वाह्या नद्यश्च विख्याता जनाश्चामरसन्निभा- ॥४२

इसके अनन्तर दक्ष आदि मानस पुत्रों की सृष्टि की थी जो उनकी रचना के कार्य में साधन होकर तत्पर होगये थे । उन्हीं पुत्रों के द्वारा सन्तान-प्रसन्तान के स्वरूप से समस्त देव, असुर और मनुष्यों का समुदाय से यह भगवान व्यास हो रहा है ॥६६॥ इसके पश्चात् फिर ब्रह्माजी ने भू, भुवः, स्वः, मह, जन, तप और सत्य इन सात लोको की रचना की थी, जो कि सत्य पर प्रतिष्ठित हैं ॥३७॥ हे विप्रेन्द्र ! फिर अतल, वितल, सुतल, महातल और इसके भी अधोभाग में रसातल तथा उसके भी नीचे पाताल लोक की रचना की थी । ये सभी क्रम से एक के नीचे एक हैं और नीचे होने के कारण सात पाताल कहे जाते हैं । इसके उपरान्त विधाता ने इन सब लोको के स्वामियों की रचना की थी ॥२७-३६॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा ने कुलाचल नदी तथा प्रत्येक लोक के लायक वर्तन, व्यापार और जीविका आदि की जैसी जहाँ होनी चाहिये उसी के अनुसार रचना की थी ॥४०॥ इस भूमण्डल के मध्य में मेरु पर्वत है इसी पर्वत पर समस्त देवगणों का निवास रहता है । इस भूलोक के अन्त में लोकालोक पर्वत है और इस भूलोक में सात समुद्र हैं ॥४१॥ हे विप्रवर ! इस लोक में सात द्वीप हैं और प्रत्येक द्वीप में वृक्ष पर्वत स्थित हैं । इनके बाहिर के भाग में परम प्रसिद्ध नदियाँ भी हैं और यहाँ पर निवास करने वाले मनुष्य देवों के ही सदृश हुआ करते हैं ॥४२

जम्बूत्पक्ष्वाभिधानी च शात्मलश्च वृषस्तथा ।

क्रीञ्चशावो पुष्करश्च ते सर्वे देवभूमयः ॥४३

एते द्वीपा समुद्रस्तु सप्तसप्ताभिगृहता ।

सवर्णेशुनुरामपिदंघिधीरजलं ममम् ॥४४

एते द्वीपा समुद्राश्च पूर्वस्मादुत्तरोत्तराः ।

त्रेधा द्विगुणविस्तारा लोकालोकाच्च पर्वतात् ॥४५

क्षारोदधेरुत्तर यद्विमाद्रेश्चैव दक्षिणाम् ।

त्रेय तद्भारतावर्षं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥४६

अत्र कर्माणि कुर्वन्ति विविधानि तु नारद ।

तत्फल भुज्यते चैव भोगभूमिधनक्रमात् ॥४७

✓ भारते तु कृतं कर्म शुभं वाशुभमेव च ।

तत्फलं क्षयि विप्रन्द्र भुज्यतेऽन्यत्र जन्तुभिः ॥४८

अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्मं भारतभूतले ।

सञ्चितं सुमहत्पुण्यमक्षय्यमलं शुभम् ॥४९ ✓

उन सात द्वीपों के नाम जम्बूद्वीप, प्लक्ष द्वीप, शात्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप हैं । ये सभी द्वीप देवभूमि कहे जाते हैं ॥ ४५॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे स्थित हैं । इन सातों समुद्रों के नाम भी क्षार (लवण) सागर, इक्षु, सुरा, घृत, दधि और क्षीर (दूध) तथा जल के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनमें सुरा आदि ही पृथक् पृथक् भरा हुआ है । ये सब द्वीप और सागर क्रमशः एक दूसरे के आगे २ ही स्थित रहते हैं । इसका विस्तार भी एक दूसरे का क्रम से दुगुना रहा करता है । यह लोकालोक पर्वत तक स्थित है ॥४४-४५॥ लवण समुद्र के उत्तर दिग्भाग में तथा हिमाचल पर्वत के दक्षिण दिग्भाग में भारतवर्ष है । यह भारतवर्ष सब प्रकार के कृत कर्मों का फलदाता वर्ष है ॥४६॥ हे नारद ! इस भारतवर्ष में मनुष्य नित्य-नैमित्तिक और काम्य (कामना से युक्त) इन तीनों प्रकार के कर्मों को किया करते हैं क्यों कि यही कर्मक्षेत्र या कर्मों के करने की भूमि है । वे सभी भोग भूमि तथा धन के स्वरूप में उन कर्मों का फलों का भी उपभोग किया करते हैं ॥४७॥ हे विप्र शिरोमणे ! इस भारतवर्ष की भूमि में जो भी शुभाशुभ कर्म सम्पन्न किया जाया करता है उसका

मान् ही होता है और प्राणी उनको स्वर्ग एवं नरक आदि दूसरे लोकों में जाकर भोगा करते हैं ॥४८॥ इसी कारण से देवगण आज तक भी इस भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करने के लिये परम इच्छुक रहा करते हैं । कारण यही है कि इस भारत में बहुत बड़े अक्षय निमल एवं परम शुभ पुण्य एवं फल का संचय किया जा सकता है ॥४९॥

कदा लभामहे जन्म वर्षं भारतभूमिषु ।

कदा पुण्येन महता यास्याम परम पदम् ॥५०॥

दानैर्वा विविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाथिवा हरिम् ।

जगदीश समेष्यामो नित्यानन्दमनामयम् ॥५१॥

यो भारतभुव प्राप्य विष्णुपूजापरो भवेत् ।

न तस्य सदृशोऽय्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु नारद ॥५२॥

हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्ताना प्रियोऽपि वा ।

शुश्रूषुर्वापि महत स वेद्यो दिग्विजैरपि ॥५३॥

हरिपूजारतो नित्य भक्त पूजारतोऽपि वा ।

भक्तोच्छिष्टान्तसेवी च याति विष्णो पर पदम् ॥५४॥

नारायणेति कृष्णेति वासुदेवेति यो वदेत् ।

अहिंसादिपर शान्त सोऽपि वन्द्य सुरोत्तमै ॥५५॥

शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति च य स्मरेत् ।

सर्वभूतहितो नित्य सोऽभ्यर्च्यो दिविजै स्मृत ॥५६॥

इसी कारण से देवगण यही सोच करते हैं कि कौन सा ऐसा सुसमय होगा कि हम लोग भारत में जन्म ग्रहण करेंगे और यही परम पुण्यमय कर्मों का करके परम पद प्राप्ति का लाभ लेंगे ॥५०॥ देवगणों का सदा यही चिन्तन बना रहा करता है कि जब हम अनेक प्रकार के दान, यज्ञ और तपश्चर्या भारत में करके फिर नित्यानन्द स्वरूप—अनामय जगत् व ईश्वर भगवान् विष्णु को प्राप्त करेंगे ।

चयो कि स्वर्गादि लोक तो केवल भोग भूमि मात्र हैं । कर्मभूमि तो यह भारत देश ही है ॥५१॥ हे नारद ! जो प्राणी इस परम पवित्र भारत की धरातल में जन्म ग्रहण कर भगवान् विष्णु के अर्चन में तत्पर रहता है उसकी समानता रखने वाला वैलोक्य में अन्य कोई भी नहीं हो सकता है ॥५२॥ जो श्री हरि के कीर्तन करने के स्वभाव वाला होता है और जो विष्णु के भक्तों का प्यारा होता है एव अपने बड़ों की सेवा करने की इच्छा रखता है उस मनुष्य की देवगण भी बन्दना किया करते हैं ॥५३॥ भगवान् विष्णुदेव की अर्चना में परायण होकर विष्णु-भक्त होता हुआ पूजा में तत्पर और भक्त के उच्छिष्ट अन्न अर्थात् शेष का जो सेवन करता है वह विष्णु के पद को प्राप्त करता है ॥५४॥ जो अहिंसा आदि धर्म के गुणों में सदा तत्पर रहकर शम प्रभृति का पूर्ण-तया परिपालन किया करता है और नारायण, कृष्ण, वासुदेव आदि भगवान् के परम पुनीत नामों का कीर्तन करता है उसकी भी देवगण पूजा किया करते हैं ॥५६

गुरुभक्त. शिवध्यानी स्वाश्रमाचारतत्परः ।
 अनसूयु. शुचिर्दक्षो यः सोऽप्यर्च्य. सुरेश्वरैः ॥५७
 ब्राह्मणानां हितकरः श्रद्धावान्वर्णधर्मयो. ।
 वेदवादरतो नित्य स ज्ञेय. पक्तिपावन. ॥५८
 अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके ।
 सर्वं यो ब्रह्मणा नित्यमस्मदादिषु का कथा ॥५९
 गोषु क्षान्तो ब्रह्मचारी पर निन्दाविवर्जितः ।
 अपरिग्रहशीलश्च देवपूज्यः स नारद ॥६०
 स्तेयादिदोषविमुखः कृतज्ञः सत्यनाक् शुचिः ।
 परोपकारनिरतः पूजनीयः सुरासुरैः ॥६१
 वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा ।
 सत्संगेऽपि च यस्यास्ति सोऽपि बन्धु सुरोत्तमैः ॥६२

एतमादीन्यनेकानि कर्माणि श्रद्धयान्वित ।

करोति भारते वर्षे सम्बन्धीऽस्माभिरेव च ॥६३॥

जो मनुष्य अपने बड़ो का परम भक्त होता है, शिवदेव का ध्यान किया करता है जो वर्णाश्रम धर्मों का पूर्णतया परिपालन करने वाला है, जो किसी भी प्राणी से डाह नहीं किया करता है, पवित्र एवं चतुर होता है उसकी वेवराज इन्द्रदेव पूजा किया करते हैं ॥५७॥ जो मनुष्य ब्राह्मणों का सदा हित सम्पादन किया करता है—जो वर्णाश्रम के धर्मों में श्रद्धा रखता है जो सर्वदा वैदिक सिद्धान्तों का विचार रखता है उसको पक्ति पावन समझना चाहिये ॥५८॥ जिसकी देवेश्वर नारायण और देवों में महान् श्री शिव में अभेद दृष्टि हुआ करती है, जो सब में ब्रह्म की सम्पन्नता को देखा करता है उस मनुष्य की गणना हम लोगो में क्या हो सकती है वह तो हम सब से भी परम श्रेष्ठ होता है ॥५९॥ हे नारद ! गौओं पर सर्वदा दया की भावना रखने वाला, ब्रह्मचर्य का पालक, दूसरों की निन्दा से रहित, दान ग्रहण न करने वाला पुरुष होता है वह देवगणों का भी परम पूज्य होजाया करता है ॥६०॥ चोरी आदि के महान् दोषों से रहित, कृतज्ञ, सत्य भाषण करने वाला, परम पवित्र और सर्वदा परोपकार करने में तत्पर रहने वाला व्यक्ति देशतामो के द्वारा भी पूजनीय हुआ करता है तथा इसकी देवगण ही नहीं अमुर भी अर्चना किया करते हैं ॥६१॥ जो वैदिक सिद्धान्तों के श्रवण करने में और उनको समझने के लिए उत्सुकता रखता है और पुराणों के श्रवण में भी उत्कृष्ट रखता है तथा सत्पुरुषों की सद्गति में जिसकी लगन लगी रहती है उस पुरुषकी बड़े २ देवतागण की वन्दना किया करते हैं ॥६२॥ इस रीति से इस भारत भूमि में मनुष्य श्रद्धा के साथ विविध भाँति के सत्यमं कर साधता है और सत्वर्गों के कारण में ही उसका हम देवों से भी गदा सम्बन्ध बना रहा करता है ॥६३॥

एतेष्वन्यतमो विप्र नात्मान तारयेत्तु य ।
 स एव दुष्कृतिमूर्खो नास्त्यन्योऽस्मादचेतन ॥६४
 सप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुख ।
 पीयूष कलश मुक्त्वा विपभाण्डमुपाश्रित ॥६५
 श्रुतिस्मृत्युदितं द्वैर्मेनत्मान पावयेत्त य ।
 स एवात्मविघाती स्यात्पापिनामग्रणीमुने ॥६६
 कर्भूमि समासाद्य या न धर्म समाचरेत् ।
 स च सर्वाधम प्रोक्तो वेदविद्भिर्मुनीश्वर ॥६७
 शुभ कर्म समुत्सृज्य दुष्कर्माणि करोति य ।
 कामधेनु परित्यज्य अर्कक्षोर स मार्गति ॥६८
 एव भारतभूभाग प्रशसन्ति दिवोकस ।
 ब्रह्माद्या अपि विप्रेन्द्र स्वभोगक्षयभीरव ॥६९
 तस्मात्पुण्यतम श्रेय भारत वर्षमुत्तमम् ।
 देवाना दुर्लभ वापि सर्वकर्मफलप्रदम् ॥७०

हे विप्रवर । जो यहाँ पर जन्म पाकर भी किसी भी एक कर्म का सम्पादन न कर अपनी आत्मा को नास्तार्थिक अंधन के भय से विमुक्त नहीं करता है वह महान् दुष्कर्मी एव अत्यन्त ही मूढ़ है । उसके समान अन्य कौन जड़ हो सकता है जिसे यहाँ जन्म पाकर भी आत्म-कल्याण करने का सुयोग न बन सके ॥६४॥ जो इस महा महिमायुगी भारत की धरा में जन्म ग्रहण करके भी सत्कर्मों से पराङ्मुखता रहा करता है वह पीयूष से पूर्ण कलश का त्याग कर विपपान को ही अपने मुख में डालना चाहता है ॥ ६५ ॥ जो वेद और स्मृतियों में बताये हुए धर्म कर्मों से अपनी आत्मा को निर्मल, निष्पाप और पवित्र नहीं करता है वह है मुनिवर । आत्मा का ही घात करने वाला और महा पापिया का सरदार समझना चाहिए ॥६६॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य इस

कर्म भूमि भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करके भी वेदविहीन धर्मों का समाचरण नहीं करता है वेद के ज्ञाता मनीषियों ने उसको सबसे निकृष्टतम एव अधम बताया है ॥६७॥ जो मनुष्य परम शुभ कर्मों का त्याग करके दुष्कर्मों के करने में ही अपनी प्रवृत्ति रखता है उस ऐसा ही समझ लेना चाहिये जैसे कोई प्राप्त हुई कामधेनु को छोड़ कर आक के दूध की खोज कर रहा हो ॥६८॥ हे मुनीन्द्र । अपने कृत कर्मों के भोग के क्षय होने से भयभीत होने वाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण भी इस तरह से इस भारतवर्ष की प्रशंसा किया करते हैं ॥६९॥ इसलिये इस भारतभूमि को अवश्य ही परम पुण्य पूर्ण समझना चाहिए । यह देवों को भी परम दुर्लभ एव सभी कर्मों का प्रदान करने वाली भूमि है । अन्य लोक तो केवल भोग करने के ही क्षेत्र होने के कारण कुछ भी फल देने में असमर्थ हुआ करते हैं ॥७०॥

अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यत ।
 न तस्य सहस्र कश्चित्त्रिपु लोकेषु विद्यते ॥७१
 अस्मिञ्जाती नरो यस्तु स्ववर्मक्षपणोद्यत ।
 नररूपपरिच्छन्न स हरिर्नात्र सशय ॥७२
 पर लोकफल प्रेप्सु कुर्यात्कर्मण्यतन्द्रित ।
 निवेश्य हरये भक्त्या तत्फल ह्यक्षय स्मृतम् ॥७३
 विरागी चेत्कर्मफलेष्वपि किञ्चिन्न कारयेत् ।
 अप्ययत्सुष्ठुत कर्म प्रीयतामिति मे हरि ॥७४
 आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरुत्पत्तिदायवा ।
 फणागृध्नु वर्मणा तत्राप्योति परम पदम् ॥७५
 वेदादितानि यर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये ।
 यथाश्रम त्यक्तुकाम प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥७६
 निष्कामो वा गवामो वा कुर्यात्कर्म यथाविधि ।
 स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतित प्राच्यते बुधे ॥७७

जो मनुष्य इस महान् पुण्यमय भूमण्डल में आकर सदा सत्कर्म करने के लिये समुद्यत रहा करते हैं उसकी समता रखने वाला प्रैलोवय में भी अन्य कोई भी नहीं होता है ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य इस पुण्यमयी भारतवर्ष की भूमि में अपना जन्म पाकर अपने कृतकर्मों को क्षीण करने के लिये उद्यत रहता है उसको मनुष्य के स्वरूप में रहने वाला समावृत साक्षात् श्री हरि ही समझना चाहिये ॥ ७२ ॥ तन्द्रा और आलस्य से रहित होकर जो परलोक के फल की कामना करते हुये कर्म करता है वह भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये कार्य करें तो उसका फल अक्षय हुआ करता है ॥ ७३ ॥ जो कर्मों के फल पाने में राग से रहित हो और कर्मों के फल प्राप्त करने की कुछ भी इच्छा न करे और यही भावना रखे कि मेरे इस कर्म से भगवान् प्रसन्न होंवें ऐसा नहकर अपने कर्मको भगवान् के ही चरणों में समर्पित कर देवे ॥ ७४ ॥ ब्रह्म लोक पर्यन्त सभी लोक कर्मों के फल को प्रदान करने वाले एव पुनर्जन्म देने वाले होते हैं । किन्तु जो मनुष्य अपने कृतकर्मों का फल प्राप्त करना ही नहीं चाहता है उसी को पुनरावर्तन शीलता से रहित परम प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ करता है ॥ ७५ ॥ भगवान् को परम प्रसन्न करने के लिये कर्मों का सम्पादन करना चाहिये । जो फलाभिलाषा को पूर्णतया परित्याग करके अपने आश्रम के अनुकूल कर्म किया करता है ॥ ७६ ॥ चाहे कोई भी कर्म कामना से रहित हो या एकाम हो उनका सम्पादन मदा शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही करना चाहिए । जो अपने आश्रम के नियत आचार का परिपालन पूर्ण रूप से नहीं करता है विद्वान् लोग उसको पतित कहा करते हैं ॥ ७७ ॥

✓ सदाचारपरो विप्रो बद्धंते ब्रह्मतेजसा ।

तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद्भक्तियुक्तस्य नारद ।

✓ भारते जन्म सप्राप्य नात्मान तारयेत्, यः ।

पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कन्तारकम् ॥ ७६ ॥

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपर तपः ।

वासुदेवपर ज्ञान वासुदेवपरा गतिः ॥८०

वासुदेवात्मक सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८१

स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूप ।

स एव ब्रह्माडमिदं ततोऽन्यन्न किञ्चिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम् ८२

यस्मात्पर नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मादणोयान्न तथा महीयान् ।

व्याप्त हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देव-देव प्रणमेत्समीड्यम् ॥८३

हे नारद ! जो ब्राह्मण सदा आचरण करने वाला है उसका ब्रह्मतेज सर्वदा बढ़ता ही रहा करता है और ऐसे भक्तिमान् पुरुष परे भगवान् श्री विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और उनकी प्रसन्नता का होना ही मानव जीवन की परम सार्थकता है ॥७८॥ जो मनुष्य इस देव दुर्लभ परम पावन भारत की भूमि में जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का उद्धार नहीं किया करता है वह इस भूमण्डल में चन्द्र, सूर्य विराजमान रहा करते हैं उस सुदीर्घकाल तक अत्यन्त घोर दुःख प्राप्त करता रहा करता है ॥७९॥ जो धर्म तथा तप-ज्ञान और सद्गति है इन सबका भगवान् विष्णु से ही सम्बन्ध होता है ॥८०॥ यहाँ पर ब्रह्मा जी से आरम्भ करके एक जड़, ठूँट तक सबका स्वरूप चाहे कोई स्थावर हो या जगम हो भगवान् का ही स्वरूप समझना चाहिये क्योंकि उन प्रभु के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥ ८१ ॥ जितने भी ब्रह्मा—शिव आदि देवगण हैं तथा यक्ष और असुर वृन्द हैं और यह समस्त ब्रह्माण्ड जो भी कुछ है उन्हीं का विभिन्न स्वरूप में दिखाई देने वाला रूप होता है क्योंकि उनसे भिन्न तो अन्य कहीं भी कुछ होता ही नहीं है ॥८२॥ जिस भगवान् से न कोई पर है—न अपर ही है । न जिन प्रभु से कोई छोटा है और न बड़ा है—यह अनेक प्रकार का सम्पूर्ण जगत् उनके ही विभिन्न स्वरूपों में

व्याप्त है उन्ही परम पूजा करने के योग्य देव को प्रणाम करना चाहिये ॥८३॥

मृकण्डु मुनि को भगवान् का वर देना

श्रद्धापूर्वा सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदा ।

श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुप्यते हरि ॥१॥

भक्तिर्भक्त्यैव कर्त्तव्या तथा कर्माणि भक्तिन ।

कर्मश्रद्धाविहीनानि न सिध्यन्ति द्विजोत्तमा ॥२॥

यथाऽऽलोको हि जन्तूना चेष्टाकारणता गत ।

तथैव सबसिद्धीना भक्ति परमकारणम् ॥३॥

यथा समस्तलोकाना जीवन सलिल स्मृतम् ।

तथा समस्तसिद्धीना जीवन भक्तिरिष्यते ॥४॥

यथा भूमि समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव ।

तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत् ॥५॥

श्रद्धावाँल्लभते धर्मं श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ।

श्रद्धया साध्यते काम श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ॥६॥

न दानैर्न तपोभिर्वा यज्ञैर्वा बहुदक्षिण ।

भक्तिहीनैर्मुनिश्रेष्ठ तुप्यते भगवान्हरि ॥७॥

महा महर्षि श्री सनवाचार्य ने कहा—यदि सम्पूर्ण धर्म-वृत्त्य यदि परम श्रद्धा के सहित किये जाते हैं तो वे सब मनोरथों का अवश्य ही सफल किया करते हैं । श्रद्धा ही मे सब कुछ सिद्ध हुआ करता है । बिना श्रद्धा के चाहे सभी कुछ किया जावे निष्फल है । श्रद्धा ही ऐसी है जिमके रहने से भगवान् भी प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥१॥ भगवान् की भक्ति के सभी कार्य श्रद्धा पूर्वक करे क्योंकि जा नर्म श्रद्धा से रहित हाते हैं उनके करने से कुछ भी सिद्धि नहीं हुआ करती है ॥२॥ जिस प्रकार मे समस्त प्राणियों की चेष्टा का कारण प्रकाश हाता है ठीक उसी भाँति भक्ति भी समस्त कर्मों की सिद्धि प्राप्ति करने का परम कारण है । जैसे प्रकाश होने पर सब कर्म

कर्म किये जा सकते हैं वैसे ही भक्तिपूर्वक ही सम्पूर्ण कर्म सिद्धिप्रद होते हैं ॥३॥ जिस तरह में जल सभी लोको का जीवन है उसी तरह से भक्ति भी समस्त शक्तियों का जीवन होती है इसके बिना सभी कर्म निष्प्राण होते हैं ॥४॥ जिस प्रकार से इस पृथ्वी का समर्थय ग्रहण करके ही समस्त प्राणिवृद्ध जीवित रहा करते हैं उसी प्रकार से भक्ति का आश्रय ग्रहण करने पर ही सब कर्मों की सिद्धियाँ प्राप्त हुआ करती है । अतः भक्ति का आश्रय अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥५॥ भक्ति और श्रद्धा की महान् महिमा है । श्रद्धा रखने वाला मनुष्य ही धर्म की प्राप्ति किया करता है—श्रद्धा से सब कामनायें सिद्ध होती हैं और जो परम श्रद्धालु होता है उसी को मोक्ष जैसे परम पद की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ हे मुनीन्द्र ! दाग-तपश्चर्या और अनेक प्रकार की अत्यधिक दक्षिणा से समन्वित यज्ञ आदि यदि भक्ति की भावना में रहित होकर किये जाते हैं तो उनसे चाहे वे कितने ही उच्चस्तर पर क्यों न किये जावें भगवान् विष्णु कभी भी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं ॥७॥

मेरुमानसुवर्णानां कोटिकोटिसहस्रश ।

दत्ता चाप्यर्थनाशाय यतो भक्तिविवर्जित ॥८

अभक्त्या यत्तपस्तप्त केवल कायशोपणम् ।

अभक्त्या यद्धृत हव्य भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ॥९

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म श्रद्धयाऽप्यणुमानकम् ।

तन्नाम जायते पु सा शाश्वत प्रीति दायकम् ॥१०

अश्वमेधसहस्र वा कर्म वेदोदित कृतम् ।

तत्सर्वं निष्फल ब्रह्मन्यदि भक्तिविवर्जितम् ॥११

हरिभक्ति परा नृणां कामधेनुपमा स्मृता ।

तस्या सत्या पिबन्त्यजा ससारगरलह्यहो ॥१२

असारभूते ससारे सारमेतदजात्मज ।

भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता ॥१३

असूयोपेतमनसा भक्तिदानादिकर्म यत् ।
अवेहि निष्फल ब्रह्म स्तेपा दूरतरो हरि ॥१४

कोई भी दानशील पुरुष करोड़ों और सहस्रों सुमेरु पर्वत के बराबर भी सुवर्ण का दान करे और उस दान के प्रदान करने में थड़ा का भाव न हो तो वह सत्र इतना विशाल दान देना भी निरर्थक एव फल से शून्य ही हुआ करता है ॥८॥ भक्ति भाव से रहित होकर जो तपस्या की जाती है उससे केवल अपने शरीर का कष्ट देना मात्र ही हाता है किन्तु उसकी फल सिद्धि कुछ भी नहीं होती है इसी प्रकार से भक्ति शून्य होकर अग्नि में हवि डाली जानी है और होम किया जाता है वह केवल भस्म में हवि के डाल देने के ही समान है ॥६॥ श्रद्धा के साथ थोड़ा-सा भी कोई कर्म किया जाता है तो उससे मनुष्यों को मदा प्रमत्तता हुआ करती है ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! वेदाक्त सहस्रो यज्ञ एव अश्वमेध भी किया जावे और उनके करने में श्रद्धा का अभाव हो तो वे समस्त कर्म निष्फल ही हुआ करते हैं ॥११॥ इस ससार में मनुष्यों के कल्याण करने के लिये और सभी मनोवाञ्छित फल प्रदान करने के वास्ते श्री हरि भगवान् की भक्ति को कामधेनु के तुल्य बतलाया गया है । उसके रहत हुए अनजान प्राणी इस ससार-रूपी विष का पान किया करते हैं ॥१२॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! इस सार शून्य ससार में भगवान् के भक्ता की सङ्गति-भगवान् की भक्ति और सहनशीलता य ही सार पदार्थ हैं ॥१३॥ जिसके मन में बुद्धि होती है और रात दिन दूसरा को देख कर जलते रहते हैं उनके दान और भक्ति आदि समस्त कर्म निष्फल ही समझने चाहिये । हे ब्रह्मन् ! यह निश्चय ही सम्पूर्ण कि य अन्तर्दामी भगवान् ऐसे प्राणियों से बहुर ही दूर रहा करते हैं ॥१४॥

परश्रियाभितप्ताना दम्भाचाररतात्मनाम् ।

मूपा तु कुर्वता कर्म तेपा दूरतरो हरि ॥१५

पृच्छता च महाधर्मान्वदता वै मृषा च तान् ।
 धर्मेष्वभक्तिमनसा तेषा दूरतरो हरि ॥१६
 वेदप्रणिहितो धर्मो वेदो नारायण परः ।
 तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषा दूरतरो हरि ॥१७
 यस्य धर्म्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
 स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥१८
 धर्मार्थकाममोक्षाख्या पुरुषार्था सनातनाः ।
 श्रद्धावता हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन ॥१९
 स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि यः ।
 स याति विष्णुभवन यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२०
 कुर्वन्वेदोदितान्धर्म्मन्मुनीन्द्र स्वाश्रमोचितान् ।
 हरिध्यानपरो यस्तु स याति परमा पदम् ॥२१

दूसरो की लक्ष्मी के वैभव से अपने हृदय में सन्ताप करने वाले, केवल धर्म के लिये सदाचार का प्रदर्शन करने वाले मिथ्या-चारियों से भगवान् बहुत दूर ही रहा करते हैं ॥१५॥ जिनके अन्तःकरण में तो धर्म करने की भक्ति विल्कुल ही नहीं होती है और केवल दिखावे के लिये ही धर्म की चर्चा किया करते हैं और जिज्ञासा किया करते हैं और मिथ्या ही धर्म का वर्णन किया करते हैं ऐसे पाखण्डियों के समीप में भगवान् कभी भी फटकते नहीं हैं क्योंकि वे तो उनके असली रूप को स्वयं जानते हैं ॥ १६ ॥ धर्म का प्रसार वेदों से ही होता है क्योंकि वेद के द्वारा धर्म का स्वरूप जाना जाता है या यो समझिये कि वेद ही साक्षात् नारायण हैं । ऐसे वेदों पर जो श्रद्धा नहीं रखते हैं उनसे भी भगवान् बहुत दूर रहा करते हैं ॥१७॥ जो धर्म से रहिन रहकर ही यहाँ जन्म लेता है और इस संसार से फल ब्रतता है उसका जीवन निरर्थक ही रहता है और उसका स्वांस लेना भी लुहार की घोंकनी के ही समान होता है यात्री

वह जीवित रहता हुआ भी भुदों के ही समान होता है ॥१८॥ हे ब्रह्म नन्दन ! जो श्रद्धा वाले मनुष्य होते हैं उन्हीं को धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं । श्रद्धा के अभाव में इनकी मिट्टि कभी नहीं हो सकती है ॥१९॥ जो मनुष्य धर्म का उल्लंघन न करके सदा श्री हरि भक्ति में ही मग्न रहा करता है वह सीधा विष्णु लोक को चला जाया करता है । ज्ञानी पुरुष ही उस लोक में जाते हैं ॥२०॥ हे मुनीन्द्र ! जो अपने आश्रम के अनुसार विहित वेदोक्त कर्मों को सम्पन्न करके विष्णु भगवान की भक्ति में परायण रहता है वही परम पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

आचारप्रभवो धर्म धर्मस्य प्रभुरच्युत ।

आश्रमाचारयुक्तेन पूजित सर्वदा हरि ॥२२✓

य स्वाचारपरिभ्रष्ट साङ्गवेदान्तगोऽपि वा ।

स एव पतितो ज्ञेयो यत कर्मवहिकृत ॥२३

हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा ।

भ्रष्टो य स्वाश्रमाचारात्पतित सोऽग्निधीयते ॥२४

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे ।

आचारात्पतित मूढ न पुनाति द्विजोत्तम ॥२५

पुण्यक्षेत्राभिगमन पुण्यतीर्थनिषेवणम् ।

यज्ञो वा विप्रिधो ब्रह्म स्त्यक्ताचार न रक्षति ॥२६

आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते मुषम् ।

आचारात् प्राप्यते मोक्ष आचारात्वि न लभ्यते ॥२७

आचाराणां तु सर्वेषां योगानां चैव सत्तम ।

हरिभक्तैरपि तथा निदान भक्तिरिष्यते ॥ २८

सदाचार में ही धर्म प्रकट हुआ जाता है और धर्म के स्वामी मायात् भगवान् अच्युत ही हैं । जो ज्ञान आश्रम के अनुकूल धर्म का पूर्ण परिपालन किया करता है वह मन्ना सदा ही भगवान् पर अर्चन किया करता है ॥२२॥ जो छटापरण वाला होता है वह भी ही

साग वेदो और वेदान्त ग्रन्थों को पढा हुआ होता है तो भी उसको कर्मों से बहिष्कृत और महान् पतित ही समझना चाहिये ॥२३॥ आश्रम के धर्म का भी बड़ा महत्व है जो आश्रम धर्म से भ्रष्ट हो भले ही विष्णु की भक्ति में सलग्न रहता हो और विष्णु के ध्यान में निमग्न हो किन्तु पतित ही कहनाता है ॥२४॥ हे द्विजोत्तम ! वेदो का ज्ञान या परायण, श्री हरि भगवान् की भक्ति अथवा शिव की भक्ति आचार से भ्रष्ट पुरुष को कभी पवित्र नहीं बना सकती है ॥२५॥ जो आचार से भ्रष्ट मनुष्य होता है उसकी रक्षा पवित्र तीर्थस्थल, पवित्र तीर्थों का सेवन और विविध प्रकार के यज्ञों का यजन भी नहीं कर सकते हैं ॥२६॥ आचार की बहुत बड़ी महिमा है इससे स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है । आचार से परम सुख की प्राप्ति भी हुआ करती है । आचार से ही मोक्ष प्राप्त होजाता है । ऐसी कौन सी बात है जो इस सदाचार से प्राप्त नहीं हो सकती है अर्थात् सभी कुछ मिल जाता है ॥२७॥ सम्पूर्ण सदाचारों का तथा योग की समस्त क्रियाओं का एव भगवान् की भक्ति की आदि कारण भक्ति ही होती है ॥२८

भक्त्यैव पूज्यते विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः ।

तस्मात्समस्तलोकानां भक्तिमतिरिति गीयते ॥२९

जीवन्ति जन्तव सर्वे यथा मातरमाश्रिताः ।

तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति धार्मिकाः ॥३०

स्वाश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तिर्यदा भवेत् ।

न तस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्त्यजनन्दन ॥३१

भक्त्या सिध्यन्ति कर्माणि कर्माभिस्तस्यते हरिः ।

तस्मिंस्तुष्टे भवेज्ज्ञान ज्ञानान्मोक्षमवाप्यते ॥३२

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसगेन खलु जायते ।

तत्सङ्गं प्राप्यते पुम्भिः सुकृते पूर्वसचितौ ॥३३

वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलातासाः ।

कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्ता लोकशिक्षकाः ॥३४

सत्सङ्ग परमो ब्रह्मन् लभ्येताकृतात्मनाम् ।

यदि लभ्येत विज्ञेय पुण्य जन्मान्तराजितम् ॥३५

मनोवाञ्छित पुरुषार्थ के फल प्रदान करने वाले भगवान् श्री विष्णु की भक्ति भाव के सहित पूजा की जाया करती है । इसलिये भगवद्भक्ति सब लोको की जननी कही जाती है ॥२६॥ जिस प्रकार से अपनी माता का आश्रय पाकर सभी प्राणी जीवित रहा करते हैं और अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत किया करते हैं ठीक उसी भाँति भक्ति का समाश्रय ग्रहण करने पर सब प्राणियों को भी सुख मिलता है ॥३०॥ जो वर्णों और आश्रमों का पालन करने वाले मनुष्य हैं उनमें यदि भगवान् की भक्ति भी हो जाय तो फिर हे ब्रह्म पुत्र ! उनकी समता रखने वाला त्रैलोक्य में भी कोई नहीं हो सकता है ॥३१॥ भक्ति के करने से समस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है और उन कर्मों के द्वारा भगवान् की जब प्रसन्नता का लाभ हो जाया करता है और ज्ञान मुलभ हो जाता है क्योंकि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हुआ करती है ॥३२॥ भगवान् की भक्ति की प्राप्ति भगवद्भक्तों के सङ्ग से होती है । यह भगवद्भक्तों की सङ्गति पूर्व जन्म में लिखित नियम हुए कर्मों की श्रेष्ठता से ही प्राप्त होती है ॥३३॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले तथा भगवान् की भक्ति की प्राप्ति की लालसा वाले तथा काम क्रोधादि दोषों से रहित समस्त लोका के शिष्य अर्थात् धर्म के उपदेशक हो सकते हैं ॥३४॥ हे ब्रह्मन् ! मत्पुरषो का सङ्ग परम श्रेष्ठ होता है । यह शब्द हृदय दानों की ही मित्रता है जिनका अन्त करण पवित्र नहीं है उनको यह कभी भी प्राप्त ही नहीं हो सकता है । जिनको यह सत्पुरुषों की गङ्गा का लाभ हो जावे तो इन्में पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल समझना चाहिए ॥३५॥

पूर्वाजितानि पापानि नाशनायान्ति यस्य वै ।

सत्सङ्गाभिर्भोगोम्य नान्यथा घटते हि मा ॥३६

रविर्हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति वहिस्तम ।
 सन्त सूक्तिमरीच्योर्घैश्चान्तर्ध्वान्त हि सर्वदा ॥३७
 दुर्लभा पुण्या लोके भगवद्भक्तिलालसा ।
 तेषा सङ्गो भवेद्यस्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती ॥३८
 क्लिप्तक्षणा भागवतप्लुते च किं कर्म कुर्वते ।
 तेषा लोको भवेत्कीदृक्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वत ॥३९
 त्व हि भक्तो रमेशस्य देवदेवस्य चक्रिण ।
 एतन्निगदितु शक्तरत्त्वतो नास्त्यधिकोऽपर ॥४०
 शृणु ब्रह्मन्पर मुह्य मार्कण्डेयस्य धीमत ।
 यमुवाच जगन्नाथो योगनिद्राविमोचित ॥४१
 योऽसौ विष्णु पर ज्योतिर्देवदेव सनातन ।
 जगद्रूपी जगत्कर्त्ता शिवब्रह्मास्वरूपवान् ॥४२

जिस व्यक्ति के पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो जाया करते हैं उसी को सत्सङ्ग की प्राप्ति हुआ करती है इसका पाना पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल समझना चाहिए अन्यथा सत्पुरुषा की सङ्गति कभी भी प्राप्त नहीं हुआ करती है ॥३६॥ सूर्यदेव तो अपनी किरणों के प्रकाश के द्वारा दिन के समय में केवल बाहिर फैले हुए अन्धकार का ही विनाश किया करते हैं किन्तु सन्त पुरुष तो अपने सद्बचन के द्वारा हृदय के भी अन्धकार को दूर कर दिया करते हैं । सन्तों के बचनरूपी किरणों के प्रकाश का प्रभाव हृदय में व्याप्त अज्ञाना-धकार पूर्ण रूप से नष्ट हुआ करता है ॥३७॥ इस ससार में भगवान की भक्ति की लालसा रखने वाले पुरुषा का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है । ऐसे भगवान् के भक्ता का सङ्ग सौभाग्य है जिस को भी प्राप्त हो जाता है उसको तबदा क नित्ये शान्ति प्राप्त हो जाया करती है ॥३८॥ देवपि श्री नारदो न बह—ह भगवान् । तृपया यह यतनादय नि भगवान् ब भाना वा क्या लक्षण जाना है ? वे भगवद्भक्त क्या काम किया करते

है ? उनको किन लोगो की प्राप्ति हुआ करती है ? ये सभी बातें आप स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करे ॥३६॥ आप तो देवों के भी देव सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले रमा के स्वामी भगवान् के परम भक्त हैं इसलिये आपसे अधिक इस का ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है और न इन बातों का वर्णन ही और कोई करने की क्षमता ही रखता है ॥४०॥ नारदजी के इन वचनों को सुनकर श्री सनकदेव ने कहा— हे ब्रह्मन् ! परम बुद्धिमान् श्री मार्कण्डेय ऋषि का एक अत्यन्त गोपनीय वृत्तान्त का श्रवण करो जो भगवान् ने अपनी योगनिद्रा में जानने पर कहा था ॥४१॥ यह जो विष्णुदेव है यह परम ज्याति सनातन देवों के देव हैं । यह समस्त जगत् इनका ही एव स्वरूप है । ये इस जगत् के पर्ता हैं, शिव और ब्रह्मा के रूपों में यही हैं ॥४२

युगान्ते रौद्ररूपेण ब्रह्माण्डप्रासवृ हित ।
जगत्पैकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥४३
भगवानेव शेषात्मा शेते वटदले हरि ।
अशक्याताञ्जजन्माद्यैराभूपिततनूरुह ॥४४
पादागुष्ठाग्रनिर्मातगङ्गाशीताम्बुपावन ।
सूदमात्सूक्ष्मतरु देवो ब्रह्माण्डप्रासवृ हित ॥४५
वटच्छदे शयानोऽभूत्सर्वशक्तिसमन्वित ।
तस्मिन्स्थाने महाभागो नारायणपरायण ।
मार्कण्डेय स्थितस्त्वस्य लीला पश्यन्महेशितु ॥४६
तस्मिन्काले महाघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
हरिरेव स्थित इति मुने पूर्व हि श्रुथुम ॥४७
जगत्पैकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
सर्वप्रस्तेन हरिणा किमर्थं सोऽज्वशोपित ॥४८
पर भौतूहल ह्यत्र यत्तत्तेऽतीव सूत न ।
हरिवीरिमुधापाने कस्यात्तस्य प्रजायते ॥४९

यह प्रलय होने के अवसर पर रुद्र रूप से इस समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रास करके बड़ जाया करते हैं और वही भगवान् जिस समय में स्थावर-जङ्गम यह सम्पूर्ण जगत् नाश को प्राप्त होकर एक सागर के रूप वाला रह जाया करता है उस समय में भगवान् विष्णु के स्वरूप में एक बट के पत्र पर शयन किया करते हैं । इन भगवान् के रोम कूपी में अगणित ब्रह्माण्ड सुशोभित रहा करते हैं और इनके चरण के अङ्गुष्ठ से गङ्गा की धारा निकला करती है । वही उस ब्रह्माण्ड का ग्रास करके वृद्धि को प्राप्त हुए देव सूक्ष्माति सूक्ष्म होकर समस्त शक्तियों से सुसम्पन्न होकर बट पत्र पर शयन किया करते हैं उसी स्थल पर नारायण में परायण महान भाग वाले मार्कण्डेय जी उन महेश्वर देव की लीला को देखते हुए विराजमान थे ॥४३-४६॥ ऋषिगणों ने कहा—हे मुनिवर ! हमने ऐसा ही श्रवण किया है कि उस प्रलयकालीन महान घोर अवसर में जब कि यह चराचर जगत् विनष्ट हो जाता है । एक मात्र श्री हरि ही शेष रहा करते हैं ॥४७॥ जिस समय में यह जगत् एक सागर के स्वरूप में बदल कर बन गया था और स्थावर-जङ्गम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व विनष्ट हो गया था उस समय में भगवान् ने सभी का ग्रास कर लिया था तो उन्हीं भगवान् ने इन मार्कण्डेयजी को किस कारण से छोड़ दिया था जो कि वहाँ पर यह विराजमान थे ॥४८॥ हे सूतजी ! इस विषय में हमारे हृदय में बड़ा भारी बुतूहल उत्पन्न हो गया है । भगवान् विष्णुदेव के कथामृत का पान करने के लिये किस को आसन्न हो सक्ता है ? अतएव इस वषा का सविस्तार वर्णन करने की कृपा कीजिए ॥४९॥

आसीन्मुनिर्महाभागो मृत्पुण्डुरिति विश्रुतः ।

शालग्रामे महातीर्थे सोऽस्तप्यत महातपा ॥५०॥

युगानामयुत ब्रह्मन्वृणन्ब्रह्म सनातनम् ।

निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५१॥

आत्मवत्सर्वं भूतानि पश्यन्विपयति स्पृहः ।
 सर्वं भूतहितो दान्तस्तताप सुमहत्तपः ॥५२
 तत्तपःशङ्कितः सर्वे देवा इन्द्रादयस्तदा ।
 परेश शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ॥५३
 क्षीराब्धेरुत्तर तीरं संप्राप्य त्रिदिवीकसः ।
 तुष्टुवुर्देवदेवेश पद्मनाभं जगद्गुरुम् ॥५४
 नारायणाक्षरानन्तं शरणागतपालकः ।
 मृकण्डुपसां प्रस्तान्पाहि न शरणागतान् ॥५५
 जय देवाधिदेवेश जय शङ्खगदाधरः ।
 जयो लोकस्वरूपाय जयो ब्रह्माण्ड हेतवे ॥५६

श्री मूतबी ने कहा—मृकण्डु नामधारी एक परम प्रसिद्ध मुनि हुए थे । वे महा भगवान् थे और उन महा तपस्वी ने शालग्राम नामक तीर्थ में तप किया था ॥५०॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने दश सहस्र युगों तक निराहार रह कर ही क्षमा धारण कर, सत्य प्रतिज्ञ वाले होकर अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में करके सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु का कीर्तन किया था ॥५१॥ उस महर्षि ने सासारिक विषयों से विलुप्त ही स्पृहा रहित होकर, समस्त प्राणियों में अपने ही समान देखते हुए और सब जीवधारियों को भलाई में सदा तत्पर रहकर अपनी इन्द्रियों का दमन करते हुए बहुत ही धीरे तपश्चर्या की थी ॥५२॥ उनकी इस प्रकार की अत्युग्र तपस्या से शङ्का हृदय में कर के देवराज इन्द्रादि सब देवगण अनामय भगवान् श्री नारायण की शरण में प्राप्त हुए थे ॥५३॥ वे देवगण क्षीरसागर के उत्तर तीर पर स्थित होकर पद्मनाभ जगत् के गुरु देव देवदेव श्री नारायण का स्तवन करने लगे थे ॥५४॥ देवगण ने प्रार्थना की थी हे नारायण देव ! हे अशर ! हे अनन्त ! हे शरणागतों के पालन करने वाले ! हम सब लोग इस महर्षि मृकण्डु तपश्चर्या से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं । अब हम सब आपसे

चरणों की शरण में आकर प्राप्त होगये हैं । आप ही इस समय में हमारी रक्षा करें ॥४५॥ हे देवाधिदेवेश्वर ! आपकी सदा जय हो ! हे षष्ठ, चक्र और गदा को धारण करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो । यह सम्पूर्ण सत्तार जिनका ही एक स्वरूप है उन परात्पर प्रभु की जय हो, जो इस समस्त ब्रह्मांड का कारण है उन भगवान की जय हो ॥४६

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन ।

नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे ॥४७

नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे ।

नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥४८

केशिहन्त्रे नमस्तुभ्य मद्युहन्त्रे परात्मने ।

नमो भूम्यादिरूपाय नमश्चैतन्यरूपिणे ॥४९

नमो ज्येष्ठाय शुद्धाय निर्गुणाय गुणात्मने ।

अरूपाय स्वरूपाय बहुरूपाय ते नमः ॥५०

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५१

नमो हिरण्यगर्भाय नमो ब्रह्मादिरूपिणे ।

नम सूर्यादिरूपाय हृदयकव्यभुजे नमः ॥५२

नमो नित्याय वन्द्याय सदानन्दैकरूपिणे ।

नमः स्मृतातिनाशाय भूयो भूयो नमो नमः ॥५३॥

हे देवों के भी देवेश्वर ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । हे लोकों को पावन करने वाले ! आपके लिये प्रणाम है । लोको के स्वामी भगवान् विष्णु के लिये हमारा प्रणाम है—लोको के साक्षी स्वरूप प्रभु की सेवा में हमारा प्रणाम समर्पित है ॥ ५७ ॥ ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान के लिये प्रणाम है । जिनके कारण से ही ध्यान किया जाता है उन श्री भगवान् की सेवा में हमारा प्रणाम है—जो ध्यानात्मक हैं और ध्यान के साक्षी हैं

उन प्रभु के लिये प्रणाम है ॥५८॥ हे भगवन् ! आपने मधु और केशी नाम वाले दैत्यों का वध कर जगत् का कल्याण किया है ऐसे आपके लिये प्रणाम है—चैतन्य रूप वाले श्री भगवान् के लिये बारम्बार प्रणाम है ॥५९॥ ज्येष्ठ—शुद्ध—निर्गुण - गुणात्मा—नीरूप स्वरूप और अनेक रूपों से समन्वित आप श्री भगवान् की सेवा में हमारा प्रणाम है ॥६०॥ ब्रह्मण्य देव ! गौ और ब्राह्मणों का सर्वदा हित करने वाले भगवान् के लिये प्रणाम है इस सम्पूर्ण जगत् के हित का सम्पादन करने वाले प्रभु के लिये प्रणाम है—परब्रह्म श्रीकृष्ण गोविन्द की सेवा में हम सबका बारम्बार प्रणाम है ॥६१॥ हिरण्य-गर्भ ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सूर्यादि के रूप में सस्थित—हव्य-व्य के भोग करने वाले अग्नि में व्याप्त श्री परमात्मा प्रभु के लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ नित्य ही वन्दना करने के योग्य सर्वदा आनन्दमय स्वरूप वाले—स्मरण करने पर सबके महा दुःखों का विनाश करने वाले भगवान् के लिये हमारा अनेक बार प्रणाम है ॥ ६३ ॥

एव देवस्तुति श्रुत्वा भगवान्कमलापतिः ।
 प्रत्यक्षतामगात्तेषा शयचक्रगदाधरः ॥६४
 विकचाम्बुजपत्राक्ष सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ।
 सर्वालङ्कारसयुक्त श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥६५
 पीताम्बरधर सौम्य स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् ।
 स्तूयमानं मुनिवरं पापदप्रवरावृतम् ॥६६
 त दृष्ट्वा देवसघास्ते तत्तेजोहृततेजसः ।
 नमश्चक्रुर्मुदायुक्ता अष्टागैरवनि गतः ॥६७
 ततः प्रसेन्नो भगवान्मेघगंभीरनिस्वनः ।
 उवाच प्रीणयन्देवान्ततानिन्द्रपुरोगमान् ॥६८
 जाने वो मानसं दुःखं शुकश्रुतपसोद्गतम् ।

युष्मान्न वाधते देवा स ऋषि सज्जनाग्रणी ॥६६
 सपद्भिः सयुता वापि विपद्भिश्चापि सज्जना ।
 सर्वथान्य न वाधन्ते स्वप्नेऽपि सुरसत्तमा ॥७०

इस प्रकार की देवगण द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण कर कमला के स्वामी भगवान् विष्णुदेव शंख चक्र और गदादि अपने अमोघ आयुधों को धारण करके उन देवों के समक्ष में प्रत्यक्ष होकर प्रकट होगये थे ॥६४॥ भगवान् के खुले हुये नेत्र कमल दल के समान सुन्दर थे और उनकी प्रभा करोड़ों सूर्यों के समान थी वे समस्त लाभरणों से विभूषित थे और उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था ॥ ६५ ॥ वे पीताम्बर को धारण करने वाले थे और परम सौम्य सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे । उन प्रभु की परम श्रेष्ठ शिरोमणि मुनिगण स्तुति कर रहे थे तथा पापदोषों में परम प्रधान उनके चारों ओर स्थित थे ॥ ६६॥ उन दयामय प्रभु का दर्शन करके उस समय में समस्त देवगणों के समुदाय का तज फीका पड़ गया था । सब देवों ने भूमि पर गिर कर भगवान् की साष्टांग प्रणाम किया था ॥६७॥ उसी समय में भगवान् प्रसन्न होकर इन्द्रादि सब देवताओं को प्रसन्न करते हुये मेघ के समान अतीव गम्भीर वाणी से बहने लगे थे ॥६८॥ हे देवगणों ! आप लोगों के मन में इन मृकुण्डु महर्षि की तपस्या के कारण से जो सन्ताप हो रहा है उसको मैं भली भाँति समझ रहा हूँ । हे देवताओं ! यह ऋषि आपको किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं देगे । ये तो बहुत ही अधिव सम्पन्न हैं ॥ ६९ ॥ हे श्रेष्ठ देवगणों ! यह नियम है कि जो महानुभाव परम सज्जन हुआ करते हैं वे अपने समीप में सम्पत्ति हा या विपत्ति हा स्वप्न में भी वे कभी दूसरों को पीड़ा नहीं दिया करते हैं ॥७०॥

सततं चाध्यमानोऽपि विपयाद्यैररातिभिः ।

अविद्यायात्मनो रक्षामन्यान्देष्टि वय सुधी ॥७१

तापत्रयामिधानेन चाध्यमानो हि मानव ।

अन्य पीडयितु शक्तं कथं भवति सत्तम ॥७२
 कमणा मनसा वाचा वाधते यः सदा परान् ।
 नित्यं कामादिभिर्षुक्तो मूढधी प्रोच्यते तु स ॥७३
 यो लोकहितकृन्मर्त्यो गतासूया विमत्सरः ।
 निशङ्क प्रोच्यते सदिभरिहामुत्र च सत्तमा ॥७४
 सशङ्क सवदा दुःखी निशङ्क सुखमाप्नुयात् ।
 गच्छध्व स्वालय स्वस्था पीडयिष्यति वीरसः ॥७५
 भवता रक्षकश्चाह विहरध्व यथासुखम् ।
 इति दत्त्वा वरं तेषामत्तसीकुसुमप्रभ ॥७६
 पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
 तुष्टात्मानं सुरगणा ययुनाक यथागतम् ॥७७

विषयरूपी शत्रुओं में पीड़ित होता हुआ बुद्धिमान् पुण्य अपनी रक्षा न कर दूसरा का कष्ट दे सकता है ? ॥७१॥ आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के तापों से स्वयं पीड़ा को प्राप्त करने वाला सज्जन मनुष्य क्या दूसरा के माथ पीड़ा पहुँचा कर छिलवाड़ कर सकता ? ऐसा कभी भी सम्भव ही नहीं है ॥ ७२ ॥ जो मन-वाणी और वचन के द्वारा सदा दूसरा को पीड़ित किया करता है और सर्वदा कामादि में पँसा रहा करता है वह मूढ़ बुद्धि वाला बटू सापा करता है ॥७३॥ जो मनुष्य सदा इस भस्तर का हित किया करता है और असूया एवं मत्सरता से रहित होता है उसको सज्जन लोग म और परलाक म निशङ्क कहा करते हैं ॥७४॥ जो पुण्य शङ्का से युक्त होता है वह सवदा दुःखित रहा करता है । व अथ आप सागा को बोर्ड भी पीड़ा नहीं पहुँचायेगे । अतएव आप साग अपने २ निवास स्थानों को घने जाइये ॥७५॥ मैं तो सवदा आप सागों की सुरक्षा करने को तत्पर रहा ही करता हूँ । अनन्व आप साग स्वच्छा या मुष्य व साप विहार करने रहिये । इस रीति से उन देवों का वर

दान देकर अलसी के पुष्प के समान नीलकान्ति वाले भगवान् वही पर देवगणों के दखते ही अन्तर्हित होगये थे । उस समय मे समस्त देव गण परम सत्पुष्ट होकर अपने स्वर्गलोक को वापिस लौट कर चले गये थे ॥७६।७७

मृकण्डोरपि तुष्टात्मा हरि प्रत्यक्षतामगात् ।
 अरूप परम ब्रह्म स्वप्रकाश निरञ्जनम् ॥७८
 अतसीपुष्पसकाश पीतवाससमच्युतम् ।
 दिव्यायुधधर दृष्ट्वा मृकण्डुर्विस्मितोऽभवत् ॥७९
 ध्यानादुन्मील्य नयने अपश्यद्धरिमग्रत ।
 प्रसन्नवदन शान्त घातार विश्वतेजसम् ॥८०
 रोमाञ्चितशरीरोऽस्तावानन्दाश्रु विलोचन ।
 ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेव सनातनम् ॥८१
 अश्रुभि क्षालयस्तस्य चरणौ हृषसभवे ।
 शिरस्यञ्जलिमाधाय स्तोतु समुपचक्रमे ॥८२
 नम परेशाय परात्मरूपिणे परात्परस्मात्तत्पत पराय ।
 अपारपाराय परानुकर्त्रे नम परेभ्य परपारणाय ॥८३
 यो नामजात्यादिविवल्पहीन प्रब्दादिदोषव्यतिरेकरूप ।
 बहुस्वरूपोऽपि निरञ्जनो यस्तमीशमीडघ परम भजामि ॥८४

इसके उपरान्त भगवान् विष्णु देव तपश्चर्या करने वाले मृकण्डु पर भी अपने चित्त में परम प्रसन्न होकर उनके समक्ष में भी उपस्थित होकर प्रकट होगये थे । रूप से रहित—निरञ्जन—स्वप्रकाश परब्रह्म को अलसी के पुष्प के तुल्य वण वाले—पीताम्बरधारी दिव्य आयुधा से समवित अच्युत प्रभु को विष्णु के दिव्य स्वरूप में अब स्थित देखकर मृकण्डु महर्षि को अत्यधिक विस्मय हुआ था ॥७८।७९॥ उस समय में मृकण्डु महर्षि ने ध्यान में अपने दोनों नेत्रों को खाना तो प्रसन्न मुद्रा बाँधे परम शा तस्वरूप बाँधे—घाता विश्व तज्जा भगवात्

विष्णु को अपने समक्ष में स्थित देखा था ॥८०॥ उस समयमें भगवान् के दर्शन प्राप्त कर मृकन्द ऋषि को हर्षातिरेक के कारण रोमांच हो गया था और अमन्दानन्द से उनके दोनों नेत्रों में अश्रु भर आये थे । ऐसी ही दशा में रहते हुये मृकन्द ने भूमि में झुक करके भगवान् विष्णु के लिये दण्डवत् प्रणाम किया था ॥८१॥ हर्षातिरेक से बहते हुए आँखों के आसुओं से भगवान् के चरणों को प्रक्षालित कर दिया था । इसके पश्चात् वे अपना मरतक नीचे की ओर नवाकर हाथों को जोड़ कर भगवान् के स्तवन करने की अपने मन में इच्छा की थी ॥ ८२ ॥ मृकन्द ने कहा—हे परेश्वर ! परात्मरूपी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म-श्रेष्ठों से भी परम श्रेष्ठ- जिनका पार नहीं पाया जा सकता है—सर्वदा हमरो पर अपनी अनुकम्पा करते रहने वाले, भक्तों को शत्रुओं से बचाकर दूसरी पार लगाने वाले भगवान् आपकी सेवा में मेरा शतश प्रणाम है ॥८३॥ जो नाम जाति आदि के विकल्प से रहित हैं, जो शब्दादि के दोषों से व्यतिरेक स्वरूप हैं, जो अनेक रूप होने पर भी सदा निरञ्जन हैं उन्ही परम पूजनीय भगवान् का मैं भजन किया करता हूँ ॥८४॥

वेदान्तवेद्य पुरुष पुराण हिरण्यगर्भादिजगत्स्वरूपम् ।

अनूपमक्त भजनानुष्मिण भजामि सर्वेश्वरमादिमीडयम् ॥८५

पश्यन्ति य वीतसमस्तदोषा ध्यानैकनिष्ठा विगतस्पृहाश्च ।

निवृत्तमोहा परम पवित्र नतोऽस्मि ससारनिवर्त्तिक तम् ॥८६

स्मृतातिनाशन विष्णु शरणागतपालकम् ।

जगत्सेव्य जगद्धाम परेश करुणाकरम् ॥८७

एव स्तुत स भगवान्विष्णुस्तेन महर्षिणा ।

अवाप परमा तुष्टि शखचक्रगदाधार ॥८८

अथालिङ्ग्य मुनि दवश्चतुर्भिर्दीर्घमाहुभि ।

उवाच परम प्रीत्या वर वरय मुत्रत ॥८९

प्रीतोऽस्मि तपसानेन स्तोत्रेण च तवानघ ।

मनसा यदभिप्रेत वर वरय सुव्रत ॥६०

देवदेव जगन्नाथ कृतार्थोऽस्मि न सशय ।

त्वद्दर्शनमपुण्याना दुर्लभ च यत. स्मृतम् ॥६१

वेदान्त शास्त्र के द्वारा जानने में जाने वाले हिरण्यगर्भ, पुराण-पुरुष आदि जगत् के स्वरूप में स्थित-अनुपम-अपने भक्तों पर मही कृपा करने वाले सब के स्वामी परम पूजनीय उन आपका ही मैं भजन करता हूँ ॥६५॥ जिनका सभी दोषों से रहित, एक मात्र ध्यान में ही परायण, स्पृहा से रहित और महा मोह से शून्य पुरुष ही दर्शन प्राप्त कर सकते हैं उन परम पवित्र सत्कार से निवृत्ति कर देने वाले भगवान की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम समर्पित है ॥६६॥ स्मरण करने पर पीडा को तुरन्त ही विनष्ट कर देने वाले, शरण में समागत प्राणियों का परिपालन करने वाले, सम्पूर्ण जगत् जिनकी सेवा में निरत रहा करता है, जगत् के तेज स्वरूप करुणा के निधान उन परमेश्वर भगवान विष्णुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥ जिस समय में उन मृकन्दु महर्षि ने इस रीति से स्तवन किया था उस समय में शत्रु-चक्र-गदा के धारण करने वाले भगवान विष्णु परम प्रसन्न होगये थे ॥६८॥ उस समय में अपनी लम्बी चारों भुजाओं को फैला कर उन्होंने मृकन्दु मुनि का समालिङ्गन किया था और अत्यधिक प्रेम के साथ कहने लगे—हे सुव्रत । मैं प्रसन्न हूँ तुम वर की याचना करो ॥६९॥ भगवान् ने कहा—हे निष्ठाप । मैं आपके इस उद्यतगत्या में और द्रम स्तुति से बहुत ही अधिक तुम पर प्रसन्न होगया हूँ इसलिये हे सुव्रत । अब जो भी आपके मनमें अभीष्ट हो वही वरदान मुझमें प्राप्त कर लो ॥७०॥ द्रम प्रकार में भगवान् के चरण पर मृकन्दु ने कहा—हे जगत् के नाथ । हे देवों के भी देवेश्वर । मैं तो आपके अतीव दुर्लभ दर्शन प्राप्त करने ही श्रुतार्थ ही

गया ३ क्योंकि जो पुण्यहीन होते हैं उनको आपका यह साक्षात् दर्शन प्राप्त करना ही बहुत दुर्लभ होता है ॥६१॥

ब्रह्माद्या य न पश्यन्ति योगिनः संशितव्रताः ।
 धर्मिष्ठा दीक्षिताश्चापि वीतरागा विमत्सराः ॥६२॥
 तं पश्यामि पर धाम किमतोऽन्यं वरं वृजे ।
 एतेनैव कृतार्थोऽस्मि जनार्दन जगद्गुरो ॥६३॥
 यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि ये ।
 तत्पद परम यान्ति तं दृष्ट्वा किमुताच्युत ॥६४॥
 सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्प्रीतोऽस्मि तव पण्डित ।
 महर्शन हि विफल न कदा चिद्भविष्यति ॥६५॥
 विष्णुर्भक्तशुद्धुर्मयीति वदन्ति विबुधाः सदा ।
 तदेव पालयिष्यामि भग्जनो नानृत वदेत् ॥६६॥
 तस्मात्त्वत्तपसा तुष्टो यास्यामि तव पृथताम् ।
 समस्तगुणसयुक्तो दीर्घजीवी स्वरूपवान् ॥६७॥
 मम जन्म कुले यस्य तत्कुल मोक्षयामि वै ।
 मयि तुष्टे मुनिश्रेष्ठ किमसाध्य जगत्त्रये ॥६८॥
 इत्युक्त्वा देवदेवेशो मुनेस्तस्य समीक्षत ।
 अन्तर्दधे मृकण्डुश्च तपस सन्यवर्तत ॥६९॥

जिस भगवान् का दर्शन ब्रह्मा आदि देवगण, योगी, प्रशसनीय व्रत धारण करने वाले परम धार्मिक, दीक्षित, रागद्वेष से मूक्य और मात्सर्य से रहित जन भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं या बहुत ही कठिनता से प्राप्त कर पाते हैं ॥६२॥ उन परम धाम भगवान् का दर्शन मैं इस समय में प्राप्त कर रहा हूँ । इसमें श्रेष्ठ में बीन सा वरदान आप से माँगूँ ? हे इस जगत् के गुरुदेव ! हे जनार्दन प्रभो ! मैं तो इनसे से ही परम कृतार्थ हो गया हूँ ॥६३॥ इस जगत् में महान् पातकी भी जिनके नाम का स्मरण करके परम परम को प्राप्त कर लिया करने

हैं, तो हे अच्युत देव ! उनको साक्षात् प्राप्त कर लेने पर अन्य क्या शेष रह जाता है जिसे मैं माँगूँ ॥६४॥ उस समय मे भगवान ने कहा-- हे ब्रह्मन् ! आप ने इस समय मे जो भी कुछ कहा है वह बिल्कुल सत्य है । हे महापण्डित ! मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरा यह दर्शन कभी निष्फल नहीं हुआ करता है ॥६५॥ अन्य देवगण कहा करते हैं कि विष्णु भगवान भक्तों के सदा कुटुम्ब वाले होते हैं । मैं भी उसी के अनुसार पालन करूँगा क्यों कि मेरे भक्तगण कभी मिथ्या भाषण नहीं किया करते हैं ॥६६॥ इसीलिये मैं आपके इस तप से सन्तुष्ट होकर परम स्वरूपवान्, दीर्घजीवी, सर्व-गुण सम्पन्न आपका पुत्र बनूँगा ॥६७॥ यह समझ लो कि जिस कुल मे मेरा जन्म होता है वह पूर्ण कुल मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है । हे मुनि श्रेष्ठ ! मेरी सन्तुष्टता हो जाने पर इस त्रिनोकी कोई भी वस्तु असम्भव नहीं रहा करती है ॥६८॥ इस प्रकार से उन देवेश्वर भगवान के कहने पर ब्रह्मा देवेश्वर उन महर्षि के समक्ष से अन्तर्धान हो गये थे और फिर मृगण्डु महर्षि भी अपनी तपश्चर्या से निवृत्त हो गये थे ॥६९॥



॥ मार्कण्डेय की कथा और वर प्राप्ति ॥

ब्रह्मन्कथ्य स भगवान्मृकण्डो पुत्रता गत ।
 कि चकार च तद् ब्रूहि हरिर्भागववशज ॥१
 श्रूयते च पुराणेषु मार्कण्डेयो महामुनि ।
 अपश्यद्वैष्णवी माया चिरञ्जीव्यन्य सप्तवे ॥२
 शृणु नारद वक्ष्यामि कथोमेता सनातनीम् ।
 विष्णुमक्तिसमायुक्ता मार्कण्डेयमुनि प्रति ॥३
 तपसाऽन्ते मृगण्डुन्तु भार्यामुद्वाह्य सत्तम ।

गार्हस्थ्यमकरोद्धृष्ट शान्तो दान्त कृतार्थक ॥४
 तस्य भार्या शुचिर्दक्षा नित्य पतिपरायणा ।
 मनसा वचसा चापि देहेन च पतिव्रता ॥५
 काले दधार सा गर्भं हरितैजोशसभवम् ।
 सुपुत्रे दशमासान्ते पुत्र तेजस्विन परम् ॥६
 स ऋषि परमप्रीतो हृष्ट्वा पुत्र सुलक्षणम् ।
 जातक कारयामास मङ्गल विधिपूर्वकम् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् मृकण्डु महर्षि के पुत्र किस प्रकार से बन गये थे ? और विष्णुदेव ने भृगु के वश मे जन्म ग्रहण करके क्या-क्या चरित करके दिखाये थे ? आप उन सबका वर्णन इस समय मे हमारे सामने करने की कृपा कीजिए ॥१॥ पुराणो मे ऐसी कथायें है और उनमे सुना जाता है कि माकण्डेय महामुनि चिरजीवी हैं और उन्होंने महाप्रलय मे भी भगवान की इस वैष्णवी माया के साक्षात् दर्शन किये थे ॥२॥ सनकजी ने कहा—ह नाथ ! मैं विष्णु की भक्ति से परिपूर्ण मार्कण्डेयजी की इस परम प्राचीन कथा को आपको बतलाता हूँ ॥३॥ तपस्या के पश्चात् परम श्रेष्ठ - शान्त - दान्त मृकण्डु मुनि ने अतिशय कृतार्थ होकर अपनी पत्नी से विवाह किया था और परम प्रतन्ता से गार्हस्थ्य धर्म को चलाने लगे थे ॥४॥ मृकण्डु महर्षि की भार्या परम पवित्र और चतुर थी । वह सदा पति सेवा मे तत्पर रहा करती थी और मन बाणी तथा देह से पूर्णतया पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ समय के सम्प्राप्त होने पर उस भार्या ने श्री हरि के तेज के अश से समन्वित गर्भ को धारण किया था । फिर दश मासो के समाप्त होने पर परम पूर्ण तेज से युक्त पुत्र का प्रसव किया था ॥६॥ उस महर्षि ने परम सुलक्षणो से युक्त उस अपने पुत्र को देखकर अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी और शास्त्रोक्त विधि के साथ उसका जातकम सकार कराया था ॥७॥

स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्ष इवोडुपः ।
 ततस्तु पञ्चमे वर्षे उपनीय मुदान्वितः ॥८
 शिक्षा चकार विप्रेन्द्र वैदिकी धर्मसहिताम् ।
 नमस्कार्या द्विजा. पुत्र सदा दृष्ट्वा विद्यानतः ॥९
 त्रिकालं सूर्यमभ्यर्च्य सलिलाञ्जलिदानतः ।
 वैदिक कर्म कर्तव्य वेदाध्ययनपूर्वकम् ॥१०
 ब्रह्मचर्येण तपसा पूजनीयो हरिः सदा ।
 निषिद्धं वर्जनीय स्याद् घ्नमंभाषणादिकम् ॥११
 साधुभिः सह वस्तव्य विष्णुभक्तिपरैः सदा ।
 न द्वेषः कस्यचित्कार्यैः सर्वेषां सितमाचरेत् ॥१२
 इज्याध्ययनदानानि सदा कार्याणि ते सुत ।
 एव पित्रा समादिष्टो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ॥१३
 चचार धर्मं सतत सदा सचिन्तयन्ह्रिम् ।
 मार्कण्डेया महाभागो दयावान्धर्मवित्सलः ॥१४

वह होनहार बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान ही वृद्धि
 प्राप्त करने लगा था । फिर जब पाँचवें वर्ष में प्रवेश करने लगा तो
 मृगश्रु महीषि ने उस बालक का उपनयन संस्कार करा दिया था ।
 हे विप्रेन्द्र ! उपनीत होजाने पर उतको वैदिक कर्म सहिता की
 शिक्षा का आरम्भ कर दिया था । ऋषि ने अपने उस पुत्र से कहा—हे
 पुत्र ! ब्राह्मणों को जब भी देखो उसी समय में उनको समादर पूर्वक
 प्रणाम अवश्य ही करनी चाहिये ॥८॥ तीनों कालों में भी सूर्य को अर्घ
 वेदों के अध्ययन आदि के वैदिक कर्मों को करना चाहिये ॥१०॥ ब्रह्मचर्य
 व्रत को धारण कर तपश्चर्या के द्वारा सर्वदा विष्णु का पूजन करना
 परमावश्यक है । दुष्ट पुरुषों के साथ सम्भाषण करने आदि निषिद्ध
 कर्मों का परित्याग करना चाहिये ॥११॥ भगवान् विष्णुदेव के जो

भक्त सायुज न हों सदा उनके ही साथ में रहकर सत्सङ्ग करे—विभी
से भी द्वेष भाव न रखे और सदा सब जानियों के हित का सम्पादन
करना चाहिये ॥१२॥ मृकण्डु ऋषि ने कहा—हे पुत्र । सदा, वेदों का
पाठ—यज्ञों का यजन और ध्यान करत रहना चाहिये । अपने पूज्य
पिताजी की इस प्रकार में आज्ञा प्राप्त करके मुनीश्वर मार्कण्डेयजी ने
सर्वादा भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुये धर्म का पूर्ण आचरण करना
आरम्भ कर दिया था । वह मार्कण्डेय महा भाग्यवान् और दयावान्
तथा धर्म वत्सल हुये थे ॥१३॥१४॥

आत्मवान्मत्यसन्धश्च मार्तण्डसदृशप्रम ।

वशी शान्तो महाज्ञानी सर्वतत्त्वार्थकोविद ॥१५

तपश्चचार परममच्युतप्रीतिकारणम् ।

आराधितो जगन्नाथो मार्कण्डेयेन धीमता ॥१६

पुराणसहिता कर्तुं दत्तवान्वरमच्युत ।

मार्कण्डेयो मुनिस्तम्मान्नागयण इति स्मृत ॥१७

चिरजीवी महाभक्तो देवदेवस्य चक्रिण ।

जगत्येकार्णवीभूते स्वप्रभाव जनार्दन ॥१८

तस्य दर्शयितुं विप्रास्त न महूतवान्हृदि ।

मृकण्डुतनयो धीमान्विष्णुभक्तिसमन्वित ॥१९

तन्मिञ्जले महाधोरे स्थितवाञ्छीर्णपत्रवत् ।

मार्कण्डेय स्थितस्तान्धावच्छेत्ते हरि स्वयम् ॥२०

तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि कालस्य वदत शृणु ।

दशभिः पञ्चभिश्चैव निमैषं परिकीर्तितम् ॥२१

काष्ठा तत्रिशतो ज्ञेया कला पद्मजनन्दन ।

तत्रिशतो क्षणो ज्ञेयस्ते पट्टिर्धर्मटिका स्मृता ॥२२

वह मार्कण्डेय मुनि बट्ट ही आत्मज्ञानी सत्यप्रतिष्ठा करने वाल
मूर्ख के तुल्य कान्ति में सम्पन्न वशी और इन्द्रियों की जीतने वाले—
महान् ज्ञानी और समस्त तत्त्वा को समझ लेने में परम चतुर हुये थे

॥१५॥ इसके पश्चात् परम मेधावी उस महा मुनि मार्कण्डेयजी ने भगवान् अच्युत देव को प्रसन्न करने के लिये तपश्चर्या करके जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की समाराधना प्रारम्भ करदी थी ॥१६॥ उस समय मे भगवान् ने उनको प्रसन्न होकर एक पुराण की संहिता की रचना करने का वरदान प्रदान किया था । इसी कारण से यह महामुनि मार्कण्डेय नारायण नाम से कहे जाते हैं ॥१७॥ यह विरञ्जीवी है और देवों के भी देव भगवान् विष्णुदेव के परम भक्त हैं । हे विप्रो ! इस समस्त विश्व के महा प्रलय के काल मे सागरस्वरूप मे केवल जलाकार हो जाने पर भी जनार्दन श्री हरि भगवान् ने उनको अपना प्रभाव दिखा देने की इच्छा से सधृत नहीं किया था अर्थात् अन्य सबके समान अपने मे लीन नहीं किया था । बुद्धि सम्पन्न विष्णु के भक्त मृकटु के पुत्र उस महा पौर जत मे एक टूटे हुए पत्र के ही समान रहे थे । जिस समय तक भगवान् श्री हरि वहा पर शेष शय्या पर शयन करते रहे थे तभी पर्यन्त महामुनि मार्कण्डेय भी वहा पर स्थित होकर विद्यमान रहे थे ॥१८॥१९॥२०॥ उस काल का परिमाण मैं आपको बतलाता हूँ । पन्द्रह वार निमित्त अर्थात् पलक मारने के समय की एक रात होती है । हे नारद ! तीस वाष्ठाओ की एक कला हुआ करती है और तीस कलाओ का एक क्षण होता है और छ क्षणों की एक घड़ी (घटिका) हुआ करती है ॥२१॥२२॥

तदद्वयेन मुहूर्त्तं स्याद्दिन तत्त्रिंशत् भवेत् ।

त्रिंशद्दिनैर्भवेन्मास पक्षद्वितीयसयुत ॥२३

ऋतुमासिद्वयेन स्यात्तत्त्रयेणायन स्मृतम् ।

तदद्वयेन भवेदब्द स देवानां दिन भवेत् ॥२४

उत्तर दिवस प्राहू रात्रिर्वे दक्षिणापनम् ।

मानुषेर्णव मासेन पितृणां दिनमुच्यते ॥२५

तस्मात्सूर्ध्वेन्दुसयोगे ज्ञातव्यं चल्पमुत्तमम् ।

दिव्यैर्वपसहस्रैर्द्वादशभिर्देवत युगम् ॥२६

दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्म. कल्पो तु ती नृणाम्
 एकसप्ततिसप्त्यातैर्दिव्यैर्मन्वन्तर युगैः ॥२७
 चतुर्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवस मुने ।
 यावत्प्रमाण दिवस तावद्रात्रि प्रकीर्तिता ॥२८

दो घड़ियों के समय को एक मुहूर्त काल कहा जाता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन होता है तथा तीस दिन का एक मास होता है जिस मास में १५-१५ दिन के कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष हुआ करते हैं ॥२३॥ दो मास की एक ऋतु हुआ करती है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है तथा दो अयनों का जिसका नाम उत्तरायण और दक्षिणायन है एक वर्ष हुआ करता है । यही वर्ष देवताओं का एक दिन हुआ करता है जिसको दिव्य दिन के नाम से कहा जाता है ॥२४॥ उत्तरायण को देवताओं का दिन कहा जाता है और दक्षिणायन को रात्रि कहा करते हैं । जो मनुष्यों का एक मास होता है वह पितृगण का एक दिन होता है ॥२५॥ इससे उत्तम कल्प वही कहा जाता है जिससे चन्द्र और सूर्य का संयोग अभावस्था को होता है । इस अभावस्था के दिन में श्राद्धतया पिंडों का दान उत्कृष्ट माना जाता है । बारह सहस्र दैव वर्षों का एक दैव युग माना जाया करता है ॥२६॥ दो सहस्र दैव युगों का मनुष्यों का ब्राह्म कल्प हुआ करता है । जिस समय में इन्हें उत्तर दिव्य युग (मनुष्यों की चतुर्गुणी) व्यनीत होजाया करती है तो उस समय में एक मन्वन्तर हुआ करता है ॥२७॥ हे मुनिवर । ऐसे जब चौदह मन्वन्तर समाप्त होजाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है और जितना बड़ा दिन होता है उतनी रात्रि भी हुआ करती है ॥ २८॥

नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम् ।
 मानुषेण सहस्रेण यत्प्रमाण भवेच्छृणु ॥२९
 चतुर्गुणसहस्राणि ब्रह्मणो दिवस भूने ।

तद्वन्मासो वत्सरश्च ज्ञेयस्तस्यापि वेधस ॥३०॥
 परार्द्धद्वयकालस्तु तन्मतेन भवेद्द्विजा ।
 विष्णोरहस्तु विज्ञेय तावद्रात्रि प्रकीर्तिता ॥३१॥
 मृकण्डुतनयस्तावत्स्थित सजीर्णपर्णवत् ।
 तस्मिन्धोरे जलमये विष्णुशक्त्युपवृ हित ।
 आत्मान परम ध्यायन्स्थितवान्हूरिसन्निधौ ॥३२॥
 अथ काले समायाते योगनिद्राविमोचित ।
 सृष्टवान्ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम् ॥३३॥
 सहृत तु जल वीक्ष्य सृष्ट विश्व मृकण्डुज ।
 विस्मित परमप्रीतो ववन्दे चरणौ हरे ॥३४॥
 सिरसज्जलिमाधाय मार्कण्डेयो महामुनि ।
 तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि सदानन्दैकविग्रहम् ॥३५॥

हे विप्रेन्द्र ! उसी समय मे यह त्रिभुवन विनष्ट हो जाया करता है । अब मनुष्यों के सहस्र के प्रमाण से पूरा वृत्तान्त श्रवण करो ॥२६॥ हे मुनिवर ! जिस प्रकार से एक सहस्र चतुर्थियों का ब्रह्माजी का एक दिन होता है वैसे ही ब्रह्माजी का मास और वर्ष भी समझ लेना चाहिये ॥३०॥ हे द्विजगणो ! ऐसे दो परार्ध (५०) की ब्रह्माजी की आयु हुआ करती है । विष्णु भगवान् का यह एक दिन होता है । इतनी बड़ी विष्णु देव की रात्रि कही जाती है ॥३१॥ मुकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णु की शक्ति से बलशाली होकर एक जीर्ण पात्र के तुल्य इतने समय तक उस परम धोर जलमय स्थान में रहे थे और चराचर परमात्मा का ध्यान करते हुये भगवान् विष्णु के ही समीप में मामन विराजमान रहे थे ॥३२॥ फिर जब भगवान् विष्णुद्वय समय के समाप्त होने पर अपनी उस योग निद्रा से समुत्थित हुये तो उग समय में उतन ही ब्रह्मा का स्वरूप धारण किया और इस चराचर सत्ता की रचना की भी ॥३३॥ उस समय में उस महान्

विस्तृत जल को सहित हुआ और इस सम्पूर्ण विश्व को रचा हुआ देख कर मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि ने देखा तो इनको बहुत विस्मय उत्पन्न हो गया था और प्रसन्न होकर इनने श्री हरि के चरणों की वन्दना की थी ॥३४॥ मुनि श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी ने अपना मस्तक झुकाकर और हाथ जोड़कर उस सच्चिदानन्द भगवान् विष्णुदेव का परम अभीष्ट वचनों के द्वारा स्तवन करने लगे थे ॥३५॥

सहस्रशिरसं देव नारायणमनामयम् ।

वासुदेवमनाधारं प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥३६

अमेयमजर नित्य सदानन्दैकविग्रहम् ।

अप्रतक्यमनिर्देश्य प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥३७

अक्षर परम नित्य विश्वाक्ष विश्वसम्भवम् ।

सर्वतत्त्वमय शान्त प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥३८

पुराण पुरुष सिद्ध सर्वज्ञानैकभाजनम् ।

परात्परतर रूप प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥३९

पर ज्योतिः पर धाम पवित्र परम पदम् ।

सर्वैकरूपं परम प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥४०

त सदानन्दचिन्मात्र पराणा परम पदम् ।

सर्वं सनातन्ध श्रेष्ठं प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ४१

सगुण निर्गुण शान्त मयाज्जीत सुमायिनम् ।

अरूप बहुरूपं त प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥४२

यत्र तद्भगवान्विश्व सृजत्यवति हन्ति च ।

तमादिदेवमीशान प्रणतोऽस्मि जनादर्दनम् ॥४३

महामुनि मार्कण्डेयजी ने कहा—मैं समस्त ससार में व्यापक होने के कारण सहस्रो शिर वाले अनामय स्वरूप अपने ही आधार पर स्थित भगवान् जनार्दन देव को सादर प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जो भगवान् जनार्दन अजर-अप्रमेय-नित्य-सर्वदा आनन्द से परिपूर्ण—

तर्क के अविषय और निर्देश करने के अयोग्य है उनकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३७॥ जो भगवान् अच्युत परम नित्य और इस विस्तृत विश्व के आधार है और यह सम्पूर्ण विश्व जिससे समुत्पन्न हुआ है उन सर्वतत्त्वों से परिपूर्ण परम शान्तिमय भगवान् जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ परम पुराण पुरुष-समस्त ज्ञान के एक मात्र आधार-तद्धि-उत्कृष्ट से भी परमोत्कृष्ट स्वरूप वाले भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३९॥ परम श्रेष्ठ ज्योतिर्मय स्वरूप वाले, परम धाम वाले, परमोत्कृष्ट पद से समन्वित-सर्वेश्वररूप जनार्दन भगवान् की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ॥४०॥ सच्चिदानन्द भगवान्, बड़े से भी बड़े, रक्षा करने वाले, सर्वस्वरूप, सनातन श्रेष्ठ भगवान् को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप में स्थित सगुण ब्रह्म के स्वरूप में त्रिगुण मायातीत, अम शान्त और मायावान् और रूप रहित तथा अनेक स्वरूपों से युक्त भगवान् जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४३॥

परेश परमानन्द शरणागदवत्सल ।

आहि मा करुणासिन्धो मनोतीत नमोऽस्तु ते ॥४४

एव स्तुवन्त विप्रेन्द्र मार्कण्डेय जगद्गुरुम् ।

उवाच परमा प्रीत्या शखचक्रगधारः ॥४५

लोके भागवता ये च भगवद्भक्तमानसाः ।

तेषां तुष्टो न सन्देहो रक्षाम्येताश्च सर्वदा ॥४६

अहमेव द्विजपुत्र नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।

भगवद्भक्तरूपेण लोकानुक्षामि सर्वदा ॥४७

त्रिलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्मणा ।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यत ॥४८

सक्षयं भागवातानां शृणुष्व मुनिसत्तम ।

यत्कृतेषां प्रभावो हि शक्यते नाब्दरोटिभिः ॥४९

जो महान् शक्ति सम्पन्न इस सम्पूर्ण विश्व की रचना किया करते हैं, इसका परिवर्तन एवं रक्षण करते हैं और अन्त में इसका विनाश भी किया करते हैं उन आदि देव सर्वोपरि विराजमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करता हूँ ॥४३॥ हे परमात्मन् ! हे परमानन्दमय परमेश्वर ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाले ! आप मन वाणी के अगोचर हैं । हे करणा के सागर ! आप मेरी रक्षा करिए— मैं आपकी सेवा में अपना सादर प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥४४॥ जिस समय में इस रीति से जगत् के गुरु विप्रेन्द्र मार्कण्डेय जी ने स्तवन किया था उस समय में शत्रु चक्र गदा आयुधों के धारण करने वाले भगवान् उन से अत्यधिक प्रसन्न होकर बहने लगे थे ॥४५॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस जगतीतल में भगवान् के चरणों की सेवा में अपना मन रमाते हैं उन पर मैं विशेष प्रसन्न रहा करता हूँ और सर्वदा उनकी रक्षा करने की मुझे चिन्ता रहती है । मैं स्वयं अपने स्वरूप को छिपाकर एक भगवान् के भक्त के रूप में होकर सदा मनुष्यों की सुरक्षा किया करता हूँ ॥४६-४७॥ श्री मार्कण्डेयजी ने भगवान् से पूछा था कि भगवान् के भक्तों का कैसा स्वरूप होता है और किन् २ कर्मों के द्वारा उनकी पहिचान हुआ करती है ? मुझे हृदय में इस बात का बड़ा भारी कुतूहल है । आप ही के मुखारविन्द से मैं इस विषय की जिज्ञासा को श्रवण कर के शान्त करना चाहता हूँ ॥४८॥ श्री भगवान् ने कहा—हे मुनि सत्तम ! आपकी ऐसी ही अभिलाषा है तो अब आप मुझ से भगवद्भक्तों के लक्षणों को सुनिये । वैसे भगवान् के भक्तों का प्रभाव ऐसा है जो करोड़ों वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥४९॥

ये हिता. सर्वजन्तूना गतासूया अमत्सरा. ।

वशिनो निस्पृहाः शान्तारते वै भागवतोत्तमा. ॥५०

कर्मणा मनसा वाचा परपीडा न कुर्वते ।

अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवता स्मृता ॥५१
 सत्कथाश्रवणे येषा वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
 तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमा ॥५२
 मातापित्रोश्च शुश्रूषा कुर्वन्ति ये नरोत्तमा ।
 गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमा ॥५३
 ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका स्मृता ।
 पूजादृष्ट्वा नुमोदन्ते ते वै भागवतोत्तमा ॥५४
 व्रतिना च यतीना च परिचर्यापराश्च ये ।
 विभुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तम ॥५५
 सर्वेषा हितवाक्यानि ये वदन्ति नपोत्तमा ।
 ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवता स्मृता ॥५६

जो भगवद्भक्त होते हैं वे सर्वदा समस्त प्राणियों के हित वा कार्य किया करते हैं । उनमें कभी भी असूया और मात्सर्य दोष नाम मात्र को भी नहीं होता है, उनका चित्त सदा उनके बश में रखा करता है । भगवान् के भक्त कभी भी कोई इच्छा नहीं रखता करते हैं और शम परायण हुआ करते हैं । ऐसे ही लोगों का भगवद्भक्तों में परम श्रेष्ठ समझ लेना चाहिए ॥५०॥ जो अपने मन से, वचन से और कर्मों के द्वारा कभी भी दूसरों को पीडा नहीं दिया करते हैं और जो किसी के द्वारा हुए दान को ग्रहण नहीं किया करते हैं वे सच्चे और उत्तम भगवान् के भक्त होते हैं ॥५१॥ जिन लोगों में सत्वगुण वाली बुद्धि होती है और वह सदा परम श्रेष्ठ भगवान् की कथा का श्रवण करने में ही लगी रहा करती है वे विष्णु के चरणों में ही भक्ति किया करते हैं तथा भक्तों का महान् समादर उनके हृदय में सदा रखा करता है ऐसे लोग उत्तम भगवान् के भक्त कहे जाया करते हैं ॥५२॥ जो लोग अपनी भावा की गङ्गा की बुद्धि से और पिता की महाशिव की बुद्धि से निरन्तर सेवा किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ भगवान् के भक्त होते हैं ॥५३॥

जो लोग सदा देव-यजन करने में सलग्न रहा करते हैं और देवार्चन करने की साधना रखते हैं और पूजा का सर्वदा अनुमोदन किया करते हैं उनकी गणना भी परम श्रेष्ठ भक्तों में होती है ॥५४॥ जिनका समय सदा व्रतधारियों एवं सन्ध्यासियों की सेवा में व्यतीत हुआ करता है और भूल कर भी दूसरों की निन्दा नहीं किया करते हैं उनको परम श्रेष्ठ भगवान के भक्तों में समझना चाहिए ॥५५॥ जो सदा सब में हित की ही चर्चा किया करते हैं तथा जो प्राणियों का आदर सत्कार करने वाले होकर गुणों का ग्रहण किया करते हैं वे लोग भगवद्भक्तन कहे जाया करते हैं ॥५६॥

आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमा ।

तुल्या शत्रु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमा ॥५७

धर्मशास्त्रप्रवक्तार सत्यवाक्यरताश्च ये ।

सता शुश्रूषयो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥५८

व्याकुर्वन्ते पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।

तद्वक्त्रि च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमा ॥५९

ये गोब्राह्मणशुश्रूषा कुर्वन्ते सतत नरा ।

तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६०

अन्येषामुदय दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवा ।

हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६१

आरामारोपणरतास्तडागपरिरक्षका ।

कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमा ॥६२

ये वै तडागकर्तारो देवसद्मानि कुर्वन्ते ।

गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६३

जो मनुष्य प्राणीमात्र को अपने ही समान समझ कर वैसा ही व्यवहार किया करते हैं तथा शत्रु मित्र भाव उनसे हृदय में नहीं होता उनकी दृष्टि में शत्रु ही चाहे मित्र हो एक समान होते हैं और कभी भी

किसी से राग-द्वेष का भाव नहीं रखते है उनको परम श्रेष्ठ भक्त समझना चाहिए ॥५७॥ जो लोग धर्मशास्त्रों की व्याख्या किया करते है, सदा सरय-भाषण करने वाले और सत्पुरुषों की सेवा में तत्पर रहा करते है वे मेरे श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते है ॥५८॥ पुराणों की व्याख्या जो स्वयं किया करते है तथा श्रवण किया करते है तथा पुराणों की कथा का प्रवचन करने वाले में परम श्रद्धा का भाव रखते है वे लोग श्रेष्ठ भक्त होते है ॥५९॥ जो मनुष्य सर्वदा गौ और विप्रों की सेवा किया करते है और तीर्थों की यात्रा किया करते है उनको श्रेष्ठ भगवद्भक्त जानना चाहिए ॥६०॥ जो सदा श्री हरि नाम का कीर्ति करने में सलग्न रहते है तथा जिनका मन दूसरों की अबिवृद्धि देखकर परम प्रसन्न हुआ करता है वह परम श्रेष्ठ भगवान् का भक्त होता है ॥६१॥ जो उद्यान तगाया करते है तालाब और बावड़ी खुदवा कर उनका निर्माण कराया करते है वे श्रेष्ठ भक्त होते है ॥६२॥ जो सरोवरों का निर्माण कराते है तथा देवाल्यों का निर्माण कराते है तथा देवाल्यों का कराते है एव जो गायत्री देवी की जाप एव उपासना में परायण रहते है वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त हुआ करते है ॥६३॥

येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहृषिताः ।

रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६४॥

तुलसीकानन दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वन्ते नराः ।

तत्कान्ताष्टाङ्गितकण्ठा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥६५॥

तुलसीगन्धमाध्रायसन्तोष कुर्वन्ते तु ये ।

तन्मूलमृत्तिका ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६६॥

आश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः ।

ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥६७॥

शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादाच्चर्चने रताः ।

त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६८

व्याहरन्ति च नामानि हरे शम्भोर्महात्मन ।

रुद्राक्षालकृता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६९

ये यजन्ति महादेव ऋतुतुभिर्वहुदक्षिर्न ।

हर्षि वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमा ॥७०

जिनका मन भगव नामो का कीर्त्तन श्रवण करके उसका अभि-
नन्दन किया करते हैं और भगवान के नामोच्चारण करने में तथा नाम
श्रवण करने में रोमाञ्च हो जाया करते हैं व भगवान के भावुक भक्त
कहे जाते हैं ॥६४॥ जिनके कण्ठ में सदा तुलसी की कण्ठी या माला
रहती है और जो तुलसी के वन को देखकर परम प्रसन्नता का अनु-
भव करते हुए प्रणाम करते हैं उनका श्रेष्ठ भगवद्भक्त समझना चाहिये
॥६५॥ जो तुलसी की मुगन्ध को तथा तुलसी पौधा की जड़ की
मृत्तिका की गन्ध को सूँघकर परम सन्तोष का लाभ प्राप्त किया करते
वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६६॥ जो सदा अपन आश्रम के नियमों
का पूर्णतया परिपालन किया करते हैं जिस भी आश्रम में हो समागत
अतिथियों का आतिथ्य एवं अर्चन परम प्रसन्न मन में किया करते हैं
तथा वदार्थ का कथन किया करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६७॥ जो
भगवान शिव की भक्ति करते हुए उनके परम प्रिय होत हैं तथा शिव
के चरणों की पूजा में आसक्त और सदा सालग्न रहते हैं और जो
त्रिपुण्ड्र धारण किया करते हैं वे मेरे परम भक्त कहे जाते हैं क्योंकि
शिव की कृपा के बिना भक्ति नहीं हुआ करती है अतः शिवभक्त मेरे
सच्चे सक्त होते हैं ॥६८॥ जो विष्णु या शिव नामों का कीर्त्तन किया
करते हैं और रुद्राक्ष माला धारण किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त
होते हैं ॥६९॥ जो विविध भाँति की विष्णु दक्षिणा वाले यज्ञ का
यजन कर श्री शंकर भगवान का अथवा विष्णु का भक्ति भाव में पूजन
किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७०

विदितानी च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये ।
 सर्वत्र गुणभाओ ये ते वै भागवताः स्मृताः ॥७१
 शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
 समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥७२
 शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः ।
 शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥७३
 पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा ।
 एकादशीव्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः ॥७४
 गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।
 मर्त्यं कर्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥७५
 एते भागवता विप्र केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
 मयाऽपि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥७६
 तस्मात्त्वमपि विभ्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा ।
 सर्वाभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्मपरायणः ॥७७

जो समस्त शास्त्रों के तत्वों को जान कर अन्य लोगों को सम-
 क्षाया करते हैं और सर्वत्र गुणों का भेदन करने वाले हैं वे परम भाग-
 वत कहे जाया करते हैं ॥७१॥ जो परमेश शिव और परमात्मा विष्णु इन
 दोनों में कोई भेद बुद्धि न रखकर अभेद भावना से इन दोनों की उपा-
 सना किया करते हैं वे मेरे सच्चे भक्त होते हैं ॥७२॥ जो "नमः
 शिवाय" पञ्चाक्षरी मन्त्र के जाप के द्वारा शिव की तुष्टि के
 लिये हवन किया करते हैं तथा पञ्चाक्षरी उपयुक्त मन्त्र का जाप किया
 करते हैं और भगवान् शिव के ध्यान में मग्न एवं सदा सलग्न रहता
 करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७३॥ जो सदा अन्न और जल का दान
 दिया करते हैं तथा एकादशी तिथि का व्रतोंपवास किया करते हैं वे
 मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७४॥ जो गौओं का दान और कन्याओं
 के दान किया करते हैं तथा ऐसे ही अनेक शुभ कर्म देवत्व भगवान् की

प्रीति के लिये ही किया करते हैं वे भगवान के परम श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते हैं ॥ ७५ ॥ हे विप्र । यहाँ पर हमने सक्षेप में कुछ भगवद्भक्तों के लक्षणों का वर्णन कर दिया है किन्तु वैसे तो भक्तों के लक्षण इतने अधिक हैं कि करोड़ों वर्षों में भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥७६॥ हे विप्रश्रेष्ठ । इसलिये मैं तुमको यही उपदेश देता हूँ कि तुम को भी सदा सुशील रहना चाहिए । समस्त प्राणियों का आश्रय दान करो । अपनी इन्द्रियों को कुमार्ग में गमन करने से उनका दमन करते रहो । सब के साथ मंत्री का भाव एवं व्यवहार रखो तथा सर्वदा धर्म में तत्पर रहना चाहिये ॥७७॥

पुनर्युगान्तपर्यन्त धर्मं सर्वं समाचरन् ।
मन्मूर्तिध्याननिरत पर निर्वाणमाप्स्यसि ॥७८
एग मृकण्डुपुत्रस्य स्वभक्तस्य कृपानिधि ।
दत्त्वा वर स देवेशस्तत्रैवातरधीयत ॥७९
मार्कण्डेयो महाभागो हरिभक्तिरत सदा ।
चचार परम धर्ममीजे च विधिवन्मुखं ॥८०
शालग्रामे महाक्षेत्रे तताप परम तप ।
ध्यानक्षपतिकर्मा तु पर निर्वाणमाप्तवान् ॥८१
तस्माज्जन्तुषु सर्वेषु हितकृद्भरिपूजक ।
ईप्सित मनसा यद्यत्तदाप्नोत्यसशयम् ॥८२
एतत्सर्वा निगदित त्वया पृष्ट द्विजोत्तम ।
भगवद्भक्तिमाहात्म्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥८३

तुम्हारा कर्तव्य है कि इस महा प्रलय होने के समय तक सभी धर्म धर्म के अनुकूल करके मेरे ध्यान में मग्न रहा करो । तुम्हारा मोक्ष निश्चित रूप से हो जायगा । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥७८॥ इस रीति से देवेश्वर भगवान् मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय को सद्गुण प्रदान करके उसी समय में वही पर अर्हति हा गया थे ॥७९॥

उसी समय से महान भाग्य वाले मार्कण्डेय ऋषि भी सर्वदा श्रीहरि की भक्ति में लीन होकर परम धर्म कर्म का पालन करते हुए अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा भगवान का यजन करते रहा करते हैं ॥८०॥ मार्कण्डेय मुनि ने शालग्राम नामक महान तीर्थ में जाकर अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी और निरन्तर भगवान के ध्यान में मग्न रहते हुए अपने समस्त कर्मों को क्षीण करके वे परम शान्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति करेंगे ॥८१॥ इस कथा से यह सिद्ध हो जाता है कि जो कोई भी भगवान का भक्त भगवान की पूजा किया करता है और समस्त प्राणियों का हित चाहता है वह अपने हृदय में जो भी कुछ मनोरथ करता है उसके वे सभी मनोरथ सिद्ध होजाया करते हैं ॥८२॥ श्री नन्ददेव जी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! आपके प्रश्न करने पर हमने यह पूर्ण भगवान का माहात्म्य वर्णन कर दिया है । अब और आप मुझ । कथा पूछने की इच्छा रखते हैं ॥८३॥



॥प्रयाग और गंगाजी माहात्म्य वर्णन॥

भगवद्भक्तिमाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतस्तु नारद ।
 पुनः प्रच्छन्नकं ज्ञानविज्ञानपारगम् ॥१
 क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् ।
 पराया दयया तथ्यं ब्रूहि शास्त्रार्थपारग ॥२
 शृणु ब्रह्मन्परं पुण्यं सर्वोत्पत्करं परम् ।
 दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यं पापहरं शुभम् ॥३
 श्रोतव्यं मुनिभिनित्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।
 सर्वरोगप्रशमनमायुर्धार्द्वनवारणम् ॥४
 क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् ।
 गङ्गायामुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः ॥५

रितासितोदक तीर्थं ब्रह्माद्या सखदेवता ।

मुनयोमनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकाक्षिण ॥६

गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा ।

रविजा यमुना ब्रह्म स्तयोर्योग शुभावह ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भगवान की भक्ति के इस माहात्म्य का श्रवण कर नारदजी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और फिर ज्ञान तथा विज्ञान के महान् पारगामी विद्वान सनकजी ने उन्होंने पुन प्रश्न किया था । श्री नारदजी ने कहा—हे शास्त्रों के सत्वार्थों में पारङ्गत मुनि-वर ! अब आप मुझ पर परमानुग्रह करके यह बताइये कि क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र कौन सा है ॥१-२॥ श्री सनकजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! अब मैं आपके सामने यही बतलाता हूँ जो क्षेत्रों में और तीर्थों में सर्वोत्तम है । यह परम गुह्य, सभी प्रकार की सम्पत्तियों का प्रदान करने वाला, दु स्वप्नों का विनाशक, परम पुण्य पूर्ण, धर्म से युक्त, पापों का अपहरण करने वाला, अत्यधिक शुभ, दुष्टग्रहों को दूर भगा देने वाला, मुनियों के श्रवण करने के योग्य समस्त व्याधियों को शांत करने वाला, आयु की वृद्धि करने वाला जो परमोत्तम तीर्थ एव क्षेत्र है उसका मुनिये । परमोत्तम ऋषिगण उत्तको गङ्गा यमुना का सङ्गम प्रयाग कहा करते हैं ॥३-५॥ यह ऐसा महान् तीर्थ है जहाँ पर गङ्गा का जल तो सफ़ेद है और यमुना का जल आध्रित रूप वाला है । पुण्य की अभिलाषा रखने वाले ब्रह्मा आदि समस्त देववृन्द, मुनिगण और मनुजों का समुदाय सभी लोग सदा इसी क्षेत्र एव सर्वोत्तम महान् तीर्थ का सेवन किया करते हैं ॥६॥ भागीरथी गङ्गाजी को परम पुण्यमयी सरिता समझनी चाहिए क्यों कि शाशाद् भगवान् विष्णु के परम दावन चरणों से प्रकट हुई हैं । यमुनाश्री सूर्यदेव की पुत्री हैं । इसीलिये इन दोनों नदियों का यहाँ पर सङ्गम जो है वह परम कल्याण करने वाला है ॥७॥

स्मृतातिनाशिनी गङ्गा नदीना प्रवरा मुने ।
 सर्वापापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥८
 यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महातले ।
 तेषा पुण्यतम ज्ञेय प्रयागाख्य महामुने ॥९
 इयाज वेधा यज्ञन यत्र देव रमापतिम् ।
 तथैव मुनय सर्वे चक्रुश्च विविधान्मखान् ॥१०
 सर्वातीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै ।
 गङ्गाविन्द्वभिषेकस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११
 गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनाना शते स्थित
 सोऽपि मुच्येत पापेभ्य किमु गङ्गाभिषेकवान् ॥१२
 विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिर स्थिता ।
 ससेव्या मुनिभिर्देवै किं पुन पाभरंजनं ॥१३
 यत्सैकत ललाटे तु ध्रियते मनुजोत्तमै ।
 तत्रैव नेत्र विज्ञेय विध्वर्द्धाघ समुज्वलत् ॥१४

हे मुनिवर । गङ्गा की ऐसी महिमा है कि यह स्मरण मात्र
 करने हों से सम्पूर्ण षोडा को शांत कर दिया करती है । यह समस्त
 नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और सभी प्रकार के महापातकों को
 क्षीण कर दिया करती है तथा सब उपद्रवों को दूर भगा देने वाली
 है ॥८॥ हे महामुने । समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर जो भी पुण्य क्षेत्र हैं उन
 सब में प्रयाग परम पुण्यमय एवं सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है ॥९॥ यह वह पवित्र
 तीर्थ स्थल है जहाँ पर ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञों के यज्ञ के द्वारा भग-
 वान् विष्णुदेव का अर्चन किया है और और अन्य सब मुनिगण ने भी
 इस स्थल में अनेक प्रकार के बहुत-से यज्ञादि का अनुष्ठान किया है
 ॥१०॥ अन्य जितने भी पवित्र तीर्थों के अभिषेक हैं वे गङ्गा के
 विन्दुओं के अभिषेक की मालहवी कला को भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं
 ॥११॥ चार गो बॉग को दूरी पर भी कीई बँटा हुआ 'गङ्गा-गङ्गा'

यह उच्चारण कर इसका स्मरण मात्र कर लेता है वह भी अपने कृत सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है फिर यदि वहा पर पहुँच कर गङ्गा मे अवगाहन करले तो उसकी महिमा का तो कहना ही क्या है ॥१२॥ यह गङ्गा प्रथम तो भगवान विष्णु के चरणों से उत्पन्न हुई है फिर अखिल विश्व के स्वामी शङ्कर के मस्तक पर आकर स्थित हुई थी उम गङ्गा का बडे देवगण और मुनिवृन्द भी मेवन कम करने की उत्कट अभिलाषा रख्वा करते हैं फिर पामर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ॥१३॥ मनुजों मे श्रेष्ठ ललाट पर जहाँ गङ्गा की रज को लगाया करते वहाँ पर ही अर्ध चन्द्र के नीचे भगवान शिव के अत्युज्वल तीसरे नेत्र को समझना चाहिए ॥१४॥

यन्मज्जन महापुण्य दुर्लभं त्रिदिवोकसाम् ।
 सारूप्यदायक विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम् ॥१५॥
 यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः ।
 महद्विमानम रुढाः प्रयान्ति परम पदम् ॥१६॥
 यत्र स्नाता महात्मानः पितृमातृकुलानि वै ।
 सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णुलोक व्रजन्ति वै ॥१७॥
 स स्नात सर्वतीर्थेषु यो गङ्गा स्मरति द्विज ।
 पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र सशयः ॥१८॥
 यत्र स्नात नर दृष्ट्वा पापोऽपि स्वर्गभूमिभाक् ।
 यदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ॥१९॥
 तुलसीमूलसमूता द्विजपादोद्भवा तथा ।
 गङ्गोद्भवा तु मृल्लोकान्नयभ्यनुतरूपताम् ॥२०॥
 गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला ।
 अत्यन्तदुर्लभा नृणा भक्तिर्द्वर्गप्रवक्तरी ॥२१॥

भागीरथी गङ्गाजी के जल मे स्नान करना परम पुण्य का प्रदान करने वाला होता है । यह गङ्गाजल मे स्नान करना देवगण को

भी परम दुर्लभ हुआ करता है । गङ्गाजल का स्नान, पान, स्पर्शन और दर्शन साक्षात् भगवान् विष्णु के स्वरूप का प्रदान करने वाला होता है—इससे अधिक इस गङ्गा की महिमा क्या वर्णन की जा सकती है ॥१५॥ इस भागीरथी गङ्गा के जल में स्नान करने का ऐसा अदभुत प्रभाव होता है कि महा पापात्मा प्राणी भी समस्त पापों की वासनाओं से छुटकारा प्राप्त करके बड़े भारी विन्ध्य विमान पर समाहृत होकर परमोत्तम पद की प्राप्ति करा लिया करता है ॥१६॥ महान् आत्माओं वाले पुरुष गङ्गा के जल में अवगाहन करके सहस्रा माता-पिताओं के बुरों का उद्धार करके विष्णु लोक को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ हे द्विजवर ! जो गङ्गाजी का स्मरण भी यदि कर लेता है उसने समस्त परम पुण्यमय तीर्थों में स्नान कर लिया है ऐसा समझ लेना चाहिए । वह पुरुष सभी पुण्य क्षेत्रों के गमन करने का फल प्राप्त करलिया करता है । ऐसा फल समस्त पापों की वासनाओं को देने वाले शुद्ध हृदय त्याग वाले पुष्टको ही प्राप्त हुआ करता है ॥१८॥ यहाँ परस्नान करने वाले पुरुषों का दर्शन मात्र कर लेते पर भी लोग स्वर्ग को प्राप्त कर लिया करते हैं । गङ्गा के जल का स्पर्शन करने का ही ऐसा महत्त्व है कि वह मनुष्य देवताओं का भी स्वामी बन जा सकता है ॥१९॥ तुलसी के जटरी मृत्तिका—विप्रा के चरणों से स्पर्शन की हुई घूलि कण और गङ्गा मृत्तिका मनुष्य को साक्षात् विष्णु भगवान् का स्वरूप प्रदान कर दिया करत है अर्थात् स्वरूप मुक्ति दे दिया करते हैं ॥२०॥ बहुत बड़े पुण्य से ही गङ्गातुलसी और श्री हरि की अनन्य भक्ति प्राप्त हुआ करते हैं घम के प्रवचन करन वाले में भक्ति की भावना भी अत्यन्त दुर्लभ होती है । ये सब को कभी प्राप्त नहीं हो सकता है ॥२१॥

सद्धर्मयत्तु पदसभवा मृद गङ्गोद्भवा चैव तथा तुलस्या ।
मूलोद्भवा भक्तिमृतो मनुष्यो वृत्वा शिरस्येति पद च विष्णो २२
पदा यास्याम्यह गङ्गा वदा पश्यामि तामहम् ।

वाच्छन्यपि च गो ह्येवं सोऽपि विष्णुपद व्रजेत् ॥२३
 गङ्गाया महिमा ब्रह्मन्वक्तु वर्षशतैरपि ।
 न शक्यते विष्णुनापि किमन्वंवंद्भुभाषितं ॥२४
 अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येनदद्भुतम् ।
 यतो वै नरक यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥२५
 ससारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।
 तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तारि ॥२६
 सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७
 योजनत्रिनय यस्तु गङ्गायामधिगच्छति ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तं सूर्यलोके समेति हि ॥२८

सद्वर्ष के प्रवचन करने वाले के चरणों से स्पर्श की हुई रज-
 गङ्गाजी की मृत्तिका और तुलसी के मूल की मिट्टी मस्तक पर चढाने
 की ऐसी महान् महिमा है कि वह मनुष्य सीधा विष्णु भगवान् के लोक
 को प्राप्त हो जाता है । ॥२२॥ जो मनुष्य अपने हृदय में—मैं किस
 समय में गङ्गाजी पर पहुँचकर रनानादि करूँगा मैं जब गङ्गादेवी के
 दर्शन करूँगा । ऐसे विचार उठा करते हैं वह भी अपने इन परम पवित्र
 विचार धारा के ही परम पुण्य से विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया
 करता है ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! अधिक क्या वचन किया जावे गङ्गाजी की
 महिमा इतनी विशाल है कि भगवान् विष्णु भी यदि स्वयं कहना
 चाहें तो उसे संकड़ो वर्षों में भी नहीं कह सकते हैं । साधारण मनुष्य
 की तो शक्ति ही क्या हा सकती है ॥२४॥ यह भगवान् की माया ऐसी
 है जो सम्पूर्ण ससार का मोह में डाल दिया करती है क्योंकि गङ्गा जैसी
 परम पावन नदी के विद्यमान रहते हुए भी उस ओर मायामग्नता के
 कारण ध्यान न देने से मनुष्य नरका की यातनाएँ सहन किया करते हैं
 क्योंकि पाप करने का स्वभाव होता ही है जिनका बुफल नरक प्राप्ति

हुआ करती है। गङ्गा का नाम स्मरण, तुलसी की भक्ति और धर्म प्रवृत्ता म श्रद्धाभाव ये ससार के जन्म-मरण के दुख को काट देने वाले हुआ करते हैं ॥२५॥ ॥२६॥ जो एक बार भी अपने जीवन में पापों की वासना को निर्मूल करने के लिये "गङ्गा" ये दो अक्षरों का उच्चारण करता है वह सभी पापों से छूट कर भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ जो गङ्गा के क्षेत्र से बारह कोस तक विचरण किया करता है वह भी समस्त प्रकार के पापों से छूट कर सूर्य लोक को प्राप्त किया करता है। १२ कोस की दूरी पर भी गङ्गा का ऐसा प्रभाव होता है ॥२८

सेय गङ्गा महापुण्या नदी भक्त्या निपेविता ।
 मेपतीलिमृगाकैषु पावयत्यखिल जगत् ॥२६
 गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती ।
 तुङ्गभद्रा च वावेरी कालिन्दी वाहुदा तथा ॥३०
 वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम ।
 एवमादिषु तीर्थेषु गङ्गा मुख्यतमा स्मृता ॥३१
 यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठित ।
 तथेय व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी ॥३२
 अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् ।
 पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥३३
 तीर्थानामुत्तम तीर्थ क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।
 वाराणसीति विख्यात सर्वदेवनिपेवितम् ॥३४
 ते एव श्रवणे धन्ये सविदाते बहुश्रुतम् ।
 इह श्रुतिमता पु सा काशी याभ्या श्रुताऽऽकृत् ॥३५

यदि महा पुण्यमयी गङ्गाजी के जल का सेवन में, तुला और मरर के ऊपर जत्र मूर्तों तकमण किया करते हैं उस समय में किया जावे तो यह समस्त जगत् को परम पवित्र बना दिया करता है ॥२६॥

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, रेवा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, फालिन्दी, बाहुदा, बेत्रवती, ताम्रवर्णी और सरयू इन समस्त तीर्थों में हे द्विजवर ! गङ्गा परम पुण्यमयी बतलाई गई है ॥३०-३१॥ जिस प्रकार से भगवान् विष्णु समस्त लोको को व्याप्त क्यूके विराजमान रहा करते हैं वैसे ही व्यापिनी यह गङ्गा भी सब महापापों का नाश कर देने वाली है ॥३२॥ इस ससार में जगत् को पुष्टि प्रदान करने वाली यह गङ्गा नदी स्नान, पान, दर्शन और स्पर्शन आदि के द्वारा जगत् को परम पवित्र बना देने वाली स्थित है तो भी मनुष्य इसका सेवन नयो नहीं किया करते हैं—कैसी आश्चर्य की बात है ॥३३॥ वाराणसी में सभी देवगण विराजमान रहा करते हैं । यह भी परमोत्तम तीर्थ और श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥३४॥ जिन कर्णों से बहुत से शास्त्रों का श्रवण करके उन पुण्य क्षेत्रों का धर्म ज्ञात किया है वे ही कान परम धन्य हैं जिन कानों ने बारम्बार काशी के माहात्म्य का श्रवण किया है ॥३५॥

ये य स्मरन्ति सस्थानमविमुक्त द्विजोत्तमा ।

निर्धूतसर्वपापास्ते शिवलोकं व्रजन्ति वै ॥३६॥

योजनानां शतस्योऽपि अविमुक्त स्मरेद्यदि ।

बहुपातकपूर्णाऽपि पदं गच्छत्यनामयम् ॥३७॥

प्राणप्रयाणसमये योऽविमुक्त स्मरेद् द्विज ।

सोऽपि पापविनिर्मुक्त शैवा पदमवाप्नुयात् ॥३८॥

काशीस्मरणेन पुण्यं भुक्त्वा स्वर्गं तदन्ततः ।

पृथिव्यामेकराट् भूत्वा वाशी प्राप्य च मुक्तिभाक् ॥३९॥

बहुनात्र किमुक्तेन वाराणस्या गुणान्प्रति ।

नाभापि गृह्णता काश्याश्चतुर्वर्गो न वरत ॥४०॥

गङ्गायामुनयोर्योगोऽधिक काश्या अपि द्विज ।

यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परा गतिम् ॥४१॥

मकरस्थे रवी गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।

पुनाति स्नानपानार्घ्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥४२

हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष अविमुक्त क्षेत्र इस काशी का स्मरण किया करते हैं वे अपने सब कृत पापों को झाड़कर सीधे शिवजी के लोक को चले जाया करते हैं ॥३६॥ कोई मनुष्य चारसी कोस दूर बैठा हुआ भी इस अविमुक्त क्षेत्र काशी का स्मरण भी कर लेता है वह चाहे अनेक प्रकार के पापों से पूर्ण भी बयो न हो काशी में अपना मन लगाने के कारण से पापों के पुञ्ज से छूट कर अनामय पद की प्राप्ति कर लिया करता है । काशी में अपने चित्त की वृत्ति लगा देने मात्र का ही इतना प्रबल प्रभाव होता है ॥३७॥ अपने प्राणों का परित्याग करने के समय में काशीपुरी का स्मरण कर लेता है भले ही वह कहीं पर भी बयो न हो, हे द्विजोत्तम ! वह भी सब पापों से विमुक्त होकर शिवलोक की प्राप्ति करने का अधिकारी हो जाता है ॥३८॥ इस काशीपुरी के स्मरण करने से स्वर्ग में सुख भोग कर के अन्त में इस भूमण्डल में आकर राजघर में जन्म ग्रहण किया करता है और फिर काशी निवास पाकर मुक्त हो जाया करता है ॥३९॥ वाराणसी के गुणों की अधिकता का वर्णन करने से क्या लाभ है ? जो काशी का ज्ञान प्रकाश नाम भी लेता है उससे चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहा करते हैं ॥४०॥ हे द्विजवर ! गङ्गा यमुना का सङ्गम जहाँ पर है वह प्रयाग काशी से भी अधिक है जिसके केवल दर्शन करने ही से परम श्रेष्ठ गति प्राप्त होजाती है ॥४१॥ मकर राशि पर जब सूर्य स्थित हो तब चाहे जिस किसी घाट पर स्नान किया जावे वह स्नान-पान आदि से जगत् को पवित्र करके इन्द्रलोक में भेज दिया करती है ॥४२॥

यो गङ्गा भजते नित्य शङ्करो लोकशङ्करः ।

तिङ्गरूपी कथं तस्या महिमा परित्कीर्यते ॥४३

हरिरूपधर लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः ।

ईषदप्यन्तर नास्ति भेदकृच्चानयो कुधी ॥४४
 अनादिनिघने देवे हरिशङ्करसजिते ।
 अज्ञानसागरे मग्ना भेद कुर्वन्ति पापिन ॥४५✓
 यो देवो जगतामीश कारणाना च कारणम् ।
 युगान्ते निगलत्येतद्ब्रह्मरूपधरो हरि ॥४६✓
 रुद्रो वै विष्णुरुपेण पालयत्यखिल जगत् ।
 ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्ते ह्येतत्त्रय हर ॥४७
 हरिशंकरयोमध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नर ।
 भेद करोति सोऽभ्येति नरक भृशदारुणम् ॥४८
 हर हरि विधातार य पश्यत्येकरूपिणम् ।
 स याति परमानन्द शास्त्राणामेव निश्चय ॥४९

समस्त जगत् के कल्याण करने वाले भगवान् लिङ्ग रूपधारी शङ्कर भी सर्वदा गङ्गा का सेवन किया करते हैं ता ऐसी भगवती गङ्गा की महिमा किस तरह से वणन की जा सकती है अर्थात् गङ्गा का महत्त्व वणनातीत है ॥४३॥ लिङ्ग स्वरूपधारी शिव भी हरि के रूप धारण करने वाले हैं और विष्णु चतुर्भुजधारी शिव रूप हैं । इन दोनों में तनिक भी कुछ भेद नहीं है । जो मूढ मनुष्य इन में भेद समझता है उसकी बुद्धि वास्तव में ही कुत्तित हो गई है—यह मान लेना चाहिए ॥४४॥ जन्म मरण से रहित भगवान् शम्भु तथा विष्णु में भेद अज्ञान सागर में निमग्न महापापी ही समझा करते हैं या समझते हैं ॥४५॥ जो भगवान् विष्णु इस जगत् के स्वामी है । कारणों के कारण स्वरूप हैं वे ही स्वयं प्रदायकाल में भीषण रुद्र का रूप धारण कर इस ससार को लीन कर लिया करते हैं ॥४६॥ रुद्रदेव ही विष्णुदेव के रूप से समस्त विश्व के चराचर का पालन पोषण किया करते हैं और वे ही ब्रह्मा के स्वरूप में अवस्थित होकर विश्व का सृजन किया करते हैं । अतः म ये तीनों हर ही हैं ॥४७॥ अतएव ब्रह्मा,

विष्णु और महेश—इनमें जो भेद बुद्धि रखता है वह महान् दारुणतम नरक में जाकर परम घोर यातनाएँ सहता है ॥४८॥ जो प्राणी हरि-हर और ब्रह्मा इन तीनों को एक रूप देखता है वह परमानन्द की प्राप्ति किया करता है—ऐसा शास्त्रों का निश्चित सिद्धान्त है ॥१६॥

योऽसावनादि सर्वज्ञो जगतामादिकृद्विभु ।
 नित्य सन्निहितस्तस्य लिंगरूपी जनार्दन ॥५०
 काशीविश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्द्भ्र तदुच्यते ।
 त दृष्ट्वा परम ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तम ॥५१
 काशीप्रदक्षिणा येन कृमा गेलोवयपावनी ।
 सप्तद्वीपा साब्धिशीला भू परिक्रमिमानुना ॥५२
 घातुमृद्दारुपापाणलेख्याद्या भूतंयोऽमला ।
 शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु सन्निहितो हरि ॥५३
 तुलसीकाननं यत्र तत्र पद्मवनं द्विज ।
 पुराणपठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरि ॥५४
 पुराणसाहितावक्ता हरिरित्यभधीयते ।
 तदर्भक्तिं भुवंता नृणा गङ्गास्नानं दिने दिने ॥५५
 पुराणश्रवणे भक्तिगङ्गास्नानसमा द्विज ।
 तद्वक्त्रि च या भवति सा प्रयागोपमा स्मृता ॥५६

जो अनादि सर्वज्ञ इस विश्व का प्रारम्भ करने वाले भगवान् विष्णु हैं वही स्वयं साक्षात् काशी वाराणसी का विश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्द्भ्र कहलाता है । इनका दर्शन प्राप्त करके मनुष्य परम ज्योतिर्मय लोक को प्राप्त हो जाता करता है ॥५१॥ सम्पूर्ण तीनों भुवनों को परम पावन बना देने वाली वाराणसी पुरी की परिक्रमा जिस मनुष्य ने की है उसको इतना पुण्य होता है जो गाल सागर गिरि कानन समन्वित एव सातो द्वीपयती प्रदक्षिणा से दृष्टा करता है ॥५२॥ बिभी

भी शुद्ध घातु, मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण और लेख (चित्ररूपी) इत्यादि से निर्मित शिव और विष्णु की प्रतिमायें निर्मल होती हैं और उनमें भगवान् सन्निहित रहा करते हैं ॥५३॥ हे द्विजवर । जिस स्थान में तुलसी का वन होता है या पद्मों का वन हाता है जहां पुराण का पाठ होता है वहां पर श्री हरि सदा विद्यमान रहा करते हैं ॥५४॥ पुराणों की संहिता का प्रयत्न करने वाला (व्यास) श्री हरि का ही प्रतिनिधि स्वरूप हुआ करता है । इन वक्ताओं की भक्ति करने वाला को प्रतिदिन गङ्गा के स्नान का फल मिलता है ॥५५॥ हे द्विजराज । पुराणों के श्रवण करने में भक्ति की भावना का उत्पन्न होना गङ्गा के स्नान के ही समान है । पुराणों के वक्ता व्यास में जो भक्ति होती है उसकी उपमा प्रयाग की दी जाया करती है ॥५६॥

पुराणधर्मकथनीयं समुद्धरते जगत् ।

ससारसागरे मग्न स हरि परिकीर्तित ॥५७

नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।

नास्ति विष्णुसम देव नास्ति तत्त्व गुरो परम् ॥५८

वर्णानां ब्राह्मण श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी ।

यथा पयोधि सिन्धूना तथा गङ्गा परा स्मृता ॥५९

नास्ति शान्ति समो बन्धुर्नास्ति सत्यापर तप ।

नास्ति भोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी ॥६०

गङ्गाया परम नाम पापारण्यदवानल ।

भवव्याधिहरा गंगा तस्मात्सर्वथा प्रयत्नत ॥६१

गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते ।

एतयोर्भक्तिहीनो यस्त विद्यात्पतित द्विज ॥६२

गायत्री छन्दसा माता माता लोकस्य जाह्नवी ।

उभे ते सर्वपापानां नाशकारणता गते ॥६३

पुराणा में वर्णित तथा पुराणों द्वारा प्रतिपादित धर्मों का वर्णन करने जो समार सागर में डूबते हुए प्राणियों का उद्धार करता है वह

व्यास हरि कहा जाता है ॥५४॥ गङ्गाजी के समान तीर्थ नहीं है, माना के तुल्य कोई अन्य गुरु नहीं है, भगवान् विष्णु के सदृश्य अन्य देवता नहीं है और गुरु के समान कोई तत्व नहीं है ॥५५॥ जिस प्रकार नक्षत्रों और तारों में चन्द्र सर्वश्रेष्ठ होता है और चारों वर्णों में ब्राह्मण परम श्रेष्ठ होता है सातों सागरों में क्षीर सागर सर्वोत्तम है उसी प्रकार से समस्त नदियों में गङ्गा सर्वश्रेष्ठ नदी है ॥५६॥ जैसे शान्ति के तुल्य कोई बन्धु नहीं है—सत्य के समान अन्य कोई भी तप नहीं है—मोक्ष के बराबर अन्य लाभ नहीं है उसी भाँति श्रीगङ्गाजी के समान अन्य कोई नदी नहीं है ॥६०॥ पापारण्य दावानल अर्थात् पापों के बनों को भस्म करने वाला दावाग्नि यह गङ्गाजी का एक श्रेष्ठ अन्य नाम है । गङ्गा समस्त सासारिक व्याधियों का हरण करने वाली परमोत्कृष्ट नदी है । अतएव मनुष्यों का चाहिये गङ्गा का सेवन परम प्रयत्न के साथ अवश्य ही करे ॥६१॥ गायत्री और गङ्गा ये दोनों सम्पूर्ण पापों का हरण कर मुक्त करा देने वाली हैं । जो देहधारी इन दोनों की भक्ति एवं सेवा से शून्य होता है वह महान् पतित प्राणी है ॥६२॥ गायत्री समस्त छन्दों की जननी है और गङ्गा लोकों की माता है । ये दोनों समस्त पापों के नाश करने का कारण हैं ॥६३॥

यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गगा प्रसीदति ।

विष्णुशक्तियुते ते द्वे समकामप्रसिद्धदे ॥६४

धर्मार्थनामरूपाणां फलरूपे निरञ्जने ।

सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तते महोत्तमे ॥६५

अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा ।

तथैव तुलसी भक्तिहरिभक्तिश्च सात्विकी ॥६६

अहो गगा महाभागा स्मृता पाप प्रणाशिनी ।

हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सास्यदायिनी ।

यग स्नाता नरा विष्णो पदमनुत्तमम् ॥६७

नारायणो जगद्धाता वासुदेव सनातन ।
 गगास्नानपुराणा तु वाञ्छितार्थफलप्रद ॥६८
 गङ्गाजलकणेनापि य सिक्तो मनुजोत्तम ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तं प्रयाति परमा पदम् ॥६९
 यद्विन्दुसेवनादेव सगरान्वय सम्भव ।
 विसृज्य राक्षस भाव सप्राप्त परमा पदम् ॥७०

जिस प्राणी पर गायत्री देवी परम प्रसन्न होती है उस पर गङ्गा भी प्रसन्न हो जाती है । इन दोनों में भगवान् विष्णु की भक्ति भरी हुई है इसीलिए ये दोनों सब कामनाओं को सिद्ध करने में एक सी ही हैं ॥६४॥ ये दोनों ही धर्म अर्थ और काम की सिद्धि स्वरूप वाली हैं निरञ्जन-महोत्तम और सब प्राणियों पर अपना अनुग्रह करने में सतत सलग्न रहती हैं ॥६५॥ इस सत्कार में मानवों को गायत्री-गङ्गा और तुलसी की भक्ति तथा परम सात्विकी भगवान् विष्णु की भक्ति का प्राप्त होना परम दुर्लभ होता है ॥६६॥ यह गङ्गा पापों का विनाश कर देने वाली महाभागा बतलाई गयी है जो केवल दर्शन करने मात्र से ही वैकुण्ठ लोक का निवास प्रदान किया करती है और इसके जल का पान करने पर भगवान् का सारूप्य प्रदान किया करती है ॥६७॥ इस जगत् के धाता सनातन नारायण भगवान् वासुदेव प्रभु गङ्गा के स्नान करने वाले मानवों के समस्त मनोरथ पूरा किया करते हैं ॥६८॥ वह परम श्रेष्ठ पुरुष है जिसके देह पर गङ्गा जी के जल का एक कण भी गिर जाता है । इसी से ही वह मनुष्य सब प्रकार के महा पातकों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥६९॥ इस गङ्गा देवी के जल की विन्दु पड जाने से सगर के वंश में समुत्पन्न सौदास राक्षस भाव की त्याग कर परमोत्तम पद को प्राप्त हो गया था ॥७०॥

॥ राजा बाहु का चरित्र ॥

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचित सगरान्वये ।
 सगर को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१
 शृणुष्वमुनिशार्दूल गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।
 यज्जलस्पर्शमात्रेण पावित सागर कुलम् ।
 गत विष्णुपद विप्र सर्वलोभोत्तमोत्तमम् ॥२
 आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नाम वृकात्मज ।
 बुभुजे पृथिवी सर्वा धर्मतौ धर्मतत्पर ॥३
 ग्राह्याणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्ये च जन्तव ।
 स्यापिता स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुर्विशापति ॥४
 अश्वमेधैरियाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभि ।
 अतर्पयद्भूमिदेवान् गोभूस्वर्णाशुकादिभि ॥५
 अशासन्तीतिशास्त्रेण यथेष्ट परिपन्थिन ।
 मेने कृतार्थमात्मानमन्यात्तपनिवारणम् ॥६
 चन्दनानि मनोज्ञानि वलि यत्सर्वदा जना ।
 भूयिता भूयणप्रिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनो मुने ॥७

श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ । सगर के वंश में राक्षस
 भाव को प्राप्त होने वाला कौन था जो गङ्गा के प्रभाव से मुक्त हो
 गया था ? यह सगर कौन था ? इसका वर्णन कृपा कर मेरे
 सामने आप कहिये ॥१॥ श्री सनकदेव ने नारदजी को उत्तर दिया
 था—हे मुनियो मे शार्दूल । अब आपसी ऐसी ही अभिधापा है, तो
 गङ्गाजी के उत्तम माहात्म्य का विशेष रूप से श्रवण करिये । हे विप्र-
 वर । गङ्गाके जल का स्पर्श होने ही मगर राजा का वंश परम पवित्र
 होकर सब लोकों में परमात्तम भगवान्, विष्णु के लोक को वह प्राप्त
 । गया था ॥२॥ सूर्यवंश में एक वृक नाम वाले राजा के पुत्र बाहु

नाम वाले राजा हुये थे । वे परम धर्म परायण थे और उ-होने इस सम्पूर्ण पृथिवी का उपभोग किया था ॥३॥ राजा बाहु न अपने शासन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के प्राणियों को अपने अपने धर्मों कर्मों में सस्थापित किया था । इसी-लिये बाहु प्रजापति कहनाया था ॥४॥ वह ऐसा धर्म परायण राजा हुआ था कि सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ आपने किए थे । समस्त ब्राह्मणों को उस राजा ने दक्षिणा के रूप में गौ भूमि, सुवर्ण और वारीक उत्तम वस्त्र आदि देकर पूर्णतया तृप्त किया था ॥५॥ नीति शास्त्र के अनुसार समस्त लुटेरों को समुचित दण्ड देकर किसी अन्य राजा को उस समय में छत्रधारी न देखकर वह अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था ॥६॥ सुन्दर, सुगन्धित चन्दन लगाकर तथा दिव्याभूषण धारण करके मनुष्यों के शरीर में झुरियाँ पड़ जाया करती थी । हे मुने । इस तरह से उसके राज्य में सभी लोग परम सुख से सुसम्पन्न और प्रसन्न रहा करते थे ॥७॥

अकृष्टपच्या पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥८
 ववर्ष भूमौ देवेन्द्र काले काले मुनीश्वर ।
 अधर्मनिरतापाये प्रजा धर्मो रक्षिता ॥९
 एकदा तस्यभूपस्य सर्वसपद्विनाशकृत् ।
 अहकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुः ॥१०
 अह राजा समस्तान लोकाना पालको वली ।
 कर्त्ता महाक्रतूना च मत्त पूज्योऽस्ति कोऽपर ॥११
 अह विचक्षण श्रीमाञ्जिता सर्वे ममारय ।
 वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारद ॥१२
 अजेयोऽव्याहृतैश्वर्यो मत्त कोऽन्योऽधिको भुवि ।
 अहकारपरस्यैव जातासूया परेऽपि ॥१३
 असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर ।

एषु स्थितेषु तु नरो विमाश यात्यसशयम् ॥१४

हे मुनिवर । वह ऐसा धर्मपालक राजा हुआ था कि उसके राज्य में यह पृथ्वी बिना ही जोते हुये ही पूर्ण रूप से पक जाया करती थी और खूब फल पुष्पादि दिया करती थी ॥८॥ हे मुनीश्वर उचित समय पर मेष आकर वर्षा किया करते थे और भूमि को जल से तृप्त कर देते थे । उस राजा ने प्रजा में जो अधर्म की प्रवृत्ति थी उसका समूल विनष्ट करके उनको धर्म में पूर्णतया प्रवृत्त कर दिया था तथा धर्म की अच्छी तरह से रक्षा की थी ॥९॥ एक समय ऐसा आ गया था कि उस राजा की सम्पूर्ण सम्पत्तियों को विनष्ट करने वाला और सब सदगुणों में दोष लगाने वाला यह विनाश का कारण बड़ा भारी अहङ्कार हो गया था ॥१०॥ उसके मनमें ऐसा धर्म दूषित भाव पैदा हो गया था कि मैं तो सभी लोकों का पालन करने वाला हूँ और महान बलवान राजा हूँ । मैंने बड़े २ विशाल यज्ञों का यजन किया है । इस समय में विश्व में मुझसे अधिक पूजनीय अन्य कोई भी नहीं है ॥११॥ मैं तो श्री सम्पन्न और विचक्षण राजा हूँ मेरे सभी शत्रु परास्त हो गये हैं । मैं तो वेदों और वेदातों के तत्वों को मली भाति जानने वाला हूँ तथा नीति शास्त्र के ज्ञान में भी बहुत कुशल हूँ ॥१२॥ मैं इस समय तमारा मे अजेय हूँ और मेरा यह ऐश्वर्य भी अघ्नाहत है । मुझसे अग्रे इस भूमि में कोई नहीं है । इस तरह के हृदय में उठने वाले अहङ्कार से भरकर वह राजा दूसरों के गुणों में भी दोषों का आरोपण करने लग गया था ॥१३॥ हे मुनीश्वर । अनूपा के भाव में उस राजा के हृदय में काम यासना की उत्पत्ति होगयी थी । जिसके होजाने में प्रायः मनुष्य का विनाश हाजाया करता है ॥१४॥

{ योवन धननपति प्रभुत्वमविवेतिना ।

{ एतं तमप्यनर्थाय तिमु यग चतुष्टयम् ॥१५॥

{ स्यामूयानुमही जाना मोक्षिरोधिनी ।

स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसपद्विनाशिनी ॥१६
 असूयाविष्टमनसि यदि सपत्प्रवर्त्तते ।
 तुपाग्निं वायुमधोगमिव जानीहि सुव्रत ॥१७
 असूयोपेतमनसा दम्भाचारवता तथा ।
 परुषोक्तिरताना च सुखं नेह परत्र च ॥१८
 असूयाविष्टचित्ताना सदा निष्ठुरभाषिणाम् ।
 प्रिया वा तनया वापि वान्धवा अप्यरातय ॥१९
 मनोभिलाप कुल्ले य समीक्ष्य परश्रियम् ।
 स स्वसपद्विनाशाय कुठारो नात्र सशय ॥२०
 य स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्नं नरो मुने ।
 सर्वेषां श्रेयसं दृष्ट्वा स कुर्यान्मित्सरं कुधी ॥२१

जीवन-धन सम्पत्ति प्रभुता और अविभेदता इन चारों वस्तुओं में यदि एक भी किसी को होजावे तो वह महान् अनर्थ करने वाली होजाया करती है-ऐसा शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है और फिर दुर्भाग्य से यदि ये चारों ही एकत्रित हो जायें तो फिर उस व्यक्ति के विनाश में कुछ भी सन्देह ही नहीं रहता है ॥१५॥ हे विप्रवर ! यह असूया की भावना ही एक ऐसी मयानक होती है जो समस्त सम्पत्तियों का विनाश कर दिया करती है और शरीर को विनष्ट ही कर देती है । ममार में विरोध की वृद्धि कर देने वाली वही असूया उनके हृदय में बहूत ही अधिक मात्रा में समुत्पन्न हो गयी थी ॥१६॥ हे सुव्रत ! जिस प्राणी के हृदय में ईर्ष्या और असूया की भावना सवृद्ध होकर भर जावे उसके पास जितनी अधिक सम्पत्ति क्यों न हो वह वायु के सवाग को पाकर उस में प्राप्त ध्वनि के समान अति शीघ्र ही विनष्ट हो जान वाला समझ लेना चाहिए ॥१७॥ जिसके मनमें असूया की भावना भरी रहा करती है और जो केवल प्रदर्शन मात्र के ही लिए सदाचार का षोण किया करता है तथा अपने मुख से बहर वातें

निकाला करते हैं उनको न तो इस लोक में मुख शान्ति प्राप्त होती है और न परलोक में ही शान्ति मिला करती है ॥१८॥ जो असूया से युक्त रहा करते हैं और परम निकृष्ट भाषण किया करते हैं उनको अपनी स्त्री बन्धु जन भी शत्रु के समान दिखाई दिया करते हैं ॥१९॥ जो दूसरे के वैभव को देखकर उसे अपहरण करने का विफल मनोरथ अपने चित्त में किया करते हैं उसे समझना चाहिये कि वह अपनी प्राप्त सम्पत्ति को काटने के लिए बुरा ही चलाया करता है ॥२०॥ हे मुनिवर ! जो अपने श्रेय का नाश करने के लिए यत्न करता है वही दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य अन्योके श्रेय को देख कर मनमें डह किया करता है । जब दूसरो के श्रेय से डह करने लगे तो समझ लेना चाहिये कि इसके श्रेय का निश्चित ही अब विनाश होने वाला है ॥२१

मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि ।

हानिमिच्छन्नर. कुर्यादसूया सततं द्विज ॥२२

अथ तस्या विनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतसः ।

हैहयास्तालजघाश्च बलिनोऽरातयोऽभवन् ॥२३

यस्यानुकूलो तक्षमीश. सौभाग्यं तस्य वर्द्धते ।

स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते ॥२४

तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्य गृहादयः ।

यावदीक्षेत लक्ष्मी. कृपापाङ्गेन नारद ॥२५

अपि मूर्खान्धवधिरजडाः शूरा विवेकिन ।

श्लाघ्या भवन्ति विप्रेन्द्र प्रेक्षिता माधवेन ये ॥२६

सौभाग्यं तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाञ्छनम् ।

जायते नात्र सदेहो जन्तुद्वेषो विशेषतः ॥२७

सततं यस्य कस्यापि यो द्वेष कुरते नरः ।

तस्य सर्वाणि नश्यन्ति श्रेयासि मुनिसत्तम ॥२८

हे द्विजवर ! जिनके मित्र सन्तान—घर, धेत, धन-धान्य और पशु आदि का विनाश निपट में ही होने वाला होता है वही मनुष्य अमूया का भाव मनमें करने लगता है ॥२२॥ इन प्रकार में उस राजा के हृदय में नम्रता में रहित अमूया की भावना बढ गई तो उस समय में हृदय और ताल वश के नृप उमके शत्रु बन गये थे ॥२३॥ यह तो मार्बंदिक निश्चित नियम है कि भगवान् जिसके अनुकूल रहा करते हैं उसी का मोभाग्य इस जगत् में बढ़ा करता है और जिसके दुराचारण ने भगवान् विष्णु अप्रसन्न एवं विमुग्र हो जाते हैं उसका मोभाग्य चाहे किना भी कशे न हो सब विनष्ट होजाया करता है । इसीनिये भगवान् की सन्तुष्ट रहने के निये धीर अपने अनुकूल बनाने के वास्ते सदाचरण एवं गत्वर्गों का महत्त्व होता है ॥२४॥ हे नारद ! जिस समय तक भगवान् कृपापूर्ण अपनी दृष्टि प्राणी पर रखते हैं तभी तक उसके पुत्र, पौत्र, धन-धान्य आदि का वैभव बना रहा करता है ॥२५॥ हे विप्रवर ! भगवान् की मुदृष्टि की चर्दी अधिक महिमा है । भगवान् की मुदृष्टि होजाने पर महान् मूढ़-अंधे-जट और बधिग भी बडे गूर धीर विवेकशील एवं प्रजगा के पात्र होजाया करते हैं ॥२६॥ जिसने हृदय में अमूया आदि सांछन गम जाया करते हैं, उसका सम्पूर्ण मोभाग्य क्षीण होने लगता है यह फिर समस्त प्राणियों में द्रौण्यभाव रहने लगता है । फिर धीरे धीरे उसके सम्पूर्ण शुभ कर्मों का विनाश होने लगता है चाहे वहने उमके किने ही शुभ कर्म करो न होके ॥२७॥

अमूया यद्धंते यम्य तम्य विष्णु पराङ्मुखः ।
 धन धान्यं मदी महिनाशयति तयो ध्रुवम् ॥२८॥
 विवेक हन्वत्प्राण्यशिविनासु जीविताम् ।
 आनन्द मभवन्नेतेष्वपराह स्पष्टेसु ॥३०॥
 अह्वारो भवेत्तस्य मय्य नानोर्त्तियेन ॥

असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञ परं सह ॥३१
 आयोधनमद् घोर मासमेक निरन्तरम् ।
 हैहयैस्तालजङ्घैश्च रिपुभि स पराजित ॥३२
 वन गतस्ततो बाहुरन्तर्वल्या स्वभार्यया ।
 अवाप परमा तुष्टि तत्र दृष्ट्वा महत्सर ॥३३
 असूयोपेतमनसस्तस्य भाव निरीश्र्य च ।
 सरोगतविहङ्गास्ते लीनाश्चित्रमित महत् ॥३४
 अहो कष्टमहो रूप घोरमत्र समागतम् ।
 विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहङ्गमा ॥३५

जिस मनुष्य के चित्त में असूया का भाव बढ़ने लगता है उससे भगवान् विष्णु परागमुख होजाया करते हैं और जब भगवान् की विमुक्तता होने लगती है तो उसकी पृथ्वी धन, धान्य आदि की समस्त सम्पत्ति का विनाश अवश्य होजाया करता है ॥२६॥ यह निश्चित नियम है कि चित्त में जब अहंकार आजाता है तो उसका विवेक विल्टुन ही नष्ट होजाता है । जब अविवेक और अविचार मन में आ जाते हैं तो उस प्राणी को चारों ओर से अविचार और आपत्तियाँ घेर लिया करती हैं । इसलिये अहंकार बहुत बुरी वस्तु है इसका त्याग ही कर देना चाहिये । यह सर्वनाश का मूल होता है ॥३०॥ जिसके हृदय में अहंकार हो जाता है उसका विनाश बहुत ही वेग से होने लगता है । इस प्रकार असूया में युक्त उस राजा बाहु का युद्ध निरन्तर एक मास तक होता रहा था और अन्त में हैद्रप वश और तालजङ्घ राजाओं ने उसको पराजित कर दिया था ॥३१॥३२॥ वह फिर सब वैभव छोड़कर अपनी गभवती स्त्री को लेकर वन में चला गया था । वहाँ परम परम विशाल मराठर का देवदर उसका अधिक प्रमन्नता हुयी थी ॥३३॥ वहाँ पर एक अत्यन्त आश्चर्य की बात यह हुई कि उग राजा ने ईश्यानु भाय को भाँपकर उस सरोवर पर रहने वाल

सब पक्षी अपने २ घासलो म प्रविष्ट होगये थे ॥३४॥ जिस समय म उड़ २ कर जाने लगे थे तब यह कहते जा रहे थे कि—अरे ! यह बहुत ही अधिक दुःख की बात है कि बहुत ही धोर कर्मों के करने वाला यह प्राणी यहा पर आगया है । ऐसा थे सब पक्षी आपस में बातचीत करते हुये अपने २ घासलो म जाकर छिप गये थे कि उसका मुँह न दिखाई पडे ॥३५॥

सोऽवगाह्यसरोभूप पत्नीभ्या सहितो मुदा ।

पीत्वा जल च सुखद वृक्षमूलमुपाश्रित ॥३६

तस्मिन्वाहो वन याते तेनैव परिरक्षिता ।

दुर्गुणान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यद्बुवन्प्रजा ॥३७

✓ यो वा को वा गुणी मर्त्ये सर्वश्लाघ्यतरो द्विज ।

↳ सबसपत्समायुक्तोऽप्यगुणो निन्दितो जने ॥३८

आपकीर्तिसमो मृत्युलोकेष्वन्यो न रिचते ।

यदा बाहुर्वन यातस्तदा तद्राज्यगा जना ।

सतुष्टि परमा याता दवथी विगते यथा ॥३९

निन्दितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थित ।

निहत्य कम च यशो लोके द्विजवरोत्तम ॥४०

↳ नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपु ।

नास्ति निदासम पाप नास्ति मोहसमासव ॥४१

नास्त्यमूयासमाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनल ।

नास्ति रागसम पाशा नास्ति सङ्गसम विषम् ॥४२

उस समय म उस विभव विहीन राजा न अपनी पत्नियों के साथ म उस सरोवर म स्नान करके जनपान किया था और तानन्द मुँह पूर्वक उसी वृक्ष के मूल म आवर बैठ गया था ॥३६॥ उस राजा बाहु के वन म जाने पर उसकी समस्त रक्षित प्रजा उसका महान दुर्गुणा पर विचार करके उसकी धिक्कार देन लगी

थी ॥३७॥ हे द्विजवर ! चाहे कोई भी कैसा ही मनुष्य हो यदि वह गुणों से सुसम्पन्न होता है तो सभी उसकी प्रशंसा किया करते हैं , भले उसके पाम कुछ भी न हो और जो गुणहीन एवं दुर्गुणों से युक्त होता है तो भले ही वह कैसा भी शक्तिशाली बयो न हा उसकी सभी मनुष्य निन्दा किया करते हैं ॥३८॥ इस सत्सार मे अपकीर्ति का होना मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक होता है । वह बाहु राजा अपना सभी कुछ विनष्ट करके जब वन मे चला गया था तब सभी उसके राज्य मे निवास करने वाले ग्रीष्म के ताप के व्यतीत होजाने के ही समान परम सन्तोष का अनुभव करने लग गये थ ॥३९॥ हे द्विजवर ! इस भाँति वह बहुत प्रकार की निन्दा का पात्र होता हुआ अपने सुयश और शक्तियों का विनाश करके एक मृत प्राणी के ही तुल्य उस वन मे रहने लगा था ॥४०॥ अकीर्ति मृत्यु के ही समान होती है । क्रोध के तुल्य अन्य कोई भी शत्रु नहीं होता है । मनुष्य को क्रोध एक महान् शत्रु के ही समान हुआ करता है । मोह के बराबर मादक वस्तु इस सत्सार मे अन्य कुछ भी नहीं है ॥४१॥ असूया ही सबसे बड़ी अकीर्ति करने वाली होती है । काम के समान अन्य कोई भी अग्नि नहीं है । राग के तुल्य अन्य कोई बन्धन नहीं होता है । कुसंगति के बराबर अन्य कोई वस्तु नहीं है जो विप का सा प्रभाव रखती है ॥४२॥

एव विलप्य बहुधा बाहुरत्यन्तदु खित ।

जीर्णाङ्गो मनसस्तापाद् वृद्धभावादभूदसौ ॥४३॥

गते बहुतिथे काले और्वाश्रमसमीपत. ।

सबाहुर्धर्पाधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम् ॥४४॥

तस्य भार्या च दु खार्ता वनिष्ठा गभिणी तदा ।

चिर विलप्य बहुधा सह गन्तु मनो दधे ॥४५॥

समानोय च मैधासि चित्ता कृत्वातिदु.खिता ।

समारोप्य तमारुढ स्वयं समुपचक्रमे ॥४६
 एतस्मिन्नन्तरे धीमानीर्वस्तेजोनिधिमुनि ।
 एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना ॥४७
 भूत भव्य वर्त्तमानं त्रिकालज्ञा मुनीश्वरा ।
 गतामूया महात्मानं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥४८
 तपोभिस्तेजसा राशिरीर्वं पुण्यसमो मुनि ।
 सप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता ॥४९

उस अवकीर्ति के कारण ही वह बहुत विलाप करता हुआ बहुत अधिक दुःखित हुआ था । इस तरह से बड़े हुए मन का सन्ताप और वृद्धता के भाव के कारण उस बाहु राजा के सभी अङ्ग बहुत जीर्ण होगये थे ॥४३॥ इस प्रकार रा वह बाहु राजा ओर्वं ऋषि के आश्रम के समीप में बहुत सा समय व्यतीत करके हे मुनिवर । वह व्याधिया से ग्रस्ता होकर वही पर मर गया था ॥४४॥ उसका मृत्युगत हा जाने पर उसकी जो छोटी पत्नी थी वह बहुत ही दुःखित हुई थी क्योंकि वह गभवती थी । उमने बहुत अधिक विलाप किया था ॥४५॥ उस रानी ने ई धन एकत्रित कर बिना बनाई और अत्यन्त शोकग्रस्त दुःखिनी ने उस पर राजा के शव को रखकर उमी के साथ स्वयं भी चदकर दाह करने का विचार किया था ॥४६॥ उस समय में परमाधिक तेजस्वी ओर्वं मुनि ने समाधि के द्वारा इस वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करके यहीं पर प्राप्त होगये थे ॥४७॥ मुनीश्वर तो तीना पात्रा की बात को भली प्रकार से जानते ही हैं । वे महात्मा अमूषा के भाव से रहित होने के कारण ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४८॥ तपश्चर्या के कारण महान तप वाले मूर्तिमान पुण्य के समाप्त के ओर्वं मुनि भी जहाँ पर यहाँ चिता बनाई गयी थी और बाहु की साध्वी पत्नी गती हाता चाहती थी यहाँ उपस्थित हा गये थे ॥४९

चितामारोढुमुद्युक्तातादृष्ट्वा मुनिसत्तम ।
 प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्योनि मुनिसत्तम ॥५०
 राजवर्यप्रिये साध्वि मा कुरुष्व्यातिसाहसम् ।
 तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहन्ता हि तिष्ठति ॥५१
 बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्ट्वात्तवस्तथा ।
 रजस्वला राजसुते नायेहति चिता शुभे ॥५२
 ब्रह्महत्यादिपापाना प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमै ।
 दम्भिनो निदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृति ।
 नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मपेक्षाकरस्य च ।
 विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥५४
 तस्मादेतन्मह पाप कर्तुं नाहंसि शोभने ।
 यदेतद्दुःखमुत्पन्ना तत्सर्वं शांतिमेप्यति ॥५५
 इत्युक्त्वा मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् ।
 विनलापातिदुःखार्ता रागुह्य धवपत्कजौ ॥५६

हे मुनिवर ! जिस समय मे औरों मुनि ने रानी को चिता पर चढ़ाकर दाह करने को प्रस्तुत देखा था तो उस समय मे ये धर्म मे परिपूर्ण यवन कहने लग थे ॥५०॥ और मुनि ने अपने भगपण मे कहा—हे साध्वि ! तुम इस श्रेष्ठ राजा की प्रिया हो किन्तु तुम्हारे उदर मे समस्त शत्रुओं का विनाश कर देगे याला चक्रवर्ती पुत्र विद्यमान है अतएव यह जो परम साहस से पूर्ण सती होने का तुम्हारा विचार है इसको मत करो ॥५१॥ हे मुषे ! शासन ना यह मुनिविचन सिद्धान्त है कि जिनकी स-तति बालक एव असमर्प हाती है—जा गर्भवती हाती है—जिनका रजादशन नहीं हुआ है—जा रजस्वला हैं । हे राजपुत्र ! हे शुभे ! वे चितारोहण मरये सती नहीं हुआ करती हैं । उनको धमशास्त्र के अनुसार सती होने का अधिकार प्राप्त नहीं है ॥५२॥ श्रेष्ठ महानुभावो ने ब्रह्महत्या प्रभृति

महापाप करन वाले की—दम्भ करने वाले की तथा निदक की तो सबकी निष्कृति बतलाई है किन्तु जो गर्भवती होती है उसकी निष्कृति या उद्धार का कहीं पर कोई भी नहीं कहा है ॥५३॥ अतएव ह साध्वि ! ह मुन्नत ! नास्तित्वा, कृतघ्न और धर्म की उपेक्षा करने वाल तथा विश्वासघातक पुरुष का इतना महान पाप समझा जाता है इसके करन वाल का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है ॥५४॥ इसलिये आपसो इस समय मे यह महान् पाप का करना उचित नहीं है । हे शाभन ! तुम्हारे ऊपर जा इस समय मे यह बहुत भारी कष्ट आया है वह सभी कुछ समय मे दूर होजायगा ॥५५॥ ओर्व मुनि के इस भाति स कथन करन पर यह साध्वी मुनिवर के अनुग्रह पर विश्वास करने अति दु खित भाव मे अपने पतिदेव के चरणा को पकड कर विलाप करने लगी थी ॥५६॥

और्वोऽपि ता पुन प्राह सर्वशास्त्राथकोविद ।
 मा रोदी राजतनये श्रियमग्रघा गमप्यसि ॥५७॥
 मा मुचान् महाभागे प्रेतो दाह्योऽद्य पज्जने, ।
 तस्माच्छोक परित्यज्य कुरु बालोचिता क्रियाम् ॥५८॥
 पडिते वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते ।
 दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्यो सर्वत्र तुल्यता ॥५९॥
 नगरे वा तथारण्ये दैवमात्रातिरिच्यते ॥६०॥
 यद्यत्पुरातन कर्म तत्तदेवेह युज्यते ।
 कारण दैवमेत्रात्र मत्ये सोपाधिका जना ॥६१॥
 गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वाद्वर्षे ।
 मृत्योर्वंश प्रयातव्य जन्तुभि कमलानने ॥६२॥
 हन्ति पाति च गोविन्दो जन्तून्कर्मवशे स्थितान् ।
 प्रवाद रोपमन्त्यजा हतुमाशेषु जन्तुषु ॥६३॥

उम समय मे सर्वशास्त्रा के महा मनीषा और्व मुनि ने उससे

फिर कही—हे राजपुत्रि । तुम विलाप मत करो । तुमको भविष्य मे परम श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होगी ॥१७॥ हे महाभागे ! तुम अब अधिक अश्रुपात मत करो । आज के दिन विद्वान लोगो ने प्रेत की दाह क्रिया करने की आज्ञा दी है अतएव शोक या त्याग करके सम-योचित दाह की क्रिया को सस्पन्न करो ॥१८॥ यह मृत्यु तो सभी को एक दिन आया ही करती है चाहे कोई पंडित मूर्ख, दरिद्र, लक्ष्मी-मान्, दुराचारी या सदाचारी क्यों न हो । यह तो सभी को समान भाव से समय पर आती है ॥१९॥ नगर हो या वन हो वही पर भी मौत का जब समय प्राप्त हो जाता है तब आ ही जाया करती है, इसका कोई भी प्रतिकार नहीं होता है प्रारब्ध के अनुसार ही मृत्यु सर्वत्र सबको आया करती है ॥२०॥ पूर्व जन्मो के जो सचित कर्म होते हैं उनका योग बुरा या भला जैसा भी हो उसको इस ससार में हर एक को भोगना ही पडता है । मैं तो इस प्रकार से भोग करने में प्रारब्ध को ही मुख्य कारण मानता हूँ - किसी न किसी उपाधि के वश होकर पूर्व जन्म में किये हुए कर्म के कारण ही गनुष्य इस जगत में फल भोगा करते हैं ॥२१॥ हे कमल के समान मुख वाली । भोगों के अनुसार ही प्राणी गर्भ में, शैशवावस्था में यौवन में अथवा वार्धक्य में अवश्य ही मृत्यु के पजे में पडते ही हैं ॥२२॥ भगवान् प्रभु कर्मों के वश में पडे हुए प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार पालन किया करते हैं और मारते है । मूढ पुरुष तो जो निमित्त मात्र बने हुये प्राणी है उन पर दोषारोपण किया करते है ॥२३॥

तस्माद्दुःखं परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते ।

कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव ॥२४॥

एतच्छरीरं दुःखानां व्याधीनामयुतैर्वृतम् ।

सुखाभासं बहुक्लेशं कर्मपाशेन यन्वितम् ॥२५॥

इत्याश्वास्य महाशुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत् ।

त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६६
 किमत्र चिग यत्सन्त. परार्थफलकाक्षिण ।
 नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलन्ति जगतीतले ॥६७
 योऽन्यदु खानि विज्ञाय साधुवाक्यै. प्रबोधयेत् ।
 स एव विष्णुस्सत्त्वस्थो यत परहिते स्थित ॥६८
 अन्यदु खेन यो दु खी योऽन्य हर्षेण हर्षित ।
 स एव जगतामीशो नररूपधरो हरि ॥६९
 रादिभ श्रुतानि शास्त्राणि परदु खत्रिमुक्तये ।
 सर्वेषा दु खनाशाय इति सन्तो वदन्ति हि ॥७०

अतएव हे मुन्रते ! अब तुम इस पति-वियोग के दु ख का त्याग करके सुखी बनो और विवेक द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर करो । अब तुमको यही चाहिये कि अपने पति का औदार्य देखि कर्म को यथा विधि करो । यह शरीर तो अयुतां (दश हजारो) व्याधियों से घिरा हुआ रहा करता है । इसमें सुख का तो केवल आभास मात्र ही होता है अन्यथा इसमें नाना प्रकार के क्लेश ही क्लेश भरे हुये हैं सुख तो वास्तव में ही नहीं । यह शरीर कर्मों के पास में बद्ध है ॥६४।६५ ॥ महान मेधावी उम और्वं मुनि ने इस रीति से उसका समाधान करके धीरज प्रदान किया और कर्म कराने की चाह की थी । उस स्त्री ने भी शोक का त्याग कर मुनि को प्रणाम किया और उसने कहा इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है सज्जन पुरुष सदा परोपकाररूपी फल की ही इच्छा किया करते हैं । पृथ्वी पर वृक्ष अपने लिये कभी फल नहीं दिया करते हैं और वे परोपकार करने के लिये ही फलते-फूलते हैं ॥६६।६७॥ जो पुरुष दूसरे को दु ख में पतित देखकर और उसके दु ख का ज्ञान प्राप्त करके उसके सदुपदेशों के बचनों द्वारा शान्ति प्रदान किया करते हैं उनको सत्त्व गुण में ही विराजमान मह-झना चाहिये क्योंकि वे सर्वदा दूसरों के हित में परायण रहा करते

ही उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज दीर्घ को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातकों से घिरा हुआ हा महापुरुषों की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त हाजाया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करके मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर ।
 चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषा प्रतिवासरम् ॥१॥
 गने वर्षाद्विक काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज ।
 तस्या पाप मतिर्जाता सपत्न्या सम्पद प्रति ॥२॥
 ततस्तया गरो दत्त अनिष्टायै तु पापया ।
 न स्पृश्रभाव चक्रे वैगरो मुनिनिषेवया ॥३॥
 भूनेपनादिभि सम्यग्यत सानुदिग मुने ।
 चकार सेवा तेनासी जीर्णपुण्येन वर्मणा ॥४॥
 ततो मासत्रयेऽशीते गरेण सहित सुतम् ।
 गुपान गुप्तुभे काले शुभपानष्टनिन्विषा ॥५॥
 अट्टो सत्सङ्गनिर्लोके वि पाप न विनाशयेत् ।
 न तदातिमुद्य वि वा नराणा पुण्यवर्मणाम् ॥६॥

हैं ॥६८॥ जो सर्वादा दूसरो के दुखों में स्वयं दुःखित होता है और दूसरो के हर्ष में स्वयं प्रसन्नता का अनुभव किया करता है उम पुरुष को इस जगत् का स्वामी नररूपधारी साक्षात् विष्णुदेव ही समझना चाहिए ॥६९॥ सज्जन पुरुष दूसरो का दुःख निवारण करने के लिये शास्त्रों का गहन अध्ययन किया करते हैं और जब दूसरो को दुःख में मग्न देखते हैं तो अवसर प्राप्त करके उस दुःख का निराकरण करने के लिये शास्त्र का सार उन्हें-मुनाया करते हैं ॥७०॥

यत्र सन्त प्रवर्तते तत्र दुःख न वाधते ।

वर्तते यत्र मार्तण्ड कथं तत्र तमो भवेत् ॥७१॥

इत्येव वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापरा क्रिया ।

चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानतः ॥७२॥

स्थिते तत्र मुनी राजा देवराडिव सज्वलन् ।

चित्तमध्वाद्धिनिष्क्रम्यविमानवरमास्थित ॥७३॥

प्रपेदे परम धाम नत्वा चोर्वं मुनीश्वरम् ।

महापकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकं ।

पर पद प्रयान्त्येव महद्भिभवलोकितः ॥७४॥

कलेवर वा तद्भस्म तद्धूम वापि सत्तम् ।

यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परा गतिम् ॥७५॥

पत्युः कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपद मुनेः ।

चकार तस्य मुश्रूपा सपत्न्या सह नारद ॥७६॥

जिस स्थल पर सज्जन पुरुषों का प्रवेश होता है वहाँ पर दुःख विशेष जोर नहीं करता है क्योंकि ज्ञान के मूर्खों के सामने अज्ञान से समुत्पन्न दुःख का अन्धकार रहने नहीं पाता है ॥७१॥ उसने इस प्रकार से कहकर मुनि के दर्शन विधान के अनुसार ही अपने पतिदेव की उमी गरीबर के तीर पर अपर काल की ओडर्वं दैहिक क्रिया सम्पन्न की थी ॥७२॥ उम समय में वह बाटुराजा मुनि के समक्ष में

हो उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज औरों को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातकों से घिरा हुआ हो महापुरुषों की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त होजाया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करने मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमोर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर ।
 चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषा प्रतिवासरम् ॥१
 गने वर्षाद्विंशे काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज ।
 तस्या पाप मतिर्जाला सपत्न्या सम्पद प्रति ॥२
 ततस्तया गरो दत्त वनिद्वार्यै तु पापया ।
 न म्यप्रभाव चक्रे वैगरो मुनिनिपेवया ॥३
 भूतेपनादिभिः सम्यग्यत सानुदिन मुने ।
 चत्वार मेवा तेनासी जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४
 ततो मामश्रयेऽनीते गरेण महिन मुत्तम् ।
 गुपान मुशुभे काले शुश्रूषानष्टरित्वया ॥५
 अहो सत्सङ्गनिर्लोके किं पाप न विनाशयेत् ।
 न तदानिमुद्य किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६

ज्ञानाज्ञानकृतं पाप यच्चान्यत्कारित परैः ।

तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम् ॥७

श्री मनकजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से वे दोनों विधवा रानियाँ और भुनिके आश्रम में रहती हुई मुनि की शुश्रूषा भक्ति की भावना से किया करती थी ॥१॥ हे द्विज ! जब छै मास व्यतीत हो गये तो बड़ी रानी को अपनी सपत्नी की पुत्र की सम्पत्ति पर पापमय वृद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥२॥ उस महा पापिनी ने छोटी रानी को विप दे दिया था । किन्तु महा मुनि की सेवा करने के कारण से उस दिये हुये विप का कुछ भी बुरा प्रभाव नहीं हुआ था ॥ ३ ॥ वह छोटी बाहू की रानी नित्य ही उस आश्रम की भूमि को लीपने आदि की महा मुनि की सेवा किया करती थी । इसलिये जीर्णोद्धार के परम पुण्यमय सत्कर्म के करने के ही कारण से ही उसको सौत के दिये हुए विप का प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ था ॥४॥ फिर भुनि की भक्ति पूर्णक सेवा करने से जिसका सब पाप नष्ट हो गया था उस रानी ने तीन मास व्यतीत होजाने पर उस विप के सहित पुन रत्न का प्रसव किया था ॥५॥ ओहो ! इस ससार में सत्पुरुषों की सङ्गति का कैसा अद्भुत प्रभाव है कि इससे सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं । पुण्यशील पुरुषों के लिये इस सत्सङ्गति के समान और कौन-सा सुख हो सकता है ॥६॥ जो जान दूसरों के द्वारा कराया जाता है उस सबको महान् पुरुषों की सेवा नुरन्त ही नष्ट कर दिश करती है ॥७॥

जडोऽपि याति पूज्यत्व सत्सङ्गाज्जगतीतले ।

कलामानोऽपि शीताशुः शम्भुना स्त्रीकृतो यथा ॥८

सत्सङ्गति परामृद्धि ददाति हि नृणां सदा ।

इहामुत्र च विप्रेन्द्र सन्तः पूज्यतमास्ततः ॥९

अहो महद्गुणान्ववन् कः समर्थो मुनीश्वर ।

गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽदभुतम् ॥१०
 गरेण सहित पुत्र दृष्ट्वा तेजोनिधिमुनि ।
 जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च ॥११
 पुपोप सगर बाल तन्माता प्रीतिपूर्वकम् ।
 चीलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश्वर ॥१२
 शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मन्त्रवित् ।
 समर्थ सगर दृष्ट्वा किञ्चिदुद्भिन्नशैशवम् ॥१३॥
 मन्त्रवत्सर्वशास्त्रास्त्र वत्तवान्स मुनीश्वर ।
 सगर शिक्षितस्तेन सम्यगोर्वपिणा मुने ॥१४
 बभूव बलवान्धर्मो कृतज्ञो गुणवान्मुधी ।
 धमज्ञ सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजस ।
 समित्कुशाम्बुपुष्पादि प्रत्यह समुपानयत् ॥१५

इस जगत् मे जड मनुष्य भी सत्पुरपो की सगति करने से पूज्य हो जाया करता है । जिस तरह से एक बलामात्र बच्चे हुये चन्द्रमा को ही जिवन्ती ने अङ्गीकार कर लिया था । इसलिये भगवान की सद्गति से कारण ही उसकी सब पूजा किया करते हैं ॥२॥ यह अटल सिद्धान्त है कि सत्सद्गति मनुष्या को सदा समृद्धि दिया करती है । हे विप्र ! यही कारण है कि सज्जन लोग यहाँ भू लोक मे और वहा परलोक मे परमाधिक पूजनीय हैं ॥३॥ हे मुनिवर ! महापुरपा के चरित्र ऐसे विशाल हैं कि उनका वर्णन किसके द्वारा किया जा सकता हे ? देखिये, ब्रमा प्रभाव है गर्भ मे प्राप्त होने वाला विप तीन मास म जीण हो गया । यह मन्त्र शुश्रूषा एक अदभुत पत्र के सिवाय क्या हो सकता है ॥१०॥ तेज के निधान महामुनि और्य ने बालक को विप के साथ उत्पन्न हुआ देय कर उमका नामकरण ही 'सगर' इसने कर दिया गया था फिर जात कर्मादि शास्त्राक्त सत्कार करा दिये थे ॥११॥ उसके पश्चात् उमकी माता उस बालक (सगर) का

बड़ी ही प्रीति के साथ पालन पोषण करने लग गई थी, मुनिवर श्रीर्ष ने यथा समय मण्डन और उपवीत आदि सस्वार भी करा दिये थे ॥१२॥ उस वालक सगर ने अपनी शैश्यावस्था में पदार्पण किया उसी समय मन्त्रों के ज्ञाता मुनि न उमको राजाको के पढ़ने योग्य शास्त्रों को पढ़ाया था ॥१३॥ मुनीश्वर ने केवल अध्ययन ही नहीं कुछ मन्त्रों के सहित अस्य शस्त्र भी प्रदान किया थे । इस प्रकार से श्रीर्ष महर्षि ने सगर को अच्छी तरह से शिक्षित बनाकर होशियार एवं कुशल बना दिया था । हे मुनिश्रेष्ठ । उसी समय से बलवान, घमिष्ठ, वृत्तज्ञ, गुणी, दुर्द्धिमान् सगर भी उन मुनि श्रीर्ष के लिये समिधा-जल दान और पुष्प आदि लाकर देने की सेवा में नित्य ही निरत रहने लगा था ॥१४॥१५

स वदाच्चिद्गुणनिधि प्रणिपत्य स्वमातरम् ।

उवाच प्राञ्जलिभूत्वा सगरो विनयान्वित ॥१६

मातरंत पिता कुत्र किंनामा कस्य वशज ।

तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रोतु कौतूहल मम ॥१७

पित्रा विहीना ये लोके जीवतोऽपि मृतोपमा ॥१८

दरिद्रोऽपि पिता यस्य ह्यास्ते स धनदोपम ।

यस्य माता पिता नास्ति भूख तस्य न विद्यते ॥१९

धर्महीनो यथा मखं परत्रेह च निन्दित ।

मातापितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिन ।

अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि ॥२०

{ चन्द्रहीना यथा रात्रि पद्महीन यथा सर ।

{ पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशु २१

एक दिन ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि वह गुणसागर अपनी माता से बहुत विनम्र होकर प्रणाम पूरक पूछने लगा ॥१६॥ सगर ने कहा—हे माताजी हमारे पिताजी वहाँ पर हैं ? मैंने कभी उनके दशन तक नहीं किये हैं । पिताजी का शुभ नाम क्या है ? व त्रिंश वश मे

उत्पन्न हुए थे ? आप इन सब बातों का सुस्पष्ट उत्तर अभी दे दीजिये—इन सब बातों का ज्ञान पाने के लिए भरे हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा है ॥१७॥ हे माताजी ! इस गतार में जो पितृहीन हैं वे जीवित रहते हुए भी मृत के समान ही हैं ॥१८॥ जिसका पिता अत्यन्त दरिद्र भी है तो भी उसको कुवेर के ही समान समझना चाहिए । जिसके माता और पिता दोनों ही न हों उसको ससार में कभी सुख नहीं मिल सकता है ॥१९॥ सह पुरुष धर्म विहीन एक मूर्ख के समान इस लोक और परलोक दोनों जगहों में निन्दा ही पाया करता है । इस जगत में माता पिता से हीन का—अज्ञानी का, अवि-वेकी का, अपुत्र और ऋण शून्य का जन्म ही व्यर्थ है ॥२०॥ बिना चन्द्रोदय के रात्रि—बमलो के विवास से रहित सरोवर, पतिहीन नारी और पिता से हीन बालक—ये सब एक से ही होते हैं ॥२१

धर्महीनो यथा जतु कर्महीनो यथा गृही ।

पद्महीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनाभंक ॥२२

सत्यहीन यथा वाक्य साधुहीना यथा सभा ।

तपो यथा दयाहीन तथा पित्रा विनाभंक ॥२३

वृक्षहीन यथारण्य जलहीना यथा नदी ।

वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनाभंक ॥२४

यथा लघुलोके मातर्याञ्ज्यापरो नर ।

तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वित सुत ॥२५

इतीरित सुतेनैवा श्रुत्वा निश्चस्य दुःखिता ।

सपृष्ठ तच्छयावृत्त सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥२६

तच्छ्रुत्वा सगर क्रुद्ध कोपसरक्तनोचन ।

हनिष्यामोत्परातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा ॥२७

प्रदक्षिणीवृत्त्य मुनि जननी च प्रणम्य स ।

प्रम्यापित प्रतस्थे च तेनैव मुनिना सदा ॥२८

जिस प्रकार से धर्म से हीन प्राणी, कर्म से हीन प्राणी, कर्म हीन गृहस्थ और पशु हीन वैश्य हो उसी प्रकार से पितृहीन वाउक होता है ॥२२॥ जिस रीति से सत्यता से रहित वचन, सत साधुओं से हीन सभा या परिपद— दया से विहीन तपश्चर्या व्यर्थ है वैसे ही जनकहीन बालक होता है ॥२३॥ जैसे वृक्ष लतादि से शून्य वन, सलिल शून्य नदी, वेग विहीन अश्व केवल नाम मात्रसे ही हुआ करते हैं उसी भाँति पिता से रहित बालक हुआ करता है ॥२४॥ जैसे याचना करने वाला मनुष्य इस जगत में बहुत ही तुच्छ एवं ओछा मना जाया करता है उसी तरह से पिता से रहित अनाथ बालक भी बहुत ही तुच्छ समझा जाया करता है और अनेक प्रकार के कष्ट ही भोगा करता है ॥२५॥ पुत्र के इस भाँति से कथन करने पर उसकी माता न दुःखित होकर एक सम्बन्धी उष्ण श्वास लेकर आह भरी और अपने पुत्र के पूछने पर सम्पूर्ण सत्य घटित घटना का वृत्तान्त उसको कहकर सुना दिया था । इस दुर्घृत्तान्त का श्रवण करके सगर को बहुत भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था । क्रोधावेश में उसके नेत्र लाल हो गये थे और उसी क्षण में दृढ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने सर्वस्व का अपहरण करने वाले समस्त शत्रुओं का सहार कर दूँगा ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त उस सगर ने उन महा मुनि के चरणों में अपनी जननी के पद पङ्कजों में अपना मस्तक झुकाया था और उस महा मुनि के समादेश से प्रस्थान करा देने पर वह वहाँ से चल दिया था ॥२८

और्वाथमाद्विनिष्क्रान्त सगर सत्यवाक् शुचि ।

वशिष्ठ स्वमुलाचार्यं प्राप्त प्रीतिसमन्वित ॥२६

प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने ।

सर्वं विज्ञापयामास ज्ञानदृष्ट्या विजानते ॥३०

एन्द्राम्ब्र वारुण ग्राह्यमाग्नेय सगरो नृप ।

तेनैव मुनिनाऽवाप खड्गं वज्रोपमं धनु ॥६१

ततस्नेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सीमनस्यवान् ।
 अशीभिरन्वितः सद्यः प्रतस्थे प्रणिपत्य तम् ॥३२
 एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः ।
 सपुत्रपौत्रान्सागणानवरौत्स्वर्गवासिनः ॥३३
 तच्चापमुक्तयाणाग्निमंतप्तास्तदरातयः ।
 केचिद्विनष्टा मत्रस्तास्तथा चान्वे प्रदुद्रुवुः ॥३४
 केचिद्विशीर्णकेशाश्च वल्मीकोपरि मस्थिताः ।
 तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम् ॥३५

परम मत्स्य भाषण करने वाला और अधिकांश पुनीत वह वानक सगर और मुनि के आश्रम से चल कर परम प्राप्ति के साथ अपने कुल के गुरुदेव श्री वशिष्ठ मुनि के समीप में प्राप्त हुआ था ॥३२॥ वशिष्ठ जी ज्ञान की दृष्टि से सभी कुल जानते थे । उस समय में सगर ने वहा पर पहुँच कर श्री वशिष्ठजी को प्रणाम करके सभी वृत्तान्त सुनाई दिया था ॥३०॥ उसी समय में पुलगुरु वशिष्ठजी ने उस सगर को ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, ब्रह्णास्त्र, अग्नियास्त्र वज्र के समान खड्ग और धनुष आदि का प्रदान किया था ॥३१॥ इसके उपरान्त वशिष्ठजी के आदेश और अमोघ आशीर्वाद को प्राप्त करके परम प्रसन्न मन से मुक्त करके वहाँ से तुरन्त ही प्रस्थान कर दिया था ॥३२॥ उस सगर ने अपने शत्रु स्वरूप परिपन्थियों से युद्ध आरम्भ कर दिया था । उस महावीर नर सगर ने एक ही धनुष से उन सबको अपने पुत्र-पौत्रादि के गणों के सहित सहार करके स्वर्गवासी बना दिया था ॥३३॥ राजा सगर के धनुष से निकले हुए शरों के प्रहारों से सन्तप्त एवं उसके शत्रु अन्यन्त भयभीत होकर रण में भारे गये थे और ग्हे-गहे भाग गये थे ॥३४॥ कुछ के बाल बिखर गये और कुछ खाँही म जाकर छिप गये थे कुछ दाँतों तले तिनके दबाकर रह गये और शेष नग्न होकर डूब मरे थे ॥३५॥

शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः ।
 सत्वर शरणं जग्म्वंशिष्ठ प्राणलोलुपाः ॥३६
 जितक्षितिर्वाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपान् ।
 चारैर्विज्ञातवान्सद्यः प्रातश्चाचार्यसन्निधिम् ॥३७
 तमागत वाहुसुतं निशम्य मुनिर्वंशिष्ठ शरणागतांस्तान् ।
 प्रातु च शिष्याभिहित च कनुं विचारयामास तदा क्षणेन ॥३८
 चकार मुण्डाञ्जवरान्यवनान्लम्बभृद्भ्रजान् ।
 अन्धाश्चशमथूलान्सर्वान्मुण्डान्वेदवहिष्कृतान् ॥३९
 वसिष्ठमुनिना तेन हृतप्रायान्निरीक्ष्य सः ।
 प्रहसन्प्राह सगर स्वगुरुं तपसो निधिम् ॥४०
 भो भो गुरो दुराचारानेतानक्षसि तान्वृथा ।
 सर्वंयाह हनिष्यामि भक्तिपतुर्दशहारकान् ॥४१
 उपेक्षेत समर्थः सन्धर्मस्य परिपन्थिनः ।
 स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न सशयः ॥४२

वह ऐसा भीषण समय उपस्थित हो गया था कि अपने प्राणी
 के परित्याग की इच्छा ने शक और यवन आदि सब राजा लोग हीर
 ही वशिष्ठ की शरण में जाकर पहुँच गये थे ॥३६॥ स्वर्गीय बाहु के
 परम बलवान् प्रतापी सगर ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ती
 सगर को दूतों के द्वारा ज्ञात हो गया था कि शत्रु समुदाय अपने गुरु-
 देव की शरण में पहुँच गए हैं । उसी समय वह वसिष्ठजी के समीप में
 आ गया था ॥३७॥ राहु के पुत्र सगर को अपने पास में आता हुआ
 गुनर वसिष्ठजी ने उन शरण में समागत होने वालों की रक्षा और
 अपने परम प्रिय शिष्य के हित की चिन्ता में एक क्षण के लिए निमग्न
 हो गए थे ॥३८॥ इसके पश्चात् उन लम्बे-लम्बे नेत्रों वाले शगर और
 यवनों के माथे गुँड़वा पर बंद नटिष्ठ शस्त्ररूपी नेत्रों से कंधे उनकी
 गुँछे भी मुँडवा दी थी ॥३९॥ राजा सगर ने वसिष्ठ मुनि के द्वारा

उनको मरा हुआ सा देखा था । उस समय मे तपोनिधि अपने गुरु षशिष्ठजी से हँसकर कहा था ॥४०॥ सगर ने अपने भाषण में कहा— हे गुरुदेव ! आप इन दुष्ट, दुराचरण करने वालों की रक्षा व्यर्थ ही करना चाहते हैं । ये वे ही महा दुष्ट दापी हैं जिन्होंने मेरे पिताजी का देश और वैभवपूर्ण राज्य छीन लिया था । मेरी तो यही इच्छा है कि इन सभी को मार ही डालना चाहिए ॥४१॥ इस धर्म के नाशक लुटेरों की शक्ति होंत हुये भी रक्षा का करना और अपेक्षा करके इनको जीवित बने रहने देना मविष्य में सर्वनाश का हेतु हो सकता है ॥४२

वाघन्ते प्रथम भत्त्वा दुर्जना सकल जगत् ।
 त एव यजहीताश्चेद्भजन्तेऽयन्तसाधुताम् ॥४३
 अहो मायाकृत कर्म खला कश्मलचेतस ।
 तावत्कुर्वन्ति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबल बलम् ॥४४
 दासभाव च शत्रूणा वारस्त्रीणा च सौहृदम् ।
 साधुभाव च सर्पाणा श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ॥४५
 प्रहास कुर्वन्ते नित्य यान्दन्तान्दर्शयन्खला ।
 तानेव दर्शयन्त्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ॥४६
 पिशुना जिह्वया पूर्वं परुष प्रवदन्ति च ।
 अतीव करण वाक्य वदन्त्येव तथावला ॥४७
 श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविद ।
 साधुत्व समभाव च खलान नैव विश्वसेत् ॥४८
 दुर्जन प्रणतिं यान्त मित्र कंतवशीलिनम् ।
 दुष्टा भार्या च विश्वस्तो मृत एव न सशय ॥४९

मदमत्त य दुष्ट लोग पहिले समस्त जगत् के लोगों को भरसक प्रपीडित किया करते हैं और जब इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है तो ये साधुता दिखलाया करते हैं ॥४३॥ ये महापापी दुष्ट चित्तावृत्ति वाले लोग जबतक अपना दल प्रबल नहीं होता है तभी तक माया रचवर

बड़ी साधुता एवं सज्जनता का प्रदर्शन किया करते हैं और अच्छे कर्म दिखलाते हैं जैसे ही इनमें थोड़ी सी भी सबलता प्राप्त हुई कि ये शत्रु बन जाया करते हैं ॥१४१॥ जो मनुष्य अपना वास्तविक कल्याण की कामना रखता है उसे भूलकर भी कभी शत्रुओं के दास भाव का, वेश्याओं की मित्रता का और विपद्ग्रस्त सपों की साधुवृत्ति का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥१४५॥ दुष्ट लोग अपनी शक्ति की सम्पन्नता की दशा में जिन दातों को हँसकर दिखाया करते हैं वे ही शक्ति के क्षीण हो जाने पर उन्हीं दातों को दिखाकर हीनता का भाव प्रकट किया करते हैं ॥१४६॥ चुगली करने वाले लोग जिन अपनी जिह्वा से परम बठोर वचन बोला करते हैं वे क्षीण व निर्बल हो जाते हैं तो उसी जीभ से अत्यन्त बरुणा से परिपूर्ण वचन कहा करते हैं ॥१४७॥ नीति शास्त्र का सिद्धान्त है कि चतुर मनुष्य यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे दुष्ट पुरुषों के साधु भाव और समता के भाव का कभी विचार नहीं करना चाहिये ॥१४८॥ नम्रता दिखाने वाले दुर्जन पुरुष का, जुबारी मित्र का और दुष्ट भावों का विश्वास करने वाला व्यक्ति मरे हुए के ही समान हुआ करता है ॥१४९॥

मा रक्ष तस्मादेतान्यं गोरूपव्याघ्रवमिण ।
 हृत्वेतानखिलान् दुष्टास्त्वत्प्रसादान्मही भजे ॥१५०॥
 वशिष्ठस्तद्वच श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिरात्तम ।
 वराभ्या सगरस्पाङ्ग स्पृशान्निदमुवाच ह ॥१५१॥
 साधु साधु महाभाग सत्य वदसि सुव्रत ।
 तथापि मद्रुच श्रुत्वा परा शान्तिं लभिष्यसि ॥१५२॥
 मयिने निहिता पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधित ।
 हताना हनने वीरिन वा समुत्पद्यते वद ॥१५३॥
 भूमौश जन्तव सर्वे धर्मपाशेन यन्निशता ।
 तथापि पापनिहता विमर्यं हसि तान्पुनः ॥१५४॥

देहस्तु पापजनितः पूर्वमेवैनसाः हतः ।

आत्मा ह्यभेद्यः पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेव निश्चयः ॥५५

स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जन्तवः ।

कर्माणि देवमूलानि देवाधीनमिदं जगत् ॥५६

अतएव मेरी तो यही प्रार्थना है कि इन व्याघ्र के समान कर्म करने वाले गोरूपधारी दुष्टों का विश्वास न करे । मैं तो इन समस्त दुष्टों का समूल संहार करके हूँ इस भूमि पर राज्य करने का इच्छुक हूँ ॥५०॥ उस समय में मुनि शिरोमणि वसिष्ठजी ने सगर के नोतिपूर्ण वचनों का ध्वन करके परम प्रीति के साथ उस सगर के शरीर पर अपना हाथ फिराते हुये उससे कहा—वसिष्ठजी ने कहा था—हे महाभाग ! बहुत ही ठीक है और साधु है (आप जो भी कुछ कह चुके हैं वह अक्षरशः परम सत्य है तथापि मेरे वचन मुन कर आपका शान्ति प्राप्त होगी ॥५१॥५२॥ जैमे नुमने प्रतिज्ञा की थी उसका विरोध करने वाली मैंने अपनी शरण इनको दी है । ये तो शरण माँगकर स्वय ही मर चुके हैं फिर मह बतलाओ कि इन मृतों के मारने से आपको क्या कीर्ति प्राप्त होगी ? ॥५२॥ हे भूमेश्वर ! इस जगत् में समस्त प्राणी अपने कर्मों के पाश में जकड़े हुये रहा करते हैं । ये अपने पापकर्मों से स्वय ही मरे हुये रहा करते हैं । जो अपने पापकर्मों से स्वय ही मरे हुये हैं फिर आप उनको क्यों मारने की इच्छा करते हैं ? इन मरका पापों से समुत्पन्न देह पहिने ही पाप से ही नाश वाला होरहा है । रही आत्मा के सम्बन्ध की बात तो तो सदा ही अमोघ है क्योंकि वह पूर्ण और नित्य है । ऐसा सब शास्त्रों का सत्य सिद्धान्त है ॥५५॥ यह प्राणी अपने कर्मों के फलों को भोगने का हेतु मात्र होता है जो कर्म प्रारब्ध के अधीन होता है । इस प्रकार में यह जगत् प्रारब्ध के ही अधीन रहा करता है ॥५६

यस्माद्देव हि साधूना रक्षिता दुष्ट शिक्षिता ।

ततो नरैस्वतन्त्रै किं कार्यं साधयते वद ॥५७
 शरीर पापसंभूत पापैर्नैव प्रवर्तते ।
 पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यत ॥५८
 आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधैः ।
 तस्मादिदं वपुर्भूय पापमूलं न सशय ॥५९
 पापमूलवपुर्हन्तुं का कीर्तिस्तव वाहुज ।
 भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिसास्ततः सुत ॥६०
 इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपत ।
 स्पृशन्करेण नगरं नन्दनं मनुयस्तदा ॥६१
 अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः ।
 राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतं ॥६२
 भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा ।
 काश्यपस्य विदभंस्य तनये मुनिसत्तम ॥६३

अतएव यही सिद्धान्त मुट्ट है कि देव ही साधु पुरुषों की सुरक्षा करने वाला तथा दुष्टों को दण्ड देने वाला होता है। इसलिये यह वताओ कि जो पराधीन है उनसे क्या काम सिद्ध हो सकता है ॥५७॥ यह शरीर पापों से उत्पन्न हुआ है और पापों से ही बला करता है। इस शरीर का पाप मूल जान कर भी तुम क्यों मारने के लिए प्रस्तुत हुए हो ॥५८॥ आत्मा तो परम शुद्ध होता है किन्तु यह आत्मा देह में स्थित रहा करता है इसीलिए विद्वान् लोग इसको देही कहा करते हैं अतएव हे भूमिपाल ! यह शरीर निश्चय ही पाप मूल होता है। ऐसे इस पाप मूल शरीर का विनाश करने से आपको क्या लाभ प्राप्त होगा? इसलिये हे पुत्र ! ऐसा विचार कर अब तुम इनको मत मारो ॥५९—६०॥ अपन गुरुधरज के इन वचनों का ध्यान करके सगर का वह बड़ा हुआ क्रोध ज्ञान्त हो गया था। उस समय में समस्त मुनिवृन्द ने आनन्द प्रद सगर के शरीर पर प्रेमपूर्ण हाथ फिरा कर स्पर्श किया था ॥६१॥ इसके आंतर अथर्व वेद के निधि वसिष्ठजी ने तथा अन्य

व्रतघारी मुनिगण ने राजा सगर का राज्याभियन्त्र किया था ॥६२॥
हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर विदम्भ देश के राजा काश्यप की केशिनी और
सुमति नामा वाली दो राजकुमारियों के साथ सगर राजा का विवाह
हुआ था ॥६३॥

राज्ये प्रतिष्ठित दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधि ।
वनादागत्य राजान सभाप्य स्वाश्रम ययौ ॥६४॥
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याया प्रार्थितो मुनि ।
वर ददावपत्याथमीर्वो भागवमन्त्रवित् ॥६५॥
क्षण ध्यानस्थिता भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनिश्चर ।
केशिनी सुमति चैव इदमाह प्रहृषयन् ॥६६॥
एका वशधर चैकमन्या पड्युतानि च ।
अपत्यार्थं महाभाग वृणुता च यथेप्सितम् ॥६७॥
अथ श्रुत्वा वचस्तस्य मुनरौर्वस्य नारद ।
केशिन्येक सुत वद्रे वशसन्तानकारणम् ॥६८॥
तथा पष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्सुता ।
नाम्नासमजा केशियास्तनयो मुनिसत्तम ॥६९॥
असमजास्तु कमाणि चकारोन्मत्तचेष्टिन ।
त दृष्टवासागरा सर्वे ह्यासन्दुर्बृत्तचेतस ॥७०॥

तपोनिधि महामुनि थीव राज्यासन पर प्रतिष्ठित सगर को
देउने के लिये वहाँ पर उपास्थित हुए थे और राजा सगर से वार्तानाप
करके वापिस वन को लौटकर चल गये थे ॥६४॥ एक समय में राजा
सगर की दोनों कन्या ने भृगु ऋषि के पाता थीव मुनि से सन्तान
होने का लिए प्रार्थना की थी । उस समय ओर्ष महामुनि ने उनको वर-
दान दिया था ॥६५॥ त्रिकाल की वार्तें जानने वाल मुनि ने क्षण भर
के लिये ध्यान करके केशिनी और सुमति को प्रसन्नाता प्रदान करते हुए
यह कहा था कि आप दोनों महान् भाग्या वाली हैं । तुम में से एक ली

केशघर पुत्र को प्राप्त कर सकती है और दूसरी रानी साठ सहस्र पुत्रों की प्राप्ति कर सकती है । अतएव तुम दोगो जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार वरदान माँग लो ॥६७॥ हे नारद ! ओर्वं मुनि के इन वचनों का ध्वज्य करके केशिनी नाम वाली रानी ने एक ही वंश चलाने वाले पुत्र को प्राप्त करने का वरदान माँगा था और दूसरी सुमति के साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे । हे मुनि सत्तम ! केशिनी के असमज्जा नाम वाला एक ही पुत्र हुआ था ॥६८-६९॥ असमज्जा एक उन्मत्त के समान चेष्टा वाला होकर जैसे ही कर्मों का करने वाला था । उसको देखकर सभी सगर पुत्रों का चित्त बिगड़ने लगा था ॥७०

तद्दालभाव सदुष्ट ज्ञात्वा वाहुसुतो नृप ।
 चिन्तयामास विधिवत्पुत्रकर्म विगर्हितम् ॥७१
 अहो कष्टनरा लोके दुर्जनाना हि सगतिः ।
 कारुकैस्ताडयते वह्निरयः सयोगमात्रतः ॥७२
 अशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमजसः ।
 शास्त्रज्ञो गुणवान्धर्मो पितामहहिते रतः ॥७३
 दुर्वृत्ता सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः ।
 अनुष्ठानवता नित्यमन्तराया भवन्ति ते ॥७४
 हुतानी यानि यज्ञेषु हवीषि विधिवद् द्विजैः ।
 कुम्भुजिरे हि सर्वाणि निराकृत्य दिवोकस ॥७५
 स्वर्गादाहृत्य सतत रम्भाद्या देवयोपितः ।
 भजन्ति सागरास्ता वै कचम्रहवलात्कृताः ॥७६
 पारिजातादिवृक्षाणा पुष्पाण्याहृत्य ते खलाः ।
 भूपयन्ति स्वदेहानि मद्यपानपरायणाः ॥७७

राजा सगर ने उसके बालकपन के दूषित कर्मों को देख कर पुत्र के इन परम निन्दित कर्मों पर गहन विचार किया था ॥७१॥ दुष्टों की सङ्गति में इस मत्तार में कष्ट ही मिला करता है । लोहे के संयोग

होन से लुहार लोग अग्नि को भी पीटने लगा करते हैं ॥७२॥ उस असमज्जा का अशुमान नाम वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था । यह शास्त्रों का ज्ञाता एवं परम गुणी था, बहुत अधिक धर्मात्मा था और सदा ही अपने पितामह सगर के हितप्रद कार्यों में सलग्न रहा करता था ॥७३॥ अन्य सभी सगर के पुत्र दुराचारी थे तथा ससार में कुछ न कुछ उपद्रव मचात रहा करते थे और जो कोई अनुष्ठान किया करते थे उस के कम में विघ्न डाला करते थे ॥७४॥ द्विजगण यज्ञों में सविधि जो हवि का होम किया करते थे वे सागर के देवों को हटाकर उस देव योग्य हवि को स्वयं ही खा जाया करते थे ॥७५॥ स्वर्ग लोक से रम्भा आदि दवाङ्गनाओं को लाकर उनकी चाटी पकड़ कर उनका साथ बलात्कार किया करते थे ॥७६॥ ये ऐसे दुष्ट थे कि पारिजात आदि देव वृक्षों के पुष्प ग्रहण कर अपने शरीरों का सज्जित किया करते थे और मदिरा का पान किया करते थे ॥७७॥

साधुवृत्ती समाजहनु सदाचाराननाशयन् ।
 मित्रैश्च योद्धुमारब्धा बलिनोऽत्यन्तपापिन ॥७८
 एतद् दृष्ट्वातिदु खार्ता देवा इन्द्रपुरोगमा ।
 विचार परम चक्रूरेतेषा नाशहतवे ॥७९
 निश्चित्य विबुधा सर्वे पातालान्तरगोचरम् ।
 कपिल देवदेवेश ययु प्रच्छन्नरूपिण ॥८०
 ध्यायन्तमात्मनात्मान परानर्दकविग्रहम् ।
 प्रणम्य दग्धवद् भूमौ तुष्टुनुस्त्रिदशास्तत ॥८१
 नमस्ते योगिने तुभ्य साख्ययोगस्ताय च ।
 नररूपप्रतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नम ॥८२
 नम परेशभक्ताय सावानुग्रहहेतवे ।
 ससारारण्यदावाग्ने धमपालनसत्तव ॥८३
 महते वीतरागाय तुभ्य भूया नमो नम ।

त हति दैवमेवाणु नाग कार्या विचारणा ॥८७
 अल्परहोभिरेवैते नाशमेप्यन्ति सागरा ।
 इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ।
 प्रणम्य त यथान्याय गता नाक दिवोकम ॥८८
 अत्रान्तरे तु सगरो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभि ।
 भारेभे ह्यमेघाख्य यज्ञ कर्त्त मनुत्तमम् ॥८९
 तद्यज्ञे योजित सत्तिमपहत्य सुरेश्वर ।
 पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति ॥९०
 गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्व तु सागरा ।
 अन्वेष्टु वध्रमुर्लोकान् भूरादीश्च सुविस्मिता ॥९१

देवगण की इस विनती को मुनिकर श्री कपिल मुनि ने कहा—
 हे श्रेष्ठ देवताओ । जो अपराध रहित मनुष्यो को पीडा पहुँचाने की
 इच्छा किया करता है उसको सभी लोको में पापो का बुफल भोगन के
 लिये उन्मुख समझ लेना चाहिए ॥८६॥ जो अपने बर्माँ से ही नहीं
 मन और वषनो के द्वारा भी सर्वदा दूनरे प्राणियो को प्रपीडित किया
 करता है उसको दैव बहुत ही शीघ्र समाप्त कर दिया करता है ।
 इसमें विचारने की कुछ भी बात नहीं है ॥२७॥ इसलिये इस
 प्राकृतिक नियमानुसार के महान् उत्पीडक राजा सगर के पुत्र शीघ्र
 ही विनष्ट होजायेंगे । समस्त देवगण ने श्री कपिल मुनि के ऐसे
 सात्त्विकानन्द वचनों का श्रवण करके उनके चरणों में गिरकर दण्डवत
 प्रणाम किया और फिर वे वापिस अपने स्वर्ग लोको चले गये थे
 ॥८८॥ इसी अनन्तर में राजा सगर ने श्री वसिष्ठजी आदि महा
 महर्षियो की महायना प्राप्त कर परम श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ कर यज्ञ
 करने का आरम्भ कर दिया था ॥८९॥ देवराज इन्द्र ने जो उग
 अश्वमेध यज्ञ का अश्व छाडा गया था उसका अपहण करके गानान
 लोको में पहुँचा दिया था जहाँ पर श्री कपिल मुनि तपश्चर्मा कर रह

थे । वहाँ उसको बाँध दिया था ॥६६॥ इन्द्रदेव ने अपने शरीर को छिपा कर ही इस अश्व का अपहरण किया था । उस समय में राजा सगर के ये साठ हजार पुत्र बहुत ही विस्मित हो गए थे और भू आदि समस्त लोको ने उस अश्व की खोज करने लगे थे ॥६१

अदृष्टसप्तपस्ते च पाताल गन्तुमुद्यता ।

चरन्मुर्महीतल सर्वमेकैको योजन पृथक् ॥६२

मृत्तिका खनिता ते चोदधितोरे समाकिरन् ।

तद्द्वारेण गता सर्वे पाताल सगरात्मजा ॥६३

विचिन्वन्ति ह्य तत्र मदोन्मत्ता विचेतस ॥६४

तथापश्यन्महात्मान कोटिमूर्यसमप्रभम् ।

कपिल ध्याननिरत वाजिन च तदन्निके ॥६५

तत सर्वे तु सरब्धा मुनि दृष्ट्वाऽतिवेगत ।

हन्तुमुद्युक्तमनसो विद्रवन्त समासदन् ॥६६

हन्यता हन्यतामेव वध्यता वध्यतामयम् ।

गृह्यता गृह्यतामाशु इत्युचुस्ते परस्परम् ॥६७

हृताश्व साधुभावेन वकवद्वचानतत्परम् ।

सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडम्बर महन् ॥६८

अश्वमेध यज्ञ विना इस अश्व की प्राप्ति के अधूरा ही रह गया था । जब अन्यत्र कहीं पर भी वह अश्व नहीं मिला तो वे सब पाताल लोक में गमन करने की उद्यत हुए और एक-एक योजन का एक दूत बना कर इस पृथ्वी के खनन करने का कार्य आरम्भ कर दिया था और खूदी हुई मिट्टी को समुद्र के किनारे पर डालकर उस खूदी हुई मृत्तिका के द्वार से इन्होंने पाताल लोक में प्रवेश प्राप्त कर लिया था ॥६२॥६३ व सगर के पुत्र बहुत ही उदास होकर वहाँ पर भी उस अश्व की खोज करने में प्रवृत्त होगये थे । इन मदोन्मत्त सगर पुत्रों ने वहाँ पर खरोड़ी मूर्यों के समान कान्ति वाले महात्मा कपिल

मुनि को ध्यान में निमग्न इन्होंने देखा था और यह भी देखा था कि वह घोडा उन्हीं के समीप बँधा हुआ है ॥६४॥६५॥ मुनि को देखकर इनको बहुत अधिक क्रोध हुआ था और वे सब उनको मार देने का मनमें विचार कर अत्यन्त बग से उनकी ओर छपटने लगे थे ॥६६॥ उस समय में वे परस्पर में ऐसे वचन कह रहे थे—अरे । इस दुष्ट को मार डालो—मार डालो और शीघ्र ही इसे पकड़ लो ॥ ६७ ॥ यह यज्ञ के अश्व को चुराकर यहाँ ले जाया है और अब कैसा बगुले के ही समान ध्यान लगा कर बहुत बड़ा साधु बनकर बँठा हुआ है । ऐसे दुष्ट लाग इस मसार में कैसा आडम्बर दिखाया करते हैं ॥६८

इत्युच्चरन्तो जहमु कपिल ते मुनीश्वरम् ।

समस्तैर्द्रियमदोह नियम्यात्मानमात्मनि ॥६६

आस्थित कपिलस्तेषा तत्कर्म ज्ञात वान्न हि ॥१००

आमन्नमृत्यवस्ते तु विनष्टमतयो मुनिम् ।

पद्मि मताडयामासुर्बाहू च जहू परे ॥१०१

तनस्त्यक्तसमाधिस्तु स मुनिर्विस्मितस्तदा ।

उवाच भावगम्भीर लोकोपद्रवकारिण ॥१०२

ऐश्वर्यमदमत्ताना क्षुधिताना च कामिनाम् ।

अह्वारविमूढाना दिवेको नैव जायते ॥१०३

निधेराधारमात्रेण महो ज्वलति सर्वदा ।

तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलतीति किमद्भुतम् ॥१०४

किमत्र चित्रं सुजनं बाधन्ते यदि दुर्जना ।

महीरहाश्चानुतटे पातयन्ति नदीरया ॥१०५

महा मुनीश्वर कपिल देव के दिषय में इस तरह से कहते दृश्य से होंगे यह कि इधर कपिल मुनि ने अपनी समस्त दक्षिणों को वश में कर परमात्मा के ध्यान में अपना मन लगा कर रक्खा था । इसी-लिय उन्हा मगर के पुरो के इस वर्य का कुछ भी पना नही लगा

था ॥६६॥१००॥ किन्तु उन लोगों की मौतें निकट आ पहुँची थी । अतएव उनकी बुद्धि एकदम भ्रष्ट हो गई थी । इसीलिये वे तप में समवस्थित मुनि में ठोकरें मारने लगे थे और कुछ ने उनकी भुजायें पकड़ ली थी ॥१०१॥ उस समय में इस अत्यधिक उत्पात होने के कारण उनकी समाधि टुल गयी थी । उस समय में परम विस्मित होकर उन समस्त सप्तार में महान् उपद्रव मचा देने वाली से बड़े ही गम्भीर भाव से पूर्ण यह वचन कहा था—ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त, मूर्ख और कामियों को तथा अहङ्कार के वश में पड़े हुये महा मूढों को विवेक नहीं रहा करता ॥१०२॥१०३॥ सम्पूर्ण निधि का आधार होने से यह पृथ्वी सदा चलती रहा करती है उसी निधि को उपभोग करने वाले मनुष्य भी जलने लगें तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है १०४ दुष्ट लोग सज्जनों को बर्ष देते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि दुष्टों का तो स्वभाव ही पीडा पहुँचाना है जैसे नदी का वेग तटस्थ वृक्षों को गिरा ही दिया करता है ॥१०५

यत्र श्रीयोर्वन वापि शरदा वापि तिष्ठति ।

तत्र श्रीवृद्धता नित्य मूर्खत्व चापि जायते ॥१०६

अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातु केन शक्यते ।

नामसाम्याद हो चित्र घत्तू गोऽपि मदप्रदः ॥१०७

भवेद्यदि खलस्य श्रीः संव लोऽविनाशिनी ।

यथा सखान्ने पवनः पन्नगस्य यथा विपम् ॥१०८

अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ।

यदि पश्यत्यात्महितं स पश्यति न सशयः ॥१०९

इत्युक्त्वा कपिलः क्रुद्धो नेत्राभ्यां समृजेऽनलम् ।

स ब्रह्मि सागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात् ॥११०

यन्नेत्रजानलं दृष्ट्वा पातालतलवासिनः ।

अकालप्रलयं मत्वा चक्रुः शोकलालसा ॥१११

तदग्नि तापिता सर्वे दन्दशूकाश्च राक्षसा ।

सागर विविशु. शीघ्रं सता कोपो हि दु सह ॥११२

जहाँ लक्ष्मी, यौवन और सरस्वती वर्तमान में रहा करती है वहाँ पर इनके साथ ही साथ अलक्ष्मी-वृद्धता और मूर्खता भी अपनी जड़े जमा लिया करती है ॥१०६॥ कनक (सुवर्ण) का माहात्म्य किसी से भी कहा नहीं जा सकता है । समान नाम होने के कारण कनक (घतूरा) भी महान मदकारी होता है (कनक सुवर्ण और घतूरा इन दोनों का नाम होता है) ॥१०७ यदि किसी कुट्ट पुरुष के पास पूर्व पुण्यों के प्रताप से सम्पत्ति हो जाया करती है तो वह उससे ससार के समस्त प्राणियों को कष्ट दिया करता है जिस तरह अग्नि का मित्र वायु वहाँ जाता है तो वह अत्यन्त प्रचण्ड होकर सर्वनाश ही कर दिया करता है और सर्प का विष बढ जाता है तो वह जीवों का दशन करके मार दिया करता है ॥१०८॥ अहो ! घन का मद कितना प्रबल होता है कि आँखों से देखता हुआ भी अन्धा हो जाया करता है और उसे कुछ भी सत्-असत् दिखनाई नहीं पडता है । यदि अपने-हित की बात देख लेवे तो मुख प्राप्त करे किन्तु उसे तो हित-अहित वा घन के मद में ज्ञान ही नहीं रहा करता है ॥१०९॥ इस प्रकार से कह कर ऋषिल मुनि ने क्रुद्ध होकर अपने नेत्रों से अग्नि का प्रक्षेप किया था और उससे एक ही क्षण में वे सागर के पुत्र खाक की ढेरियाँ बन गये थे ॥११०॥ उस समय में उनके नेत्रों की उस अग्नि को देख कर सब पाताल लोक के निवासी महाप्रलय की बालाग्नि समझकर शोक से चीखने लग गये थे ॥१११॥ उस महान् प्रदीप्त अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर सर्प और राक्षस समुद्र में कूट गये थे । क्योंकि सज्जनों का कोप परम दुःसह हुआ करता है ॥११२

अथ तस्य महीपग्य समागम्याध्वर तदा ।

देवदूत उवाचेद सर्वं वृत्ता हि यथाते ॥११३

एतत्समाकर्ण्य वच सगर सर्ववित्प्रभु ।
 दैवेन शिक्षता दुष्टा इत्युवावातिर्हुषित ॥११४
 माता वा जमको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा ।
 अधर्मं कुरुते यस्तु स एव शिपुरिष्यते ॥११५
 यस्त्वधर्मेषु निरत सर्वलोकविरोधकृत् ।
 न रिपु परम विद्याच्छास्त्राणामेव निर्णत ॥११६
 सगर पुत्रनाशोऽपि व शुशोच मुनीश्वर ।
 दुर्वृत्तनिधन यस्मात्सतागुस्ताहकरणम् ॥११७
 यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामिति स्मृते ।
 पौत्र तमशुभन्त हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभु ॥११८
 असमञ्जस्सुत त तु सुधिय वाग्विदा वरम् ।
 युयोज सारविद् भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ॥११९

इसके अनन्तर एक दूत ने वहाँ उपस्थित होकर समस्त समा-
 चार राजा सगर को सुना दिया था जहाँ पर वे यज्ञ कर रहे थे
 ॥११३॥ इस वृत्तान्त का श्रवण कर सर्व ज्ञानी राजा सगर ने यही
 कहा था कि दैव ने ही दुष्टों को दण्ड दिया है—यह कह कर वह
 प्रसन्न हुआ था ॥११४॥ राजा सगर ने कहा कि चाहे माता हो
 या पिता हो, भ्राता हो या पुत्र हो, जो भी कोई हो जो अधर्म और
 अन्याय किया करता है उसको शत्रु ही समझ लेना चाहिये ॥११५॥
 जो अधर्म परायण हो और सदा सब लोगों का विरोध ही किया
 करता हो उसको अपना परम घोर शत्रु ही समझना चाहिये—यही
 समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है ॥११६॥ हे मुनीश्वर । इसी शास्त्रों के
 सिद्धान्त के अनुसार राजा सगर ने अपने पुत्रों का विनाश होने पर भी
 किञ्चिन्मात्र भी शोक नहीं किया था क्योंकि दुराचरण करने वालों का
 विनाश मत्पुरुषों के हृदय का ही बड़ाया करता है ॥ ११७ ॥ इसके
 पश्चात् राजा सगर ने पुत्रहीन को यज्ञ करने का कोई अधिकार नहीं

होता है । शास्त्र के सिद्धान्त का स्मरण करके अपने पौत्र अशुमान को ही पुत्र मान लिया था ॥११८॥ फिर उस परम बुद्धिमान एव वक्ताओं में परम श्रेष्ठ असमञ्जस के पुत्र अशुमान को ही सारवेत्ता समर ने अश्व के लाने के कार्य में नियुक्त किया था ॥११९॥

स गतस्तद्विलद्वारे दृष्ट्वा त मुनिपुङ्गवम् ।

कपिल तेजसा राशि साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥१२०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रत स्थितः ।

शान्तमनस देवदेव सनातनम् ॥१२१॥

दो शील्य यत्कृत ब्रह्मन्मत्पितृव्यै क्षमस्व तत् ।

परोकाग्निरता क्षमासारा हि साधव ॥१२२॥

दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वन्ति साधव ।

नहि सहस्ते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन ॥१२३॥

वाध्यमानोऽपि सुजन सर्वपा सुखकृद्भवेत् ।

ददाति परमा तुष्टिं भक्ष्यमाणोऽमरं शशी ॥१२४॥

दारित्तश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चन्दन ।

सौरभ कुरुते सर्वं तथैव सुजनो जन ॥१२५॥

क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वरा ।

सजात शासितु लोकास्त्वा विदु पुरुषोत्तम ॥१२६॥

फिर वह अशुमान उसी पूर्व निमित्त बिल के द्वार से गया । पर पहुँच गया था जहाँ पर परम तेजस्वी मुनिपुङ्गव श्री कपिल देव के दर्शन करके उनके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया था ॥१२०॥ फिर वह अशुमान नम्रता के साथ दोनों शाय जोड़ कर उनके समक्ष में गिर पड़ा था और परम शान्त हृदय बाने सनातन श्री कपिल मुनि से वह निवेदन करने लगा था ॥१२१॥ अशुमान ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे चाचाओं ने जो दुःशीलता का व्यवहार किया था, उस अपराध को आप क्षमा कर दीजिए क्योंकि

साधु पुरुष सर्वदा परोपकार करने में परायण ही रहा करते हैं और क्षमा भाव ही उनका सार हुआ करता है ॥१२२॥ साधु पुरुष दुर्जंग प्राणियों पर भी उनके कल्याण करने के लिए ही दया किया करते हैं । चन्द्रमा पाण्डाल के घर से भी अपनी चाँदनी का प्रकाश हटाता नहीं है और सब पर उतगनी चाँदनी का प्रकाश समान स्वरूप से ही फैला रहा करता है ॥१२३॥ साधु पुरुषों को भले ही कोई अपनी दुष्ट वृत्ति से मोड़ा भी देवे तो भी वे सबको सदा सुख ही दिया करते हैं । देवता चन्द्र को धामे जाते हैं फिर भी वह सबको सन्तुष्ट ही रखा करता है ॥१२४॥ फाड़कर और चीरकर प्राप्त किया गया भी चन्दन अपनी सुन्दर सुगन्ध को ही सर्वत्र फैलाना करता है वैसी ही दशा साधु पुरुषों की हुआ करती है ॥१२५॥ हे पुरुषोत्तम ! आपकी क्षमा और तप के आचरणों से गुणज्ञ भूमीश्वर यह समझ लिया करते हैं कि आप मनुष्यों पर शासन करने के लिये ही समुत्पन्न हुये हैं ॥१२६॥

नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्य नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये ।

नमो ब्रह्मण्यशोलाय ब्रह्मध्यानपराय च ॥१२७॥

इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा ।

वर वरय चेत्याह प्रसानोऽस्मि तवानघ ॥१२८॥

एवमुक्ते तु मुनिना ह्य शुमान्प्रणिपत्यतम् ।

प्रापयास्मत्पितृन्तन्ब्राह्म लोकमित्यभ्यभाषत ॥१२९॥

ततस्तस्यातिसतुष्टो प्रोवाच मुनिः सादरम् ।

गङ्गामानीय पौत्रस्ते नयष्यति पितृन्दिवम् ॥१३०॥

त्वत्पौत्रेण समानीता गङ्गा पुण्यजला नदी ।

कृत्वैतान्धूतपापान्वे नयष्यति पर पदम् ॥१३१॥

प्रापयन ह्य वत्स यत स्यात्पूर्णमध्वरम् ।

पितामहान्तिक प्राप्य साश्व वृत्त न्यवेदयत् ॥१३२॥

सगरस्तेन पशुना त यज्ञ ब्राह्मणः सह ।

विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पदं हरेः ॥१३३

हे ब्रह्मन् ! हे मुनिवर ! आपको मेरा सादर प्रणाम समर्पित है । सदा ब्रह्म के ध्यान में लीन रहने वाले आपको मैं सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ ॥१२७॥ इस प्रकार से मुनि का सस्तवन करने पर कपिल मुनि ने परम प्रसन्न मुख से कहा—हे निष्पाप ! मैं तेरे ऊपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, तुझे जो भी कुछ इच्छा हो उसका वरदान मुझसे माग लें ॥१२८॥ उन महा मुनि के इस तरह से कहने पर अशुमान ने उनको फिर एक बार मन्त्रिनय प्रणाम करके निवेदन किया था—हे ब्रह्मन् ! मेरे मृत पितरों को आप ब्रह्मलाक भेज देने की कृपा कीजिये ॥१२९॥ उस समय में उन पर परम प्रसन्न होकर महा मुनि कपिल-देव ने आदरपूर्वक कहा—तेरा पीत्र स्वर्गलोक से गङ्गाजी को यहाँ लाकर इन सबका उद्धार कर स्वर्गलोक में पहुँचावेगा ॥१३०॥ तेरे पीत्र के द्वारा लार्ई गई परम पवित्र जल वाली गङ्गा इनको निष्पाप करके परम पद को प्राप्त करा देगी ॥१३१॥ हे ब्रह्मन् ! अब तू इस यज्ञ के अश्व को लेजा जिससे तेरे पितामह का यज्ञ पूर्ण हो जावे । इसके पश्चात् अश्व को लेकर अशुमान ने वहाँ आकर अपने पितामह राजा सगर से समस्त वृत्तान्त सुना दिया था ॥१३२॥ फिर राजा सगर ने ब्राह्मणों के साथ बैठकर अपने यज्ञअश्वमेध का यजन कर उसे पूर्ण किया था । तपश्चर्या से भगवान् विष्णु की समाराधना करके श्री हरि के परमपद को प्राप्त हो गया था ॥१३३॥

जज्ञे ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विश्रुत ।

तस्माद्भगोरथो जातो यो गङ्गामानयद्दिव् ॥१३४

भगोरथस्य तपसा सुष्ठो ब्रह्मा ददौ मुने ।

गङ्गा भगीरथायाथ चितयामाम धारणे ॥१३५

ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदी भुवम् ।

आनीय तज्जलैः सृष्ट्या पूतान्निन्दे दिव पितॄन् ॥१३६

भगीरथान्वये जात सुदासो नाम भूपतिः ।
 तस्य पुत्रा मित्रसह सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१३७
 वसिष्ठशापात्प्राप्त सौदासो राक्षसी तनुम् ।
 गङ्गाविन्दुनिषेकेण पुनर्मुक्तो नृपो ऽभवत् ॥१३८

फिर उस अश्रुमान का दिलीप नाम वाला परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ था । उस दिलीप के भगीरथ नामक पुत्र हुआ था और उसने ही स्वर्ग लोक से यहाँ पर गङ्गाजी को लाकर विराजमान किया था ॥१३४॥ हे मुने । भगीरथ ने अति उग्र तप किया था जिससे परम प्रसन्न एव सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने भगीरथ को गङ्गाजी दे दी थी । उस समय भगीरथ ने अपने मनमें विचार किया था कि इन गङ्गाजी को यहाँ से जाने पर धारण कौन करेगा ॥१३५॥ गङ्गादेवी के प्रपात करने के लिये फिर राजा भगीरथ ने परम दयालु भगवान् शङ्कर की आराधना की थी और उनके ही द्वारा स्वर्ग से गङ्गाजी को इस भूमण्डल में लेकर भगीरथ नृपति स्वयं पवित्र हुये और पितरो को भी जल का स्पर्श करा कर स्वर्ग लोक में पहुँचा दिया था ॥१३७॥ भगीरथ राजा के वश में एक सुदास नाम वाला राजा हुआ था । उसका पुत्र समस्त लोको में मित्र सह नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि के शाप से उस सौदास को राक्षस का शरीर प्राप्त हो गया था वह राजा भी गङ्गाजल के छोटे पडने ही से राक्षसी भाव से मुक्त होकर मनुष्य होगया था ॥१३८

॥ सौदास चरित्र ॥

शप्त कथ वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तम ।
 गङ्गाविन्दुभिषेकेण पुन शुद्धोऽभवत्कथम् ॥११
 सबमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि ।

श्रुण्वता वदता चैव गङ्गायान शुभावहम् ॥२
 सौदास. सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचि ।
 बुभुजे पृथिवी सर्वा पितृवद्रज्जयन्प्रजा ॥३
 सगेरण यथा पूर्वं महीय सप्तसागरा ।
 रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ॥४
 पुत्रपौत्रसमायुक्त सर्वेश्वर्यसमन्वित ।
 त्रिशदष्टसहस्राणि बुभुजे पृथ्वी युवा ॥५
 सौदासस्त्वेकदा राजा भृगयाभिरतिर्वनम् ।
 विवेश सयल सम्यक् शोधित ह्याप्तमन्त्रिभि ॥६
 निपादै सहितस्तत्र विनिघ्नन्मृगसञ्चयम् ।
 आससाद नदी रेवा धर्मज्ञ स पिपासित ॥७

देवापि श्री नारदजी न पूछा था कि वसिष्ठजी ने राजाको मे
 परम श्रेष्ठ सौदास को क्यों शाप दिया था और वह गङ्गाजलसे कैसे शुद्ध
 हुआ ? ॥१॥ हे घात ! आप इन सब बातों का वर्णन मेरे सामने
 विस्तृत रूप से करने की कृपा कीजिये क्योंकि यह गङ्गा देवी अपनी
 पया के वक्ता और श्रोता दोनों को ही पवित्र कर दिया करती है
 ॥२॥ श्री जनकजी ने नारदजी के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा था
 कि सुदास का पुत्र मित्रमह सभी धर्मों को जानने वाला था । सभी
 वस्तुओं और गुणों का ज्ञाता तथा परम पवित्र था । वह पिता के ही
 समान अपनी प्रजा का मनोरंजन करते हुये पृथ्वी के सुखों का भोग
 किया करता था ॥३॥ पहिले राजा सागर ने जिस तरह मे सातों
 सागर वाली पृथ्वी का पानन किया था उसी प्रकार मे राजा मित्रमह
 भी धर्म व विभी भी भाग मे विरोध न करता हुआ इन भूमण्डल की
 रक्षा करता था ॥४॥उम राजा ने युवावस्था ही मे पुत्र-पौत्र और सभी
 तरह के ऐश्वर्य से परिपूर्ण रहकर अद्वितीय हजार वर्ष तक इन पृथ्वी
 का सुख भोगा था ॥५॥ एक समय मे राजा मित्रमह मन्त्रियों के

द्वारा सुरक्षित वन में शिकार करने के शौक से अपनी सेना के साथ प्रविष्ट हुआ था ॥६॥ वहाँ पर उसी के साथ में निपाद लोग भी अपनी टोली बना कर मृगों की टोलियों की भाँर रहे थे। वह धर्मज्ञ राजा प्यास लगने पर रेवा नदी के तट पर पहुँच गया था ॥७

सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने ।

भुक्त्वा च मन्त्रिभिः साद्धं ता निशा तत्र चावसत् ॥८

ततः प्रातः समुत्थाय श्रुत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम् ।

वभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदातीरजे वने ॥९

वनाद्वनान्तरं गच्छन्नेक एव महीपतिः ।

आकर्णकृष्टवाणः सत् कृष्णसारं समन्वगात् ॥१०

दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम् ।

व्याघ्रद्वयं गुहासंस्थमपश्यत्सुरते रतम् ॥११

मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः समुखं ययौ ।

धनुःसहितवाजेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ॥१२

ता व्याघ्री पातयामास तीक्ष्णाग्रनतपर्वणा ।

पतमाना तु सा व्याघ्री घट्शिघ्राद्योजनायता ॥१३

तडित्वद्वोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत् ।

पतिता स्वप्रिया वीक्ष्य द्विपन्स व्याघ्रराक्षस ॥१४

प्रतिक्रिया करिष्यामीत्युक्त्वा चातदंधे तदा ।

राजा तु भयसविग्णो वने सैन्यं समेत्य च ॥१५

हे मुनिवर ! वहाँ पर राजा भिन्नसह ने स्नान तथा आह्निक कृत्य समाप्त करके अपने मन्त्रियों के साथ भोजन किया था और उस रात में वही पर ठहर गया था ॥८॥ इसके उपरान्त दूसरे दिन में प्रातः काल होने पर उठकर पूर्वान्ह की क्रिया की थी और फिर अपने मन्त्रियों को साथ में लेकर नर्मदा नदी के तीर पर भ्रमण करने लग गया था ॥९॥ एक वन से दूसरे वन में जाने के समय

मे राजा अकेला ही रह गया था और एक कृष्ण सार हिरण के पीछे कान तक वाण खीचकर दौड़ने लग गया था ॥ १० ॥ उस समय मे राजा के सैनिक बहुत दूर पीछे ही रह गये थे । उस अवसर पर घोड़े पर सवार रहते हुये ही राजा ने एक गुफा के अन्दर व्याघ्र दम्पति को मँथुन करते हुए देखा था ॥ ११ ॥ इनको देखकर उस राजा ने हिरण का पीछा करना तो छोड़ दिया और अपने धनुष पर शर चढा कर उस व्याघ्र दम्पति के जोड़े की ओर वढ गया था ॥ १२ ॥ उस राजा ने अत्यन्त तीक्ष्ण अग्र भाग वाले तथा जमी हुई गाँठ से युक्त वाण से उस जोड़े मे मे बाधनी को मार कर गिरा दिया था । उस व्याघ्री ने जब मौत के मुँह मे गमन कर रही थी । विद्युत् से युक्त मेघ के समान बडी भारी गर्जना की थी और एकसौ चौआलीस कोस लम्बी वेडोल भयावह राक्षसी का स्वरूप धारण करके मर गयी थी । उस समय मे अपनी प्रिया को मरी हुई देखकर वह व्याघ्र रूपी राक्षस बडा भारी द्वेष करके राजा से कहने लगा था—मैं तेरे इस अत्माचार का बदला लेकर छोडूँगा । इतना कहकर वह अन्तर्धान होगया था । इसके ऐसा कहने पर राजा को बडा भय हुआ और अत्यन्त उद्विग्न होकर वह अपने सैनिको से मिला था ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

तद्वृत्त कथयन्सर्वान्स्वा पुरी स न्यवर्तत ।

शङ्कमानस्तुतद्रक्ष कृत्याद्राजा सुदासज ॥ १६ ॥

परितत्याज भृगया तत प्रभृति नारद ।

गते बहुतिथे काले ह्यमेघ मख नृप ।

समारोभे प्रसन्नात्मा वशिष्ठाद्यनुनीश्वरैः । १७ ॥

तत्र ब्रह्मादिदेवेभ्यो हविर्दत्त्वा यथाविधि ।

समाप्य यज्ञनिष्क्रातो वशिष्ठ स्नातकोऽपि च ॥ १८ ॥

अनन्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिसितभार्यकः ।

कर्तुं प्रतिक्रिया राज्ञे समायातो रूपांस्वितः ॥१६

स राक्षसस्तस्य गुरो प्रयाते वशिष्ठत्रेप तु तदेव धृत्वा ।

राजानमभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये मास समिच्छाम्यहमित्युवाच ॥२०

भूय समास्थाय स सूदवेप पक्त्वामिप मानुषमस्य प्रादात् ।

स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वा गुरोरागमन प्रतीक्षन् ॥२१

तन्मास हेमपात्रस्थ सौदासो विनयान्वितः ।

पमागताय गुरवे ददौ तस्मै स सादरम् ॥२२

राजा ने अपने सौनिको को वह सब वृत्तान्त सुना दिया और वापिस अपनी नगरी को लौट पडा मुदास का पुत्र राजा मित्रसह उम राक्षस के कृत्य से सदा शङ्कित रहा करता था । इसलिये उसने उस दिन से मृगया का करना ही एक दम बन्द कर दिया । हे नारद ! बहुत सा समय व्यतीत हो जाने पर उस राजा ने चित्त में प्रसन्नता करके वशिष्ठ आदि ऋषीश्वरो के साथ मिलकर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का आरम्भ किया था ॥१६।१७॥ उसमें ब्रह्मा आदि देव वृन्द को हवि देकर और यज्ञ को सविधि समाप्त करके वह राजा और वशिष्ठ महर्षि उस यज्ञ गण्डप से बाहर चले गये थे ॥१८॥ इसी अन्तर में जिसकी भार्या को राजा ने वन में मार कर गिरा दिया था वह राक्षस महान क्रोध से भरकर बदला लेने के लिये राजा के समीप पहुँच गया था ॥१९॥ वह वशिष्ठ मुनि के चले जाने पर वशिष्ठ मुनि का स्वरूप धारण कर राजा के पास पहुँचा और उससे कहने लगा था—‘मैं मास खाऊंगा, फिर उस राक्षस ने पाचक का रूप धारण किया था और राजा को मनुष्य का मास पकाकर दे दिया था । राजा भी उसको एक सुवर्ण के पात्र में रखकर उस मांस को आदर के साथ गुरुजी को अर्पित करने लगा था ॥२०।२१।२२

त दृष्ट्वा चिन्तयामास गुरु किमिति विस्मित ।

अपश्यन्मानुष मास परमेण समाधिना ॥२३
 अहोऽस्य राज्ञो दो शील्यमभक्ष्य दत्तवान्मम ।
 इति विस्मयमापन्न प्रमन्पुरभवन्मुनि ॥२४
 अभोज्य मद्विघाताय दत्ता हि पृथिवीपते ।
 तस्मात्तवापि भवतु ह्येभदेव हि भोजनम् ॥२५
 नृमास रक्षसामेव भोज्य दत्ता मम त्वया ।
 तद्याहि रक्षसत्व त्व तदाहारोचित नृप ॥२६
 इति शाप दमत्यस्मिन्सौदासो भयविह्वल ।
 आज्ञप्तो भवतीवेति सकपोऽरमै व्यजिज्ञपत् ॥२७
 भूयश्च चिन्तयामास वशिष्ठस्तेन नोदित ।
 रक्षसा वचित भूत ज्ञातवान् दिव्यछक्षुषा ॥२८

इसको देखकर योगी गुरुजी ने परम विस्मित होकर विचार किया था कि—यह क्या है और जब ऋहत ध्यान से देखा तो उनको वह मनुष्य का मांस ज्ञात हो गया था ॥२३॥ इससे परम विस्मित हुये मुनि को महान् क्रोध हो गया था । उन्होंने विचार किया ओहो ! इस राजा ने कौसा दुष्टता का कार्य किया है इससे मुझे सर्वथा अभक्ष्य नर मांस भक्षण करने को दिया है ॥२४॥ वशिष्ठजी ने कहा— हे राजन् ! तूने मेरी सम्पूर्ण तपश्चर्या का नाश करने के लिय आज यह अभोज्य पदार्थ मेरे अर्पण किया है । अतएव जा, यह तेरा ही भोजन होगा ॥२५॥ अरे दुष्ट राजा, तूने यह राक्षसों का भोजन मुझे दिया है अतएव इसके खाने का उचित पात्र तू आज से राक्षस हाजा ॥२६॥ राजा मित्रसह श्री वसिष्ठजी के इस प्रकार से शाप देन पर भय से बचन होगया था और परम कम्पित गात्रो वाला होकर कहने लगा कि बापने ही मुझे आज्ञा प्रदान की थी, मेरा इसम क्या दोष है ॥२७॥ राजा की इस बात का सुनकर वसिष्ठजी की कुछ प्रेरणा मिली थी और उन्होंने पुन याग भाग के द्वारा विचार किया

तो दिव्य चक्षु से उन्होंने देखा था कि राक्षस ने ही राजा को वंचित किया है ॥२८

राजापि जलमादाय वशिष्ठ शप्तमुद्यत ॥२९
 समुद्यत गुरु शप्ता दृष्ट्वा भूयो रूपांस्वितम् ।
 मदयती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ मुद्रता ॥३०
 भो भो क्षत्रियदायाद कोप सहतुं महंसि ।
 त्वया यत्कर्म भोक्तव्य तत्प्राप्त नात्र सशय ॥३१
 गुरु तु कृत्य हु कृत्य यो वदेन्मूढधीनर ।
 अरण्ये निजले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षस ॥३२
 जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूपणे रता ।
 प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेषु निश्चय ॥३३
 तयोक्तो भूपति कोप त्यक्त्वा भार्या ननन्द च ।
 जल कुत्र क्षिपामीति चिन्तयामास चात्मना ॥३४
 तज्जल यत्र ससिक्त तद्भवेद्भस्म निश्चितम् ।
 इति मत्वा जल तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम् ॥३५

उस समय मे राजा भी हाथ मे जल ग्रहण करके वशिष्ठ मुनि को शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गया था ॥२९॥ उस अवसर पर वशिष्ठजी ने देखा था कि राजा परम क्रुद्ध हो गया है और मुझे शाप देने के लिये तैयार हो गया है तो उसकी रानी जो परम सुन्दर व्रत वाली थी और जिसका मदयन्ती नाम था राजा से निवेदन करने थी ॥३०॥ मदयन्ती ने उस समय मे कहा था—हे क्षत्रिय पुत्र ! अपने इस क्रोधावेश को राकिये । जो कर्म आपको भोगना था वह आपको अब प्राप्त हो गया है ॥३१॥ महान् मूढ पुरुष जो होता है वही अपने गुरु से तू या हूँ ऐसा कहकर बोला करता है वह निश्चय ही निजन बियावान वन मे ब्रह्म राक्षस हुआ करता है ॥३२॥ शास्त्रो का यह परम निश्चित सिद्धान्त है कि जो अपनी सब इन्द्रियो को

और क्रोध को वश में रखते हुये गुरु की सेवा सुध्रूपा में निरन्तर निरत रहा करते हैं वे ब्रह्म लोक में गमन किया करते हैं ॥ ३३ ॥ अपनी पत्नी के ऐसे समझाने पर राजा ने अपने आपको शान्त किया था और अपनी भार्या को आनन्दित करके स्वयं ही अपने मनमें विचार किया था कि अब शाप देने के लिये ग्रहण किये हुये जल को वहाँ छोड़ा जावे ॥३४॥ वह जल तो शाप देने के विचार से ही ग्रहण किया था अतएव वह जल जिस पर भी गिरेगा वह निश्चय ही मस्मी-भूत हो जायगा । गहराई से यह विचार कर वह जल अपने ही चरणों में डाल दिया था ॥३५

तज्जलस्पर्शमात्रेण पादो कल्मापता गतो ।
 कल्मापपाद इत्येव तत प्रभृति विस्तृत ॥३६
 कल्मापपादो मतिमान् प्रिययाश्वासितस्तदा ।
 मानसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरण गुरो ॥३७
 उवाच च प्रपन्नरत प्राञ्जलिर्नयकोविद ।
 क्षमस्व भगवन्सर्वं योपराध कृतो मया ॥३८
 तच्छ्रुत्वोवचा भूपाल मुनिर्निश्चयस्य दुःखित ।
 आत्मानं गृह्णामास ह्यविवेकपरायणम् ॥३९
 अविवेको हि सर्वेषामापदा परम पदम् ।
 विवेकरहितो लोके पशुरेव न सशय ॥४०
 राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचितं कृतम् ।
 विवेकरहितोऽजोऽहं यत पाप समाचरम् ॥४१
 विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम् ।
 विवेकहीनमाप्नोति को वा यो वाप्यनिर्वृतिम् ॥४२

उस जल का स्पर्श होते ही उस राजा के पैर चितकबरे से हो गये थे और उस दिन से वह फिर कल्मषपाद नाम से लोक में प्रसिद्ध हो गया था ॥३६॥ कल्मषपाद बहुत ही बुद्धिमान था, अपनी प्रिया

पत्नी के समाश्वासन देने पर अपने मन में बहुत अधिक डरते २ फिर उसने भृगुजी के चरणों में प्रणाम किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर नीतिशास्त्र में परम चतुर उस राजा ने हाथ जोड़ कर अपने गुरुजी के चरणों की शरण में जाकर रहने लग गया था और उसने उनसे विनम्र होकर प्रार्थना की थी । हे भगवन् ! मुझ से जो यह महान् अपराध इस समय में बन गया है उसे अब आप क्षमा कर दीजिए ॥३८॥ इस बात का श्रवण कर मुनिवर वसिष्ठ जी बहुत ही दुःखित हुए और उन्होंने एक दुःख भरी श्वास लेकर उस राजा से कहा— मैं बहुत ही विवेकहीन हूँ, मुझे धिक्कार है । यह कार्य और अकार्य का विचार न रहना ही अविवेक है और यही समस्त आपदाओं का मूल होता है । जो विवेक से हीन रहा करता है वह मनुष्य पशु के ही तुल्य हो जाया करता है ॥३९-४०॥ हे राजन् ! तुम को इसका ज्ञान ही नहीं था अतएव आप भी मुझे शाप दे देते तो बहुत ही उचित होता क्यों कि मूढ़ और विवेक से रहित था । इसी कारण से मुझ से यह पाप बन गया था ॥४१॥ जो प्राणी विवेक बुद्धि के द्वारा अपने मन को बश में रखता है वह भले ही कोई भी हो सदा सुख प्राप्त किया करता है तथा जो विवेक को त्याग देता है उसे हर तरह का दुःख आकर दया दिया करता है ॥४२॥

इत्युक्त्वा चात्मनात्मानं प्रत्युवाच मुनिर्नृपम् ।
 नात्यन्तिकं भवेदेतद् द्वादशाब्दं भविष्यति ॥४३॥
 गङ्गाविन्द्वभिपिक्तस्तु त्यक्त्वा वै राक्षसी तनुम् ।
 पूर्वरूपं त्वमापन्ना भोक्ष्यमे मेदिनीमिमाम् ॥४४॥
 तद्विदुर्गेवम्भूतज्ञानेन गतमन्मप ।
 हरिमेवापगो भूत्व परा शान्तिं गमिष्यसि ॥४५॥
 इन्मुक्त्वाथ वंविद्भूष वशिष्ठ स्वाश्रमा ययौ ।
 राजापि दुःखसपन्नो राक्षसी तनुमाश्रितः ॥४६॥

क्षुत्पिपासाविशेषातौ नित्यं क्रोधपरायणः ।
 कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो वभ्राम विजने वने ॥४७
 मृगाश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान् ।
 विहङ्गमान्प्लवङ्गाश्च प्रशस्तास्तानभक्षयत् ॥४८
 अस्थिभिर्बहुभिर्भूय. पीतरक्तकलेवरैः ।
 रक्तान्तप्रेतकेशंश्च चित्रासीद् भूभयंकरी ॥४९

इस तरह से स्वयं आप ही अपनी बुराई का काम न कर फिर मुनि उस राजा से कहने लगे थे—वह मेरा शाप निरवान तक नहीं रहेगा । बारह वर्ष के बाद यह श्लूट जायेगा ॥४३॥ जब तुम्हारे शरीर पर भागीरथी गङ्गाजी के जल से अभिषेक होगा तो इस राक्षस शरीर से तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी और पुन. तुम प्रथम स्वरूप को प्राप्त कर इस पृथ्वी का सुख भोगोगे ॥४४॥ गङ्गाजी के जल से अभिषेक होने पर तुमको ज्ञान की प्राप्ति होगी और समस्त तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे । फिर तुम भी हरि की सतत सेवा करके परम शान्ति का लाभ करोगे ॥४५॥ अथर्व वेद के पूर्ण ज्ञाता महा मुनि वशिष्ठजी उस राजा को इस प्रकार से सान्त्वना देकर अपने आश्रम में वापिस लौटकर चले गये थे और वह राजा राक्षस का शरीर प्राप्त कर महान् कष्ट में पड़ गया था ॥४६॥ राक्षस शरीर को प्राप्त कर वह भूख प्यास से परम व्याकुल रहने लग गया था । सर्वदा ही वह क्रोध में भरा रहता था । कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान ही महान् भीषण कान्ति वाला होकर निर्जन वनों में भ्रमण करने लग गया था ॥४७॥ वन में विभिन्न प्रकार के मृग-मनुष्य, पक्षी, सर्प और श्रेष्ठ वानरो का भक्षण किया करता था ॥४८॥ वहाँ की भूमि बहुत सी अस्थियों से तथा रक्त पान कर चूसी हुई लाशों से और रधिर से लित हुए मृत मनुष्यों के केशों से चित्तबवरी और असंगत भयावह हो गई थी ॥४९

ऋतुत्रये स पृथिवी शतयोजनविस्तृताम् ।
 कृत्वातिदु खिता पश्चाद्वनान्तरमुपागतम् ॥५०
 तत्रापि कृतवान्नित्य नरमासाशन सदा ।
 जगाम नर्मदातीर मुनिसिद्धनिपेवितम् ॥५१
 विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयकर ।
 अपश्यत्कचन मुनिं रमन्त प्रियया सह ॥५२
 क्षुधानलेन सतप्तस्त मुनिं समुपाद्रवत् ।
 जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृग शिशु यथा ॥५३
 ब्राह्मणी स्वर्पाति वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् ।
 शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ॥५४
 भो भो नृपतिशादूर्ल नाहि मा भवविह्वलाम् ।
 प्राणप्रियप्रदानेन कुरु पूर्णं मनोरथम् ॥५५
 नाम्ना मित्रसहस्त्य हि सूर्यवशसमुद्भव ।
 न राक्षसस्ततोऽनाथा पाहि मा विजने वने ॥५६

वह राक्षस शरीर में रहने वाला राजा छ मास पर्यन्त चार
 सौ कोस की भूमि को प्राणी विहीन एक दुःखमयी बनावर फिर वहाँ से
 दूसरे वन में चला गया था ॥५०॥ वहाँ पर भी नर मांस का भक्षण
 करता हुआ मुनि और परम मिट्टी के द्वारा रेवति नर्मदा नदी के तट
 पर भटकता हुआ पहुँच गया था ॥ ५१ ॥ सभी प्राणियों को भयभीत
 करने वाले उस राक्षस ने उम नर्मदा नदी के तट पर
 विचरण करते हुये एक मुनि को अपनी प्रिया पत्नी के साथ
 रमण करत हुये देखा था ॥५२॥ भूख की उग्र अग्नि से झुलसता हुआ
 वह राक्षस मुनि के ऊपर झपटा था और जिस तरह से व्याघ्र एक
 मृग के बच्चे को पकड़ लिया करता है उसी भाँति इस राक्षस ने भी
 उम विप्र को दबाँच लिया था ॥५३॥ वह मुनि पत्नी ब्राह्मणी ने
 अपने स्वामी को राक्षस के हाथों में फँसा हुआ देखा तो वह भय से
 अत्यन्त विह्वल होकर हाथ जोड़कर कहने लगी थी ॥५४॥ उम
 मुनि पत्नी ने कहा— हे राजशादूर्ल ! भाग मुझे भय से विह्वल राती

रक्षा करिये । मेरे प्राण प्यारे पति को छोड़ दीजिए और मेरा
 ोरय पूर्ण करिए ॥५५॥ आप वास्तव मे राक्षस नहीं हैं । आप तो
 रम पवित्र एव प्रख्यात सूर्य वन मे पैदा हुए हैं । अतएव श्म निर्जन वन
 मुझ अनाथ की दृम समय मे आप रक्षा करिए ॥५६

या ना भर्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा ।
 तथापि बालवैधव्य किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ॥५७
 न मातापितरौ जाने नापि वधु च कचन ।
 पतिरेव परो वधु परम जीवन मम ॥५८
 भवान्वेत्याखिलान्धर्मान्योपिता वर्तन यथा ।
 प्रायस्व बन्धुरहिता बालापत्या जनेश्वर ॥५९
 कथ जीवाऽम पत्यास्मिन्हीना हि विजने वने ।
 दुहिताह भगवतस्त्राहि मा पतिदानत ॥६०
 प्राणदानात्पर दान न भूत न भविष्यति ।
 वदन्तीति महाप्राज्ञा प्राणदान कुरुष्व मे ॥६१
 इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रत ।
 एव साप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम् ।
 अभक्षयत् कृष्णसार शिक्षु व्याघ्रो यथा बलात् ॥६२
 सतो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता ।
 पूर्वाशापहत भूपमशपत्क्रोधिता पुन ॥६३

जिस नारी का पति नहीं रहा बरता है वह तो जीवित रहते
 हुई भी मृत व ही समान हो जाया करती है । ह अरिमर्दन । फिर
 भी ज बाल विधवा हाती है उमवे दुःख का तो मैं वचन ही क्या
 करू ॥५७॥ मैं न तो अपनी माता को जानती हूँ और न अपने पिता
 का ही जानती हूँ । जगत् किसी भी बन्धु का ज्ञान मुग नहीं है ।
 मेरे तो घर पतिदेव ही परम बन्धु है और यही मेरे जीवन सर्वस्व है
 ॥५८॥ आप तो सभी धर्मों का भसी भानि ज्ञान रघन है और म्निवदा

के व्यवहार वर्तवि को भी अच्छी तरह से जानते हैं । हे नभेश्वर ! इस समय मे मुझे बन्धु विहीन बालक सन्तति वाली अवला की आप सुरक्षा कीजिये ॥५६॥ मैं अपने स्वामी के बिना इस निर्जन वन मे कैसे जीवित रह सकूंगी । मैं आपकी पुत्री हूँ । आप इस समय मे मुझे मेर पतिदेव का दान देकर मेरी रक्षा करिये ॥६०॥ परम बुद्धि मानो का कथन है कि प्राणो का दान परम श्रेष्ठ होता है इसकी समता अन्य कोई भी दान नहीं रखता है । ऐसा दान अब तक कोई नहीं हुआ है और न होगा, अतः मेरी रक्षा करिये । मुझे प्राण-दान ही कीजिये ॥६१॥ इस तरह से विनती करके वह मुनि पत्नी उस राक्षस के चरणो मे गिर पड़ी थी । उस ब्राह्मणी की इस प्रार्थना के करने पर भी वह राक्षस जैसे व्याघ्र कृष्ण भृगु के बच्चे को पलायन करा जाया करता है । उसी भाँति उस ब्राह्मण को खा गया था ॥६२॥ उस समय उसकी पतिप्रता पत्नी ने बहुत भारी विलाप किया था और प्रथम ही शाप से नष्ट राक्षस को क्रुद्ध होकर फिर शाप दे दिया था ॥६३॥

पति मे सुरतासक्त यस्माद्विसितावान्यलात् ।
 तस्मात्स्त्रीसङ्गम प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृनिम् ॥६४॥
 शप्स्वैव ब्राह्मणी क्रुद्धा पुनः शापान्तरं ददौ ।
 राक्षसत्वं ध्रुव तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यतः ॥६५॥
 सोऽपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्त निशाचारः ।
 प्रमन्युः प्राह विनृजन्वोपादङ्गारसचयम् ॥६६॥
 दुष्टे कस्मात्प्रदत्तं मे वृथा शापद्वयं त्वया ।
 एवरयंवापराधम्यं शापस्त्वेको समोचितः ॥६७॥
 यस्मात्किं पतिं दुष्टाग्रहं मयि शापान्तरं ततः ।
 पिशाचयोनिमयं याति पुत्रसमन्विता ॥६८॥
 तेनैव ब्राह्मणा गता पिशाचत्वं तदा गता ।

क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता ॥६६
 राक्षसश्च पिशाची च क्रोशन्ती निजंने वने ।
 जग्मतुर्नर्मदातीरो वटं राक्षससेवितम् ॥७०

अरे दुष्ट ! तूने मेरी रति मे आसक्त प्रिय पति को बलपूर्वक मार डाला है । इसलिये तू भी जब भी स्त्री का सङ्ग करेगा मृत होजायगा ॥६४॥ इस प्रकार से शाप देकर क्रोध मे भरी हुई ब्राह्मणी ने पुनः शाप दिया था कि अरे दुष्ट तूने मेरे पति का भक्षण कर लिया है अतएव तेरा यह राक्षसत्व बहुत समय तक अटल हो जावेगा ॥६५॥ उस समय मे वह राक्षस उस मुनि पत्नी के दिये हुए इन दो शापो को मुनकर क्रोध से घडकने लग गया था और क्रोध के अङ्गारे से उगलते हुए उससे बोला—अरी दुष्टे । एक अपराध के लिए तुझे एक ही शाप देना उचित था । तूने व्यर्थ ही मुझे दो शाप दिये हैं ऐसा क्यों किया है ? ॥६७॥ अरी दुष्टे । तूने एक ही अपराध पर दूसरा भी शाप दिया है इसलिये मैं भी तुझे शाप देता हूँ कि तू भी अपने पुत्र के सहित राक्षसी होजा ॥६८॥ उस राक्षस के द्वारा इस प्रकार से शाप देते ही वह ब्राह्मणी अपने पुत्र के सहित राक्षसी हो गई थी और अपने बालक के सहित भूखे होकर परम भयकर चीखे मारने लगी थी ॥६९॥ इस तरह से उस विवावान वन मे चीखते व चित्नाते हुये वे राक्षस और पिशाचिनी उम नमंदा के तट पर एक राक्षस के निवास स्थान मे वट पर जाकर पहुँच गये थे ॥७०

औदासान्य गुरी कृत्वा राक्षसी तनुमाश्रितः ।
 तत्रास्ते दु खसतप्तः कश्चिल्लोकविरोधवृत् ॥७१
 राक्षस च पिशाची च दृष्ट्वा स्ववटमागती ।
 उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षस ॥७२
 किमर्थमागतो भीमो युवा मत्स्थानमीप्सितम् ।
 ईदृशी केन पापेन जास्यो मे श्रुवता ध्रुवम् ॥७३

सौदासस्तद्वच श्रुत्वा तथा यच्चात्मना कृतम् ।
 सर्वं निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ॥७४
 कस्त्व वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा ।
 सद्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥७५
 करोति वञ्चन मित्रे यो वा को वापि दुष्टधी ।
 स हि पापफल भुक्ते यातनास्तु युगायुतम् ॥७६
 जन्तूना सर्वदु खानि क्षयन्ते मित्रदर्शनात् ।
 तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न दुर्याद्वचन कदा ॥७७

उस स्थल में भी एक लोको के विरोध करने वाला तथा अपने गुरु से उदासीनता दिखाने वाला होने के कारण से ही राक्षस शरीर पाकर दुःख से अत्यन्त सन्तप्त होकर निवास किया करता था ॥७१॥ वह ब्रह्मराक्षस था और उसने जब यह देखा कि एक राक्षस और एक पिशाचिनी भी उसके बड़ के नीचे आ पहुँचे हैं तो वह क्रोध में भरकर कहने लगा ॥७२॥ उसने कहा—अरे महान् भयङ्कर प्राणियो ! तुम मेरे परम प्रिय इस स्थान पर क्यों आये हो ? और यह भी बताओ कि किस पाप के वरने के कारण तुम्हारी यह गति हुई है ? ॥७३॥ इस यातना श्रवण कर राजा मुदाम के पुत्र मित्रसह ने और उस ब्राह्मणी ने स्वयं ही अपने आप जो कम किया था वह सब वह कर सुना दिया था । इसके पश्चात् उस सौदास ने पूछा था—उसने कहा—हे महाभाग ! आप भी अपना पूर्ण परिचय दो कि आप कौन हैं ? और पहिले कौनसा कुत्सित कम किया था जिसके कारण आप इस दशा में प्राप्त हुए हैं । मुझे तो आप अपना ही एक मित्र ही समझ लीजिए तथा बड़े ही स्नेह के साथ अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दीजिये ॥७५॥ जो अपने मित्र के साथ घोषा दिया करता है वह बहुत ही दुष्ट बुद्धि वाला होता है और वह चाहे कोई भी क्यों न हो। इस प्रकार युगायुत पाप व फल की यातना ही भाग्य करना है ॥७६॥ मित्र के दशाहान

पर प्राची के ममम्य दुःख एवं जाया करते हैं । इतलिये परम बु
 धान मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्रों से कभी भी प
 टियाव न करे ॥३७

इन्द्रागवादेनेशुक्तो वटुम्यो प्रज्ञराक्षमः ।
 उवाच प्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ॥३८
 अहमार्गं पुरा विप्रो मागधो वेदपारमः ।
 सोमदत्त इति श्यामो नाम्ना धर्मपरायणः ॥३९
 प्रसन्नोऽपि महाभाग विद्यया वदता धर्मैः ।
 श्रीशमीन्य मुने शृत्वा प्रात्तपानीदृगो मतिम् ॥४०
 न नभेत् मुप्यदिविजित्वाहासं प्रीतु श्रितः ।
 मया तु भक्षिता विप्रो नृपजोऽपि महत्पणः ॥४१
 श्रुत्वासागावरो निर्यमन्मन्नादेन पीडित ।
 जगत्प्रागहरो निर्य मागाननपरायण ॥४२
 पूर्ववशांमनुष्याणां राक्षस्यप्रदायिनी ।
 मयानुभूतमोदि ततः श्रीमान् पापयेन् ॥४३

आपको वर्णन करके बतलाता हूँ । हे सखे ! अब आप अपने मन
 को एकाग्र करके उसका श्रवण करिये ॥८५॥ वेदों का अध्यापन कराने
 वाला—वेदार्थ की श्रुतियों को बताने वाला—शास्त्रों की विशद व्याख्या
 करने वाला—धर्म का उपदेश देने वाला, नीति शास्त्र को बताने
 वाला, मन्त्रोपदेश करने वाला तथा मन्त्रों के अर्थ समझाने वाला, वेदों
 में समुत्थित सन्देहों को दूर करने वाला, ब्रह्म का उपदेश प्रदान
 करने वाला, भय से बचाने वाला, अन्नदान देने वाला, श्वशुर, मामा,
 यडा भाई, पिता, उपनयन मस्कार कराने वाला, वह जिसने गर्भा-
 धानादि समस्त सस्वार कराये हों, ये सब गुरु ही माने जाते हैं । इन
 सभी का सादर पूजन एवं वन्दना करनी चाहिये ॥८६॥८७॥८८॥८९॥
 कल्माष पाद ने इस पर उस ब्रह्म राक्षस से कहा—आपने तो चतूत से
 प्रकार के गुरुओं का वर्णन कर दिया है । इन सब में परम श्रेष्ठ गुरु
 कौन होता है । अथवा ये सभी समान ही दृष्टा करते हैं । हे मित्र !
 यह अब आप ठीक-ठीक बतलाइय ॥९०

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्ट तद्ब्रुवामि ते ।
 गुरमाहात्म्यवचन श्रवण चानुमोदनम् ॥९१
 सर्वेषां श्रय आधत्ते तस्माद्ब्रुवामि साप्रतम् ।
 एते समानपूजाहो सर्वदा नात्र मशय ॥९२
 तथापि शृणु ब्रुवामि शास्त्राणां सारनिश्चयम् ।
 अध्यापकाश्च वेदानां मन्त्रव्याख्यातस्तथा ॥९३
 पिता च धर्मवक्ता च विज्ञेयगुरव स्मृता ।
 एतेषामपि भूपाल शृणुष्व प्रवर गुरम् ॥९४
 सर्वज्ञान्त्रायंतत्वज्ञेभाषणं प्रब्रुवामि ते ।
 य पुराणानि वदति धर्मयुक्तानि पण्डित ॥९५
 मत्सारपाशविच्छेदकराणि स उत्तम ।
 देयपूजाहं कर्माणि देवतापूजने फलम् ॥९६

ज्ञायते च पुराणेभ्यस्तस्मात्तानीह देवता ।
 सर्ववेदार्यसाराणि पुराणानीति भूपते ॥६७
 वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमो गुरु ।
 यः ससाराणं वं तत्तुमुद्योग कुरुते नर ॥६८
 शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्रविभागकृत् ।
 प्रोक्तवान्सर्वधर्माश्च पुराणेषु महीपते ॥६९

उस ब्रह्म राक्षस ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! बहुत अच्छा प्रश्न है । यह तुम्हारा पूछना बहुत ही अच्छा एव उचित है । मैं वह भी अभी आपको बतलाता हूँ । क्योंकि गुरु के विषय में उनकी महिमा का वर्णन, श्रवण अथवा गुरु के माहात्म्य का अनुभोदन करना सबको कल्याण करने वाला हुआ करता है । इसीलिए मैं अभी इसका वर्णन करता हूँ । यद्यपि वैसे उपर्युक्त गुरुजन जिनके नाम मैंने अभी आपको बतलाये हैं ये सभी समान ही पूजन के पात्र हुआ करते हैं ॥६१।६२॥ तथापि जो शास्त्रों का निश्चिन्त सिद्धान्त है वही मैं आपको बतलाये देता हूँ । जो वेदों की शिक्षा दिया करते हैं—जो मन्त्रोपदेश एव मन्त्रों की व्याख्या किया करते हैं—जो धर्म धारण कराने वाले पिता हैं और जो धर्म के ज्ञाता हैं । ये विशेष पूजा के पात्र गुरु कहे जाये करते हैं । हे भूपाल ! इनमें भी जो परम श्रेष्ठतम गुरु हैं उनको भी अब आप सुनिये ॥६३।६४॥ सर्व धर्म के जानने वालों का जो मन्तव्य है उसी का मैं वर्णन कर रहा हूँ । जो इस ससार के आवागमन के पाश का छेदन कर धर्मपूर्ण पुराणों का वर्णन किया करता है वही सर्वोत्तम गुरु है । देवों की पूजा का कर्म और देवों की अर्चना का फल पुराणों के द्वारा ही ज्ञात हुआ करता है । अतएव हे राजन् ! पुराण सब वेदों के तत्त्वार्थ के सार स्वरूप हुआ करते हैं इस कारण से वे देवता ही होते हैं ॥६५।६६।६७॥ मुनिगण यही कहते हैं कि उन पुराणों का वर्णन करने वाला परम श्रेष्ठ गुरु होता है । जो प्राणी

इस ससार रूपी गहन सागर को पार करने का उद्यम
उसको पुराणों का श्रवण अवश्य ही करना चाहिये । हे राजन् । कृष्ण
द्विपायन व्यासदेव ने सब शास्त्रों का विभाजन कर पुराणों में सभी
(समस्त) धर्मों का विशद एवं सरल वर्णन किया है ॥६८॥६६॥

तर्कस्तु वादहेतु स्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम् ।
पुराणानि महानुद्धे इहामुन सुखाय हि ॥१००
य शृणोति पुराणानि सतत भक्तिसयुक्त ।
तस्य स्यान्निमला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायण १०१
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपती शुभा ।
विष्णुभक्तनृणा भूप धर्मं बुद्धिं प्रवर्त्तते ॥१०२
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञान शुद्ध च जायते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा ये फलान्यभिलिप्सव १०३
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थ पुराविद ।
अह तु गौतममुने सर्वज्ञाद् ब्रह्मवादिन ॥१०४
श्रुतवान्सर्वधर्मार्थं गङ्गातीरे मनोरमे ।
कदाचित्परमेशस्य पूजा कर्त्तुमह गत ॥१०५

हे महान् बुद्धिशाली सौदास । तर्क करना तो एक विवाद का
कारण होजाया करता है और नीति के अनुसरण करते ही इस लोक
के सब कार्य सिद्ध हुआ करते हैं । ये पुराण इस लोक और परलोक
दोनो ही जगहों पर सुख प्रदान किया करते हैं ॥१००॥ इन पुराणों का
श्रवण करने से श्रीपति भगवान की परम शुभ भक्ति समुत्पन्न हुआ
करती है और हे राजन् । जो मनुष्य भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं
उनकी बुद्धि सदा धर्म कर्मों में लगा करती है । जो भक्त भाव के
सहित सदा श्रवण किया करता है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाया करती
है और वह फिर अधिकाधिक धर्मों का समाचरण किया करता है
॥१०१॥१०२॥ धर्म का आचरण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाया

करते हैं और मन में निर्मलता आया करती है । प्राचीन ज्ञानवान् लोग कहा करते हैं कि 'जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों को यथावत् प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हो और इनका श्रेष्ठतम फल प्राप्त करना चाहते हो उनको सब कुछ त्याग कर पुराणों का ही श्रवण करना चाहिये । मैंने तो परम रमणीय श्री गङ्गा नदी के तीर पर सर्व ज्ञाता महान् ब्रह्मवादी श्री गौतम मुनि के मुख से सम्पूर्ण धर्मों के तात्पर्य का श्रवण किया था । एक समय की घटना है कि मैं भगवान् शंकरजी का अर्चन करने में सलग्न था ॥१०३॥१०४॥१०५॥

उपस्थितायापि तस्मै प्रणाम न ह्यकारिषम् ।
 स तु शान्तो महामुद्विगीतमस्तेजसा निधि ॥१०६॥
 मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति सुद ययौ ।
 यस्त्वर्चितो मया देवः शिवः सर्वजगद्गुरुः ॥१०७॥
 गुर्वंजना कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् ।
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञा कुरुते गुरोः ॥१०८॥
 तस्यैवाक्षु प्रणश्यन्ति धीविद्यार्थात्मजक्रियाः ।
 शुश्रूषा कुरुते यस्तु गुरुणा सादर नरः १०९॥
 तस्य सपद्भवेद्भूप इति प्राहुर्विपश्चितः ।
 तेन शापेन दग्धोऽहमन्तश्चैव क्षुधाग्निना ॥११०॥
 मोक्ष कदा प्रयास्यामि न जाने नृपसत्तम ।
 एव वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ॥१११॥
 धर्मशास्त्रप्रसंगेन तयोः पाप क्षय गतम् ।
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥११२॥

इसी बीच में मेरे गुरुवर नदी पर समागत हो गये थे । मैं पूजन में लगा रहने के कारण से उनके चरणों में उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम न कर सका था परन्तु गौतम मुनि महान् मेधावी महा पुरुष थे और उत्तम तेज के निधि थे इसीलिये वे शान्त रहे थे ॥१०६॥ वे कह

हमारा शिष्य मन्त्रशास्त्र में कहे हुये कर्मों का विधान कर रहा है—यह समझ कर वे बहुत प्रसन्न हुये थे परन्तु उन भगवान् शंकर ने ही जिनके यजनार्चन में लगा हुआ था, गुरु की अज्ञात करने के अपराध के कारण ही मुझे राक्षस बना दिया था । जो भी कोई ज्ञानपूर्वक या अज्ञान से गुरुदेव का अपमान किया करता है उसकी, विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, सन्तति और सत्वर्मानुष्ठान ये सभी अत्यन्त शीघ्र ही नष्ट हो जाया करते हैं । जो अपने गुरुदेव की समादर के सहित सेवा, सत्कार किया करते हैं ॥१०७॥१०८॥१०९॥११०॥ हे राजन् । उसको अतुल सम्पदा प्रदान हुआ करनी है । ऐसा विद्वजन कहा करते हैं । मैं उन ही भगवान् के शाप से परम दुःखित होकर शूलस रहा हूँ । अन्दर भूख की अग्नि मुझे जला रही है ॥१११॥ मैं नहीं मानता कि इस महान कष्ट से मेरा छूटकारा कब तक होगा । हे विप्रेन्द्र । वह उस वट वृक्ष पर निवास करने वाला ब्रह्म राक्षस इस प्रकार से कह ही रहा था कि धर्म चर्चा के कर्ने से उसका सम्पूर्ण पाप क्षीण हो गया था । उसी समय में एक परम धार्मिक ब्राह्मण वहाँ पर आ पहुँचा था ॥११२

कलिङ्गदेशसभूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृत ।

वहन्गङ्गाजल स्कधे स्तुवन् विश्वेश्वर प्रभुम् ॥११३

गायन्नामानि तस्यैव मुदा हृष्टतनूत्ह ।

तमागत मुनि दृष्ट्वा पिशाचो राक्षसी च ती ॥११४

प्राप्ता न पारमेत्युक्त्वा प्राद्रवन्नुर्व्ववाहव ।

तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिता ।

अशक्तास्त घर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षस ॥११५

अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्य महात्मने ।

नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् ॥११६

अस्माभिर्भक्षिता पूर्वं विप्रा कोटि सहस्रश ।

नामप्रावरण विप्र रक्षति त्वा महाभयात् ॥११७

नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ।
 परा शान्ति समापन्ता महिम्ना ह्यच्युतस्य वै ॥११८८
 सर्वथा त्व महाभाग रागादिरहितो ह्यसि ।
 गङ्गाजलाभिपेकेण पाह्यस्मात्पानृकोञ्चयात् ॥११८९

वह ब्राह्मण कलिंग देश में समुत्पन्न हुआ था और उसका नाम गर्ग था । वह अपने कन्धे पर गङ्गाजल लिये हुये विश्वेश्वर प्रभु का स्तवन कर रहा था ॥११८८॥ भगवान् के परम शुभ नामों का कीर्तन कर रहा था । प्रसन्नता के कारण से उसका शरीर पुलकायमान हो रहा था । उस श्रेष्ठ मुनि को समागत हुये देखकर ये राक्षस और पिशाचिनी मनमें विचार करने लगे कि हमारा भोजन प्राप्त हो गया है । ये दोनों अपनी भुजायें उठाकर उसे पकड़ने के लिये दौड़े थे । किन्तु उसके मुख से उच्चरित भगवान् के शुभ नाम कीर्तन को सुन कर कुछ रुक गये थे । उस समय में उस विप्र को धर दबोचने में असमर्थ होकर वे राक्षस इस तरह से बहने लगे थे ॥११८९॥११९०॥ उन्होंने विनम्रता के साथ उससे कहा—हे महाभाग (ब्राह्मण) हम महान आत्मा वाले आपको सादर प्रणाम करते हैं । ओहो ! भगवान् विष्णु के नाम कीर्तन का कौंसा अद्भुत प्रभाव है कि इस नाम के माहात्म्य के कारण से हम सरीखे राक्षस आपके समीप में फटक भी नहीं सकते हैं । ऐसे महाप्रभु श्री विष्णु भगवान् की सेवा में भी हमारा प्रणाम समर्पित है ॥११९१॥ इससे पूर्व हमने सहस्रों ब्राह्मणों का भक्षण कर डाला था परन्तु यह नामोच्चारणरूपी दुर्गं आपकी रक्षा महान भय से कर रहा है ॥११९२॥ हम लोग महान दुष्ट राक्षस हैं तो भी भगवान् के परम पावन एवं शुभ नामों के कीर्तन का श्रवण करने पर इस समय हमको परम शान्ति प्राप्त हो रही है । ओहो ! भगवान् अच्युत की बड़ी भारी महिमा होती है ॥११९३॥ हे महाभाग ! आप तो रागादि दोषों से रहित हैं । ये लोग मुझे खाने को प्रस्तुत हागये

थे रात इनका उद्धार मैं क्यों नहीं । इस भावना का परित्याग करके आपने पाप जो यह परम पावनी पतितोद्धारणी गङ्गा का जल है इसमें अभिषिञ्चन करके हमको राक्षस योनि के बड़े भारी पाप से उद्धार कीजिये ॥११६

हरिसेवापरो भूत्वा यश्चात्मानं तु तारयेत् ।
 स तारयेज्जगत्सर्वमिति शसन्ति सूरय ॥१२०
 अपहाय हरेर्नाम घोररसारभेषजम् ।
 केनोपायेन लभ्येत मुक्तिं सर्वत्र दुर्लभा ॥१२१
 लोहोद्दुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा ।
 तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथं परान् ॥१२२
 अहो चरित्रं महता सर्वलोकसुखावहम् ।
 यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कलानिधि ॥१२३
 पृथिव्या यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ।
 तानि सर्वाणि गङ्गाया कणस्यापि समानि न ॥१२४
 तुलसीदलसमिश्रमपि सर्पपमात्रकम् ।
 गङ्गाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ॥१२५
 तस्माद्विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद ।
 गङ्गाजलप्रदानेन पाह्यस्मान्पापकर्मिण ॥१२६

विद्वान् पुरुष कहा करते हैं कि जो निरन्तर भगवान् श्री हरि की सेवा में सलग्न रह कर अपने आपका उद्धार किया करता है वह सम्पूर्ण जगत् का भी उद्धार कर सकता है ॥१२०॥ भगवान् श्री हरि का नाम इस मत्साररूपी महा व्याधि की महोपधि है । मुक्ति बहुत ही दुर्लभ वस्तु है । आप यह बताइये कि इस श्री हरि के नामोच्चारण के अतिरिक्त किसी अन्य साधना के द्वारा भी वह प्राप्त हो सकती है ॥१२१॥ तोह की नौका से पानी में तैरने वाला भी डूब जाया करता है । इसी प्रकार, मैं जिनसे बन्नी कोई पुण्य कर्म नहीं किया है वह

दूसरो की कैसे तार सकता है ॥१२२॥ जिस तरह से अन्द्रमा सबको आनन्द प्रदान किया करता है वैसे ही बड़े आदमियो का चरित्र भी सब लोगो को सुख प्रदान किया करता है ॥१२३॥ हे द्विजोत्तम । इस भ्रूमण्डल मे जितने भी परम पावत्र तीर्थ है वे सभी गङ्गा के किनके की बराबर नही हैं ॥१२३॥ तुलसी दलो से युक्त सरसो के दाने के समान भी गङ्गाजल मनुष्य की इक्कीस पीढियो का उद्धार कर दिया करता है ॥१२४॥ अतएव हे सप्तत षास्त्रो के महान पण्डित महाभाग ब्राह्मण देव । इस समय मे गङ्गाजी का जल प्रदान करके हम सब पापियो की आप रक्षा कीजिये ॥१२५

इत्याख्यात राक्षस्तैस्तैर्गङ्गामाहात्म्य मुत्तमम् ।
 निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तम ॥१२७
 एषामपीदृशो भक्तिर्गङ्गाया लोकमातरि ।
 किमु ज्ञातप्रभावाणा नहता पुण्यशालिनाम् ॥१२८
 अथासी मनसा धर्म विनिश्चित्य द्विजोत्तम ।
 सर्वाभूतहितो भक्त प्राप्नोतीति पर पदम् ॥१२९
 ततो विप्र कृपाविष्टो गङ्गाजलमनुत्तमम् ।
 तुलसीदलसामिथ्र तेपु रक्ष स्वसेचयत् ॥१३०
 राक्षसास्तेन सिक्ताक्तु सर्पपोरमविदुना ।
 विसृज्य राक्षस भावमभवन्देवतोपमा ॥१३१
 ब्राह्मणी पुत्रसयुक्ता शोमदत्तस्तयैव च ।
 कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्बिबुधर्षभा ॥१३२
 शखचक्रगदाचिह्ना हरिसारूप्य मागता ।
 स्तुवन्तो ब्राह्मण सम्यग्ने जग्मुर्हरिमन्दिरम् ॥१३३:

उन राक्षसो ने जिस समय मे गङ्गाजल का इस प्रकार से माहात्म्य का वर्णन किया तो उसका श्रवण करके वह परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यधिक प्रसन्न हुआ था ॥१२७॥ उसे प्रसन्नता इसी बात से हुई

थी कि लोक जननी गङ्गा में जब इन महा पतित राक्षसों की ऐसी प्रगाढ भक्ति है जो जग गङ्गाजी की महिमा का भली भाँति जान रखते हैं उन महान पुण्यात्मा लोगों की श्रद्धा-भक्ति के विषय में क्या कहा जावे ? ॥१२८॥ इसके अनन्तर उस परम श्रेष्ठ शिरोमणि द्विज ने अपने मन में विचार किया कि जो प्राणी जगत् में समस्त प्राणियों का हत-सम्पादित किया करता है वह परम दयालु और परोपकारी भक्त अवश्य ही परम पद की प्राप्ति किया करता है । अतएव इन विचारे दुर्गति दशापन्न जीवों का भी उद्धार करना महान धर्म का कार्य है— इस बात का अपन हृदय में विचार करके उसके अन्त कारण में दया की भावना जाग उठी थी ॥१२९॥ मन में कृष्णा के आ जाने से उस ब्राह्मण ने तुलसी दल से मिश्रित परम पावन गङ्गाजल के छीटे उन राक्षसों पर दिये थे ॥१३०॥ उस ब्राह्मण के द्वारा सरसों के बराबर ही गङ्गाजल की छीटें देते ही वे राक्षस राक्षसी स्वभाव का त्याग करके दसों के तुल्य अति शोघ्रता से होगये ये ॥१३१॥ अपने पुत्र के सहित वह ब्राह्मणी और सोमदत्त करोड़ों सूर्य के समान दमकत हुए परम श्रेष्ठ बन गये थे ॥१३२॥ उस समय में उनका स्वरूप शख, चक्र, गदा धारी भगवान् विष्णु के समान ही होगया था और फिर वे सब उस ब्राह्मण देवता का सस्तघन करते हुए विष्णु लोक को चले गये थे ॥१३३॥

राजा कल्लपपादस्तु निजरूप समास्थित ।
जगाम महती चिन्ता दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानघान् ॥१३४॥
तस्मिन् राज्ञि सुदु खार्ते गूढम्पा सरस्वर्ता ।
धर्ममूलमहावानय वभापेऽगाधया गिरा ॥१३५॥
भो भो राजन्महाभाग न दु ख गन्तुमर्हसि ।
गजम्प्रापि भागान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ॥१३६॥
सत्तर्मेधृतपापा ये हरिभक्ति परायणा ।

प्रयान्ति नात्र सन्देहस्तद्विष्णो परम पदम् ॥१३७

सर्वभूतदयायुक्ता धर्ममार्गप्रवर्तिनः ।

प्रयान्ति परम स्थान गुरुपूजापरायणा ॥१३८

इतीरित समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः ।

मनसा निर्वृतिं प्राप्यसन्मार च गुरोर्गच ॥१३९

स्तुवन्गुरु च तं विप्र हरि चैवातिहृषितः ।

पूर्ववृत्तं च विप्राय सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥१४०

किन्तु राजा कल्माषपाद अपने राक्षसी रूप में ही वहाँ पर खड़ा रहा था और उसने उन अन्य पापियों की मुक्ति को आँखों से देखा तो उसको बड़ी चिन्ता हुई थी ॥१३४॥ इस प्रकार से जब अत्यधिक खिन्न हो गया था तो उस समय में सरस्वती देवी ने गुप्त रूप से परम गम्भीर वाणी में कहा था ॥१३५॥ हे महाभाग्यवान् ! हे राजन् ! तुम अपने हृदय में दुःखित मत होओ, जब कर्मों के भोग की समाप्ति हो जायगी तब तुम्हारा भी महान् कल्याण अवश्य ही होगा ॥१३६॥ सत्कर्मों से जिनके पाप पङ्क का प्रक्षालन हो जाया करता है ऐसे श्री हरि के भक्त गनुष्य भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति अवश्य ही किया करते हैं इसमें तनिक भी सन्देह का अवसर नहीं है ॥१३७॥ जो समस्त प्राणियों से दयाभाव का वरताव किया करते हैं, धर्म के मार्ग पर चलते हैं और अन्यो को चलाया करते हैं, अहर्निश श्री हरि की भक्ति में निमग्न रहा करते हैं, सर्वदा अपने से बड़ों की सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही परम पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१३८॥ इस नभोवाणी का श्रवण करके उस राजा के मनमें सुख हुआ और उसे फिर श्री गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का स्मरण हो आया ॥१३९॥ तब वह अत्यधिक प्रमन्नता मग्न होकर अपने गुरु देव की, उस ब्राह्मण की और भगवान् श्री हरि की स्तुति करने में प्रवृत्त हो गया था । उसने फिर अपना पूर्व घटित अपना गमस्त वृत्तांत

एक देवता को गुना दिया था ॥१४०

ततो नृपस्तु कालिग प्रणम्य विधिवन्मुने ।
 नामानि व्याहरन्विष्णो सद्यो वाराणसी ययौ ॥१४१॥
 पण्मास तत्र गङ्गाया स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम् ।
 ब्राह्मणीदत्तश पात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥१४२॥
 ततस्तु स्वपुरी प्राप्तो वशिष्ठेन महात्मना ।
 अभिषिक्तो मुनिथेष्ठ स्वक राज्यमपालयत् ॥१४३॥
 पालयित्वा मही कृत्स्ना भुक्त्वा भोगान्स्त्रिय विना ।
 वसिष्ठात्प्राप्य सन्तान गतो मोक्ष नृपोत्तम ॥१४४॥
 नैतच्चित्र द्विज्येष्ठ विष्णोर्वाराणसीगुणान् ।
 गृणञ्छृण्वन्स्मरन्गङ्गा पीत्वा मुक्तो भवेन्नर ॥१४५॥
 तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गाया शक्यते नहि ।
 पार गन्तु सुराधीशं ब्रह्मविष्णुशिवंरपि ॥१४६॥
 यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभि ।
 विमुक्तो ब्रह्मसदन नरो याति न सशय ॥१४७॥
 गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा ।
 तदैव पाप निर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयके ॥१४८॥

हे मुनिवर । उसके पश्चात् उस राजा ने उन कत्रिङ्ग देशवासी
 ब्राह्मण को प्रणाम किया था । फिर सविधि भगवान् विष्णु के शुभ
 नामों का कीर्तन करता हुआ वह शीघ्र ही भगवान् विश्वनाथ की
 पुरी वाराणसी को खाना हो गया था ॥१४१॥ काशीपुरी में उस
 कल्माषपाद ने छै मास तक निवास कर गङ्गा में स्नान किया था
 और सदाशिव प्रभु के नित्य दशन क्रिये थे । उस समय में राजा मित्र
 सहका उस ब्राह्मणी के दिव्य हुय पाप स मुक्ति हुई थी ॥ १४२ ॥
 राक्षसी शरीर स छुटकारा पाकर वह मित्रसह राजा अपनी नगरी में
 पहुँच गया था । वहाँ पर महामुनि वशिष्ठजी ने उसका अभिषेक
 किया था । हे श्रेष्ठ । इस प्रकार स अपनी पाप यानि स छूटकर अपने

राज्य का यथावत् परिपालन करने में प्रवृत्त हो गया था ॥१४३॥
 उसने राज्य की प्रजा का पालन करते हुए सम्पूर्ण भूमि को भोगा
 फिर महर्षि वसिष्ठजी की कृपा एवं आशीर्वाद से सन्तान की प्राप्ति
 करके वह श्रेष्ठ राजा अवसान में मोक्ष पद को प्राप्त होगया था ॥१४४
 हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है । भगवान्
 विष्णुदेव और विश्वनाथपुरी वाराणसी भी ऐसी ही अद्भुत महिमा
 है । इनमें इसी प्रकार के गुण विद्यमान हैं । जो मनुष्य गङ्गाजी की
 कथा का प्रवचन किया करता है, श्रवण करता है, अथवा गङ्गाजल का
 पान किया करता है वह तिष्ठत्य ही मुक्त हो जाया करता है ॥१४५॥
 अतएव हे विप्रेन्द्र ! देवों के स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी गङ्गाजी
 की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं अन्य लोगों की तो बात ही क्या
 है ॥१४६॥ भगवती, पतित मावती गङ्गाजी के नामोच्चारण करने ही
 से मनुष्य करोड़ों महा पातकों में छुटकारा पाकर अन्त में ब्रह्मलोक की
 प्राप्ति किया करता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१४७॥ जो
 'गङ्गा-गङ्गा' यह भगवती का नाम एक बार भी अपने मुख से उच्चा-
 रण किया करता है उसी समय में मनुष्य अपने कृतकर्मों से अर्थात्
 पापों से छूट जाया करता है और उसी समय से ब्रह्म लोक में उसकी
 प्रशंसा होना आरम्भ हो जाया करता है ॥१४८॥

॥दैत्यों का अग्नि प्रकट कर भस्म होना ॥

विष्णुपादायमभूता या गङ्गेत्यग्निधीयते ।
 तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुप्राह्योऽग्निं ते यदि ॥१॥
 शृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गेत्पत्तिं तवानघ ।
 वदता शृण्वता चैव पुण्यदा पापनाशिनीम् ॥२॥
 आसीदिन्द्रादिदेवाना जनकः कश्यपो मुनिः !

दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३॥
 अदितिर्देवमातारित दैत्याना जननी दिति ।
 ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिण ॥४॥
 सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्या प्रकीर्तिता ।
 आदिदैत्यो दिते पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥५॥
 प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तम ।
 विरोचनस्तस्य सुतो वभूव द्विजभक्तिमान् ॥६॥
 तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान् ।
 स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुने ॥७॥

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भाई । गङ्गा देवी की उत्पत्ति भगवान् विष्णु के चरण कमलो के अग्रभाग में बतायी जाया करती है । इस भगवती गङ्गा उत्पत्ति का वर्णन कृपया आप यदि करना चाहें तो करे ॥१॥ नारदजी के ऐसा कहने पर श्री सनक मुनि ने कहा—हे निष्पाप नारद ! मैं अब आपकी इच्छा के अनुसार गङ्गा देवी की उत्पत्ति की कथा का वर्णन करता हूँ । यह रक्षा तो ऐसी महिमामयी है कि यह वक्ता और श्रोता दोनों के पाप का नाश कर उनको महान् पुण्य फल प्रदान किया करती है ॥२॥ कश्यप मुनि इन्द्रादि देवा के पिता थे । दक्ष प्रजापति की २पुत्रियाँ थी जिनके नाम दिति तथा अदिति थे ये दोनों कश्यप ऋषि की पत्नियाँ थी ॥ ३ ॥ इन दोनों में अदिति देवा की माता थी और दिति दैत्या की माता थी । हे विप्रवर ! इन दोनों के पुत्र परस्पर में एक दल दूसरे दल पर मयदा विजय प्राप्त करने की अभिलाषा रखता करते थे और ११म बराबर युद्ध बन्द हुआ ही करता था ॥४॥ दिति का पुत्र आदि दैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा भारी बलशाली हुआ था ॥५॥ हिरण्यकशिपु क पुत्र का नाम प्रह्लाद था जो बहुत श्रेष्ठ दैत्य हुआ था । प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन हुआ था । इतने विरोचन की आह्वाना में परम

भक्ति रहा करता थी ॥६॥ इस विरोचन का पुत्र बलि दैत्यराज हुआ था । यह बलि अत्यधिक तेजस्वी और महान् प्रतापी राजा था । हे मुनिवर । यह बलि ही दैत्यो की सेना में सेनापति बना था ॥७

वलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम् ।

विजित्य वसुधा सर्वां स्वर्गं जेतुं मनो दधे ॥८

गजाश्च यस्याद्युतकीटिलक्षास्तावन्त एवाश्वरथा मुनीन्द्र ।

गजे गजे पञ्चशती पदाते किं वष्यंते तस्य चमूवरिष्ठा ॥९

अमात्यकोटचक्रसरावमात्थौ कुम्भाण्डनामाध्यथ कूपवर्णं ।

पित्रा सम शौर्यंपराक्रमाभ्या द्वाणो वले पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०

बलि सुराञ्जेतुमना प्रवृत्त सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे ।

ध्वजातपत्रैर्गंगानाबुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्मरण प्रकुर्वन् ॥११

अवाप्य धृन्नारिपुर सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढ ।

सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वञ्जकवादयश्च ॥१२

ततः प्रववृते युद्धे घोर गीर्वाणदैत्ययो ।

कल्पातमेघनिर्घोष डिडिमध्वनिसध्रमम् ॥१३

मुमुक्षु शरजालानि दत्त्वा सुमनसा वले ।

देवाश्च दैत्यसेनासु मग्रामेऽत्यन्तदारणे ॥१४

इस दैत्यराज बलि के पास बहुत ही विशाल सेना थी । उस बलि ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपने ही अधीन कर लिया था और उसको भोगता था । इसके पश्चात् इस राजा बलि ने स्वर्गलोक को भी जीतने का विचार किया था । इसके पास दस पद्म तो हाथी थे और हे मुनीन्द्र ! इतने ही इस बलि के पास अश्वो के रथ थे । प्रत्येक हाथी के साथ पाँच सौ २ पदाति (पैदल) सैनिक थे । इसकी इतनी बड़ी हुई महान विशाल सेना थी कि इसका वर्णन कहा तक किया जा सकता है ॥८॥१॥ इस राजा बलि के मन्त्रियों की संख्या कराडा में थी । इन सब मन्त्रियों में कुम्भाण्ड और कूपवर्ण नाम के दो महा

मन्त्री थे । राजा बलि के सौ पुत्र हुए थे । वाणापुर इन सबमें
 था और यह भी वीरता एवं बल पराक्रम में अपने ही पिता के स
 था ॥१०॥ राजा बलि ने देवगणों को जीतने का विचार अपन म
 स्थिर करके अपनी बड़ी भारी सेना को साथ लेकर यह वहाँ से
 दिया था । इस अपनी सेना के श्वज और छत्रों को देखकर उस
 समुद्र की लहररूपी विजलियों का स्मरण हो गया था ॥११॥ देवों
 महान् शत्रु दैत्य राज बलि ने वृत्रासुर के परम शत्रु देवराज इन्द्र
 स्वर्गपुरी पर आक्रमण कर दिया था । मृगराज से अति गहरी मित्र
 भी रखने वाले दैत्यों के द्वारा इन्द्र की स्वर्गपुरी को घेर लिया थ
 उस दैत्यों के आक्रमण को देखकर देवगण भी हाप में वज्र अ
 हथियार ग्रहण कर दैत्यों के साथ युद्ध करने के लिये सुसज्जित हो
 निकल आये थे ॥१२॥ उस समय में देवों और दैत्यों में महान् भो
 युद्ध होना प्रारम्भ हो गया था । उस युद्ध में प्रलय काल में होने व
 महान् मेघों के समान गडगडाहट हो रही थी तथा नगाड़ों की चोट
 ऐसी घोर ध्वनि हो रही थी कि उससे समस्त प्राणियों को चक
 आने लग गये थे ॥१३॥ दैत्यों ने देवों की सेना पर वाणों की घ
 वर्षा करना आरम्भ कर दिया था । उस महान् दारुद्ध युद्ध में दे
 गण भी दैत्यों पर वाणा की वर्षा करने लग गये थे ॥१४
 जहि दारय मिधीति छिधि मारय ताडय ।
 इन्पेव मुमहान्धोपो वदता सेनयोरभूत् ॥१५
 शरदुन्दुभिनिध्वानं सिहनाद सुरद्विपाम् ।
 भाङ्कारे स्यन्दनाना च वाणक्रेङ्कारनि स्वने ॥१६
 अश्वाना ह्येपितैश्चैव गजाना वृ हितैस्तथा ।
 टङ्कारैर्धनुषा चैव लोक शब्दमयोऽभवत् ॥१७
 सुरासुरविनिर्मु क्तवाणनिष्पेपजानते ।
 अकालप्रलय मेने निरीक्ष्य सकल जगत् ॥१८

वभौ देवद्विपा सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणि ।
 चलद्विद्युन्निभा रात्रिशछादिता जलदैरिव ॥१६
 तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान् सुरारिभि ।
 नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्त्रमा ॥२०
 केचित्सताडयामासुर्नागाग्रथान्थै ।
 अश्वैरश्वाश्च केचित्तु गदादण्डैरथार्द्यन् ॥२१

उस महान् भीषण युद्ध में सैनिकों के द्वारा मार दो, चीर डालो, फाड़ दो छेदन कर डालो इस तरह के उत्साह वर्धक शब्दों की ध्वनियाँ बहते, करते हुये एक दूसरे पर बराबर हमला कर रहे थे और महान् द्वन्द्व होने लग गया था ॥१५॥ उन देव और दैत्यों की भीषणता ऐसी बढ़ गई कि देवों की गूँजों में—असुरों की दहाड़ों से, राधों की जनझनाहट से, वाणों के छूटनेसे कर्ण कठोर ध्वनियों से अश्वों की हिनहिनाहट से, हाथियों की चिंघाड़ों से, घनुषों की टकारों से सम्पूर्ण ससार एक दम गूँज उठा था ॥१६॥१७॥ उस युद्ध के समय में देवों और दैत्यों के वाण जब परस्पर में टकराव कर रहे थे तो उस टक्कर से जो अग्नि उत्पन्न हुई थी उसको देखकर सम्पूर्ण जगत के प्राणी उसे अकाल प्रलय हुआ ही समझने लग गये थे ॥१८॥ दैत्यों की सेना लपलपाते हुये शस्त्रों को धारण किये हुये थी और वह मेघावृत चमकने वाली बिजली से युक्त रात सी दिखाई दे रही थी ॥ १६ ॥ देवताओं के गण भी बड़ी फुर्ती से वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे । उस युद्ध में दैत्य जिन पापानों को फँक कर देवों पर प्रहार करते थे देवता उनको अपने परम भयकर वाणों से चूर्ण कर दिया करते थे ॥२०॥ उस समय उस महान् भयङ्कर युद्ध में कोई हाथियों के द्वारा हाथियों को टक्कर दे रहे थे । कोई अश्व सवार अश्वों पर धावा बोल रहे थे और कुछ हाथों में गदा दण्डों को ग्रहण करके ही सहार करने में व्यस्त हो रहे थे ॥२१

परिधैस्ताडिता केचित्पेतु शोणितकूर्दमे ।
 समुत्कलातासव केचिद्विमानानि समाथिता ॥२२॥
 ये दैत्या निहता देवैप्रसह्य सङ्गरे तदा ।
 ते देवभावमापन्ता दैत्याःसमुपाद्रवन् ॥२३॥
 अथ दैत्यगणा ऋद्धास्तरड्यमाना सुरैर्भृशम् ।
 शस्त्रैर्बहुविधैर्द्वैवा निजघ्नुरतिदारुणा ॥२४॥
 हृदिभिर्दिपालैश्च खड्गै परशुतोमरै ।
 परिधैश्छुरिकाभिश्च चुन्तेश्चकैश्च शकुभि ॥२५॥
 मुमलैरकुशैश्चैव लाङ्गलै पट्टिशैस्तथा ।
 शक्त्योपलै गतघ्नीभि पाशैश्च तलमुष्टिभि ॥२६॥
 शूलैर्नालीकनाराचै क्षेपणोपैस्त्वमुदगरै ।
 रथाश्वनागपदगै सङ्घ्नो बधुधे रण ॥२७॥
 देवाश्च विविधास्त्राणि दैत्येभ्य समाक्षिपन् ।
 एव वपंसहस्राणि युद्धमासीत्सुदाहणम् ॥२८॥

उस समय मे कोई सैनिक परिधो के प्रहारो से प्रपीडित होकर बीच मे पड गये थे और कुछ प्राणो का परित्याग कर विमानो पर चढे जा रहे थे ॥२२॥ उस युद्ध मे देवो ने जिन दैत्यो को मार गिराया था वे फिर देव रूप धारण करके उल्टे दैत्यो पर झपट रहे थे ॥२३॥ उस युद्ध मे देवो ने दैत्यो की खूब दित खोलकर पिटाई की थी और दैत्यो ने भी कोई कसर नहीं छोडी थी । वे भी अनेक प्रकार के शस्त्रो के द्वारा देवो को मार रहे थे ॥ २४ ॥ उस समय मे युद्ध मे भिन्दिपाल, खड्ग, कुठार, तोमर परिध छुरिका, चुन्त (पाले) चक्र, शकु, मूमल, अकुश, लकडी, पटे, गोपन, तोप, फासे, हथेली, मुक्के, शूल, बन्दूक, न राच, क्षेपणीय, मुदगर, रथ, अश्व हाथी और पैदलो से बह रणभूमि खचाखच भरी हुई थी और महान् दारुण संग्राम हो रहा था ॥२४।२५।२६।२७॥ इस तरह मे यह देव दानवो

का युद्ध एक हजार वर्ष तक बराबर होता रहा था । इसमें देवों ने भी विभिन्न प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग दैत्यों की सेना पर किया था ॥२४

अथ दैत्यवले वृद्धे पराभूता दिवोकस ।

सुरलोक परित्यज्य सर्वे भीता प्रदुद्रुतु ॥२६

नररूपपरिच्छन्ना विचेरवनीतले ।

वैरोचनिस्त्रिभुवन नारायण परायण ॥३०

बुभुजेऽप्याहतौश्वयं प्रवृद्धश्रोमंमहानल ।

इयाज चाश्वमेधै स विष्णुप्रीणनतत्परः ॥३१

इन्द्रत्व चाकरोत्स्वगे दिवपालत्व तथैव च ।

देवाना प्रीणनार्थाय ये क्रियन्ते द्विजैर्मखा ॥३२

तेषु यज्ञेषु सर्वेषु हविर्भुक्ते स दैत्यराट् ।

अदिति स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदु खिता ॥३३

वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्भरिम् ।

शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्याना च पराजयम् ॥३४

हरिध्यानपरा भूत्वा तपस्तेपेर्जति दुष्करम् ।

निचित्काल समासोना तिष्ठन्ती च तत परम् ॥३५

दैत्यों का बल बराबर बढ़ता ही चला जा रहा था उस युद्ध में अततोऽगत्या देवगण दैत्यों से हार गये थे और भयभीत होकर सब देवता देवलार की छाउकर इधर उधर भाग गये थे ॥२६॥ फिर देवता लाग दैत्यों से इतने डर गये थे कि वे मनुष्यों के स्वरूप में पृथ्वी पर विचरण करने लग गये थे । फिर विराचन का पुत्र दैत्यराज अलि भगवान नारायण की भक्ति करता हुआ त्रिभुवन के राज्य सुख का उपभोग करने लग गया था ॥३०॥ इस दैत्यराज का ऐश्वर्य इतना बढ़ा-चढ़ा था कि कोई भी दम्भ कुछ चढ़ा नहीं डाल सकता था । उसकी राज्य सश्री दिा हुनी बढ़ रही थी । उस समय में उस महान

बलवान् दैत्यो के राजा बलि न भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने लिये अश्वमेध यज्ञ का यजन किया था ॥३१॥ इस बलि का व पराक्रम इतना बढ गया या कि यह स्वर्गलोक मे जाकर इन्द्रदेव क कार्य स्वय ही किया करता था । यज्ञ मण्डप मे ब्राह्मण लोग जो दे को वृत्ति देने के लिये जो भी हवि दिया करते थे उसे सभी यज्ञो वह दैत्यराज ही उस हवि को ग्रहण किया करता था क्योंकि देवग तो डरकर सय भाग ही गय थे । इस समय म अपने पुन देवा की ऐ द्रुदशा देखकर माता अदिति को बडा भारी दु ख हुआ था ॥२२॥ उस अदिति ने वहाँ पर रहना व्यथ समझकर फिर हिमाचल प प्रस्थान कर दिया था । वहा पर जाकर भी पुन देवो के ऐश्वर्य क इच्छा मन मे रखती थी और दैत्यो की पराजय होने की भावना उस हृदय मे थी ॥३४॥ यह अदिति बहा पर्वत पर श्री हरि के ध्यान म मग्न होकर परम दुःखर तप करने लग गयी थी । कुछ समय तव तो उसने बैठकर ही तपश्चर्या की थी फिर वह खडी होकर तपस्य करने लगी थी ॥३५॥

पादेनैकेन सुचिर तत पादाग्रमागत ।
 कचित्काल फलाहारा तत शीर्णदलाशना ॥३६॥
 ततो जलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता ।
 सच्चिदानन्दसन्दोह ध्याय यात्मानमात्मना ॥३७॥
 दिव्याब्दाना सहस्र सा तपोऽतप्यत नारद ।
 दुरन्त तत्तप श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम् ॥३८॥
 देवतारूपमास्थाय सप्रोचुर्बलिनो दिवा ।
 किमर्थं तप्यते मात शरीरपरिशोषणम् ॥३९॥
 यदि जानन्ति दैनेया महद्दुःख ततो भवेत् ।
 त्यजेद दु खबहुल कायशोषणकारणम् ॥४०॥
 प्रयाससाध्य मुकृत न प्रशसन्ति पण्डिता ।

शरीरयत्नतो रक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः ॥४१

ये शरीरमुपेक्षते ते स्युरात्मविधातिनः ।

सुख त्व तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२

बहुत समय तक एव ही पैर से खड़ी रहकर और फिर केवल अपने चरण के अँगूठे के बल पर ही खड़ी होकर उसने तपस्या की थी । कुछ समय तक तो उसने फलो का ही आहार किया था ॥३६॥ इसके उपरान्त जल का आहार और अन्त में केवल वायु को खाकर ही घोर तप अदिति ने किया था । हे नारद ! उम देव माता अदिति ने इस रीति से परम सच्चिदानन्द सन्दोह श्री भगवान का चित्त में ध्यान-स्मरण करते हुये एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की थी । उस देव माता अदिति की इस परम दुष्कर तपश्चर्या करने का वृत्तान्त सुनकर दैत्यो ने राजा बलि की प्रेरणा प्राप्त कर अपनी मर्या से देव रूप धारण किया था और उस तप में सलग्न अदिति के समीप में पहुँच कर उससे कहने लगे थे । इस समय में आप हे माता जी ! अपने शरीर को शोषण करने वाला ऐसा उग्र तप किस निये कर रही हो ॥३७-३६॥ आपकी इस तपस्या का ज्ञान यदि दैत्यो को लग जायगा तो फिर आपको बहुत अधिक कष्ट उठाना होगा । अतएव हम लोग यही प्रार्थना करते हैं कि इस अवस्था में आप शरीर को सुखा देने वाले तप को छोड़ दो क्योंकि इससे आपको इस समय में बहुत ज्यादा कष्ट उठाना पड रहा है ॥४०॥ अत्यधिक श्रम उठाने पर जो भी कुछ पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है उस फल के प्राप्त करने की महान पण्डित लोग प्रशंसा नहीं किया करते हैं । इसलिये जो कोई धर्म की साधना में सलग्न रहना चाहता है उसे अपने शरीर के संरक्षण का भली भाँति ध्यान रखना परम आवश्यक होता है ॥४१॥ जो अपने शरीर की पुण्य साधन के कार्यों में उपेक्षा किया करते हैं वे तो पुण्यात्मा न होकर आत्मघाती ही कहे जाया करते हैं । अतएव हे

भोग्यायवति । आप मुच्यते ही अपना जीवन त्रितायै । ऐमा
दुष्कर तप करके हम पुत्रों के चित्त में खिन्नता उत्पन्न न करे ॥

मात्रा हीना जना मातृमृतप्राया न सशय ।

गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहा ॥४३

न लभन्ते सुखं किञ्चिन्मात्रा हीना मृतोपम ।

दरिद्रो वापि रोगी वा देशान्तरगतोऽपि वा ॥४४

मातुर्दंशनमात्रेण लभते परमा मुदम् ।

अन्ने वा सलिले वापि धनादी वा प्रियासु च ॥४५

कदाचिद्विमुखो या त जनो मातरि कोऽपि न ।

यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा ।

साध्वी च स्त्री पतिप्राणा गन्तव्य तेन वी वनम् ॥४६

धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धन च सद्भोगविवर्जित हि

गृह च भ्रायांतनयोविहीन यथा तथा मातृविहीनमर्त्यं ॥

तस्माद्देवि परित्राहि दुःखात्तानात्मजान्त्वव ।

इत्युक्ताप्यदितिर्देव्यैर्न चचाल समाधितः ॥४७

एवमुक्त्वागुरोः सर्वे हरिर्ध्यानपरायणाम् ।

निरीक्ष्य क्रोधसयुक्ता हन्तुञ्चक्रुर्मनोरथम् ॥४८

किर देवस्वप्यारी उन देव्यो ने अदिति ने कहा—हे माता :
जो पुत्र अपनी माता से हीन हो जाया करते हैं व तो मृत के ही स
होने हैं । अपने ही पाम में गौ, पशु, वृक्ष सभी कुछ ही परन्तु यदि स
मही है तो ये सब उस मातृ-मुख की जिन्नी भी प्रकार न प्राप्ता
करा सकते हैं । जो अपनी मा से रहिन हा जाया करते हैं वे तो
मरे हुये से ही रहा करते हैं । चाहे कोई अति दरिद्र हो, राग युक्त
परदेन में रहना हो परन्तु माता कभी भी विमुख नहीं होनी
जिन्हें घर में जाना न हो और पतिप्राणा, धर्म परायणा, परम मा
पत्नी भी न हो उमेता वह उच्च घर का त्याग कर वन में ही

जाना चाहिये क्योंकि ऐसे शून्य घर में कुछ भी आनन्द नहीं रहा करता है ॥४३-४६॥ भगवान् नारायण की भक्ति से शून्य, धर्म, सद्भोग से रहित धन का वैभव, भार्या और पुत्रों से रिक्त घर जिस तरह से आनन्द से सूना होता है वैसे ही माता से रहित मनुष्य का जीवन भी निरानन्दामय हुआ करता है ॥४७॥ अतः हे देवि ! आप अपने परम खिन्न एवं दुःखित पुत्रों की रक्षा करो । इस प्रकार से दैत्यों के द्वारा माया कथन के करने पर भी अदिति ने अपनी समाधि का त्याग नहीं किया था ॥४८॥ असुरों के इस तरह से बहुत कुछ कहने पर भी जब अदिति उस से मस तक नहीं हुई और उसको सर्वदा भगवान् विष्णु के ध्यान में ही सलग्न पाया तो वे असुर क्रोध में भरकर उसे मार डालने का विचार करने लगे थे ॥४९॥

कल्पान्तमेघनिर्घोषा क्रोधसंरक्तलोचनाः ।

दष्ट्राग्रं रसृजन्वह्निं सोऽदहत्काननं क्षणात् ॥५०॥

शतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम् ।

तेनेव दग्धा दैतेया ये प्रधर्ययितुं गता ॥५१॥

सैवावशिष्टा जननी सुराणामब्दाच्छतादच्युतसक्तचित्ता ।

सरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन दैत्यान्तकेन स्वजनानुकम्पिता ॥५२॥

उन दैत्यों ने माता अदिति को भयभीत करने के उद्देश्य से प्रलय काल के मेघों के समान अपनी भाया रचित मेघों की गडगडाहट की थी और अत्यन्त उग्र क्रोध से अपने नेत्रों को लाल कर लिया था । अपनी दाढ़ों से अग्नि उत्पन्न कर चारों ओर फैला दी थी जो कि एक ही क्षण में सम्पूर्ण वन को भस्मसात् करने में लग गयी थी । चारसौ कोस पर्यन्त फैला हुआ वह वन जिसमें अनेक जीव जन्तु निवास किया करते थे घाय २ कर एक दम जलने लग गया था । उस अग्नि ने अपना प्रभाव प्रकट करने के लिये जो भी दैत्य वहाँ पर समागत हुए थे उनको भी जता दिया था ॥५०॥५१॥ चारों ओर उन दैत्यों

रूप से आप वर्णन करने की कृपा कीजिये क्योंकि जो भी मुनीश्वर होते हैं वे दूमरो को उपदेश प्रदान करके अपनी सज्जनता को प्रकट किया करते हैं ॥२॥ श्री सनःजी ने कहा—हे नारद । जो श्री हरि के चरणों में ध्यान लगा कर मग्न रहा करते हैं उन साधु पुरुषों को कौन बाधा पहुँचा सकता है ॥३॥ जिस स्थान पर श्री हरि की भक्ति में परायण प्राणी निवास किया करता है उसकी रक्षा करने के लिये सदा ब्रह्मा, विष्णु महेश, देवता सिद्धगण और परम श्रेष्ठ मुनीश्वर सभी खड़े रहा करते हैं ॥४॥ हे महाभाग ! जो अपने चित्त में परम शान्त रहा करते हैं । उनके चित्त में शान्ति प्रिय भगवान् स्वयं ही प्रकट होजाया करते हैं । जो सदा हरिनाम के उच्चारण में तत्पर रहते हैं और श्री हरि के ध्यान में अपने मन को लगाये हुये हैं उनकी क्या प्रशंसा की जावे ॥५॥ जिस स्थल में भगवान् शङ्कर अथवा भगवान् विष्णु की पूजा में मग्न मनुष्य निवास किया करता है वहाँ पर महालक्ष्मी और अन्य सभी देवता पूर्ण कृपा किया करते हैं ॥६॥ जिस स्थान पर श्री विष्णु की अर्चना करने में मग्न प्राणी रहता है वहाँ न अग्नि कोई दुःख दे सकता है और न वहाँ पर चोर तथा व्याधियों का ही कुछ प्रभाव हो सकता है ॥७॥

प्रेता पिशाचा कुम्भाण्डग्रहा बालग्रहास्तथा ।
 डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम् ॥८॥
 परपीडारता ये तु भूतवेतालकादयः ।
 नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चनेरतः ॥९॥
 जितेन्द्रिय सर्वहितो धर्मकर्मपरायणः ।
 यत्र तष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवता ॥१०॥
 निमिष निमिषाद्ध वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः ।
 तत्रैव सर्वश्रेयासि तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥११॥
 यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवः ।

स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५

देवमात प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया ।

चिरश्रान्तासि भद्र ते भविष्यति न सशय ॥१६

वर वरय दास्यामि यत्तो मनसि रोचते ।

मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥१७

इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा ।

तुष्टाव प्रणिपत्यैन सर्वलोकसुखावहम् ॥१८

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनादेन ।

सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१९

नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने ।

सर्वैकस्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०

नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे ।

राद्भक्तजनदात्सत्यशालिने मङ्गलात्मने ॥२१

म द मुस्कराहट के कारण कुछ प्रबट होते हुए दन्ती के प्रकाश के कारण से सभी दिशाओ मे परमोज्वल प्रकाश फैलाने वाले भगवान ने अपने कमलोपम परम कोमल बरो से देवमाता अदिति के शरीर का स्पर्श करते हुए कहा था—हे देवमाता । आपने अत्यधिक समय तक तपश्चर्या करके भक्तिभाव से मेरा समाराधन किया है और आपने बहुत ही अधिक थम उठाया है । मैं अब आप पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा पूर्ण रूप से कल्याण ही होगा—इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१६॥ अब आप क मन म जो भी अच्छा लगता हो वही बरदान मुझ से प्राप्त कर लो । हे भद्रे ! अब आप विल्कुल भी डरिय नहीं । अब आपका पूर्ण रूप से कल्याण होगा ॥१७॥ जिम समय मे चन्द्रधारी भगवान विष्णुदेव ने देवमाता अदिति म इस तरह मे कहा तो वही समस्त लोको का मुष्य प्रदान करन वाले भगवान का प्रणाम करके उनकी स्तुति करन लग गय थ ॥१८॥ अदिति न कहा—हे देवा के भी देवेश्वर । हे सर्वत्र व्यापक रहा वाल । हे जनादा । आप ही मेवा मे मेरा

प्रणाम समर्पित है । सत्त्वादि गुणों के प्रभेद से इस समस्त ससार के व्यापार के कारण स्वरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥१६॥ आप तो सर्व-व्यापक हैं अतएव आपके अनेक स्वरूप हैं । अपने २ रूप में प्रतिष्ठित अवस्था में रूप रहित ब्रह्मा, उदार चित्त वाले सभी रूपों के एक रूप (विराट् रूप धारण करने वाले) निर्गुण और सगुण परमात्मा के लिये मेरा प्रणाम है ॥२०॥ सम्पूर्ण ससार के स्वामी, परम ज्ञान स्वरूप, सज्जन अपने भक्तों पर कृपा करने वाले मङ्गलमय भगवान् की सेवा में सादर प्रणाम है ॥२१॥

यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वरा ।
 तमादिपुरुषं देवं नामामि ह्यर्थसिद्धये ॥२२
 श्रुतयो य न जानन्ति न जानन्ति सूरयः ।
 त नमामि जगद्धेतु समाय चाप्यमायिनम् ॥२३
 यस्यावलोकन चित्र मायोपद्रवकारणम् ।
 जगद्रूप जगद्धेतुं त वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४
 यत्पादाम्बुजकिञ्जल्कसेवारक्षितमस्तका ।
 अथापुः परमा सिद्धि वन्दे कमलाघवम् ॥२५
 यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमान न वै विदुः ।
 अत्यासन्न च भक्ताना तं वन्दे भक्तसगिनम् ॥२६
 यो देवस्त्यक्तसङ्गाना शान्ताना करुणार्णव ।
 करोति ह्यात्मन सङ्ग त देव सङ्गवर्जितम् ॥२७
 यज्ञेश्वर यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् ।
 नमामि यज्ञफलद यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥२८

महा मुनीश्वर त्रिन भगवान के स्वरूपों का अर्चन किया करते हैं उन परम पुराण आदि पुरुष देव को मैं अपनी मनोवाञ्छित कामना की सिद्धि के लिए प्रणाम करती हूँ ॥२२॥ त्रिन भगवान के वास्तविक स्वरूप का पूर्ण रूप में वर्णन श्रुतिगी नहीं कर सकना है और बड़े २

विद्वान् भी भगवान् के स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं बखान सकते हैं उन इस सम्पूर्ण विश्व के कारण स्वरूप, माया से विशिष्ट और माया से रहित परमेश्वर को मैं सादर प्रणाम करती हूँ ॥२३॥ जिन भगवान् का केवल दर्शन ही मोक्ष रूपी अद्भुत फल को प्रदान करने वाला है और जो इस माया स्वरूप उपद्रव का हेतुभूत है अर्थात् यह माया जिनसे प्रकट हुआ करती है उन्हीं जगन्मय विश्व के कारण, सर्व बन्धित भगवान् विष्णुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम है ॥२४॥ जिनके चरण कमल के केसर से अपने मस्तक को सुरक्षित करके प्राणी परम सुसिद्धि को प्राप्त किया करते हैं उन्हीं कमलाकान्त भगवान् की मैं वन्दना करती हूँ ॥२५॥ ग्रहादि बड़े २ देव भी जिन भगवान् की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं और जो अपने भक्तों के लिये प्रकट हुआ करते हैं । उन्हीं भक्तों के सङ्ग करने वाले माधव की मैं वन्दना करती हूँ ॥२६॥ जो इग सप्तर को त्याग कर परम शांत भक्तजनों के लिए वरुणा के मागर के समान हैं और उनके साथ रहा करते हैं उन सर्व मङ्ग से रहित देवदेव की सेवा में मेरा सादर प्रणाम है ॥२७॥ यज्ञ कर्मों के साक्षी, यज्ञकर्म, यज्ञकर्मों में निष्ठित, यज्ञों का फल प्रदान करने वाले और यज्ञकर्मों के फल का बोध करने वाले वेदस्वरूप भगवान् विष्णु को मेरा प्रणाम अर्पित है ॥२८॥

अजामिनोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु ।
 प्राप्तवात्परम धाम त वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥२९॥
 हरिरूपी महादेव शिवरूपी जनार्दन ।
 इति लोकस्य नेता यस्त नमामि जगद्गुरुम् ॥३०॥
 ग्रहाद्या अपि देवेश यन्मायापाशयन्त्रिता ।
 न जानन्ति पर भाव त वन्दे सर्वनायकम् ॥३१॥
 हृत्पदमस्योऽप्ययोग्याना दूरस्य इव भासते ।
 प्रमाणातीतसदभावस्त वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२॥

यन्मुखाद् ब्राह्मणो जातो बाहुभ्या क्षत्रियोऽजनि ।
 ऊर्वोर्वैश्यः समुत्पन्न पद्भ्या शुद्रोऽभ्यजायत ॥३३
 मनसश्चन्द्रमा जातो जात. सूर्यश्च चक्षुष. ।
 मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४
 ऋग्यजु सामरूपाय सप्तम्बरगतात्मने ।
 पङ्गरूपिणे तुभ्य भूयोभूयो नमो नम ॥३५

महापापी अज्ञामिल भी जिनके एक ही वार अन्त समय में "नारायण"—इस शुभ नाम के उच्चारण करने मात्र से ही परम पद को प्राप्त हो गया था उन्ही इस सम्पूर्ण लोक के दृष्टा भगवान् विष्णु को मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥२६॥ महादेव विष्णु के रूप वाले हैं और जनार्दन भगवान् शिव स्वरूप हैं । इस रीति से सब लोको को उपदेश प्रदान करने वाले जगत् के गुरुदेव भगवान् विष्णु की सेवा में अपना प्रणाम करती हूँ ॥३०॥ ब्रह्मादिक देवगण भी जिनकी महा-माया के पाश में बद्ध होकर उस परम तत्व को वास्तविक रूप में नहीं जान पाते हैं उन्ही जगत् के नायक भगवान् विष्णु की सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥३१॥ सर्वान्तरयामी और सब के हृदय कमल में विराजमान रहने वाले भगवान् विष्णु जो योग्य नहीं है उन लोगों को दूर ही लगा करते हैं, किसी भी प्रत्यक्षानुपानादि प्रमाणों से जिनके असली भाव का निरूपण नहीं किया जा सकता है उन्ही ज्ञान के साक्षी भगवान् विष्णुदेव को मैं प्रणाम करती हूँ ॥३२॥ जिन प्रभु के मुखारविन्द से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, भुजाओं से क्षत्रिय प्रकट हुए हैं, जाघों से वैश्यों का उद्भव हुआ है और चरणों से शूद्रों का जन्म हुआ है । उन्ही चारों वर्णों को समुत्पन्न करने वाले भगवान् का मैं प्रणाम करती हूँ ॥३३॥ जिन भगवान् के मन से चन्द्रदेव प्रकट हुए हैं, जिनके नेत्रों से सूर्यदेव, मुख से इन्द्र और अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ है तथा प्राण से वायु ने अपना रूप प्रकट किया है उन भगवान् को मैं प्रणाम

करती हूँ ॥३४॥ ऋक्, यजु और सामवेद स्वरूप सातो स्वरो मे, व्याप्त
आत्मा वाले षडङ्ग रूपी आप के तिये में बारम्बार प्रणाम करती हूँ
॥३५॥

त्वमिन्द्र पवन सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तक ।
त्वमग्निनिर्ऋतिश्चैव वरुणस्त्व दिवाकर ॥३६
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसा ।
गिरय सिद्धगधर्वा नद्यो भूमिश्च सागरा ॥३७
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्व परात्पर ।
त्वद्रूपमखिल देव तस्मान्नित्य नमोऽस्तु ते ॥३८
अनाथनाथ सर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह ।
दैतेयैर्वाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन ॥३९
इति स्तुत्वा देवमाता देव नत्वा पुन पुन ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनो ॥४०
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण ।
अकण्टका श्रिय देहि मत्सुताना दिवोकसाम् ॥४१
अन्तर्यामिञ्जगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर ।
अज्ञात किं तव श्राश किं मामीहयसि प्रभो ॥४२

आप ही इन्द्र, पवन, सोम, ईशान, अन्तक, आग्नि, निऋति,
वरुण और दिवाकर के रूप में काम किया करते हैं ॥३६॥ विश्व में
देव, स्थावर, पिशाच, राक्षस, सिद्ध, पर्वत, गन्धर्व, नदी, भूमि और
समुद्र सब में आप ही का प्रकाश दिखाई दिया करता है ॥३७॥ हे
भगवन् । आप ही इस समस्त जगत् के स्वामी हैं और आप जहाँ पर
भी हैं परम श्रेष्ठ हैं । हे देवेश्वर । यह सम्पूर्ण जगत् आप का ही रूप
है अतएव आपकी सेवा में मरे सर्वदा प्रणाम अर्पित है ॥३८॥ हे
नाथा के स्वामी । हे सर्वज्ञ । हे तमस्त प्राणियो और देवेन्द्र में
व्याप्त । हे जनार्दन । मरे सब पुत्र इन समय में इन दुष्ट दैत्यों से पीडा

प्राप्त कर रहे हैं आप उनकी रक्षा कीजिए ॥३६॥ इस प्रकार से स्तवन करके देवमाता अदिति ने भगवान की सेवा में अनेक वार प्रणाम किया था । हर्षातिरेक होने के कारण वहने वाले अध्रुवों से उसके स्तन भीग गये थे । उस समय में वह अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भगवान से प्रार्थना करने लग गई थी ॥४०॥ अदिति ने कहा—हे सब के आदि कारण देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर अपनी अनुकम्पा करने की इच्छा करते हैं तो मैं यही आपकी सेवा में विनम्र निवेदन करती हूँ कि मेरे पुत्रों को (देवगणों को) निष्कण्टक लक्ष्मी प्रदान कीजिएगा ॥४१॥ हे जगद्रूप अन्नर्षामिन् ! हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप से तो कुछ भी छिपा हुआ नहीं है तथापि हे लक्ष्मीपति देव ! आप मुझ से अपनी मनोव्यथा को कहने के लिए क्यों प्रेरित कर रहे हैं ॥४२

तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते ।

वृथापुत्रास्मि देवेश दैतेयै परिपीडिता ॥४३

तान्न हिसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम ।

तानहत्वा श्रिय देहि मत्सुतेभ्य सुरेश्वर ॥४४

इत्युक्तो देवदेवेश. पुन. प्रीतिमुपागतः ।

उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ॥४५

प्रीतोऽस्मि देवि भद्र ते भविष्यामि सुतो ह्यहम् ।

यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्य देवि दुर्लभम् ॥४६

त्वया तु यत्कृत स्तोत्र तत्पठन्ति नरास्तु ये ।

तेषां सपत्न्या पुत्रा न हीयन्ते कदाचन ॥४७

त्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।

न तस्य पुत्रशोकः स्यादेव धर्म सनातनः ॥४८

नाह वोढु क्षमा देव त्वामद्य पुरुष परम् ।

असंख्याताण्डरोमाण सर्वेश सर्वकारणम् ॥४९

फिर भी मेरे मन को जो भी अच्छा मान्य होता है उसी को

मैं आपकी सेवा में निवेदित करती हूँ । हे देवेश्वर ! मेरी सपत्नी दिति के पुत्र दैत्यो से मैं इस समय में अत्यधिक सताई हुई हूँ और मेरे सभी पुत्र विचारे मारे २ व्यर्थ ही इधर उधर डोल रहे हैं ॥४३॥ हे भगवन् ! मैं उन दैत्यो को मारना तो नहीं चाहती हूँ क्यों कि आखिरकार वे भी मेरे ही पुत्र हैं । हे भगवन् ! आप सहार किये ही बिना मेरे पुत्रो से अपहृत की हुई सम्पत्ति उनको दिना दीजिए ॥४४॥ हे विप्र ! इस रीति से अदिति के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् और भी अधिक उस पर प्रसन्न हो गये थे और फिर आदर के साथ देवमाता को प्रसन्न करते हुए बोले ॥४५॥ श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! आपका कल्याण हो । मैं तुम पर अधिक प्रसन्न हूँ । हे देवि ! अपनी सपत्नी के पुत्रो पर वत्सलता का भव दिखाना बहुत ही कठिन है । अतः मैं आपका पुत्र बनकर ही समुत्पन्न होऊँगा ॥४६॥ आप के कहे हुए इस स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेंगे उनके पुत्र और धन का कभी विनाश नहीं होगा ॥४७॥ अपने और दूसरे के पुत्र में जो कोई समता का बरताव रखता है उसको कभी भी अपने पुत्र का शोक नहीं हुआ करता है यही सनातन धर्म है ॥४८॥ अदिति ने कहा—हे देव ! आप तो परम पुरुष हैं । अखण्ड एव असंख्य ब्रह्माण्ड आपके रोमों में भरे हुए हैं । आप सब के स्वामी हैं और सब के आप कारण हैं । अतएव मैं आपको धारण करने में असमर्थ हूँ ॥४९॥

यत्प्रभाव न जानन्ति श्रुतयः सर्वदेवता ।
 तमहं देवदेवेश धारयामि कथं प्रभो ॥५०॥
 अणोरणीयासमजं परात्परतरं प्रभुम् ।
 धारयामि कथं देव त्वामहं पुरुषोत्तमम् ॥५१॥
 महापातं युक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमाश्रतः ।
 मुच्यते स कथं देवो ग्राम्येषु जरिमहंति ॥५२॥
 यथा शूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो ।

तयायमपि को वेद तव विश्वेश चेष्टितम् ॥५३
 त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा ।
 त्वामेव चितये देव यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४
 तयोक्त वचन श्रुत्वा देवदेवो जनादन ।
 दत्त्वाभय देवमातुरिद वचनमब्रवीन् ॥५५
 सत्यमुक्त महाभागे न्वया रास्त्यत्र सशय ।
 तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्रह्यतर शुभे ॥५६

हे प्रभो ! जिनके प्रभाव और महिमा का पार श्रुति और
 समस्त देववृन्द भी नहीं कर सकते हैं । उन देव देवश्वर को मैं अपने
 उबर में कंठ धारण कर सकूँगी ? ॥५०॥ हे देव ! आप तो सूक्ष्म से
 भी परम सूक्ष्म हैं—आप उत्पत्ति से रहित हैं और पर से भी पर प्रभु
 हैं । पुरुषात्तम आपकी मैं कैसे धारण करूँगी ? ॥५१॥ ब्रह्महत्या आदि
 महापातक करने वाला मनुष्य भी जिनके नाम का स्मरण मात्र करने
 से ही मुक्त हो जाया करता है वह देवेश्वर मुझ जैसी घामीण के यहाँ
 जन्म धारण करे—यह कैसे उचित होगा ? ॥५२॥ अच्छा जिस तरह
 से आपके शूबर और मत्स्य आदि अवतार हुए हैं वैसे ही यह भी
 थापना अवतार हो जायगा क्यों कि हे विश्वेश ! आपकी चेष्टा को
 मैं समझ सकता है ॥५३॥ जैसी आपको इच्छा हो वही आप करिए ।
 मैं तो सर्वदा आपके चरण कमला में प्रणाम करती हूँ ॥५४॥ श्रीसुक-
 देवदेव जनार्दन न देवमाता अदिति को अणप का दान दिया और यह
 कहन लगे थे ॥५५॥ भगवान् न ब्रह्मा—हे महाभागे ! तुमने सर्वथा
 सत्य ही ब्रह्मा है—इन आपके कथन में कुछ भी सन्देह नहीं है । हे
 शुभे ! हे मैं एक परम गुप्त बात आप से कहना हूँ उसका आप श्रवण
 करे ॥५६

रागद्वेषविहीना ये यद्भक्ता मत्परायणा ।
 वहति सतत ते मा गतासूया अदाम्भिव ॥५७

परोपतापविमुखा शिवभक्तिपरायणा ।
 मत्कथाश्रवणासक्ता विहन्ति सतत हि माम् ॥५८
 पतिव्रता पतिप्राणा पतिभक्तिपरायणा ।
 बहन्ति सतत देवि स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सरा ॥५९
 मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्गुरुभक्तोऽतिथिप्रिय ।
 हितकृद्ब्राह्मणानां यः स मां वहति सर्वदा ॥६०
 पुण्यतीर्थरता नित्यं सत्सङ्गनिरतास्तथा ।
 लोकानुग्रहशीलाश्च सततं ते बहन्ति माम् ॥६१
 परोपकारनिरता परद्रव्यपराङ्मुखा ।
 नपुंसका परस्त्रीषु ते बहन्ति च मां सदा ॥६२
 तुलस्युपासनरता सदा नामपरायणा ।
 गौरक्षणपरा ये च सततं मां बहन्ति ते ॥६३

जो पुष्प राग द्वेष से रहित है और मेरे भक्तजन हैं, जो अह-
 निश मेरे ही चरणों में सलग्न रहा करते हैं, जो असूया और दम्भ से
 रहित हैं वे तो सदा ही मुझे धारण करने में समर्थ होते हैं ॥ ५७ ॥
 जो सदा दूसरों को सन्ताप देने से बचते हैं और भगवान् शिव की
 भक्ति में लीन रहा करते हैं तथा सदा मेरी कथा के श्रवण करने की
 जितनी तालसा रहा करती है वे मुझे सर्वदा धारण कर सकते हैं
 ॥५८॥ हे देवि । जो स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं और अपने पति को
 प्राण के समान ही समझा करती हैं तथा अहनिश पति की भक्ति में ही
 सलग्न रहा करती हैं । जो स्त्रियाँ मात्सर्य से रहित होती हैं वे मुझे
 सदा धारण करने में समर्थ होती हैं ॥५९॥ जो अपने माता पिता की
 सदा सेवा भक्ति भाव से किया करता है—जो गुरु या परम भक्त है
 तथा ममागत अतिथि को प्रिय समझता है और विप्रों का हित विद्या
 करता है वह मुझे धारण करने का पात्र क्यों नहीं है ? ॥ ६० ॥ जो
 परम पुण्यमय तीर्थों में घ्रमण किया करते हैं, सदा सत्पुरुषों की गति

किया करत हैं, जिनका स्वभाव समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने का होता है व मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६१॥ जो परापकार में तत्पर, दूसरे के द्रव्य से विमुक्त रहा करते हैं तथा पराई स्त्रियों के वियोग में नष्ट सक्त्व रक्खा करत हैं वे मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६२॥ जो सदा तुलसी की उपासना किया करते हैं, जो सदा मेरे नामों का स्मरण किया करत हैं और नाम स्मरण में मग्न रहा करत हैं । जो सर्वदा गौ रक्षा में सलग्न रहते हैं, उनके समीप में तो मैं सर्वदा ही रहा करता हूँ ॥६३

प्रतिग्रह निवृत्ता ये परान्निविमुखास्तथा ।

अन्नोदकप्रदाताप्यो वहन्ति सतत हि माम् ॥६४

त्व तु देवपतिप्राणा साध्वी भूतहिते रता ।

संप्राप्य पुत्रभाव ते साधयिष्ये मनोरथम् ॥६५

इत्युक्त्वा देवदेवशो ह्यदिति देवमातरम् ।

वत्सा कण्ठगता मालामभय च त्तिरोदधे ॥६६

सा तु सहृष्टमनसा देवसूदंक्षनन्दिनी ।

प्रणम्य कमलाकान्तं पुनः स्वस्थानमाव्रजत् ॥६७

ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रोता लोकवन्दिता ।

असूत समये पुनः सर्वलोकनमस्कृतम् ॥६८

शखचक्रधर शान्त चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।

सुधावलशदध्यन्नकर वामनसज्जितम् ॥६९

सहस्रादित्यसकाश व्याकोशकमलेक्षणम् ।

सर्वाभरणसयुक्त पीताम्बरधर हरिम् ॥७०

स्तुत्य मुनिगर्णयुक्तं सर्वलोकैकनायकम् ।

आविभूतं हरिं ज्ञात्वा वश्यो हर्षविह्वलः ।

प्रणम्य प्राञ्जलिभूत्वा स्तौतुः समुपचक्रमे ॥७१

जो दान लेने के कार्य से दूर रहते हैं, जो दूसरों के धन से बचते रहा करते हैं तथा जो स्वयं अन्न और जल का दान दिया करते

हैं वे मुझे पाने के सर्वदा अधिकारी पात्र हुआ करते हैं ॥६४॥ हे देवि ! आप तो समस्त प्राणियों के हित करने में परायण रहा करती है और पतिप्राणा एव परम साध्वी हैं अतएव मैं आपका पुत्र बन कर आपका मनोरथ पूर्ण कर दूंगा ॥६५॥ उन देवेश्वर भगवान ने देवों की माता अदिति को इस रीति से समझा बुझाकर उसको अमय का दान प्रदान करके अन्त में अपने कण्ठ की माला देकर वही पर अन्तर्घनि हो गये थे ॥६६॥ उस समय में वह दक्ष प्रजापति की पुत्री देव माता अदिति अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर सध्मीनारायण भगवान को प्रीति पूर्वक प्रणाम करती हुई अपने स्थान पर वापिस लौट कर आ गयी थी ॥६४॥ इसके उपरान्त समस्त ससार की वन्दनीया अदिति ने परम प्रसन्नता में भरी रहती हुई समय समाप्त होने पर परम वन्दनीया पुत्र का प्रसव किया था ॥६८॥ कश्यप मुनि ने भी शख, चक्र, गदाधारी, परम शान्त चन्द्र मण्डल के मध्य में विराजमान, हाथ में अमृत का पात्र, दधि और अन्न ग्रहण किये हुए वामन नाम को धारण करने वाले, सहस्रो सूर्यों के समान तेजस्वी, कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों से युक्त, सभी आभरणों से विभूषित, स्तुति के समुच्चिन पात्र, मुनियों से घिरे हुये और सब लोको में अद्वितीय एव अनुपम नायक को देखकर उन्होंने साक्षात् श्री हरि को प्रकट हुआ समझ लिया था और परम हर्ष से गद्गद् होकर हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुये स्तवन करने के लिये समुद्यत हो गये थे ॥६९-७१॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।

नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ॥ ७२

नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नम सज्जनरजिताय ।

नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥ ७३

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।

सर्शाङ्गवक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुत्रोत्तमाय ॥ ७४

नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्भृत्कमलस्थिताय ।
 नमोऽस्तु सूर्याद्यमिदप्रभाय नमो नमः पुण्यकथागताय ॥७५॥
 नमो नर्मोऽर्कन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
 नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥७६॥
 नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविर्वाजिताय ।
 नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय ॥७७॥

कश्यप मुनि ने कहा—हे भगवन् ! सबके कारण स्वरूप भाग्य की सेवा में मेरा प्रणाम है । सबके परिपालन करने वाले आपकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है और पुनः प्रणाम है । देवों के नायक आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है । दैत्यों के विनाश करने वाले आपकी सेवा में मेरा पुनः पुनः प्रणाम है ॥७२॥ भक्तों के परम प्रिय भगवान् को बारम्बार नमस्कार है । सज्जनों को प्रसन्न करने वाले भगवान् की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है । दुर्जनों का नाश करने वाले भगवान् को मेरा बारम्बार नमस्कार है । जो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं उन भगवान् के लिये मेरा प्रणाम है ॥७३॥ विशेष कारण के वशीभूत होकर वामन स्वरूप का अवतार धारण करने वाले तथा अमित विक्रम वाले भगवान् को मेरा बारम्बार प्रणाम है । शाङ्ख-धनुष, मुदशंन चक्र, नन्दक खड्ग और कीमोदकी गदा को धारण करने वाले परम पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम है ॥७४॥ क्षीर सागर में निवास करने वाले विश्वम्भर भगवान् को नमस्कार है । सत्पुरुषों के हृदय कमल में सस्थित अन्तर्यामी ईश्वर के लिये मेरा प्रणाम है । सूर्यादि के तुल्य अपरिमित प्रभा से ममन्वित आपकी सेवा में प्रणाम है तथा परम पवित्र कथाओं में वर्णन किये गये आपको नमस्कार है ॥७५॥ सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रा वाले भगवान् की सेवा में बारम्बार नमस्कार है । यज्ञों के पुण्य फल को प्रदान करने वाले तथा यज्ञाङ्गों में विराजमान ब्रह्म के लिये नमस्कार है । हे सत्पुरुषों को

प्रिय समझने वाले ! आपको मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७६॥
 इस सम्पूर्ण जगत्के कारण स्वरूप ईश्वर के लिये नमस्कार है। शब्दादि
 से रहित भगवान् के लिये नमस्कार है तथा दिव्य सुख प्रदान करने
 वाले भगवान् को प्रणाम है और भगवद्भक्तों के मनमें सदा निवास
 करने वाले भगवान् को प्रणाम है ॥७७॥

नमोऽस्तु ते ध्वान्तविनाशकाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
 नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥७८॥
 नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।
 नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥७९॥
 नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ।

स्मृतातिनाशिते तुभ्य भूयो भूयो नमो नमः ॥८०॥

यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ।

यज्ञरूप यज्ञद्रूप यज्ञाग त्वां यजान्यहम् ॥८१॥

इति स्तुतः स देवसो वामनो लोकपावनः ।

उवाच प्रहसन्हृषं वर्द्धयन्कश्यपस्य सः ॥८२॥

तात तुष्टोऽस्मि भद्र ते भविष्यति सुरार्चित ।

अचिरात्साधयिष्यामि निखिल त्वन्मनोरथम् ॥८३॥

अहं जन्मद्वयोस्त्वेष युवयोः पुनता गतः ।

अस्मिञ्जन्मन्यपि तथा साधयाम्युत्तम सुखम् ॥८४॥

अज्ञानान्धकार विनाश करने वाले, मन्दराचलधारी, यज्ञवराह,
 हिरण्याक्ष के विदारण करने वाले भगवान् की सेवा में बारम्बार
 प्रणाम समर्पित है। वामन का स्वरूप (वीना) धारण करने वाले
 आपके लिये मेरा प्रणाम है। क्षत्रियों के वश का विध्वंस करने वाले
 परशुराम के अवतार वाले आपको नमस्कार है। लकेश्वर रावण का
 वध करने वाले रामरूप आपको नमस्कार है। बताराम के छोटे भाई
 नन्द मुत्त श्रीकृष्ण का अवतार धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम

है ॥७८॥७९॥ हे कमलाकान्त ! सुख प्रदान करने वाले आपको प्रणाम करता हूँ । स्मरण करने मात्र से पीडा को दूर भगा देने वाले आपको बारम्बार प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे यज्ञ विन्यास ! हे यज्ञो के विधियों को विनष्ट करने वाले । हे यज्ञ स्वरूप । हे यज्ञाङ्ग ! मैं आपका पूजन करता हूँ ॥८०॥८१॥ इस प्रकार से कश्यप मुनि के द्वारा स्तुति किये जाने पर लोकपावन, देश भावन भगवान वामनजी हँसकर कश्यप मुनि का हर्ष वर्धन करते हुये बोले ॥८२॥ श्री भगवान न कहा—हे पिता जी मैं प्रसन्न हूँ । हे देवो के वन्दनीय । आपका कल्याण होगा ॥८३॥ मैं वृष्णिगर्भ और श्रीवृष्ण इन दोनों नामों से आपका पुत्र बना करता हूँ अतएव इस वामन जन्म मे भी आपको सुख दूँगा ॥८४॥

अनान्तरे वलिर्देत्यो दीर्घसत्र महामखम् ।
 आरेभे गुरुणा युक्त काव्येन च मुनीश्वरं ॥८५॥
 तस्मिन्मये समाहूतो विष्णुलंङ्गीसमन्वित ।
 हविस्वीकरणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभि ॥८६॥
 प्रवृद्धै श्वर्यदैत्यस्य वर्तमाने महाकृती ।
 आमन्थ्य मातापितरौ स ददुर्वामानो ययौ ॥८७॥
 स्मितेन मोहयँल्लोक वामनो भक्तवत्सल ।
 हविर्भोक्तुमिवायातो वले प्रत्यक्षतो हरि ॥८८॥
 दुष्टं तौ वा जडा वाय हितोऽपि वा ।
 यो भक्तियुक्तस्तस्यान्त सदा सनिहितो हरि ॥८९॥
 आयान्त वामन दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुष ।
 ज्ञात्वा नारायण देवमुद्ययु सम्यसयुता ॥९०॥
 एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकाते वलिमब्रवीत् ।
 स्नसारमत्रिचार्यैव खला कार्याणि कुर्वते ॥९१॥

इस और दैत्यराज वलि ने अपन गुस्वर शुकाचार्य और अन्य मुनीश्वरों को अपन साथ मे लेकर बहुत लम्बे समय तक चलने वाले

एक बड़े भारी यज्ञ के करने का आरम्भ कर दिया था ॥८५॥ उस यज्ञ में ब्रह्मवादी महामहर्षियों ने लक्ष्मीनारायण भगवान का हवि स्वीकार करने के लिए आवाहन किया था ॥८६॥ उस समय में बटुक वामन अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त करके बड़े हुये ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्यराज के विय जाने वाले महा यज्ञों के देखने को चल दिये थे ॥८७॥ भक्तवत्सल वामन देव अपनी मन्द मुस्कराहट से सम्पूर्ण सत्कार को मुग्ध करते हुये बलि राजा के सामने प्रकट होकर विष्णु भगवान के हवि का भोग लगाने का समान आगे को बढ चले ॥८८॥ जो अन्नकरण में भक्ति का भाव रखता है वह दुराचारी हो या सदाचारी, जड हा या प्राज्ञ, जो लोगों के हित का काम करने वाला है श्री हरि उसके समीप में रहा करते हैं ॥८९॥ वहाँ पर वामन देव को आते हुये देखकर ऋषिगणों ने अपनी ज्ञान दृष्टि से देख लिया था कि यह तो भगवान नारायण ही आ रहे हैं अतः वे सम्प्रा के साथ गानोत्तान देने के लिए सब खड़े हो गये थे ॥९०॥ दुष्ट लोग अपनी शक्ति का विचार न कर काम करने के लिए उद्यत हो जाया करते हैं अतएव दैत्य गुरु शुक्राचार्य इस बात को जाँच गये थे और फिर राजा बलि से एकान्त में जाकर कहन लगे थे ॥९१॥

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ।
 विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदिते पुत्रता गत ॥९२॥
 तवाध्वर स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ।
 न किञ्चिदपि दातव्य मन्मत शृणु पण्डित ॥९३॥
 आत्मवृद्धि सुखकरो गुरुवृद्धिविशेषण ।
 परवृद्धिविनाशाय स्त्रीवृद्धि प्रलयकरो ॥९४॥
 शत्रूणा हितकृतवस्तु स हन्तव्यो विशेषत ॥९५॥
 गुरो न क्तव्य धर्ममार्गविगोधत ।
 यदादत्तो स्वय विष्णु किमस्मादधिक वरम् ॥९६॥

कुर्वन्ति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात् ।
 स चेत्साक्षाद्विभोगी मत्त कोऽभ्यधिको भुवि ॥६७॥
 दरिद्रेणापि यत्किञ्चिद्दीयते विष्णवे गुरो ।
 तदेव परम दान दत्ता भवन्ति चाक्षयम् ॥६८॥

श्री गुकाचार्यजी ने कहा—हे दैत्यराज । आप तो बहुत ही सीधे साधे और भोले हैं । मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपकी लक्ष्मी का अपहरण करने के लिये और इसी विचार से यह विष्णु भगवान ही अदिनि के पुत्र बन कर यहाँ आय है ॥६२॥ हे असुरेश्वर । वही आपके इस यज्ञ - मण्डप में आरहे हैं । अब हे पण्डित ! आप मेरी बात का श्रवण कर भली भाँति समझ लो आप उसको कुछ भी मत देना ॥६३॥ अपने अन्दर यदि बुद्धि हो तो वह हमेशा सुख देने वाली हुआ करती है परन्तु अपने गुरुदेव की बुद्धि परम सुख दिया करती है और शत्रु अथवा दूसरे की बुद्धि नाश कारिणी होती है । यह कहा भी गया है कि मूर्ख सदा दूसरे की बुद्धि श्रवण किया करता है । स्त्री की बुद्धि प्रलयकारिणी हुआ करती है ॥६४॥ जो पुरुष अपने शत्रुगण का हित किया करता है वह तो भली भाँति नष्ट विनष्ट होकर ही रहा करता है ॥६५॥ राजा बलि ने इस गुरुदेव के वचन का उत्तर दिया था । उसने कहा—हे गुरुदेव ! धर्म मार्ग के विपरीत आपको ऐसी बात कभी भी नहीं करनी चाहिये । यदि स्वयं विष्णु ही दान लेना चाहते हैं तो इससे भली दूसरी मेरे लिये और क्या बात हो सकती है ॥६६॥ विद्वान् लोग भगवान विष्णुदेव को प्रसन्न करने के लिये तो यज्ञ कर्म आदि किया करते हैं । जब वे स्वयं ही हवि का भोग लगाना चाहते हैं तो इस भूमण्डल पर मुझसे अधिक महान भाग्य-शाली कौन होगा ? ॥६७॥ हे गुरुवर ! एक महान दरिद्र पुरुष भी जो कुछ यथा शक्ति विष्णुदेव की प्राप्ति के लिये दान दिया करता है वह दान परम श्रेष्ठ और अक्षय हुआ करता है ॥६८॥

स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः ।
 येन केनाप्यचित्तश्चेद्ददाति परमा गतिम् ॥६६॥
 हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तोरपि स्मृतः ।
 अनिच्छयापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पातकः ॥१००॥
 जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
 स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१०१॥
 गोविदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागादिवर्जितः ।
 स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०२॥
 अग्नीं च ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरोः ।
 हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णुः प्रसीदति ॥१०३॥
 अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् ।
 स्वयंमायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न शशयः ॥१०४॥
 एव वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामिनरूपधृक् ।
 प्रविवेशाध्वरस्थानं हृतवह्निमनोरमम् ॥१०५॥

पुरुषोत्तम प्रभु तो अत्युत्कृष्ट भक्तिभाव से स्मरण करने पर ही, उस अपने उपासक भक्त को परम पवित्र कर दिया करते हैं चाहे जो कोई भी हो जब उनका वह पूजन करता है तो वे उसको परमोत्तम गति दिया करते हैं ॥६६॥ दोषयुक्त चित्त वाले पुरुष भी यदि श्री हरि भगवान का स्मरण किया करते हैं तो भी वे उनके सम्पूर्ण पाप को हरण कर लिया करते हैं। अग्नि को बिना इच्छा के भी कोई स्पर्श करे तो अवश्य ही जला दिया करता है। इसी प्रकार से भगवान श्री हरि तो पापों के समुदाय का विनाश कर दिया करते हैं ॥१००॥ जिन पुरुषों की जिह्वा के अग्र भाग पर श्री हरि इन दो अक्षरों का निवास रहा करना है वह तो उस परमोत्तम विष्णु लोक की प्राप्ति क्रिया करता है जिम पद में फिर वापिस लौटना परम दुर्लभ हुआ करता है ॥१०१॥ बुद्धिमान पुरुष कहा करते हैं जो रागादि दोषों से रहित

होकर के सर्वदा श्री गोविन्द भगवान् वा ध्यान किया करते हैं वे निश्चय ही भगवान् विष्णु के लोभ की प्राप्ति किया करते हैं ॥१०२॥ हे महाभाग ! श्री हरि की भक्ति के साथ जो हवि अग्नि या ब्राह्मण में होमी जाया करती है उससे भगवान् श्री विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१०३॥ मैं भी तो इस समय भगवान् श्री विष्णुदेव को प्रसन्न करने के ही लिये इस महान् यज्ञ का यजन कर रहा हूँ । अब यदि भगवान् विष्णु स्वयं ही कृपा करके यहाँ पदार्पण करते हैं तो मैं तो निश्चित ही परम वृत्तवृत्त्य हो जाऊँगा ॥१०४॥ वह दैत्यराज बलि इस प्रकार से अपने गुरुदेव से कह ही रहा था कि अग्नि में होम करने से उस परम मनोहर स्थल में जहाँ कि यज्ञ का यजन किया जा रहा था वामन स्वरूप को धारण करने वाले श्री विष्णुदेव ने प्रवेश किया था ॥१०५

त दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुन्दरम् ।
 वामन सहस्रोत्थाय प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ॥१०६
 दत्त्वासनं च प्रक्षाल्य पादो वामनरूपिणम् ।
 सकुटुबो वहन्मूर्ध्ना परगा मुदमाप्तवान् ॥१०७
 विष्णवेऽस्मिं जगद्दाम्ने दत्त्वार्घ्यं विधिवद्वलि ।
 रोमाञ्चिततनुभूर्त्वा हर्षाश्रुनयनोद्भवीत् ॥१०८
 अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलो मखः ।
 जोवित सफल मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न सशयः ॥१०९
 अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा ।
 त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सवः ॥११०
 एते च श्रुत्वा सर्वे कृतार्था नान राशयः ।
 येः पूर्वं हि तपस्तप्त तदद्य सफल प्रभो ॥१११
 कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न सशयः ।
 तस्मात्त भ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनमः ॥११२

करोडों सूर्यों के समान कान्ति वाले और ठीक २ अवयवों से युक्त श्री वामनदेव के दर्शन करके राजा वलि एक साथ अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया था और उसने अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए उनका स्वागत किया था ॥१०६॥ फिर एक आसन समर्पित कर उन वामन रूपधारी विप्र वटु के राजा ने चरणों का प्रक्षालन किया था तथा उसके चरणामृत को अपने मस्तक पर एवं अपने समस्त परिवार के मस्तकों पर छिड़क दिया था और उस समय में उसके मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी ॥१०७॥ इसके उपरान्त राजा वलि ने समस्त जगत् के परमाश्रय स्थान भगवान् विष्णुदेव को विधिपूर्वक अर्घ्य दिया था । उस समय में पुलकायमान होकर परम हर्ष से अपने नेत्रों में आंसू भरकर दैत्यराज वलि ने कहा था ॥१०८॥ दैत्यराज ने निवेदन किया था—आज मेरा जन्म परम सफल होगया है और आज मेरा यह यज्ञ भी सफल हो गया है एवं आज मेरा जीवन ही सफल होगया है, अधिर क्या निषेदन करूँ मैं तो आज निश्चय ही वृत्तार्थ होगया हूँ ॥१०९॥ मेरे घर में तो मैं समझता हूँ कि आज अति दुर्लभ और अमोघ अमृत की वर्षा हो रही है । हे भगवान् आपके यहाँ पदार्पण करने से ही अनायास मेरे गृह में एक प्रकार का उत्सव सा मच गया है ॥११०॥ इस समय में यहाँ पर विराजमान होने वाले ये सब ऋषिगण भी वृत्तार्थ हो गये हैं । हे प्रभो ! इनने जो भी अब तक तपश्चर्या की थी वह आज इनकी सफल हो गई है ॥१११॥ मैं तो अवश्य ही वृत्तार्थ होगया । वृत्तार्थ हो गया और परम वृत्तार्थ हो गया हूँ इसी कारण से मैं आपकी सेवा में अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ और बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥११२॥

त्यदाजया त्वन्नियोग माधयामीति मन्मन ।

अत्युत्माह्ममागुक्त समानापय मा प्रभो ॥११३॥

एवमुक्तो दीक्षितः प्रहसन्नामनोऽग्रीत् ।

देहि मे दपसि स्यातु भूमिं त्रिपद समिताम् ॥११४
 एतच्छु त्वा वलि प्राह राज्य याचितवान् न हि ।
 ग्राम वा नगर चापि धन वा किं कृत त्वया ॥११५
 तन्निशम्य वलि प्राह विष्णु सर्वशरीरभृत् ।
 आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्य जनयन्निव ॥११६
 शृणु दैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतम परम् ।
 सर्वंभग विहीनाना किमर्थं साध्यते वद ॥११७
 अह तु सर्वभूतानामन्तर्यामीति भावय ।
 मयि सर्वमिद दैत्य किमन्यं साध्यते वद ॥११८
 रागद्वेषविहीनाना शान्ताना त्यक्तमायिनाम् ।
 नित्यानदस्वरूपाणा किमन्यं साध्यते धनं ॥११९

अब जो भी आपकी आज्ञा होगी मैं आपके उसी कार्य को पूर्ण सिद्ध करूंगा । मेरा मन इस समय मे बहुत ही अधिक उत्साह से भरा हुआ है । अतएव हे प्रभो । अब आप मुझे अपनी सेवा के लिये आदेश प्रदान कीजिये ॥११३॥ उस यज्ञ मे दीक्षा का ग्रहण किये हुए राजा वलि के द्वारा इस प्रकार से कहने पर श्री वामनदेव ने हँसकर कहा था कि मुझे तपस्या करने के लिये केवल तीन पग भूमि का दान करो ॥११४॥ यह सुनकर राजा वलि ने कहा था—हे भगवान् ! आपने यह क्या माँगा है ? आपने न तो कोई राज्य ही माँगा न ग्राम की ही याचना की है न कोई नगर माँगा और न धन ही माँगा है ॥११५॥ इस बात का श्रवण कर सब प्राणियों के शरीर को पुष्ट करन वाल वामन स्वधारी भगवान विष्णुदेव शीघ्र ही जिसका राज्य भ्रष्ट हान वाला है उस राजा वलि का वैराग्य दिपात हुए वाले थे ॥११६॥ भगवान् न कहा—ह दैत्येन्द्र ! मैं आप से एक गुप्त बात कहना है उमको आप मुनिए—हम लोग तो सभी प्रकार के

सङ्गो मे रहित है तो फिर आप ही बताइये, हमको धन सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? ॥११७॥ हमको तो आप सब प्राणिमो का अन्त-र्यामी ही समझ लेना चाहिए । यह सम्पूर्ण जगत् हममे ही तो है फिर अन्य धनो से सबको क्या करना शेष रहता है ? ॥११८॥ जो सभी प्रकार के राग द्वेष से रहित हैं, जो ज्ञान से सुसम्पन्न हैं जो माया का छोड़ देने वाले हैं और जो नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं वे धन को ग्रहण करके भी क्या काव सिद्ध करेंगे ? ॥११९॥

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यता शान्तचेतसाम् ।

अभिन्नमात्मन सर्वं को दाता दीयते च विम् ॥१२०॥

पृथ्वीय क्षत्रियवशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् ।

तदाज्ञाया स्थिता सर्वे लभन्ते परम सुखम् ॥१२१॥

दातव्यो मुनिभिश्चापि पष्ठाशो भूभुजे वले ।

महीय ब्राह्मणाना तु दातव्या सवयत्नत ॥१२२॥

भूमिदानस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति ।

परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र सशय ॥१२३॥

स्वल्पामपि मही दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये ।

ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२४॥

भूमिदं सर्वं प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभागभवेत् ।

अतिदानं तु तज्ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१२५॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकं ।

दशहस्ता हो दत्त्वा सर्वपापं, प्रमुच्यते ॥१२६॥

सभी प्राणियों का अपने ही समान देखन वाले और परम शान्त चित्त वाले के नियम तो अपने से सभी अभिन्न हैं तो फिर कौन देने वाला होता है और दिया भी क्या जा सकता है ? ॥१२०॥ यह भूमि तो क्षत्रियों के वश में ही रहा करती है। ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त है। अतएव शास्त्रों की आज्ञानुसार ही चलन वाला का प में सुख प्राप्त हुआ करता है ॥१२१॥ ह बलिराज ! मुनियों का

भी अपने तप मे से छट्वाँ भाग राजा को देना पडता है । अतएव इस भूमि का दान ब्राह्मणों को यत्न पूर्वक करना चाहिये ॥ १२२ ॥ हे बले ! इस भूमि के दान का माहात्म्य भूत और भविष्यत काल मे भी अपनी समता नही रखता है । इस भूमि के दान देने वाले को परम सुख की प्राप्ति हुआ करती है — इसमे तनिक भी सन्देह नही है ॥ १२३ ॥ किमी अग्निहोत्र करने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को बहुत थोड़ी-सी भूमि का दान देने से भी उस व्यक्ति को उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है जहा पर पहुँच कर फिर वापिस लौटना कठिन है ॥ १२४ ॥ जो भूमि का दान करने वाला है वह सभी प्रकार की वस्तुओं का दाता माना जाया करता है । भूमि के दान देने वाले की मुक्ति होनाया करती है । भूमि दान को सब पापों का नाशक एक महा दान समझना चाहिए ॥ १२५ ॥ महा पातकों और सभी प्रकार के पापों से वनवित्त मनुष्य केवल दश हाथ भूमि का दान देने से सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥ १२६ ॥

सत्पात्रे भूमिदाता य सर्वदानफल लभेत् ।

भूमिदानसम नान्यत्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२७

द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्मही बले ।

तस्य पुण्यफलं यत्तु न क्षमोऽद्दशतैरहम् ॥ १२८

राक्ताय देव पूजायु वृत्तिहीनाय दंत्यप ।

स्वल्पामपि मही दद्याद्यः स विष्णुर्न सशयः ॥ १२९

इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिमयुता ।

पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नान सशयः ॥ १३०

वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने ।

स्वल्पामपि मही दत्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १३१

भक्ताय देवपूजामु विप्रायादकिका महीम् ।

दत्त्वा लभेत गङ्गाया त्रिरात्रस्नानज फलम् ॥ १३२

विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च ।

द्रोणिका पृथिवी दत्त्वा यत्फल लभते शृणु ॥१३३

जो मनुष्य किसी सत्पान को भूमि का दान किया करता है उसको अनेक प्रकार के दानों का फल प्राप्त हुआ करता है । इस भूमि के दान के समान इस नैलोक्य में अन्य कोई भी दान नहीं होता है ॥१२७॥ हे बले ! जो आजीविका से रहित किसी ब्राह्मण को पृथ्वी का दान देता है उसका जो पुण्यफल होता है उसका वर्णन मुझसे यदि लगातार कहता ही रहूँ तो भी सौ वर्ष के लम्बे समय में भी नहीं किया जा सकता है ॥१२८॥ हे दैत्यराज ! अहनिश देवों के यजन में सलग्न रहने वाले ब्राह्मण को, जिसकी कोई भी वृत्ति नहीं होती है, थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान दिया जाता है वह उस प्रति-गृहीता के लिये साक्षात् विष्णु ही है ॥१२९॥ ईश, गहूँ, अरहर, सुपारी आदि पेड़ पौधा से भरी-पूरी भूमि का जो दान किया करता है वह प्रतिगृहीता और समस्त ससार की दृष्टि में विष्णु ही होता है ॥१३०॥ आजीविका से रहित कुटुम्ब वाले दरिद्री ब्राह्मण को यदि कोई बहुत थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान देता है उसे विष्णु भगवान की सम्युज्यता प्राप्त हुआ करती है ॥ १३१ ॥ देवों की अर्चना में निमग्न ब्राह्मण को एक आढक अर्थात् जिसमें एक घड़ा भर अन्न उत्पन्न हो जाता हो उसकी ही पृथ्वी का दान देने से तीन दिन तक गङ्गा, स्नान का पुण्य फल मिला करता है ॥१३२॥ वृत्ति विहीन सदाचरण से रहने वाले ब्राह्मण के लिये द्रोणका मात्र अर्थात् बीस सेर अन्न उप-जाने वाली पृथ्वी के दान से जो फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो ॥१३३॥

गङ्गानीर्थाश्वमेधाना शतानि विधिवन्नर ।

दृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति सपुष्कलम् ॥१३४

ददाति चारिवा भूमि दरिद्राय द्विजाय य ।

अभवस्तस्य पट् पत्न्य. श्रुति. सिन्धुर्यशोवती ।
 कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिता ॥१४१॥
 आसु पत्नीषु तस्यसश्चत्वारिणश्छतद्वयम् ।
 पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्य बुभुक्षिता. ॥१४२॥
 अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रिया. ।
 पश्यन्स्वय क्षुधार्त्ताश्च विललापाकुलेन्द्रिय. ॥१४३॥
 धिग्जन्म भाग्यरहित धिग्जन्म धनवर्जितम् ।
 धिग्जन्म धर्मरहित धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥१४४॥
 नरस्य वहवपत्यस्य धिग्जन्मेश्वर्यवर्जितम् ।
 अहो गुणा सीम्पता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥१४५॥
 दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ।
 प्रिया. पुत्राश्च पौत्राश्च वान्धवा भ्रातरस्तथा ॥१४६॥
 शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ।
 चाण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१४७॥

उसकी श्रुति-सिन्धु-यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा
 इन नामों वाली पत्नियाँ थी ॥१४१॥ हे असुर श्रेष्ठ ! इसके इन
 पत्नियों के गर्भ में दो सौ चालीस पुत्र उत्पन्न हुए थे । ये सभी भूखे
 रहा करते थे ॥१४२॥ वह महान दरिद्र भद्रपति अपने सब बच्चों को
 और पत्नियों को भूखा क्षुधार्त देखकर और स्वयं भी क्षुधातुर होने
 के कारण से इन्द्रियों के व्याकुल होने पर विलाप करने लग गया था
 ॥१४३॥ वह कहता था—अहो ! इस ससार में भाग्यहीन मनुष्य का
 जीवन व्यर्थ ही है—ऐसे धन विहीन जीवन को धिक्कार है और
 प्रसिद्धि से रहित जीवन को धिक्कार है ॥ १४४ ॥ जिसके बहुत सी
 सन्ततियाँ हों परन्तु धन न हो उस मनुष्य के जीवन को भी धिक्कार
 है । बड़े से बड़े अच्छे गुणगण, सीम्पता, विद्वता और सत्कुलीनता ये
 सब बातें दरिद्रता के सागर में डुबकियाँ लगाने वाले मनुष्य को शोभा

नही दिया करती है ॥१४५॥ जिसके पास ऐश्वर्य का अभाव होता है उसको प्रिय पुत्र, पौत्र, चा-घव, भाई तथा शिष्य सभी मनुष्य त्याग दिया करते हैं । चाहे कोई चाण्डाल हो अथवा द्विज हो सत्कार में धर्मेश्वर्य से सम्पन्न भाग्यशाली का ही सत्कार हुआ करता है ॥१४६॥

दरिद्र पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दित ।
 अहो सपत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुर ॥१४८
 गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यथ पण्डित ।
 ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न शशय ॥१५६
 अहो दरिद्रता दु ख तत्राप्याशातिदु खदा ।
 आशाभिभूता पुरुषादु खमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१५०
 आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य ।
 आशा दासी येषा तेषा दासायते लोक ॥१५१
 मानो हि महता लोके धनमक्षय्यमुच्यते ।
 तस्मिन्नाशाद्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५२
 सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ।
 नैष्टिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्ताना को विमोचक ॥१५३
 अहो दु खमहो दु खमहो दु ख दरिद्रता ।
 तत्रापि पुत्रभार्याणा वाहुल्यमतिदु खदम् ॥१५४

जो मनुष्य दरिद्र होता है वह तो इस सत्कार में एक शव के समान ही परम निन्दित माना जाया करता है । अरे ! सम्पत्तिशाली पुरुष परम निष्ठुर हा तब भी उस दयालु समया जाया करता है । १४८ यह भले ही गुणा से ही हीन हो तो भी उसका गुणी कहा जाया करता है । मूर्ख धनी का पण्डित ग्यानी बहुर पुकारा जाता है । जिसमें ऐश्वर्य व साथ गुण भी हा ना फिर उसका क्या कहना है वह तो पूज्य ही हो जाता है ॥१४६॥ अहो ! यह दरिद्रता का होना ही

महान् दुःख है फिर उसमें भी आशा का होना तो बहुत ही दुःख देने वाली हुआ करती है । आशा के पाश में फँसे हुये मनुष्य अक्षय दुःखों का भोग किया करते हैं ॥१५०॥ जो आशा के दास है वे तो मानो सभी लोगों के दास हो जाते हैं और यह आशा जिन महा पुरुषों की दामी होती है उनका यह सम्पूर्ण ससार ही दास बन जाया करता है ॥१५१॥ बड़े पुरुषों का तो मान-सम्मान ही धन कहा जाया करता है और एक विचारे दरिद्री के मान का तो यह आशा रूपी शत्रु नष्ट ही कर दिया करता है । अतएव वह तो मान के विनष्ट हो जाने से दरिद्र ही रहा करता है ॥१५२॥ दरिद्र पुरुष भले ही समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो वह सदा सबकी दृष्टि में एक मूर्ख ही जँचा करता है । अरे ! जिनको यह दरिद्रता रूपी नाका पनड लिया करता है उसको कौन छुड़ा सकता है ॥१५३॥ यह दरिद्रता महान् दुःख है— विशाल वेदना है और अनुपम यातना है । ऐसी दरिद्रता में बहुत सी स्त्रियाँ और बहुत सी सन्तान हो जाय तो बहुत ही दुःख दिया करते हैं ॥१५४॥

एवमुक्त्वा भद्रमति सर्वशास्त्रार्थपारग ।
 अन्यमैश्वर्यवद धर्म मनसाऽचिन्तयत्तदा ॥१५५॥
 भूमिदानं विनिश्चत्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।
 दानेन योऽनुमताति स एव कृतवान्पुरा ॥१५६॥
 प्रापकं परमं धर्मं सर्वकामफलप्रदम् ।
 दानामुत्तमं दानभूदानं परिकीर्तितम् ॥१५७॥
 यद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्दद्विष्टतमं नरः ।
 इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्बले ॥१५८॥
 कौशाम्बी नाम नगरी कलत्रापत्ययुग्ययी ।
 सुघोषी नाम विप्रेन्द्र सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१५९॥
 गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां वले ।

विष्णु बुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवी ददौ ।
 सोऽर्ष भद्रमतिर्विप्रो धीमता याचिता भुवम् ॥१६५॥
 वत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।
 सुघोषो भूमिदानेन कोटिवशसमन्वितः ॥१६६॥
 प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ।
 वले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छितम् ॥१६७॥
 स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बो युगायुतम् ।
 तथैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ॥१६८॥
 ऐन्द्र पद समासाद्य स्थितवान्कल्पपञ्चकम् ।
 ततो भुव समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥१६९॥

हे द्विजवर ! आपके अनुग्रह से मेरा यह बुरा पवित्र होगया है ।

इस रीति से कहकर सुघोष ने उस विप्र का सत्कार किया था ॥१६२॥
 फिर उस महान् मतिमान् सुघोष ने इस विप्र को पांच हाथ प्रमाण
 वाली भूमि के दान का वचन दे दिया था । मैं इस विष्णु से पालित
 विष्णु की पवित्र पृथ्वी को देता हूँ ॥१६३॥ इस भूमि दान से जनार्दन
 भगवान् मुझ पर प्रसन्न होवे । हे दैत्येन्द्र ! उस सुघोष ने यह उपर्युक्त
 मन्त्र पढ़कर उस द्विज श्रेष्ठ को विष्णु बुद्धि से पहिले तो अर्चन किया
 और फिर उतनी भूमि का दान कर दिया था । इसके उपरान्त उस
 भद्रमति ब्राह्मण ने एक कुटुम्बी श्रोत्रिय हरिभक्त को वह याचना की हुई
 भूमि देदी थी । भूमिदान के प्रभाव से वह सुघोष अपनी करोडो पीढियों
 के सहित विष्णु लोक में चला गया था जहाँ कि किसी को भी कोई
 शोक नहीं करना पड़ता है । हे वले ! वह भद्रमति भी सम्पत्ति की चाह
 किया करता था ॥१६४-१६७॥ अतएव वह सकुटुम्ब वहा पर विष्णु
 लोक में दस हजार युग तक रहा था । इसके पश्चात् दस सहस्र युग
 पर्यन्त उसने ब्रह्म लोक में निवाम किया था । इसके अनन्तर इन्द्र के
 पदचर पाँच कल्प पर्यन्त उस भद्रमति ने इन्द्रासन पर विराजमान होकर
 स्वर्ग लोक का राज्योपभोग किया था । इसके उपरान्त पुनः इस भूमण्डल

मे उत्पन्त होकर सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त किये थे ॥१६८॥१६९॥

जातिस्मयो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम् ।
 ततो भद्रमतिर्दत्त्य निष्कामो विष्णुतत्पर ॥१७०
 पृथिवी वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्य प्रदत्तवान् ।
 तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा दत्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥१७१
 कोटिवशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् ।
 तस्माद् व्यपते मह्य सर्वधर्मपरायण ॥१७२
 तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदा महीम् ।
 वैरोचनिस्ततो हृष्ट कलश जलपूरितम् ॥१७३
 आददे पृथिवी दातु वर्णिने वामनाय ।
 विष्णु सर्वगतो ज्ञात्वा जलधारावरोधिनम् ॥१७४
 काव्य हस्तस्थदर्भाग्रि तच्छरे सन्यवेशयत् ।
 दभग्निःभून्महाशस्त्र कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥१७५

वह जातिस्मर हो गया था । इसरीति से उस महा भाग ने अनेक उत्तमोत्तम भोगों का भूमि दान की महिमा से उपभोग किया था । हे दैत्यराज । इसके अनन्तर उस भद्रमति विप्र ने निष्काम भाव से भगवान् विष्णु की सेवा में निरन्तर निमग्न होकर वृत्ति विहीन ब्राह्मणों को भूमिका दान किया था । इससे विष्णु भगवान् ने अपने वित्त में परम प्रसन्न होकर उसको परम श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान किया था ॥१७०-१७१॥ उसके पश्चात् उसके कोटिश वशों के सहित श्रेष्ठ मुक्ति प्रदान की थी । अतएव परम धर्म परायण दैत्यराज । भुक्तको केवल तीन पद पृथ्वी दीजिये ॥१७२॥ उस भूमि पर स्थित होकर मैं अपनी भुक्ति प्राप्त करने के लिए तपस्या करूँगा । तब उसी समय में विरोचन के पुत्र राजा बलि ने उन ब्रह्मचारी वामन देव का पृथ्वी का दान प्रदान करने के लिये जल से परिपूर्ण कलश या कुर्या उठाया था । इधर सर्व व्यापक भगवान् ने समझ लिया था कि दैत्य गुरु शुक्राचार्य उस करण की जल

की धारा को रोकने के लिए उसमें प्रविष्ट होकर मध्य में स्थित हो गये हैं । अतएव भगवान् ने अपने हाथ के अग्रभाग को उस वरुण की टोटी में प्रविष्ट कर दिया था । वहाँ पर जो कुशा का अग्रभाग था वह सूर्य की कान्ति के समान महाशस्त्र बनाया था ॥१७३-१७५॥

अमोघ ब्राह्ममत्युग्र काव्याक्षिग्रासलोलुपम् ।
 आयाय भार्गव सुरानसुरानेक चक्षुषा ॥१७६
 पश्येति वादिदेशे च दर्भाग्र शस्त्रसन्निभम् ।
 वलिर्ददौ महाविष्णोर्मही त्रिपदसमिताम् ॥१७७
 ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवन तदा ।
 अमिमीत महीद्वाम्या पदमद्या विश्वतनुर्हरि ॥१७८
 स आब्रह्मकटाहातपदान्येतानि सप्रभ ।
 पादागुष्ठाग्रनिभिन्न ब्रह्माण्ड विभिदे द्विधा ॥१७९
 तद्द्वारा बाह्यसलिल बहुधार समागतम् ।
 धीतविष्णुपद तोय निर्मल लोकपावनम् ॥१८०
 आज्जाण्डवाह्यनिलय धारारूपमवर्त्तत ।
 तज्जल पावन श्रेष्ठ ब्रह्मादान्पावयत्सुरान् ॥१८१
 सप्तपिसेवित चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि ॥१८२

उस समय में शुक्राचार्य के नेत्र को फोड़ने के लिये उत्साही अमोघ अस्त्र का काम किया था और शुक्राचार्य के नेत्र से काने हो गये थे और सब असुरों के समक्ष वे कहने लगे थे—अरे ! इस कुशा के अग्र भाग को देखो जिसने शस्त्र के समान कर्म किया है । इधर राजा वनि व मन देव को तान पैर पृथ्वी का दान करने में तत्पर हो गया था ॥१७६ १७७॥ उसी समय में विश्वात्मा भगवान् हरि जिनका यह सम्पूर्ण विश्व ही शरीर है बड़ने लग गये थे और भूमि को नापने के लिए उद्यत होकर दा पग से समस्त पृथ्वी को नाप डाला था ॥१७८॥ फिर उनका उठाया हुआ तीसरा वदम जब बड़ा तो वह ब्रह्माण्ड बटाह

पर्यन्त पहुँच गया था । उस समय मे उनके चरणागुप्त के अग्रभाग की ठोकर से बटकर उस ब्रह्माण्ड के दो टुकड़े हो गये थे ॥१७६॥ उसी छिद्र से भगवान् विष्णु के चरण के धुलने से परम निर्मल सोकी को पावन अनेक धाराओं वाला जल बाहिर की ओर निकलने लगा था ॥१८०॥ यह पवित्र कर देने वाला परम श्रेष्ठ जल ब्रह्मादिक सब देव-गणों को पवित्र कर ब्रह्माण्ड से बाहिर की ओर निकल आया था और सप्तर्षियों के द्वारा सेवित होकर मेरु पर्वत के शिखर पर पहुँच गया था ॥१८१-१८२॥

एतद् दृष्ट्वाद्भुत कर्म ब्रह्माद्या देवतागण ।
 ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वला ॥१८३
 नम परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे ।
 ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तुतेऽन्याहतकर्मशीलिने ॥१८४
 पशेत् परमानन्द परमात्मन्परात्पर ।
 सर्वात्मने जगन्मूर्ते प्रमाणातीते ते नम ॥१८५
 विश्वतश्चक्षुषे तुभ्य विश्वतो वाहवे नम ।
 विश्वता शिरसे चैव विश्वतो गतये नम ॥१८६
 एव स्तुतो महाविष्णुर्ब्रह्माद्यै स्वर्द्विवीकसाम् ।
 दत्त्वाभय च मुमुदे दवदेव सनातन ॥१८७
 विरोचनात्मज दैत्य पर्देकार्यं वबन्ध ह ।
 तत प्रपन्न तु बलिं ज्ञात्वा चास्मिं रसातलम् ।
 ददौ तद् द्वारपालश्च भक्तपश्यो वभूव ह ॥१८८
 रसातले महाविष्णुविरोचनमुतस्य वै ।
 वि भोज्य कल्पयामास घारे सर्पभयाकुले ॥१८९

इस परमाद्भुत कार्य को देखकर ब्रह्मा आदिक देवता ऋषियों की समुदाय और मनु आदि सब चतुर् ही तप के साथ अत्यन्त विह्वल होकर वामनदेव भगवान् की शक्ति करार लग गये ॥१८३॥ दक्षगण न

कहा—हे परमेश्वर परमात्मन् ! आप तो पर से भी पर हैं । आप समय पर सगुण स्वरूप धारण करने वाले हैं । आप ब्रह्मात्मक ब्रह्म में परायण आत्म बुद्धि के रूप हैं तथा अव्याहत बर्षों के करने वाले हैं । आप के चरणों में हम सबका सादर प्रणाम समर्पित है ॥१८४॥ हे परमेश्वर परमानन्द स्वरूप परात्पर परमात्मन् ! समस्त प्रमाणों से अतीत ! हे जगन्मूर्ति ! आप सर्वोत्तम हैं आपके लिए हमारा प्रणाम है ॥१८५॥ सबके नेत्रों में आप व्यापक हैं और सर्वत्र आपकी ही भुजाएँ हैं—सब आपके ही शिष्य हैं और आपकी सर्वत्र गति है ऐसे आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम अर्पित है ॥१८६॥ जिस समय में ब्रह्मादिक देवों ने इस प्रकार से भगवान् का सस्तवन किया तो उन परम सनातन देवों के भी देवेश्वर ने देवताओं को स्वर्ग प्रदान करके सबको भय से रहित कर दिया था और उस समय में उनको परम प्रसन्नता हुई थी ॥१८७॥ और एक पग पृथ्वी के लिये उस बलि को बाँध दिया था किन्तु पीछे बलि को शरण में समागत हुआ समझकर उसको रसातल का राज्य प्रदान कर दिया था और स्वयं उसके द्वारपाल बन कर रहने लगे थे । भगवान् अपने भक्त के वश में होकर इस तरह से निवास करने लगे थे ॥१८८॥ श्री नारद जी ने कहा था कि सर्पों के महान् भय से घबड़ा देने वाले उस परम भीषण रसातल में भगवान् विष्णु ने बलि के भोजन के लिए क्या नियत किया था ॥१८९॥

अमन्त्रित हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि ।

अपात्रे दीयते यच्च तद्घोर भोगसाधनम् ॥१९०॥

हुत हविरशुचिना दत्ता सत्कम यत्कृतम् ।

तत्सर्वं तत्र भोगाहमध पातफलप्रदम् ॥१९१॥

एव रसातल विष्णुबलये सासुराय तु ।

दत्त्वाभयं च सर्वेषां सुराणां त्रिदिव ददौ ॥१९२॥

पूज्यमानोऽमरगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।

गन्धर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः ॥१६३॥
 एतद् दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
 परस्पर स्मितमुखाः प्रणेमुः पुण्योत्तमम् ॥१६४॥
 सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः ।
 मोहियन्निखिल लोक प्रपेदे तपसे वनम् ॥१६५॥
 एव प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा ।
 यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यये सर्वपातकैः ॥१६६॥
 इदं तु गङ्गामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ।
 'देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१६७॥

श्री सनक महामुनि ने कहा—जो बिना ही मन्त्र के उच्चारण
 किये अग्नि में हवि का होम किया जाता है और जो दान किसी अपात्र
 को दिया जाता है वह अत्यन्त घोर अन्न बलि का भोग हुआ करता है
 ॥१६०॥ जिस हवि का अपवित्र दशा में रहते हुए श्वसन किया जाया
 करता है तथा दान दिया जाता है या कोई भी सत्कर्म किया जाता है
 वह नीचे गिर कर देवों को प्राप्त न होकर बलि असुर को ही प्राप्त
 हुआ करता है ॥१६१॥ इस भाँति समस्त अगुर गणों के सहित बलि
 को रसातल प्रदान किया था और सब देवों को अभय का दान प्रदान
 कर उनकी स्वर्ग का राज्य एवं सब वैभव प्रदान किया था ॥१६२॥
 उस समय में सभी देवगण भगवान् विष्णु देव का यजन करने लग गये
 थे । महर्षि गण स्तवन करने में परायण हो गये तथा गन्धर्व गान करने
 लगे थे । इसके पश्चात् भगवान् विष्णु अपना वह विशाल वपु समेट कर
 पुन वामन रूप हो गये थे ॥१६३॥ इस बहूत ही भारी कार्य को देख
 कर ब्रह्मवादी मुनिगणों ने परस्पर में मुस्कराकर पुण्योत्तम भगवान्
 वामन देव को सादर प्रणाम किया था ॥१६४॥ इस रीति से सर्वात्मक
 विष्णु भगवान् ने रूप धारण कर सब ससार को मुग्ध करके अन्त में
 तपस्या करने के लिये वे वन में चले गये थे ॥१६५॥ भगवान् विष्णु

के चरण कमल से प्रादुर्भूत हुई गङ्गा देवी का ऐसा प्रभाव है कि इसका स्मरण करने मात्र में ही प्राणी यहाँ पर सभी प्रकार के महान् पापों से छूट जाया करता है ॥१६६॥ इस गङ्गा भागीरथी देवी का माहात्म्य जो पुरुष किसी देवालय में अथवा पवित्र नदी के तीर पर बैठकर पढ़ता है उसको अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्यफल प्राप्त हुआ करता है ॥१६७॥

+++++ ॐ

॥ इष्टापूर्त फल एवं वीरभद्र नृप चरित्र ॥

श्रुतं तु गङ्गामाहात्म्य वाञ्छितं पापनाशनम् ।

अधुना लक्षण ब्रूहि भ्रातर्मे दानपानये ॥१

सर्वपापमेव वर्णानां ब्राह्मण. परमो गुरुः ।

तस्मै दानानि देयानि दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥२

ब्राह्मण. प्रतिगृह्णीयात्सर्वतो भयवर्जितः ।

न कदापि क्षत्रविशो गृह्णीयाता प्रतिग्रहम् ॥३

चण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ।

स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्ता भवति निष्फलम् ॥४

परदारारतस्यापि परद्रव्याभिलाषिणः ।

नक्षत्रसूचकस्यापि दत्ता भवति निष्फलम् ॥५

असूयाविष्टमनस कृतघ्नस्य च मायिनः ।

अयाज्ययाजकस्यापि दत्तं ० ॥६

नित्य याच्ञापरस्यापि हिंसकस्य खलस्य च ।

रसविक्रयिणश्चैव दत्तं ० ॥७

देवापि श्री नारदजी ने कहा कि मैं स्वयं पापों के विनाश करने वाले गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करना ही चाहता था जो अब मैंने आपके अनुग्रह से श्रवण कर लिया है । हे भाई ! अब मेरा यह

निवेदन है कि आप कृपा करके दान का तथा दान देने के लिए समुचित सत्पात्र वा लक्षण बताइये ॥१॥ तब महा मुनि श्री सनकजी ने कहा— ब्राह्मण सब वर्णों में श्रेष्ठ और सबका बड़ा गुरु होता है । अतएव जो मनुष्य दान में दी हुई वस्तु को अनन्त और अक्षय रूप में प्राप्त करने का अभिलाषी है उसे चाहिये ब्राह्मण को ही दान देवे ॥२॥ कर्मिष्ठ ब्राह्मण भय से रहित होकर सभी वर्णों से दान ग्रहण कर सकता है परन्तु क्षत्रिय और वैश्य को कभी भी दान का ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥३॥ यदि दान का ग्रहण करने वाला ब्राह्मण क्रोधी पुत्र हीन-वन्धु करने वाला अपने उचित कर्त्तव्य कर्मों को त्याग देने वाला हो तो ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान निष्फल ही हुआ करता है ॥४॥ जो पराई स्त्री के साथ गमन करने वाला हो तथा दूसरो के द्रव्य को झपट कर ग्रहण करने की इच्छा रखता हो एव नक्षत्र सूचक ज्योतिषी हो उसको दान देना निष्फल हुआ करता है ॥५॥ जिसके हृदय में सदा ही असूया भरी रहा करती है—जो किये हुये उपकार को न मानने वाला कुतन्त्र होता है—जो मायावी एव अपात्र को यज्ञों का यजन कराया करता है ऐसे ब्राह्मण को दान देना भी सर्वथा निष्फल हुआ करता है ॥६॥ जो सर्वदा ही याचना किया करता हो, हिसावृत्ति वाला हो, अत्यन्त खल कर्म करने वाला हो उसको दिया हुआ दान कभी भी कुछ फल नहीं दिया करता है ॥७॥

वेदविक्रयिणश्चापि स्मृतिविक्रयिणस्तथा ।

धर्मविक्रयिणो विप्र दत्त ० ॥८॥

गानेन जीविवा यस्य यस्य भार्या च पुश्चली ।

परोपतापिनश्चापि दत्त भवति निष्फलम् ॥६॥

असिजीवी मपीजीवी देवलो ग्रामयाजक ।

धावको वा भवेत्तोषा दत्ता भवति निष्फलम् ॥१०॥

पावकतु परस्यार्थे कवये गदहारिणे ।

अभक्ष्यभक्षकस्यापि दत्तं० ॥१११

शूद्रान्नभोजिनश्चैव शूद्राणां शवदाहिनः ।

पोश्चलान्नभुजश्चापि दत्तं भवति० ॥१२

नामविक्रयिणो विष्णोः सध्याकर्मोऽजितस्य च ।

दुष्प्रतिग्रहद्रग्धस्य दत्तं० ॥१३

दिवाशयनशीलस्य तथा मैथुनकारिणः ।

सध्याभोजिन एवापि दत्ता भवति० ॥१४

जो वेद-मृति और अपने धर्म का विक्रय किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि वह दान निष्फल ही होता है ॥८॥ जो विद्या के यत्न से ही अपनी आजीविका चलाया करता है, जिसको स्त्री व्यभिचार करने वाली होती है, जो दूसरो को सदा सन्ताप दिया करता है उस ब्राह्मण को भी दान देना सर्वथा व्यर्थ ही होता है ॥९॥ जो मलवार से तथा स्याही से अपनी जीविका का परिचालन किया करता है, जो वेतन ग्रहण करके देवो का यजन किया करता है, जो ग्राम याजक एवं हरकारे का कर्म करता है ॥१०॥ जो भगवान् के निमित्त रसोई न बनाकर दूसरो के लिए रसोई में पाचन कर्म किया करता है अर्थात् भगवान् का भोग नहीं लगाता है, जो दान ग्रहण करने के लिए चतुराई प्रकट किया करता है, जो दया से रहित होता है, जो वैद्य वृत्ति किया करता है और जो अभक्ष्य पदार्थों को भोजन किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि उसका कोई भी फल नहीं हुआ करता है ॥११॥ जो शूद्रो का अन्न खाया करता है । उसको दिया हुआ दान कुछ भी प्रभाव नहीं रखता है, जो शूद्रो के मुर्दों को जलाता है, जो पुश्चती स्त्री के पति का अन्न खाता है उसको दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही होता है ॥१२॥ जो स्वयं शक्ति-भ्रष्टा के भाव से न कर धन की प्राप्ति के लिए ही भगवान् विष्णु का पूजन किया करता है, जो सन्ध्या वन्दन नहीं करता है और

जो दुष्प्रतिग्रह से दान ले चुका है ऐसे ब्राह्मण को दिया दान कुछ भी अपना प्रभाव नहीं रखा करता है ॥१३॥ जो शीघ्र ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतु में भी दिन में सोता है, जो दिन के समय में मँधुन दिया करता है, जो सन्ध्या के समय में भोजन करता है ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान कभी भी सफल नहीं हुआ करता है ॥१४॥

महापातकयुक्तस्य त्यक्तस्य ज्ञातिवान्धवै ।

कुण्डस्य चापि गोलस्य दत्त भवति० ॥१५

परिवित्ते शठस्मापि परिवेत्तुः प्रमादिन ।

स्त्रीजितस्यातिदुष्टस्य दत्त भवति० ॥१६

मद्यमासाशिनश्चापि स्त्रीविटस्यातिलोभिनः ।

चौरस्य पिशुनस्यापि दत्त ० ॥१७

जे श्रेष्ठिस्वर्गपरितृता निन्दिता कुञ्जने स्मदा ।

न तेभ्य प्रतिगृहणीयान्न च दद्याद् द्विजोत्तम ।

सत्कर्मनिरतायापि देय यत्नेन नारद ॥१८

यद्दान श्रद्धया दत्त तथा विष्णुसमर्पणम् ।

याचित्वापि पात्रेण भवेत्तद्दानमुत्तमम् ॥१९

परलोक समुद्दिश्य ह्यैहिक वापि नारद ।

यद्दान दीयते पात्रे तत्काम्य मध्यम स्मृतम् ॥२०

दम्भेन चापि हिंसार्यं परस्याविधिनापि च ।

क्रुद्धेनाश्रद्धयापात्रे तद्दान मध्यम स्मृतम् ॥२१

जो गुरु पत्नी गमन जैसे महापापा में दूषित रहा करता है, जो जानि और वाधुगन के द्वारा रथाग्य किया हुआ है, जो पति के जीवन रहते हुए किसी जार के बीर से समुत्पन्न हुआ हा अर्थात् कुण्ड हो, जो गोमय मत्ता बना हो उग ब्राह्मण वा दित्त हुआ दान कभी पत्र बना नहीं हुआ करता है ॥१५॥ बड़ी बहिन वा विवाह न होने पर छोटी बहिन के साथ विवाह करके अपनी पत्नी बना लेन वाला, बड़े भाई वा

विवाह न हाने पर पहिने अपना विवाह कर लेने वाला, मठता रखने वाला, प्रमादशील और जो दुष्ट प्रकृति का तथा स्त्रीजित जो ब्राह्मण होता है उसको भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे विप्र को दिया हुआ सब दान निष्फल ही हो जाता करता है ॥१६॥ मदिरा पान करने वाले, मास का अशन करने वाले और स्त्री के द्वारा की गयी कमाई को खाने वाले, अत्यन्त सालची, चोर वृत्ति वाले एवं चुगली खाने के स्वभाव वाले विप्र को दिया हुआ दान भी विफल हुआ करता है अतः ऐसे ब्राह्मणों को खूब परखकर ही दान देना चाहिए ॥१७॥ जिन पापों में डूबे रहने वाले लोगों की सज्जन पुरप निन्दा किया करते हो । हे द्विजवर ! ऐसे विप्रों को भी कभी दान न देवे और ऐसे विप्रों से दान लेना भी नहीं चाहिए । हे नारद ! जो सदा सत्कर्मों के अनुष्ठान में ही प्रवृत्ति रखा करते हैं उन्हीं को प्रबता प्रयत्न करके दान देना चाहिए ॥१८॥ जो दान के पात्र के द्वारा याचना करने पर भगवददर्पण की भावना से परम श्रद्धा से साथ दान दिया जाता करता है वह ही परमोत्तम दान कहा जाता है और उसी का पुण्य फल भी यथावत् प्राप्त होता है । वैसे ही कुछ किसी को दे देने का नाम दान नहीं हुआ करता है ॥१९॥ हे नारद ! ऐदनीकिक और पारलौकिक किसी भी सुख-सौभाग्य के प्राप्त करने की इच्छा से जो दान उचित पात्र को दिया जाता है वह मध्यम श्रेणी का दान कहा जाता है क्योंकि इसमें अपनी कामना पहिने ही से लिये हुए होती है ॥२०॥ जो दान दम्भपूर्वक शत्रु की हिंसा के उद्देश्य से विधि विहीन रीति से क्रोधावेश में भरकर अश्रद्धापूर्वक किसी अपात्र को दान किया जाता करता है वह निकृष्ट श्रेणी का दान होता है ॥२१॥

अधम बलितोपाय मध्यम स्वार्थसिद्धये ।

उत्तम हरिप्रोत्यर्थं प्राहुर्वेदविदा वरा ॥२२॥

दानभोगविनाशाश्च राय स्युर्गंतयस्त्रिधा ।

यो ददाति च नो भुक्ते तद्धन नाशकारणम् ॥२३
 धन धर्मफल विप्र धर्मो माधवतुष्टिकृत् ॥२४
 तरव किं न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थका ।
 यत्र मूलफलवृक्षाः परकार्यं प्रकुर्वन्ते ॥२५
 मनुष्या यदि निप्राग्रघ न परार्थान्तिदा मृता ।
 परकार्यं न ये मर्त्या वायेनापि धनेन वा ॥२६
 मनसा वचसा वापि ते ज्ञेया पापवृत्तमा ।
 अग्नेनिहाम वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत ॥२७
 यत्र दानादिदाना तु लक्षणं परिकीर्तितम् ।
 गङ्गामाहात्म्यसहितं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८

परम श्रेष्ठ वशे क जाना लाग रहा करत हैं अधम दान न
 चरि मनुष्ट होत है, स्वार्थ की मिट्टि क लिए जा भी कुछ दान दिया
 जाता है वह मध्यम है तथा उत्तम दान न भगवान प्रमन हुआ करत
 है ॥२२॥ मगार म जिस धन क प्राप्त करन की बहूधा सभी का
 तात्वमा रहा बगि है उम धन की दान, भाग और विनाग य तीन
 ही गतियां हुआ करती हैं । जो सर्वोत्तम गति धन का दान होगा है
 उम दान का सभी नहीं करना है और न स्वय ही उसका उपभाग
 किया करता है उम धन की अन्तिम गति विनाग ही होती है । चाह
 पार पुरा सबे से हू किमी ऐग क हाय म बहु पद जाव जा इगका बुग
 तरव म दुःखपाग एव अपन्थम करक शीघ्र ही विनष्ट कर दिया बगना
 है ॥२३॥ ह विप्र ! धन का वास्तविक पन धम करना ही जाना है
 और धम यही है जा भजन धाराध्य देव भगवान की प्रसन्नता प्राप्त
 बगन क निम किया जाया बगना है । इन जब शृंग क जीवन भी
 मगार म दुःखे प्राणिया क कार्यों की मिट्टि क निम हा जागा है । जब
 य महात जब शृंग भी पून, पन पुन पन, बरहव छाया और बाह
 के द्वारा सदा पराशकार किया बगन है और मगना दुःख क ही नि

उत्पन्न होकर जीवन व्यतीत किया करते हैं ॥२४॥२५॥ तो हे विप्र-
श्रेष्ठ । ये मनुष्य जो सब कुछ ज्ञान रखने वाले होते, हुए भी दूसरो के
काम मे कुछ भी नही आया करते हैं और दूसरो का कार्य कभी सिद्ध
नहीं करते हैं तो उनके जीवन रहते हुए भी वे मृत के ही समान होते
हैं । जो मनुष्य तन, मन, वचन, धन किसी के द्वारा भी दूसरो की
भलाई नही किया करते हैं उन को इस ससार मे महान घोर पापी ही
समझना चाहिए । हे नारद । इस विषय की पुष्टि के लिये आपको मैं
एक ऐतिहासिक घटना की चर्चा करता हूँ । आप इसको परम समा-
हित होकर श्रवण करिए ॥२६-२७॥ इस वर्णन मे दानो के विविध
भेदो का वर्णन है और समस्त प्रकार के महापातको को विनष्ट कर देने
वाला श्री गङ्गा की महिमा का भी वर्णन है ॥२८

भागीरथस्य धर्मस्य सवाद पुण्यकारणम् ।

आसीद्भगीरथो राजा सगरान्वयसभवः ॥२६

शशास पृथिवीमेता सप्तद्वीपा ससागराम् ।

सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंधः प्रतापवान् ॥३

कन्दर्पसदृशो रूपे यायजू को विचक्षण ।

प्रालेयाद्रिसमो धैर्ये धर्म धर्मसमो नृपः ॥३१

सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।

सर्वसपत्समायुक्तः सर्वानन्दकरो मुने ॥३२

आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवाचने रतः ।

पराक्रमी गुणनिधिर्मित्रः कारुणिकः सुधीः ॥३३

एतादृश त राजान ज्ञात्वा हृष्टो भगीरथम् ।

धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद् द्रष्टुमागतः ॥३४

समागत धर्मराजमहंयामास भूपतिः ।

शास्त्रदृष्टं न विधिना धर्मं प्रीत उवाच तम् ॥३५

इस चर्चा में धर्मराज राजा भागीरथ का भी परम पुण्यप्रद
सम्वाद भी आता है । यह राजा भगीरथ महाराज सगर के वध

मे ही समुत्पन्न हुए थे ॥२६॥ राजा भगीरथ ने सातो द्वीप और सातो समुद्र तक की भूमि पर अपना शासन किया था । वे धर्म के सभी अङ्गों का पूर्णतया परिपालन करने वाले और सर्वदा सत्य प्रतिज्ञा करने वाले तथा महान प्रतापी हुए थे ॥३०॥ सुन्दरता में वे कामदेव के समान परम सुन्दर रूपवान् हुये थे । वे विलक्षण यज्ञों का यजन वारम्बार किया करते थे । राजा भगीरथ धर्म में हिमालय के सदृश और धर्म कर्मों में साक्षात् धर्मराज के ही तुल्य थे ॥३१॥ हे मुनिवर ! वह राजा भगीरथ सभी सुन्दर लक्षणों से शोभा सम्पन्न समस्त शास्त्रों के तात्पर्य को भलीभाँति समझन वाले सभी तरह की सम्पत्ति के वैभव से भरे पूरे और सबको सर्वदा आनन्दानन्द प्रदान करने वाले हुए थे ॥३२॥ वे सदा समागत हुए अतिथियों का स्वागत सत्कार करने वाले तथा भगवान् वासुदेव के अर्चन में सदा परायण रहने वाले थे । वे परम पराक्रमशील, सफल सद्गुणों के निधान, अनिश्चय कर्षणा करने वाले तथा मंत्री करने के योग्य और सद्बुद्धि से सुसम्पन्न थे ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जब राजा की इस प्रकार की प्रशंसा का श्रवण किया तो धर्मराज अधिक प्रसन्न हुये और एक बार वे स्वयं ही इनका दर्शन करने के लिये वहाँ पर चले आये थे ॥३४॥ श्रीमान् धर्मराज के वहाँ पर पदार्पण करने पर राजा भगीरथ ने उनका शास्त्रोक्त विधि विधान से स्वागत एव अतिथि सत्कार किया था । उस समय में परम प्रसन्न होकर उनसे कहा था ॥३५

राजन्धर्मविदा श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽसि जगत्त्रये ।

धर्मराजोऽथ कीर्ति ते श्रुत्वा त्वा द्रष्टुमागत ॥३६

सन्मार्गनिरत सत्य सर्वभूतहिते रतम् ।

द्रष्टुमिच्छन्ति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रिया. ॥३७

कीर्तिर्नीतिश्च सपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते ।

वसन्ति तत्र नियत गुणास्सन्तश्च देवता, ॥३८

अहो राजन्महाभाग शोभन चरितं तव ।

सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि दुर्लभम् ॥३६

इत्युक्तवन्त धर्म प्रणिपत्य भगीरथ : ।

प्रोवाच विनयाविष्टः सहृष्ट. श्लाक्षण्या गिरा ॥४०

भगवन्सर्वधर्मज्ञ समदर्शिन् सुरेश्वर ।

कृपया परयाविष्टो यत्पृच्छामि वदस्व तत् ॥४१

धर्मा कीदृग्विधाः प्रोक्ताः के लोका धर्मशालिनाम् ।

कियत्यो यातना. प्रोक्ताः केपा ता. परिकीर्तिता. ॥४२

धर्मराज ने उनसे कहा—हे धर्म के ज्ञान रखने वाले मे परम श्रेष्ठ राजन । आपका सुयश त्रैलोक्य मे प्रथित है अतएव मुझको भी आपकी विशद कीर्ति को सुन समझकर मनमे प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी कि मैं आपके एक बार स्वयं चल कर दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य लूँ और आपके परम श्रेष्ठ गुणों से समाकृष्ट होकर ही मैं आपके समीप मे आया हूँ । आपके सद्गुण ही ऐसे हैं कि सभी देव-गण आपके दर्शन करने की उत्सुकता रखा करते है क्योंकि आप स-मार्ग परायण, सदा सत्य भाषण करने वाले और समस्त प्राणियों के हित मे संलग्न रहने वाले महानुभाव हैं ॥३६-३७॥ हे राजन ! यह सर्वाधिक नियम ही होना है कि जहा पर नीति, कीर्ति और सम्पत्ति हुआ करती है वहा पर सभी सद्गुण, सज्जन पुरुष और देव वृन्द भी स्वयं ही खिंचे चले आया करते हैं ॥३८॥ हे महाभाग ! आपका चरित्र परम शोभन है । आपके हृदय मे जो प्राणीमात्र के हितो वा सम्पादन करने आदि के जो अद्भुत गुण विद्यमान हैं वे हम लोगो मे भी बढिनाई से होते हैं ॥३९॥ जब धर्मराज ने इस तरह मे प्रशंसा की थी तो राजा भगीरथ ने उनको प्रणाम किया और अत्यधिक प्रसन्न होकर विनय के साथ मधुर वाणी से निवेदन किया था ॥४०॥ राजा भगीरथ ने कहा—हे सर्व धर्मों के ज्ञाता । आप तो समदर्शी हैं

और सुरेश्वर हैं । मैं इस समय में जो पूछना चाहता हूँ उसके विषय में आप कुछ वर्णन करने की कृपा कीजिये । आपका मुझ पर परम अनुग्रह होगा ॥४१॥ धर्मों का स्वरूप क्या-क्या है ? धर्म कर्मों के करने वाले पुरुषों को कौन-कौन से लोको का निवास प्राप्त हुआ करता है ? नरको की यातनाये कितनी हैं ? वे नारकीय यातनाये किनको भोगनी पडनी हैं ? ॥४२

त्वया संमाननीया ये शासनीयाश्च ये यथा ।
 तत्सर्वं मे महाभाग विस्तराद्वक्तुमर्हमि ॥४३
 साधु साधु महाबुद्धे मतिस्ते विमलोजिता ।
 धर्माधर्मत्प्रवक्ष्यामि तत्त्वत शृणु भक्तितः ॥४४
 धर्मा बहुविधा प्रोक्ता पुण्यलोकप्रदायकाः ।
 तथैव यातना प्रोक्ता असाख्या धोरदर्शनाः ॥४५
 विस्तराद्गदितुं नालमपि वर्षशतायुतैः ।
 तस्मात्समासतो वक्ष्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४६
 वृत्तिदानं द्विजानां वै महापुण्यं प्रकीर्तितम् ।
 तथैवाध्यात्मविदुषो दत्ता भवति चाक्षयम् ॥४७
 कुटुम्बिन वा शास्त्रज्ञं श्रोत्रियं वा गुणान्वितम् ।
 यो दत्त्वा स्थापयेद्वृत्तिं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४८
 मातृत्वं पितृत्वं चैव द्विजः कोटिकुलान्वितः ।
 निर्विषयं विष्णुभवनं कल्पं तथैव भोदते ॥४९

हे महाभाग । आप जिन प्राणियों का सत्कार किया करते हैं और कौन से लोगो को दण्ड दिया करते हैं ? अब आप कृपा करके इन सब बातों का मेरे समक्ष में विस्तृत वर्णन कीजिये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार से राजा भगीरथ के द्वारा जिज्ञासा करने पर धर्मराज ने कहा—हे महान बुद्धि वाले राजन बहुत ही अच्छे २ आपने प्रश्न किये हैं । आपकी बुद्धि बहुत ही विमल एवं उदार है । मैं आपके

प्रश्नों का समुचित उत्तर निवेदित करता हुआ इस समय में सभी धर्मों और अधर्मों के विषय में वर्णन करता है आप भक्ति पूर्वक उन परम तार्किक बातों का श्रवण कीजिये ॥४४॥ शास्त्रों में पुण्य लोको को प्रदान कराने वाले ब्रह्म से कर्मों का वर्णन किया गया है और उसी भाँति महान भीषण दिखाने वाली विविध नरकों की यातनाओं का भी वर्णन किया गया है ॥४५॥ यदि इन सबका शास्त्रों के अनुसार विस्तृत वर्णन किया जावे तो दश लाख वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है अतएव आपके प्रश्नों के अनुसार में यहाँ पर आपके सामने परम संक्षेप से धर्माधर्म का दिग्दर्शन कराता हूँ ॥४६॥ ब्राह्मणों के लिए वृत्ति का बाधना परम पुण्यप्रद कार्य है और जो किसी अठ्यात्मवादी को दान दिया जाता है वह अक्षय हुआ करता है ॥४७॥ किसी कुटुम्ब परिवार वाले पुरुष की,, शास्त्रों के ज्ञाता, गुणगण सम्पन्न श्रोत्रिय की जो वृत्ति बाँधता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका श्रवण आप करिये ॥४८॥ वह ब्राह्मण अपने पितृकुल और मातृकुल की करोड़ों पीढ़ियों को विष्णु लोक में प्रविष्ट कराकर वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त आनन्द का लाभ लिया करता है ॥४९॥

गण्यन्ते पासवो भूमेर्गण्यते वृष्टिविन्दव ।

न गण्यन्ते विधानापि ब्रह्मवृत्तिफलानि वै ॥५०॥

ससस्तदेवतारूपो ब्राह्मण परिकीर्तित ।

जीवन ददतस्तस्य व पुण्य गदितु क्षम ॥५१॥

यो विप्रहिन्वन्नित्य स सर्वावृत्तवान्मखान् ।

स स्नात सर्वतीर्थेषु तप्त तेनाखिल तप ॥५२॥

यो ददस्वेति विप्राणा जीवन प्रेरयेत्परम् ।

सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितं ॥५३॥

तडाग कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा ।

वक्तु उत्पुण्यसद्यान नालाह वर्षशतायुषा ॥ ५४॥

एकश्चेदध्वगो राजस्तडागस्य जल पिवेत् ।
 तत्कर्तुं सर्वपापानि नैश्यन्त्येव न शशय ॥५५॥
 एकाहमपि यत्कुर्याद्भूमिस्थमुदकं नर ।
 स मुक्त सर्वपापेभ्यः शतवर्षं वसेद्विदवि ॥५६॥

घूलि के कण और वर्षा की वृद्ध भी किसी प्रकार से गिनी जा सकती है जिनकी गणना करना नितांत असम्भव होता है अथ की तो बात ही क्या है यदि विघाता भी चाहे तो उस ब्रह्मावृत्ति प्रदान करने वाला क पुण्य फलों की गणना नहीं कर सकत हैं ॥५०॥ ब्राह्मण सभी देवों का स्वल्प होता है । उसकी जो जीविका बाँध देता है उसके महान पुण्य फल के विषय में किसकी शक्ति है जो उनका वणन कर सके ॥५१॥ निरन्तर विप्रों के निय हितप्रद काय किया करता है उसको तो यो समझना चाहिये कि उसने समस्त यज्ञों का यजन कर लिया है समस्त तीर्थों में उसने अवगाहन कर लिया है और सभी प्रकार की तपश्चर्या भी बहू पूण कर चुका है ॥ ५२ ॥ जो प्राणी दूसरे लोगों को ब्राह्मणों की आजीविका बाँधने के लिये प्रेरित किया करता है उसको भी यही पुण्य फल प्रदान किया जा सकता है ॥५३॥ जो स्वयं किसी तालाब आदि जलाशय का निर्माण कराता है या करता है उसका इतना अधिक पुण्य होता है कि उसकी गणना भी वष की पूरी लम्बी आयु में भी नहीं की जा सकती है ॥५४॥ हे राजन् ! यदि कोई एक पथिक भी उस तालाब में स जलपान कर लेता है तो उस तालाब के निर्माण करने वाले के सभी पापों का विनाश हो जाया करना है ॥५५॥ जा बोह मनुष्य एक दिन के पान करने के नायक भी जल उस तालाब में कर दिया करता है यह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर सौ वर्ष तक स्वर्ग में निवास किया करता है ॥५६॥

कतु तडाग यो मत्स्य साह्यक शक्तितो भवत् ।

सोऽपि तत्फलमाप्नोति तुष्ट प्रेरक एव च ॥५७
 मृद सिद्धार्थमात्रा वा तडागाद्यो वहि क्षिपेत् ।
 तिष्ठत्यब्दशत स्वर्गं विमुक्त पापकोटिभिः ॥५८
 देवता यस्य तुप्सन्ति गुरवो वा नृपोत्तम ।
 तडागपुण्यभावस त्यादित्येषा शाश्वती श्रुति ॥५९
 इतिहास प्रवक्ष्यामि तवान्न नृपसत्तम ।
 य श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥६०
 गौडदेशेऽतिविद्ययातो राजासीद्वीरभद्रक ।
 महाप्रतापो विद्यावान्सदा विप्रपूजक ॥६१
 वेदशास्त्रकुलाचारयुक्तो मित्रविवर्धन ।
 तस्य राज्ञी महाभागा नाम्ना चम्पकमञ्जरी ॥६२
 तस्य राज्ञो महामामात्या कृत्याकृत्यविचारणा ।
 धर्माणा धर्मशास्त्रैस्तु सदा कुर्वन्ति निश्चयम् ॥६३

जो मनुष्य तालाब के निर्माण कराने में अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता दिया करता है उसको तथा तालाब के निर्माण के लिये चन्दा आदि करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले को भी यही फल प्राप्त हुआ करता है ॥५७॥ जो मनुष्य तालाब के निर्माण होने के समय में तालाब की मिट्टी को निकाल कर बाहर की ओर फेंकता है उसको भी ऐसा पुण्य मिलता है कि वह भी करोड़ों पापों से मुक्त होकर सी वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में वास किया करता है ॥५८॥ हे नृप-श्रेष्ठ । ऐसी एक परम प्राचीन काल से चली आने वाली श्रुति है कि जिस मनुष्य पर गुरु और देवगण परम प्रसन्न हुआ करते हैं उसी को तालाब बनवाने का महान पुण्य प्राप्त हुआ करता है ॥५९॥ हे राजन् । इस विषय में मैं आपको एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करता हूँ उसका श्रवण करने वाला पुरुष भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होजाया करता है ॥६०॥ गौड देश में वीरभद्र नाम का एक राजा था जो

महान् प्रतापी, विद्यावान् और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला परम प्रसिद्ध था ॥६१॥ वह राजा वेद शास्त्र और कुल के उपचारों का पूर्णतया पालन किया करता था तथा अपने मित्रों की वृद्धि करता था । उस राजा की परम भाग्यशालिनी रानी का नाम चम्पक-मजरी था ॥६२॥ उस राजा के जो प्रधान मन्त्री थे वे भी वृत्त्य-ववृत्त्य का भली भाँति से विचार करने वाले थे । उनका वर्त्तव्य यही था कि धर्मशास्त्रों के द्वारा ही पूर्णतया निर्णय किया करते थे ॥६३॥

प्रायश्चित्त चिकित्सा च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम् ।

विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६४॥

इति निश्चित्य मनसा मन्वादीरितधर्मकान् ।

आचार्यैभ्य सदा भूप शृणोयि विधिपूर्वकम् ॥६५॥

न कोऽप्यन्यायवर्ती च तस्य राज्येऽवरोऽपि च ।

धर्मेण पाल्यमानस्य तस्य देशस्य भूपते ॥६६॥

जात समत्व स्वर्गस्य सौराज्यस्य शुभावहम् ।

स चैकदा तु नृपतिमृंगयाया महायने ॥६७॥

मन्त्र्यादिभिः परिवृतो बभ्राम मध्यभास्करम् ।

देवादायैः शून्यस्य ह्यतिश्रान्तस्य तत्र वं ॥६८॥

नृपरीतस्य सजात सरसो दर्शन नृप ।

ततः शुष्का तु सरसी दृष्ट्वा तत्र व्यचिन्तयत् ॥६९॥

किमय सरसी शृगे भुवः केन विनिर्मिता ।

कथं जान भवेदत्र येन जीवेदय नृप ॥७०॥

पापों का प्रायश्चिन्तन, रागों की चिकित्सा, ज्योतिष और धर्म के विषय में जो विना शास्त्रों का विचार किये ही सहसा कुछ बोल देना है वह ब्रह्मघातक के समान ही महा पापी होता है ॥ ६४ ॥ अपने हृदय में इन मर्मों का भली भाँति विचार करने ही यह सर्वदा मनु आदि महर्षियों के द्वारा धर्मित छत्रों के विषय में तदा ही विद्वान्

आचार्यों से श्रवण किया करता था ॥६५॥ उच्च वर्णों की तो बात ही क्या है उसके राज्य में कोई शूद्र भी अधर्म का कार्य नहीं किया करता था । धर्म के साथ परिपालन करते हुए उस राजा के देश में जो स्वराज्य था उसमें और स्वर्ग में सभी समान ही कल्याणकारी बातें दिखलाई दिया करती थी । एक समय की बात है कि वह वीर-भद्र राजा मृगया के लिये वन में गया था ॥६६॥६७॥ वह मध्याह्न के समय में पूरा दिन वन में अपने मन्त्रियों के साथ में इधर-उधर भ्रमण करता रहा किन्तु उसे देवात् उस दिन कोई भी शिकार नहीं मिली थी । राजा घूमते हुए बहुत ही अधिक थक गया था । इसी बीच में उसको उस महान् घोर वन में एक बावड़ी दिखलाई दी थी । उस बावड़ी को मनुष्य चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये थे । उस समय में बुद्धिसागर नामक मन्त्री ने उस बावड़ी को शुष्क देख कर अपने मन में विचार किया था ॥६८॥६९॥ यह पर्वत की चोटी पर किमने मिट्टी से एक बावड़ी का निर्माण कर दिया है । इसमें अब जल किस प्रकार से होवे जिससे इस परम परिश्रान्त राजा में जीवन कैसे आवे ॥७०

ततो बुद्धि समभवत्खाते तस्या नृपोत्तम ।
 हस्तमात्र ततो गर्त्तं खात्वा तोयमवाप्तवान् ॥७१
 तेन तोयेन पीतेन राज्ञस्तृप्तिरजायत ।
 मन्त्रिणश्चापि भूमौश बुद्धिसागरसज्जिन ॥७२
 स बुद्धिसागरो भूप प्राह थर्मार्थकोविद ।
 राजन्निय पुष्करिणी वर्षजिलवती पुरा ॥७३
 अद्यैना वद्धवप्रा च कर्त्तुं जाता मतिर्मम ।
 तद्भवान्मोदता देव दत्तादाज्ञा च मेऽनघ ॥
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य मन्त्रिणो नृपसत्तम
 गुमुदेर्जततरा भूप स्वयं गर्त्तुं समुद्यत ॥७४

तमेव मन्त्रिण तत्र युयोज शुभकर्मणि ।

ततो राजाज्ञया सोऽपि बुद्धिसागरको मुदा ॥७६

सरसी सागर कर्त्तुं मुद्यत पुण्यकृत्तम ।

धनुषा चैव पञ्चाशत्सर्वतो विस्तृतायताम् ॥७७

सरसी वद्धसुशिला चकारागाधशंवराम् ।

ता विनिर्माय सरसी राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥७८

उस समय मैं उसने बुद्धवान का मन में विचार किया था और एक हाथ का गड्ढा खोद दिया तो उसमें जल प्राप्त हो गया था ॥७९॥ हे राजन् ! उस जल के पान करने से राजा को तृप्ति हुई थी और बुद्धिसागर नाम वाला मन्त्री भी जल पीकर तृप्त हो गया था ॥७२॥ उस समय में धार्मिक कार्यों के करने में परम कुशल उस मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की थी कि हे राजन् ! पहिले यह बावड़ी बना के ही जल से भरो हुई थी ॥७३॥ अब इसकी ठीक रचना कराकर सुंदर स्वरूप इसका बनवाने का मेरा विचार है । हे देव । यदि मरे इस प्रस्ताव का अनुमोदन करे तो हे निष्पाप ! मुझे इस कार्य के सम्पादन करा देने की आज्ञा प्रदान करें ॥७४॥ अपने महान् मेधावी मन्त्री की इस वान का श्रवण कर वह श्रेष्ठ शिरोमणि राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था तथा बावड़ी की ठीक रचना कराने के कार्य के लिये स्वर्ण भी समुद्यत हो गया था ॥७५॥ राजा ने इस परम शुभ काम का सम्पन्न कराने के लिये उसी बुद्धिसागर मन्त्री की नियुक्ति कर दी थी । इस पुण्य कर्म के करने के लिये परमेच्छुक बुद्धिसागर राजा की आज्ञा पा कर परम प्रसन्न होकर उस बावड़ी को एक उत्तम सरोवर बनवाने के लिये तैयार हो गया था । उस मन्त्री ने फिर वहाँ पर चारों ओर स पचास धनुष की फैली हुई चौड़ी पाषाण की भित्तिवाला परम मनोहर सरोवर बनवा दिया था । फिर तो उमम अगाध जल हा गया था । इस रीति में जब वह सरोवर पूर्णतया तैयार हो गया तो मन्त्री ने राजा को खबर दी थी ॥७६॥ ७८॥

तस्या तत प्रभृति वै सर्वेऽपि वनचारिणः ।
 पान्था पिपासिता भूप लभन्ते स्म जल शुभम् ॥७६
 कदाचित्स्वायुषश्चान्ते स मन्त्री बुद्धिसागरः ।
 प्रमृतो गतवाल्लोक लोकशास्तुर्मम प्रभो ॥८०
 तदर्थं तु मया पृष्टो धर्मो धर्मलिपिकरः ।
 चित्रगुप्तस्तु तत्कर्म मह्य सर्वं न्यवेदयात् ॥८१
 उपदेश्य स्वयं चासौ धर्मकार्यस्य भूपते ।
 तस्मद्धर्माविमानं तु समारोढुमिहार्हंति ॥८२
 इत्युवते चित्रगुप्तेन समाज्ञप्तो मया नृप ।
 विमानं धर्मसज्जं तु आरोढु बुद्धिसागरः ॥८३
 अथ कालान्तरे राजन्स राजा वीरभद्रकः ।
 मृतो गतो मम स्थानं नमश्चक्रे मुदान्वितः ॥८४

मन्त्री ने राजा के समीप में यह सम्वाद भिजवाया था कि उस सरोवर के निर्माण होने के पश्चात् सुन्दर निर्मल जल हो गया है और अब उसी दिन से उस सरोवर में वनवासी और यात्री लोग सभी इसके पवित्र जल का पान करने लग गये हैं । ७६॥ हे राजन् ! एक समय आ गया कि आयु के पूर्ण होआने पर वह बुद्धिसागर मन्त्री मर गया था । मुझे तो इस तनार को शिक्षा देनी ही पडती है । अतएव जब वह मेरे लोक में समागत हुआ तो मैंने धर्म को लिपिवद्ध करने वाले चित्रगुप्त से कहा और उस बुद्धिसागर मन्त्री के धर्म के विषय में प्रश्न किया था । उस समय चित्रगुप्त ने इसका किमा हुआ सभी कर्म मुझे बतलाया था ॥८०॥८१॥ उसने कहा था कि इम मन्त्री ने इस धर्म के कार्य का राजा को स्वयं ही उपदेश दिया था । अतएव यह धर्म-विमान पर चढ़ने का पात्र है ॥८२॥ हे राजन् ! चित्रगुप्त के द्वारा इस बात के कहने पर मैंने उस बुद्धिसागर राजा के मन्त्री का धर्म नाम वाले विमान पर समारोहण करने का आज्ञापत्र

दे दिया था ॥ २३ ॥ इस के उपरान्त कुछ समय के व्यतीत हो जाने पर वह राजा वीरभद्रभी आयु के समाप्त हो जाने पर मृत्यु प्राप्त करके मेरे दरवार में उपस्थित होगया था । उस राजा ने बहुत ही प्रसन्नता के साथ वहाँ आकर मुझे प्रणाम किया था ॥८४

मया तु तत्र तस्यापि दृष्टं कर्माखिलं नृप ।

कथित चित्रगुप्तेन धर्मं सरसिसभवम् ॥८५

तदा सम्यङ्गया राजा वीधिताऽभूद्यथा ऋणु ।

अधित्यकाया भूपाल सैकतस्य गिरेः पुरा ॥८६

लावकेनामुना चञ्च्वा खात द्वचंङ्ग लमम्बुनि ।

तत कालान्तरे तेन वाराहेण नृपोत्तम ॥८७

खनित हस्तमात्र तु जल तुण्डेन चात्मनः ।

ततोऽन्यदाऽमुया काल्या हस्तयुग्ममित. कृतः ॥८८

खातो जले महाराज तोय मासद्वय स्थितम् ।

पीत क्षुद्रैर्वनचरैः सत्त्वैस्तृष्णासमाकुलं. ॥८९

ततो वर्षप्रयान्ते तु गजेनानेन मुघ्रत ।

हस्तत्रयामित खात कृतस्तत्राधिक जलम् ॥९०

मासत्रये स्थित तच्च पयो जीवैर्वनेचरैः ।

भवास्तत्र समायातो तलशोपादनन्तरम् ॥९१

हे राजन् । मैंने फिर चित्रगुप्त से उस राजा के धर्म के विषय में पूछा तो उसने उस राजा के धर्म के सम्बन्ध में सरोवर के निर्माण में मिले हुए उसके धर्म का वर्णन किया था ॥८५॥ उस समय में मैंने उस राजा को विस्तार के साथ बतलाया था । अब आप उनका श्रवण करिए । मैंने कहा था—हे राजन् । पहिले इस राज ने इस पहाड की तलहटी की रज में अपनी चोंच सदा अगुल जा गत बनाकर जल निकाला था । हे नृप श्रेष्ठ । इसके पश्चात् किमी समय में एक शूजर ने अपनी धूथड़े में एक हाथ का उसी जगह पर एक गड्ढा बना दिया

था ॥८६॥८७॥८८॥ हे राजन् उस गर्त में दो मास तक जल बना रहा था और प्यास से बबडाये हुए छोटे वन के जीव जन्तुओं ने उसके जल का पान कर अपनी पिपासा को शांत किया था ॥ ६६ ॥ हे सुव्रत ! फिर जब तीन वर्ष व्यतीत होगये थे तो इस हाथी ने उसी जगह पर एक तीन हाथ का गर्त खोदकर बना दिया था और उसमें कुछ अधिक जल रहने लगा था । वह जगली जीवों के लिये तीन मास तक बराबर बना रहा था । इसके उपरान्त जब उसका जल सूख गया तो आप वहाँ पर पहुँच गये थे ॥६९

मासे तत्र तु संप्राप्त हस्त खात्वा जल नृप ।

ततस्तस्योपदेशेन मन्त्रिणे नृपते त्वया ॥६२

पञ्चाशद्वनुरुत्खात जात तत्र महाजलम् ।

पुन शिलाभिः सुदृढ बद्धं जात महत्सर ।

वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः ॥६३

तेन स्वस्वेन पुण्येन पञ्चैते जगतीपते ।

विमान धर्म्यमारूढास्त्वमप्येन समारूह ॥६४

इति वाक्यं समाकर्ण्य मम राजा स भूमिप ।

आरूरोह विमान तत्पथो राजा समाशभाक् ॥६५

इति ते सर्वमाख्यात तडागजनित फलम् ।

श्रुत्वैयन्मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥६६

यो नर श्रद्धया युक्तो व्याख्यात शृणुयात्पठेत् ।

सोऽध्याप्नोत्यखिल पुण्य सरोनिर्माणसम्भवम् ॥६७

हे राजन् ! फिर वही पर एक हाथ का गर्त खोदने पर ही आपको उसमें जल की प्राप्ति होगई थी फिर आपने अपने मन्त्री के उपदेश से पचाम धनुष का मैदान टुट्टया कर उसमें बहुत अधिक जल भर दिया था और पापाणों के द्वारा एक गरम मुन्दर पत्ता पाट बनवा कर बहुत ही अच्छा एक सरोवर का निर्माण करा दिया था

धीर उसके आस-पास सबके उपकार करने वाले अनेक वृक्षों का भी आरोपण करा दिया था ॥६२॥६३॥ हे राजन् । उमी किये हुये अपने अपने पुण्य के प्रभाव से ये पाँचो धर्म के नाम वाले विमान पर चढ चुके हैं अब आप भी उस पर समाखूड होइये ॥६४॥ हे राजन् । मेरे इस वचन को सुनकर वह छटा राजा भी जो उस जलाशय के निर्माण से उत्पन्न धर्म वा समभायी था उस विमान पर चढ गया था ॥६५॥ तालाव के निर्माण करने का जो महान पुण्य होता है उसका वर्णन मैं आपको बहकर नुना दिया है । इसका श्रवण कर तथा इसको करके मनुष्य जन्म से लेकर जा भी पाप होते हैं उनसे मुक्त हो जाया करता है ॥६६॥ जो कोई मनुष्य श्रद्धा की भाषना से इस अद्भुत आश्रयान को सुनता या पढता है उसको भी कभी ऐसी शक्ति होने पर यह सब फल प्राप्त हुआ करता है ॥६७



॥ नाना प्रकार के दानों का निरूपण ॥

देवतायतन यस्तु कुरुये कारयत्यपि ।
 शिवस्यापि हरेर्वापि तस्य पुण्यफल शृणु ॥१
 मातृत पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वित ।
 कल्पत्रय विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥२
 मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतन नर ।
 यावत्पुण्य भवेत्तस्य तन्मे निगदत शृणु ॥३
 दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।
 कल्पत्रय विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥४
 मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतन नर ।
 यावत्पुण्य भवेत्तस्य तन्मे निगदत शृणु ॥५
 दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।

कल्पत्रय विष्णुपदे स्थित्वा ब्रह्मपुर व्रजेत् ॥६

कल्पद्वय स्थितस्तत्र पुन कल्प वसेद्विवि ।

ततस्तु योगिनामेव कुले जातो दयान्वित ॥७

धर्मराज ने कहा—जो मनुष्य भगवान् शङ्कर या भगवान् विष्णु इन देवों का स्थान अर्थात् मन्दिर का निर्माण कराता है अथवा निर्माण कराने की प्रेरणा प्रदान किया करता है इसका जो पुण्यफल होता है उसे भी आप अब सुनिए—ऐसे देवालय का निर्माण करने या कराने वाला मनुष्य अपने माता पिता दोनों के कुलो की दश खरब पीड़ियों के साथ तीन कल्प पर्यन्त विष्णु लोक में निवास किया करता है ॥१-२॥ इस समय में केवल मिट्टी से ही जो किसी देव मन्दिर का निर्माण कराता है उस मनुष्य को जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह भी भुज से आप सुन लीजिये ॥३॥ उस व्यक्ति का भी शरीर परम दिव्य होजाया करता है । और वह भी एक परम श्रेष्ठ विमान में बैठकर तीन कल्प तक श्री विष्णु भगवान् के लोक में निवास किया करता है ॥४॥ जो पक्की मिट्टी आदि से देव मन्दिर की रचना करवाया करता है उसका पुण्यफल भी मैं आप को बतलाता हूँ उसका भी आप श्रवण करिए ॥५॥ वह मनुष्य रूपी परम दिव्य देह को धारण करके उत्तम विमान में समावृद्ध हुआ करता है और तीन कल्प तक विष्णुलोक में निवास किया करता है । फिर वह वहाँ से ब्रह्मलोक को चला जाता है ॥६॥ वहाँ पर दो कल्प तक निवास करके फिर एक कल्प तक स्वर्गलोक के निवास का सुख भोगता है । इसके अनन्तर वह प्राणी किसी योगिराज के कुल में समुत्पन्न होता है और अपने जीवन में वह परम दयालु रहा करता है ॥७

वैष्णव योगमास्थाय मुक्तिं व्रजति शाश्वतीम् ।

दारुभि वुरते यस्तु तस्य स्याद् द्विगुण फलम् ॥८

त्रिगुण चेष्टवाभिस्तु शिलाभिस्तच्चतुर्गुणम् ।

स्फटिकाभिः शिलाभिस्तु ज्ञेयं दशगुणोत्तरम् ॥६
 ताम्रोभिस्तच्छतगुणं हेम्ना कोटिगुणं भवेत् ।
 देवालयं तडागं वा ग्राम वा पालयेत्, यः ॥१०
 कर्तुः शतगुण तस्य पुण्य भवति भूपते ।
 देवालयस्य शुश्रूषा लेपसेचनमडने ॥११
 कुर्याद्यत्सतत भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ।
 वेतनाद्विष्टितो वापि युष्यकर्मप्रवर्तिता ॥१२
 ते गच्छति धराधारा शाश्वत वैष्णव पदम् ।
 तडागाद्धफल राजन्कासारे परिकीर्तितम् ॥१३
 कूपे पादफल ज्ञेय वाप्या पद्माकरोन्मितम् ।
 वापीशतगुण प्रोक्त कुल्याया भूपते, फलम् ॥१४

इसके उपरान्त योगाभ्यास के द्वारा भगवान् विष्णु का ध्यान करके परम शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । जो काष्ठ के द्वारा किसी देवालय का निर्माण कराया करता है उसको इससे भी द्विगुणित पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है ॥८॥ ईंटों के द्वारा देव मन्दिर के बनवाने वाले को सौगुना पुण्य प्राप्त हुआ करता है । जो स्फटिक मणि के पाषाणों के द्वारा देवालय की रचना कराता है उसको उपर्युक्त पुण्य फल से दशगुना पुण्य मिला करता है ॥९॥ ताम्रधातु से देव मन्दिर की रचना कराने वाले को सौगुना और सुवर्ण के द्वारा देव मन्दिर के निर्माण कराने वाले को करोड़ गुना फल प्राप्त हुआ करता है । जो किसी भी देव मन्दिर का, तालाब का और ग्राम का परिपालन एवं संरक्षण किया करता है उस पुरुष को निर्माण कराने वाले से भी सौगुना पुण्य मिला करता है जो लेपन-अभिषिञ्चन और पुताई आदि के द्वारा इनका रक्षण एवं उद्धार किया करता है तथा परम भक्ति भाव से सब प्रकार से सेवा किया करता है उसको अनन्त पुण्य मिला करता है । हे राजन् ! जो घनिक अथवा राजा महाराजा

वेतन देकर या बिना ही वेतन के ऐसे पुण्य कर्म को प्रवृत्त किया करते हैं। उनको विष्णुनोक सर्वदा के लिए ही प्राप्ति हो जाता है। ह राजन् ! तालाब से आधा पुण्य जाहूड के निर्माण कराने का हुआ करता है ॥ १०-१३ ॥ कूप के निर्माण कराने पर चौथाई फल मिला करता है। बावडी बनवाने वाले पुरुष को दश खवं गुना फल प्राप्त हुआ करता है। बावडी से भी सौ गुना पुण्य नहर बनवाने वाले राजा को प्राप्त हुआ करता है ॥१४॥

दृपदिभस्तु धनी कुर्यान्मृदा निष्किञ्चनो जन ।

तयो फल समान स्यादित्याह कमलोद्भव ॥१५

दद्यादाढ्यस्तु नगर हस्तमात्रमकिञ्चन ।

भुव तयो समफल प्राहुर्वेदविदो जना ॥१६

धनाढ्य कुस्ते यस्तु तडाग फलसाधनम् ।

दरिद्र कुस्ते कूप सम पुण्य प्रकीर्तितम् ॥१७

आरामा कारयेद्यस्तु बहुजन्तूपकारकम् ।

स याति ब्रह्मभुवन कुलत्रयसमन्वित ॥१८

धेनुर्वा ब्राह्मणो वापि यो वा को वापि भूपते ।

क्षणाद् तस्य छायाया तिष्ठन्स्वर्गं नमत्यमुम् ॥१९

आरामकारका राजन्देवतागृहकारिण ।

तडागग्रामकर्तारि पूज्यन्ते हरिणा सह ॥२०

सर्वलोकोपकारार्थं पुष्पारामा जनेश्वर ।

बुवंते देवतार्थं वा तेषा पुण्यफला शृणु ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—यदि कोई धनी पुरुष पाषाणों से देवालय तालाब आदि का निर्माण कराये और साधारण आर्थिक स्थिति का मनुष्य मृत्तिका से ही निर्माण करवे तो दोनों का एक सा ही फल प्राप्त करता है ॥१५॥ कोई समृद्धिशाली पुरुष एक विशाल नगर को दान में प्रदान करके दे देवे और सामान्य आर्थिक स्थिति का मनुष्य केवल एक ही हाथ भर के प्रमाण वाली भूमि का दान करे उन दोनों को भी

सप्तकोटिकुलैर्युक्तो मातृत पितृतस्तथा ।
 वसेत्कल्पशत साग्र नारायणपदे नृप ॥२५॥
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्तया ।
 गोपिकाचन्दनेनापि चित्रकूटमृदापि वा ।
 गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफल शृणु ॥२६॥
 विमानवरमारूढो गन्धर्वाप्सरसा गणै ।
 सङ्गीयमानचरितो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥२७॥
 पत्राणि तुलसीमूलाद्यावन्ति पतितानि वै ।
 तावन्ति ब्रह्महत्यादिपातकानि हतानि च ॥२८॥

उस उद्यान में जितने भी फूल और पत्र होते हैं उतने ही वर्षों तक वह मनुष्य जिसने वृक्षों का आरोपण किया है अपनी करोड़ों पीढ़ियों के सहित स्वर्ग लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है ॥२२॥ जो लोग उस उद्यान की सुरक्षा के लिए परदे की दीवार बनाते हैं या काटों की बाड़ लगाया करते हैं वे एक मन्वन्तर के समय पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास किया करते हैं ॥२३॥ हे राजन् ! जो तुलसी के पौधे का आरोपण किया करते हैं उनके पुण्य फल को आप मेरे द्वारा कहे जाने पर ही जान सकते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! जो तुलसी का पौधा लगाने वाला व्यक्ति अपने माता पिता की सात करोड़ पीढ़ियों के सहित सौ कल्प के समय तक नारायण लोक में निवास प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥ जो तुलसी के मूल के समीप की मृत्तिका से, गोपी चन्दन से, चित्रकूट की मृत्तिका से अथवा गङ्गाजी के तट की मृत्तिका से ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किया करता है उसको महान् पुण्य फल प्राप्त होता है । उसको भी मैं अब आपको ज्ञान प्राप्त कराने के लिए बतलाता हूँ । इसे लोग एक साधारण सी बात ही समझा करते हैं और इसकी वास्तविक महिमा का ज्ञान नहीं होता है । वह पुरण विष्णुलोक में पहुँचकर परमश्रेष्ठ विमान में बैठा करता है और गन्धर्व गण तथा अप्सराओं का दल

उसके यश का गान किया करते हैं ॥२६-२७॥ तुलसी के मूल में जितने भी पत्ते स्वयं झड़कर गिर जाया करते हैं उस पौधे के आरोपित करने वाले पुरुष के उतने ही ब्रह्म हत्या आदिक महापातको को दूर करा दिया करते हैं ॥२८॥

तुलस्या सेचयेद्यस्तु जलं चुलुकमाणकम् ।
 क्षीरोदवासिना साद्धं वसेदाचन्द्रतारकम् ॥२६
 ददाति ब्राह्मणाना य कोमल तुलसीदलम् ।
 स याति ब्रह्मसदने कुलत्रितयसयुतः ॥३०
 शालग्रामेऽप्येद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च ।
 स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसप्लवम् ॥३१
 कण्टकावरण यस्तु प्राकार वापि कारयेत् ।
 सोऽप्येकविंशतिकुलैर्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥३२
 योऽर्चयेद्धरिपादाब्ज तुलस्या कोमलैर्दलैः ।
 न तस्य पुनरावृत्तिविष्णुलोकान् नरेश्वर ॥३३
 द्वादश्या पूर्णमास्या य क्षीरेण स्नापयेद्धरिम् ।
 कुलायुतयुत सोऽपि मोदते वैष्णवे पदे ॥३४
 प्रस्थमाणेण पयसा य स्नापयति केशवम् ।
 कुलायुतायुतयुत सोऽपि विष्णुपुरे वसेत् ॥३५

जो कोई एक चुल्हू भर जल से भी तुलसी के पौधे को सींच दिया करता है वह क्षीर सागर में निवास करने वाले भगवान के साथ जब तक सूर्य और चन्द्र इस विश्व में स्थित रहा करते हैं तब तक निवास किया करता है ॥२६॥ जो ब्राह्मणों को लाकर परम कोमल तुलसी के दल अर्पित किया करता है वह अपने तीनों कुलों के सहित ब्रह्मलोक में गमन किया करता है ॥३०॥ जो पुण्यात्मा पुरुष श्रीशालग्राम भगवान पर नित्य तुलसी के दलों को चढ़ाया करता है वह प्रलय-काल तक विष्णुलोक में निवास किया करता है ॥३१॥ जो गुरुक्षा

के लिए तुलसी के पौधों की कांटों की बाड़ लगाता है अथवा तुलसी का घमला बना देता है वह भी अपनी इक्कीस पुस्तों तक स्वर्ग लोक ध्यान-द का अनुभव किया करता है ॥३२॥ जो भगवान् विष्णु के चरण कमलों की तुलसी के कोमल दलों से पूजा किया करता है वह विष्णुलोक को प्राप्त कर वहाँ से फिर वापिस नहीं लौटा करता है ॥३३॥ जो कोई मनुष्य द्वादसी तिथि अथवा पूर्णिमा के दिन दुग्ध से विष्णु भगवान् का स्नान कराया करता है वह अपनी दश करोड़ पुत्रों के सहित विष्णु भगवान् के लोक में रहा करता है ॥३४॥ जो एक प्रस्थ भर प्रमाण वाले अर्थात् ६४ तोले दूध से भगवान् केशव को स्नान करता है ॥३५॥

घृतप्रस्थेन यो विष्णु द्वादश्या स्नापयेन्नर ।

कुलकोटियुतो राजन्सायुज्य लभते हरे ॥३६॥

पञ्चामृतन य स्नानमेकादश्या तु कारयेत् ।

विष्णो सायुज्यक तस्य भवेत्कुलशतायुतं ॥३७॥

एकादश्या पौर्णमास्या द्वादश्या वा नृपोत्तम ।

नालिकेरोदकैर्विष्णु स्नापयेत्तत्फल शृणु ॥३८॥

दशजन्मार्जितं पापविमुक्तो नृपसत्तम ।

शतद्वयकुलैर्युक्तो मोदते विष्णुना सह ॥३९॥

इक्षुतोयेन देवेश य स्नापयति भूपते ।

केशवा लक्षपितृभि साद्धं विष्णुपद व्रजेत् ॥४०॥

पुष्पोदकेन गोविन्द तथा गन्धोदकेन च ।

स्नापयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णव पदमाप्नुयात् ॥४१॥

जलेन वस्त्रपूतेन य स्नापयति माधवम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥४२॥

जो एक प्रस्थ भर घृत में द्वादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु को स्नान कराया करता है । हे राजन् । वह अपने परोक्षा पुत्रों के

सहित भगवान की सामुज्यता को प्राप्त किया करता है ॥३६॥ जो एकादशी के दिन या पूर्णिमा तिथि में नारियल के जल से भगवान विष्णु की प्रतिमा का स्नान कराता है उसके पुण्य फल का भी आप मुझ से श्रवण कीजिए ॥३७३८॥ हे नृपते ! वह दश जन्मों में बने हुए पातकों से छुटकारा पाकर अपने दो सौ वंशज पीढियों के सहित विष्णु भगवान के समकक्ष पहुँच कर निवास किया करता है ॥३९॥ हे राजन् ! जो कोई भक्त गन्ने के रस से भक्तिभाव से भगवान केशव का स्नान कराया करता है वह मनुष्य अपने लम्बे पितृगणों के सहित विष्णुलोक में प्रवेश प्राप्त किया करता है ॥४०॥ जो पुण्यों के रस अथवा परम सुगन्धित पुष्पों के अर्क से या इन से गोविन्द का स्नान कराता है वह भी विष्णुलोक का निवास प्राप्त करता है ॥४१॥ जो भक्त वस्त्र से छान कर जल से भगवान माधव प्रभु का स्नान कराता है वह सभी प्रकार के योगविधोः पाप से मुक्ति प्राप्त करके भगवान विष्णु के भक्तिमय ही आनन्दवास किया करता है ॥४२॥

क्षीराद्यै स्नापयेद्यस्तु रविसाक्रमण हरिम् ।

स वसेद्विष्णुसदने तिसप्तपुरुषै सह ॥४३॥

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या पूर्णिमादिने ॥४४॥

एकादश्या भानुवारे द्वादश्या पचमीतिथौ ।

सोमसूर्योपरागे च मन्वादिषु युगादिषु ॥४५॥

अर्द्धोदये च सूर्यस्य पुष्यार्के रोहिणीबुधे ।

तथैव शनिरोहिण्या भीमाश्विन्यां तथैव चाष्टमे ।

शन्या भृगुमृगे चैव भृगुरेवतिसङ्गमे ।

तथा बुधानुराघाया श्रवणार्के तथैव च ॥४७॥

तथा च सोमश्रवणे हस्तयुक्ते बृहस्पतौ ।

बुधाष्टम्या बुधापाठे पुष्ये चान्ये दिने तथा ॥४८॥

स्नापयेत्पयसाविष्णु शान्तिमाश्वायत शुचि ।

घृतेन मधुना वापि दध्ना वा तत्फलं शृणु ॥४९॥

जो भक्त सूर्य सक्रमण के (सक्रान्ति) समय में दुग्ध आदि गव्यो से भगवान की प्रतिमा का स्नान भक्ति पूर्वक कराया करता है वह अपने इक्कीस पूर्वजों को साथ में लेकर विष्णु लोक में निवास किया करता है ॥४३॥ जो कोई भक्त शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा अथवा एकादशी रविवार के दिन पञ्चमी, सूर्य अथवा चन्द्र के ग्रहण, मन्वन्तरादि तथा युगादि की तिथियों में अस्तोदय सूर्य-ग्रहण, अर्धोदित सूर्य, पुष्य नक्षत्र युक्त सूर्य, रोहिणी युक्त बुध, शनि युक्त रोहिणी, अश्विनी नक्षत्रयुक्त भीमवार तथा शनिवार, मृगशिरा से युक्त भृगुवार, रेवती से समन्वित शुक्रवार, अनुराधा से युक्त बुधवार, श्रवण समन्वित सोमवार, हस्त नक्षत्र वाले गुरुवार, बुधवार वाली अष्टमी उत्तराषाढा से युक्त बुधवार तथा अन्य किसी परम पुण्यमय दिवस में भगवान विष्णु को हृदय में शान्त रहकर तथा वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए परम पवित्रता के साथ घृत, दधि और मधु से भगवान को स्नान कराया करता है उसके पुण्यफल का श्रवण करिये ॥४४ ४६॥

सर्वयज्ञफल प्राप्य सर्वपापविवर्जित ।

वसेद्विष्णुपुरे साद्धं त्रिसप्तपुरूपैतृप ॥५०

तत्रैव ज्ञानमासाद्य योगिनामपि दुर्लभम् ।

मोक्षमाप्नोति नृपते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥५१

वृष्णपक्षे चतुर्दश्या सोमवारे च भूपते ।

शिव सस्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५२

नलिकेरोदकेनापि शिवा सस्नाप्य भक्तित ।

अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते ॥५३

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या वापि भूपते ।

पृथेन मधुना स्नाप्य शिव तत्साम्यता व्रजेत् ॥५४

तिलतेनेन सस्नाप्य विष्णु वा शिवमेव च ।

स याति तत्तत्सारूप्यां पितृभिः सह सप्तभिः ॥५५

शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः ।

शिवलोके वसेत्कल्प स सप्तपुत्रैः सह ॥५६

हे राजन् ! वह उपर्युक्त द्रव्यो से भगवान का स्नान कराने वाला भक्त सब पापों में रहित होकर ममस्त प्रकार के यज्ञों के पुण्य को प्राप्त किया करता है । और अन्त में २१ पुस्तो के सहित विष्णु-लोक में वास करना है ॥५०॥ हे राजन् ! वहाँ पर ही योगियों को भी दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त करके जिसके प्राप्त करने से फिर आवृत्ति दुर्लभ होती है ऐंसे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥५१॥ हे नरपति देव ! जो मास के वृष्णपक्ष की सोमवार से युक्त चतुर्दशी तिथि के दिन भगवान शिव को दुग्ध से स्नान करा कर अर्चन किया करता है वह शिव की सायुज्यता का लाभ लिया करता है और शिवलोक को गमन किया करता है ॥५२॥ सोमवार के दिन जब अष्टमी तिथि हो उस दिन नारियल के अन्दर रहने वाले जल से भक्ति की भावना ले गयुन होकर भगवान श्री शङ्कर की प्रतिमा का स्नान कराया करता है वह भी शिव के लोक को गमन किया करता है ॥५३॥ हे भूपते ! मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथि के दिन घृत और गृहद में शिवजी का स्नान कराता है भगवान का यह सत्य भाव प्राप्त कर लेता है ॥५४॥ जो तिल के दान में भगवान विष्णु या शिव का स्नान कराता है यह अपने सात पित्रों के साथ एक बल्प एक शिव के लोच में निवास किया करता है ॥५५॥ जो शिव की मूर्ति का स्नान भक्ति भाव युक्त होकर ईश के रस से कराया करता है वह भी अपनी सात पुत्रों के सहित कल्पभर तक शिव के लोक में निवास प्राप्त किया करता है ॥५६॥

घृतेन स्नापयेत्त्रिंशत्पुत्रान् ।

धौरेण वा महाभाग तत्पत्न्यं शृणु मदिगरा ॥५७

जन्मायुताजितैः पापैर्विमुक्तो मनुजो नृप ।
 कोटिसाख्य समुद्धृत्य स्वकुला शिवता व्रजेत् ॥५८
 सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्विष्णु विष्णुतिथौ नृप ।
 जन्मायुताजितौ पापैर्मुक्तो व्रजति तत्पदम् ॥५९
 पद्मपुष्पेण यो विष्णु शिव वा पूजयेन्नर ।
 स याति विष्णु भवन कुलकोटिसमन्वित ॥६०
 हरिं च केतकीपुष्पै शिव धत्तूरजैर्निशि ।
 सपूज्य पापनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे युगम् ॥६१
 हरि तु चाम्पकं पुष्पैरर्कपुष्पीश्च शङ्करम् ।
 समभ्यर्च्य महाराज तत्तत्सालोक्यमाप्नुयात् ॥६२
 शङ्करस्याथवा विष्णोर्धृतयुक्तं च गुग्गुलुम् ।
 दत्त्वा धूपे नरो भक्त्या सर्वपापं प्रमुच्यते ॥६३

ह महाभाग ! जो सूर्य के उदयकालीन द्वादशी तिथि के दिन भगवान् शङ्कर की लिंगमयी प्रतिमा का क्षीर से स्नान कराया करता है उसको जो पुण्य होना है उसका मैं आपके सामने बतलाता हूँ ॥५७॥ हे राजन् ! वह मनुष्य अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए समस्त महापापों में छूटकर अपने कुल के करोड़ों पुरुषों का उद्धार करके अपने सम्पूर्ण कुल को भगवान् शिव में ही लीन कर दिया करता है ॥५८॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु की देवोत्थापिनी द्वादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु की सुगन्धित पुष्पों से पूजा करने वाला अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए पापों से मुक्त होकर अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ जो कमल के पुष्पों से भगवान् विष्णु या शिव का समर्पण किया करता है वह करोड़ों ही कुलों के महित वैकुण्ठ लोक में निवास किया करता है ॥६०॥ जो शक्त विष्णु भगवान् का केतकी के पुष्पों में और भगवान् शिव का धनूरे के पुष्पों में यजन किया करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर एतद् युग तक विष्णु के लोक में रहा करता है ॥६१॥ हे राजन् ! जो भवा भगवान् विष्णु को चम्पा के पुष्पों से

तथा भगवान् शिवं कृते आक के पुण्यां से पूजता है वह मनुष्य इन दोनों ही देवों के लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥६२॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु को घृतमिश्रित मूगल की घूप दिया करता है उसके समस्त पाप दूर भाग जाया करते हैं ॥६३॥

तिलतैलान्वित दीप विष्णोर्वा शंकरस्य वा ।

दत्त्वा नर सर्वकामान्सप्राप्नोति नृपोत्तम ॥६४

घृतेन दीप यो दद्याच्छकराय विष्णवे ।

स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥६५

ग्राम्येन वापि तैलेन राजन्नन्येन वा पुन ।

दीप दत्त्वा महाविष्णोर्ःशिवस्यापि फलं शृणु ॥६६

सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।

तत्तत्सालोक्यमाप्नोति त्रिभक्तपुरुषान्वितः ॥६७

यद्यदिष्टतम भोज्य तत्तदीशाय विष्णवे ।

दत्त्वा तत्तत्पद याति चत्वारिंशत्कुलान्वितः ॥६८

यद्यदिष्टतम वस्तु तत्तद्विप्राय दापयेत् ।

स याति विष्णुभवन पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६९

भ्रूणहा स्वणदानेन शुद्धो भवति भूषणे ।

अन्नतोयसमदानं न भूतं न भविष्यति ॥७०

जो भक्त भगवान् विष्णु अथवा शिव के लिये तिल के तैल का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसकी सब मनोकामनायें पूर्ण होजाया करती हैं ॥६४॥ जो भक्ति के महिन भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु के लिये घृत का दीपक जलाता है वह सभी पापों से छुटकारा पाजाता है और गङ्गा में स्नान करने के पुण्य फल की प्राप्ति किया करता है ॥६५॥ जो प्राय म तिचादि के तैल में अथवा घृत से विष्णु भगवान् का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसका पुण्य फल गुनाता है ॥६६॥ वह मनुष्य सभी पापों से छुट जाया करता है और सब प्रकार के

ऐश्वर्य प्राप्त कर अपने इक्कीस पुरुखाओ के साथ शिव या विष्णुलोक में निवास किया करता है ॥६७॥ भोजन के पदार्थों में जो जा पदार्थ आपको अधिक प्रिय हो उसे भगवान विष्णु या शिव की सेवा में समर्पित करने से वह अपने २ इष्टदेव के लोको में अपने चालीस कुल के पुरुषों को लेजाया करता है ॥ ६८ ॥ जो वस्तु स्वयं अपने आपको अत्यधिक प्रिय लगती हो उसका दान ब्राह्मण को देने से ऐम विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है जहाँ से लौटकर फिर पुनर्जन्म नहीं मिला करता है ॥६९॥ हे राजन् ! जो भ्रूण हत्या करने वाला पुरुष है वह मुवर्ण के दान देने से इस पाप से शुद्ध हो जाता है । अन्न का दान और जल का दान जैसा दान तो न आज तक कोई दान हुआ है और न भविष्य में होगा ॥७०

अन्नद प्राणद प्रोक्त प्राणदश्चापि सर्वद ।

सर्वदानफल यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम ॥७१

अन्नदो ब्रह्मसदन याति वशायुतान्वित ।

न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥७२

सद्यस्तुष्टिवय ज्ञेय जलदान यतोऽधिकम् ।

अन्नदानान्नृपश्रेष्ठ निर्दिष्ट ब्रह्मवादिभि ॥७३

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकै ।

जलदो मुच्यते तेभ्य इत्याह कमलोद्भव ॥७४

शरीरमन्नज प्राहु प्राणानप्यन्नजान्विदु ।

तस्मादन्नप्रदो ज्ञेय प्राणद पृथ्वीपते ॥७५

यद्यत्तुष्टिवर दान सर्ववामफलप्रदम् ।

तस्मादन्नसम दान नास्ति भूपाल भूतले ॥७६

अन्नदस्य मुले जाता आसहस्र नृपोत्तम ।

नरप त न पश्यन्ति तस्मादन्नपदा धर ॥७७

जा अन्न का दान दता है उसका प्राण दाना वहा जाता

है । प्राणो का दाता तो सर्वे दाता कहा जाया करता है । हे नृप-
श्रेष्ठ । अतः अन्न के दान करने वाले मनुष्य को सर्वा के दान का पुण्य
पत्र प्राप्त होजाया करता है । अन्न के दान की बड़ी भारी महिमा
है क्योंकि इससे प्राणो की रक्षा हुआ करती है ॥७१॥ अन्न का दान
देने वाले मनुष्य अपने दश सहस्र कुल के पुण्या को साथ लेकर ब्रह्म
लोक में गमन करता है और फिर उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ करता है
ऐसा सभी शास्त्रो का निश्चय है ॥७२॥ जल के दान का भी बड़ा
भारी महत्व है क्योंकि इससे तुरन्त ही तुष्टि होजाया करती है अतएव
इसकी महिमा अन्न के दान से भी अधिक होती है । हे उत्तम राजन् ।
ऐसा ब्रह्मवादियो ने निश्चय किया है ॥७३॥ ब्रह्माजी ने कहा है—
महापातका और उपपातको में दूषित पुरुष जल का दान करने से शुद्ध
हाजाया करता है ॥७४॥ शरीर और प्राण दोनों को अन्न से पुष्ट
होन वाला कहत है अतएव हे भूमिपते । अन्न के दाता को प्राणो का
ही दान देने वाला समझ लेना चाहिये ॥७५॥ जितन भी सन्तुष्ट करने
वाले दान हैं व सभी मन की समस्त कामनाओ को पूर्ण कर देने
वाले होते हैं किन्तु हे राजन् । दश भूमडल में अन्न के दान की समता
करने वाला अन्य कोई भी दान नहीं है ॥७६॥ हे नृपोत्तम । अन्न-
दाता के कुल में चाहे सत्सा ही प्राणो समुत्पन्न हुए हैं व सभी नरक
का दशन कभी भी नहीं किया करत है अतएव यह मित्र होता है कि
अन्न का दान करने वाला पुण्य श्रेष्ठ होता है ॥७७॥

पादाभ्यग भक्तियुक्तो योजतिथे कुन्ने नर ।

स स्नान सर्वतीर्थेषु गङ्गास्नानपुर मरम् ॥७८

सैनाभ्यग महाराज ब्राह्मणाना करोति य ।

स स्नातोऽष्टगत माय गङ्गाया नात्र मजय ॥७९

रोगितान्ब्राह्मणान्छन्तु प्रेम्णा रक्षति रक्षत ।

स कोटिपुत्रमपुत्रो यमद् द्रष्टुमे मुगम् ॥८०

यो रक्षेन्पृथिवीपाल न्न या रोगिण नरम् ।

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥८१

मनसा कमणा वाचा यो रक्षेदामयान्वितम् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापविवर्जित ॥८२

यो ददाति महीपाल निवास ब्राह्मणाय वै ।

तस्य प्रसन्नो देवेश. स्वलोक सप्रयच्छति ॥८३

ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे यो दद्याद्ना पयस्विनीम् ।

स याति ब्रह्मसदनमन्येषामतिदुर्लभम् ॥८४

जो मनुष्य समागत अतिथि के चरणों को दवाता है वह मनुष्य गङ्गा स्नान के सहित सभी पुण्य तीर्थों के अवगाहन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लेता है ॥७८॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मणों को तेल मन्ता है उसको एबसी आठ बार गङ्गा के जल में स्नान करने का पुण्य-फल मिला करता है । जो रोग से अवस्थित ब्राह्मण की प्रेम के साथ रक्षा किया करता है वह अपने एक करोड़ कुलों के साथ युग भर पर्यन्त ब्रह्म लोक में निवास किया करता है ॥७९॥ हे पृथिवीपाल ! जो किसी गरीब अथवा रण की रक्षा करता है उस पर भगवान विष्णु-शेव का चित्त अधिक प्रसन्न होजाया करता है । फिर वे देवेश्वर उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें पूर्ण कर दिया करते हैं ॥८१॥ जो मन, वाणी और कर्म से रोगी पुरुष की रक्षा करता है वह सभी पापों से पृथक् होकर विशुद्ध होजाया करता है और उसकी सब कामनायें सिद्ध होती हैं ॥८२॥ हे महीपाल ! जो कोई भी पुरुष ब्राह्मण को निवास करने का स्थान देता है भगवान उस पर परम प्रसन्न होकर अपने स्नान का निवास प्रदान कर दिया करते हैं ॥८३॥ जो ब्रह्म के ज्ञाता ब्राह्मण या दूध देने वाली गाय का दान किया करता है उसको वह लोक परलभगामी होन पर मिला करता है जो अन्यो को बहुत ही पटिनाई से प्राप्त हुआ करता है ॥८४॥

अन्यन्य प्रतिवृह्यापि यो दद्याद्नापयस्विनीम् ।

तस्य पुण्यफल वक्तुं नाहं शक्तोऽस्मि पण्डित ॥८५
 कपिला वेदविदुषे यो ददाति पयस्विनीम् ।
 स एव रदो भूपाल सर्वपापंविर्जित ॥८६ -
 विप्राय वेदविदुषे दद्यादुभयतोमुखीम् ।
 यस्तस्य पुण्यं साम्प्रदायं न शक्तोऽद्भशतोरपि ॥८७
 तस्य पुण्यफलं राजशृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
 एतत् क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः ॥८८
 एततो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ।
 मरक्षति महीपालः प्राणं विप्रभयविह्वलम् ॥८९
 स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
 वस्त्रदो रद्रभवनं कन्यादो ब्रह्मणः पदम् ॥९०

जो स्वयं दूमरे म गौ का दान ग्रहण करके दूध देने वाली गौ
 का दान कर दिया करता है उसने पुण्य फल का तो वर्णन करने की
 मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है इतना महान उसे पुण्य-फल हुआ करता है
 ॥८५। जो कोई मनुष्य दुग्धवती कपिला गाय का दान विभी वेदो के
 ज्ञान रखने वाले प्राह्मण का देता है वह सभी पापों के दोषों से छूट
 जाया करता है ॥८६। जो मनुष्य वेदो के पंडित ब्राह्मण को उभयतो-
 मुखी (दोनों तरफ मुख वाली अर्थात् अघट्याई हुई) गौ का दान
 देता है उसको इतना पुण्य प्राप्त होता है जिसका वर्णन सो वर्षों तक
 घराघर कहने रहने पर भी वर्णन नहीं करने में आता है ॥८७। हे
 राजन् ! जो मनुष्य किसी भय से विचर ब्राह्मण की रक्षा किया
 करता है उसका पुण्य-फल ऐसा होता है कि एक तरफ तो मय दक्षिणा
 जाने यज्ञों का पुण्य होता है और उतना ही पुण्य दूमरी ओर भयभीत
 प्राणी की रक्षा का पुण्य हुआ करता है ॥८८।८९। उन भीत को प्राण
 करने वाले पुण्य का तो ऐसा पुण्य हुआ करता है जैसा समस्त प्रकार
 के यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करने वाले का तथा समस्त महान तीर्थों में

स्नान करने वाले को हुआ करता है, जो वस्त्रों का दान करता है उसको रुद्रलोक मिलता है और जो किसी कन्या का दान किया करता है उसको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है ॥६०

हेमदो विष्णुभवन प्रयाति स्वकुलान्वित ।

यस्तु कन्यामलकृत्व ददात्यध्यात्मवेदिने ॥६१

शतवशसमायुक्त स ब्रजेद् ब्रह्मण पदम् ।

कार्तिक्या पौर्णमास्या वा आपाढ्या वापि भूपते ॥६२

वृषभ शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फला शृणु ।

सप्तजन्मार्जितं पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपभाक् ॥६३

कुलसप्ततिसयुक्तो रुद्रेण सह मोदते ।

शिवलिङ्गाकित कृत्वा महिष य समुत्सृजेत् ॥६४

न तस्य यातनालोको भवेन्नृपतिसत्तम ।

ताम्बूलदान य कुर्याच्छक्तितो नृपसत्तम ॥६५

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ददात्यायुर्यश श्रियम् ।

क्षीरोदो घृतदशचैव मधुदो दधितस्तथा ॥६६

दिव्याब्दायुतपर्यंत स्वर्गलोके महीयते ।

प्रयाति ब्रह्मसदनमिक्षुदाता नृपोत्तम ॥६७

सुवर्ण का दान देने वाला अपने कुल के सहित विष्णु लोक को गमन किया करता है तथा जो किसी की कन्या को वस्त्राभरणों से विभूषित करके किसी आत्मज्ञानी पुरुष को दान दिया करता है वह अपनी सौ पुस्तों को भी अपने साथ ब्रह्मलोक को ले जाया करता है । जो कोई मनुष्य आपाढ अथवा कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन में भगवान् शिव का प्रसन्न करने के लिये वृषभ का उत्सर्ग किया करता है अर्थात् विचार छोड़ा करता है उसको इतना भारी पुण्य हाता है कि उसका प्रभाव स वह सब जन्मों के किये हुये पुरवले पापों से मुक्त होकर भगवान् रुद्र के ही स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥६१॥६२॥

वह अपनी सत्तर पीढियों के सहित छद्मलोक में भगवान् रुद्र-
देव के साथ निवास किया करता है । जो मनुष्य अकित करके
अर्थात् शिवलिंग का चिन्ह करके किसी भैंसे को बिजार बनाकर छोड़
दिया करता है उसको कभी भी नरक यातना पाने के स्थानी को नहीं
देखना पड़ता है । हे नृपोत्तम ! जो अपनी शक्ति के अनुकूल ही ताम्बूलों
का दान किया करता है । भगवान् विष्णु उस पर अपने हृदय में
बहुत प्रसन्न हुआ करते हैं और उसे आयु, लक्ष्मी, यश प्रदान किया
करते हैं । जो क्षीर, घृत, मधु और दधि का दान किया करते हैं वे
दश सहस्र दिव्य वर्षों तक स्वर्ग में सुखी रहा करते हैं । हे नृपवर !
ईश्वर का दान देने से स्वर्ग लोक का सुख प्राप्त होता है ॥६३-६७

गन्धद. पुण्यफलद प्रयाति ब्रह्मणः पदम् ।

गुहेतरसदश्चैव प्रयादि क्षीरसागरम् ॥६८

भटाना जलदो याति सूर्यलोकमनुत्तमम् ।

विद्यादानेन सायुज्य माधवस्य ब्रजेन्नर. ॥६९

विद्यादान महीदान गोदान चोत्तमोत्तमम् ।

नरकादुद्धरन्त्येव जपवाहनदोहनात् ॥७०

सर्वेषामपि दानानां विद्यादानं विशिष्यते ।

विद्यादानेन सायुज्यं विष्णोर्याति नृपोत्तम ॥७१

नरस्त्विवन्धनदानेन मुच्यते ह्युपपातकैः ।

शालग्रामशिलादानं महादानं प्रकीर्तितम् ॥७२

यद्दत्त्वा मोक्षमाप्नोति लिंगदानं तथा स्मृतम् ।

ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फलं लभते नरः ॥७३

तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गदानं सशयः ।

शालग्रामशिलादाने ततोऽपि द्विगुणं फलम् ॥७४

गन्ध और पवित्र फलों का दान देने पर भी ब्रह्म लोक मिला
करता है । गुड़ और ईश्वर का रस दान देने वाले मनुष्य को क्षीरसागर

प्राप्त हुआ करता है ॥ ६८ ॥ योधा पुरुषों को जल का दान करने वाला मनुष्य परम श्रेष्ठ सूर्य लोक की प्राप्ति किया करता है और विद्या के दान से मनुष्य को भगवान् विष्णुदेव की सायुज्य प्राप्ति होती है ॥६९॥ विद्या का दान, गोदान, पृथ्वी दान ये सब दान एक से एक उत्तम दान होते हैं । जाप, अन्न प्राप्ति और दोहन के द्वारा ये तीनों दान नरको से उद्धार किया करते हैं ॥१००॥ तथापि विद्या का दान सभी दानों में उत्तम दान होता है क्योंकि इस विद्या के दान से भगवान् विष्णु की सायुज्यता का लाभ प्राप्त होता है ॥१०१॥ ईश्वर के दान से मनुष्य सभी उपपातका से मुक्त हो जाता करता है । शालग्राम शिला का दान महादान कहा गया है ॥ १०२ ॥ शिवलिंग के दान को महादान बताया गया है । इसको देने से मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है । करोड़ों ब्रह्मांडों के दान से जो फल होता है वही पुण्य का फल शिव की लिंगमयी प्रतिमा के दान से प्राप्त हो जाता है तथा शालग्राम शिला के दान देने से उससे भी दुगुना पुण्य फल हुआ करता है ॥१०३॥१०४

शालग्रामशिलारूपी विष्णुरेवेति विश्रुत ।
 यो ददाति नरो दोष गृहेषु महत्ता प्रभो ॥१०५
 गङ्गास्नानफल तस्य निश्चित नृप जायते ।
 रत्नान्वितसुवर्णस्य प्रदानेन नृपोत्तम ॥१०६
 भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति महादान यतः स्मृतम् ।
 नरो माणिक्यदानेन पर मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०७
 ध्रुवलोकमवाप्नोति वज्रदानेन मानव ।
 स्वर्ग विद्रुमदानेन रुद्रलोक मवाप्नुयात् ॥१०८
 प्रयाति यानदानेन मुक्तादानेन चैन्द्रवम् ।
 वैडूर्यदो रुद्रलोक पुष्परागप्रदस्तथा ॥१०९

पुष्परागप्रदानेन सर्वत्र सुखमश्नुते ।

अश्वदो ह्यस्वसानिध्य चिर व्रजति भूमिष ॥११०॥

गजदानेन महता सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

प्रयाति यानदानेन स्वर्गं स्वयानिमास्थित ॥१११॥

महिषीदो जयत्येव ह्यपमृत्यु न सशय ।

गवा तृणप्रदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥११२॥

भगवान् विष्णु शालग्राम की शिला के रूप वाले हैं ऐसा परम प्रसिद्ध है । जो मनुष्य किसी भी देवालय में दीपक जलाया करता है हे नृप ! उसका गन्ना के स्नान करने का पुण्य होता है । रत्नों से जटित स्वर्ण क-दान से भोग और मोक्ष दाना मिला करते हैं । पहिले परमोत्तम भोगों का सुख का उपभोग करके अन्त में मुक्ति हाँजाया करती है । यह महादान कहा जाता है । माणिक के दान देने से भी मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है ॥१०५॥ १०७ हीरा के दान देने से अटल लोक की प्राप्ति हुआ करती है, मूँगा के दान से रुद्र लोक मिला करता है ॥१०८॥ किसी सवारी और मुत्ता के दान से चन्द्र-लोक मिला करता है । वेद्यों मणि का दाता और पुण्य राग का दाता में दोनों रुद्रलोक को पाया करते हैं ॥१०९॥ पुष्पराग रत्न के दान देने से सब जगह सुख की प्राप्ति हुआ करती है । हे राजन् ! जो अश्व का दान देता है उस प्राणी को बहुत अधिक समय तक अश्विनोक्तुमारो के लोक की प्राप्ति हुआ करता है ॥११०॥ गज के दान को बड़ा महत्व होता है उस दान के होता को सभी कामनाये पूर्ण होजाया करती है । गाड़ी के दान देने से स्वर्ण की गाड़ी में समाहित होकर स्वर्ग लोक का गमन किया करता है ॥१११॥ जा मनुष्य भूम का दान देना है वह मनुष्य अपमृत्यु पर विजय पा लेता है । गौमा को घास खिलाने से रुद्रलोक मिला करता है ॥११२॥

वारण लोकमाप्नोति महीश त्वणप्रद ।

स्वाश्रमाचारनिरता सर्वभूतहिते रता ॥११३
 अदाम्भिका गतासूया प्रयान्ति ब्रह्मण पदम् ।
 परोपदेशनिरता वीतरागा विमत्सरा ॥११४
 हरिपादाचनरता प्रयान्ति सदन हरे ।
 सत्सङ्गाह्लादनिरता सत्कमसु सदोद्यता ॥११५
 परापवादविमुखा प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।
 नित्य हितकरा ये तु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥११६
 परस्त्रोसङ्गविमुखा न पश्यन्ति यमालयम् ।
 जितेन्द्रिया जिताहारा गोषु क्षान्ता सुशीलिन ॥११७

हे राजन् ! नमक के दान से वरुण लोक भिला करता है । जो अपने आश्रम के समाचरण में परम तत्पर, समस्त प्राणियों के मङ्गल में मग्न, पाखण्ड और अमूया में जो रहित हैं वे लोग सीधे ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं । जो राग और मत्सरता से रहित होकर भगवान् विष्णु के चरणों की शुश्रूषा में रत रहा करते हैं और अन्य जनों को भी ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं वे सीधे श्री हरि भगवान् के भवन को जाया करते हैं । जो सत्सङ्ग आनन्द में मग्न हो जाया करते हैं तथा सदा सत्कर्मों के करने में ही परायण रहा करते हैं तथा दूसरों की निन्दा से दूर ही रहा करते हैं वे लोग भी विष्णु लोक को गमन किया करते हैं । जो गौ और ब्राह्मणों का सर्वदा हित किया करते हैं तथा पराई स्त्री के सङ्ग से मुक्त रहा करते हैं तथा जो सदा समय से रहा करते हैं उनको कभी भी यमलोक के दशन करने का अवसर नहीं मिला करता है । जो अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखवा करते हैं और आहार के लोलुप नहीं हुआ करते हैं, गौ और ब्राह्मणों पर धामा किया करते हैं वे सदाचरण से रहने वाले मानव भी हरि के भवन का जाया करते हैं ॥११३-११७

ब्राह्मणेषु क्षमाशीला प्रयाति भवन हरे ।

अग्निशुश्रूषवश्चैव गुरुशुश्रूषकास्तथा ॥११८

पतिशुश्रूषणरता न वै ससृतिभागिन ।

सदा देवार्चनरता हरिनामपरायणा ११६

प्रतिग्रहनिवृत्तारश्च प्रयान्ति परम पदम् ।

अनाथ विप्रकृण्व ये दहेयुर्नृपोत्तम ॥१२०

अश्वमेधसहस्राणा फलमश्नुवते सदा ।

पत्रे पुष्पे फलीर्वापि जलैर्वा मनुजेश्वर ॥१२१

पूजया रहित लिङ्गमचर्यते तत्फल शृणु ।

अप्सरोगणगन्धर्वे स्मृतमानो विमानग ॥१२२

प्रयाति शिवसान्निध्यमित्याह कमलोद्भव ।

चुलुकोदकमात्रेण लिङ्गं सस्नाप्यभूमिप ॥१२३

लक्षाश्वमेधज पुण्य साप्रानोति न सशय ।

पूजया रहित लिङ्गं कुसुमैर्योज्येत्सुधी ॥१२४

अश्वमेधायुतफल भवेत्तस्य जनेश्वर ।

भक्ष्यैर्भोज्य फलीर्वापि शून्य लिङ्गं प्रपूज्य च ।

शिवसायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२५

जो पुरुष अग्नि होम करने वाले और अपने गुरु की सेवा में रति रखने वाले हुआ करत है और जो स्त्रिया अपन पति की सेवा में सदा परायण रहा करती है वे मसार के चक्र से छुटकारा पा लिया करती हैं । जो सर्वदा देवों की पूजा किया करत है, जो सदा श्री हरि के उच्चारण करने में ही सान्गन रहा करतें हैं, जो दूसरों के दिये हुय प्रतिग्रह से दूर रहा करत है वे सब परम पद को प्राप्त हो जाया करत हैं । जो मनुष्य किसी भी अनाथ शव का दाह कर दिया करत है हे नृपवर । उनको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञा के करने का पुण्य मिला करता है । जिसको कोई न पूजे ऐम शिवलिङ्ग को जा पत्र-पुष्पादि से अर्चन करता है उसका पुण्यफल का श्रवण करो । ब्रह्माजीन कहा है—

अप्सरा, गन्धर्व उस पूजा करने वाले भक्त की स्तुति किया करते हैं और विमान में बैठकर सीधा शिव के समीप में पहुँच जाया करता है ११८-॥१२२॥ हे राजन् ! जो एक चुल्लू भर पानी से भगवान् शिव के लिंग को स्नान कराता है उसे एक लाख अश्वमेधों का फल मिला करता है । जो सुन्दर बुद्धि वाला पुरुष पूजा से रहित शिव के लिंग की पुष्पो से पूजा करता है हे जनेश्वर । उसको दश सहस्र अश्वमेध यज्ञों के करने का पुण्य-फल मिला करना है । जो परम शून्य स्थल में विराजमान शिवलिंग का भक्ष्य-भोज्य और फलों के द्वारा यजन करता है वह शिव के सामुंज्य को प्राप्त करता है जहाँ से फिर पुनरागमन नहीं हुआ करता है ॥१२३॥१२५

पूजया रहित विष्णु योर्ज्वयेदकवंशज ।

जलेनापि स सालोक्य विष्णोर्याति नरोत्तम ॥१२६ः

देवतायतने यस्तु कुर्यात्समार्जनं सुधीः ।

यावत्पासु युगावास वैष्णवे मन्दिरे सभेत् ॥१२७

शीर्णं स्फटिकलिंग तु यः संदध्यान्नृपोत्तम ।

शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स तु मानवः ॥१२८

यस्तु देवालये राजन्नपि गोचरममत्रकम् ।

जलेन सिञ्चेद् भूभागं सोऽपि स्वर्गं लभेन्नरः ॥१२९

गन्धोदकेन यः सिञ्चेद्देवतायतने भुवम् ।

यावत्कणानुकल्प तु तिष्ठेत देवसन्निधौ ॥१३०

मृदा घातुविकारैर्वा यो लिम्पेद्देवतागृहम् ।

स कोटिकुलमुद्धृत्य याति साम्यं मधुद्विपः ॥१३१

शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवागारं तु लेपयेत् ।

स्वस्तिकादीनि वाकुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१३२

यः कुर्याद्दीपरचना देवतायतने नृप ।

तस्य पुण्यं प्रसन्नात् नोत्सदेऽद्भुतैरपि ॥१३३

हे सूर्यवश मे समुत्पन्न भागीरथ । जो पूजा से रहित भगवान विष्णु की पूजा केवल जल के द्वारा भी किया करता है हे नरोत्तम । उसको भी भगवान विष्णुलोक प्रदान करा दिया करते हैं । जो मनुष्य किसी भी देवालय मे बुहारी लगाकर-मार्जन किया करता है तो वह जितने भी धूलि ने कणो को बुहारा करता है उतने ही युगो तक वह भगवान विष्णु के मन्दिर मे निवास प्राप्त किया करता है ॥१२६॥१२७॥ जो किसी जीर्ण-शीर्ण स्फटिक से निर्मित लिंग को ठीक कर दिया करता है हे नृपवर । वह मनुष्य अपने सौकडो जन्मो के पापो से मुक्त होकर सद्गति पा लिया करता है ॥१२८॥ हे राजन् ! जो किसी भी देवालय मे गाधये मात्र भूमि पर जल से छिडकाव कर दिया करता है वह जितने भी धूलि के कणो पर छिडकाव किया करता है वह उतने ही कणो तक देव के समीप मे निवास किया करता है ॥१२९॥१३०॥ जो पुरुष किसी भी देव मन्दिर को मिट्टी से अथवा पीतल तबि के पत्तरो आदि से मजाता है वह अपने करोडो कुलो का उद्धार कर मधु के वध करने वाले भगवान विष्णु के सायुष्य को पा लिया करता है ॥१३१॥ जो मनुष्य किसी देव मन्दिर को चूने (सफेदी) से पुनवा देता है तथा स्वस्तिक आदि की रचना कराता है ॥१३२॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य किसी भी देव के मन्दिर मे दीप रचना किया करता है उसका फल तो मैं सौ वर्षो मे धा नर्त्तन करी कर सकता हूँ ॥१३३

अखण्डदीप य कुर्याद्विष्णोर्वा शकरस्य च ।

क्षणे क्षणेऽथभेधस्य फल तस्य न दुर्लभम् ॥१३४

अचित शकर दृष्ट्वा विष्णु वापि नमेत्तु य ।

स विष्णुभवन प्राप्य मोदत च युगायुतम् ॥१३५

देव्या प्रदक्षिणामेका सप्त सूर्यस्यभूमिष ।

तिस्रो विनायास्यापि चतस्रो विष्णु मन्दिरं ॥१३६

दृष्ट्वा तत्तद्गृह प्राप्य मोदते सुखतः ॥१३७

यो विष्णोर्भक्तिभावेन तथैव गोद्विजस्य च ।
 प्रदक्षिणा चरेत्तस्य ह्यश्वमेधः पदे पदे ॥१३८८
 काश्यां माहेश्वरं लिंगं संपूज्य प्रणमेत्तु यः ।
 न तस्य विद्यते कृत्यं ससृतिर्नैव जायते ॥१३८९
 शिवं प्रदक्षिण कृत्वा सव्येनैव विधानतः ।
 नरो न च्यवते स्वर्च्छिंकरस्य प्रसादतः ॥१३९०

जो विष्णु या शिव के मन्दिर में अखण्ड दीपक जलाया करता है उसके लिये प्रत्येक क्षण में अश्वमेध के यज्ञ का फल प्राप्त करना कोई भी दुर्लभ कर्म नहीं होता है ॥१३४॥ जो मनुष्य समर्पित शिव अथवा विष्णु को प्रणाम करता है वह विष्णु के भवन में प्राप्त होकर दश सहस्र युगों तक आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१३५॥ हे राजन् ! देवों की प्रदक्षिणा करने का क्रम यह है कि सूर्य की रात परिक्रमा करे । गणेश की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिए । विष्णु की चार और देवी की केवल एक परिक्रमा करे । इस परिक्रमा का ऐसा फल होता है कि प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य उन-उन ही देवों के भुवनों में एक एक लाख युगों तक निवास कर सुख प्राप्त किया करता है ॥१३६॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के सहित गौ और ब्राह्मण की परिक्रमा किया करता है उसको एक २ पद में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥१३७-१३८॥ जो मनुष्य काशी में माहेश्वर लिंग की पूजा करके उनकी प्रणाम करता है फिर उग मनुष्य को दृग भूतम में कोई भी श्रम करना शेष नहीं रहा करना है और न वह फिर दृग गंगार में ही लोट कर आया करता है ॥१३९॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक सव्य प्रदक्षिणा किया करता है वह फिर भगवान् शङ्कर की श्रुपा में सभी भी स्वर्ग में श्रुत नहीं हुआ करता है ॥१४०

मनुत्वा स्तोत्रैर्जगन्नाथं नारायणमनामयम् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति मन्वा यत्प्रदिशति ॥१४१

देवतायतने यस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति ।
 गायते वा स भूपाल रुद्रलोके च मुक्तिभाक् ॥१४२
 ये तु वाद्य प्रकुर्वन्ति देवतायतने नराः ।
 ते हसयानमारुढा ब्रजन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥१४३
 करताल प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये ।
 ते सर्वपापनिर्मुक्ता विमानस्था युगायुतम् ॥१४४
 देवतायतने ये तु घण्टानाद प्रकुर्वन्ते ।
 तेषां पुण्यं निगदितुं न समर्थं शिवः स्वयम् ॥१४५
 भेरीमृदङ्गपटहमुरजैश्च सङ्घिण्डिमैः ।
 साप्रीणयन्ति देवेश तेषां पुण्यफलं शृणु ॥१४६
 देवस्त्रीगणसायुक्ता सर्वकर्म समचिता ।
 स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदन्ते कल्पपञ्चकम् ॥१४७

इस सम्पूर्ण विश्व के स्वामी अनामय भगवान् नारायण की स्तवों के द्वारा जो स्तवन किया करता है उसके सभी मनोवाञ्छित मनोरथ पूर्णतया सफल होजाया करते हैं ॥१४१॥ हे भूपाल ! जो किसी भी देव के मन्दिर में भक्तिभाव के सहित नृत्य किया करता है अथवा भगवद् भजन का गान करता है वह रुद्रलोक में प्राप्त होकर मुक्ति का लाभ लिया करता है ॥१४२॥ जो मनुष्य देवालय में कोई भी वाद्य बजाया करते हैं वे हमयुक्त विमान में बैठकर ब्रह्मलोक में गमन किया करते हैं ॥१४३॥ जो मनुष्य देवालय में ताली बजाकर भगवद् भजन किया करते हैं वे सब पापों से शुद्ध होकर दग सहस्र युग पर्यन्त विमानों में बैठते हैं ॥१४४॥ जो मनुष्य देव मन्दिरों में घण्टा नाद किया करते हैं उनके पत्न का धर्षण करने में साक्षात् भगवान् शिवजी शक जाया करते हैं ॥१४५॥ जो मनुष्य भगवान् की नगाड़े, पद्मावज, ढोल तथा सिंगी नाद आदि बाजे बजाकर गिताया करते हैं उनके पुण्य पत्त का आप श्रवण करिए ॥१४६॥ वे मनुष्य

धर्मराज ने कहा—हे नृपो मे परमश्रेष्ठ । अब मैं वेदो मे तथा स्मृतियो मे वर्णन किये गये समस्त वणो के धर्म का वर्णन करता हूँ और क्रमशः जुलाशा बतलाता हूँ । आप समादित होकर श्रवण कीजिए ॥१॥ जो कोई पुरुष भोजन करने के समय मे क्रोधावेश मे या अज्ञान के वशीभूत होकर किसी अशुचि पुरुष अथवा पतित एव चाण्डाल का स्पर्श कर लेता है तो उसके दोष का निवारण करने के लिए क्या प्रायश्चित्त होता है, यहो बतलाया जाता है ॥२॥ ऐसे स्पर्श दोष से युक्त ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह तीन अथवा छै दिन तक तीनों समयो मे स्नान करके पचगव्य का प्राशन करे तो वह पवित्र हो जाया करता है और स्पश दोष छूट जाता है ॥३॥ यदि भोजन करने के समय मे किसी ब्राह्मण का मल बाहिर निकल आवे तो उमसे होने वाली अपवित्रता का प्रायश्चित्त मैं बतलाता हूँ । उस विप्र का कर्तव्य है कि सर्व प्रथम वह शौच कर्म कर जल का आचमन कर और फिर दिन रात का उपवास करे और पञ्चगव्य मे गौ की ही पाँच वस्तुएँ होती हैं—गौ दुग्ध, गो दधि, गोमय, गो घृत, गोमूत्र । ऐसा करने से शुद्धि हुआ करती है ॥४-५॥ यदि भोजन करने के समय मे पेशाब (प्रश्रव) बाहिर निकल आवे तो दिनरात का उपवास करके अग्नि मे घृत की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥६॥ यदि भोजन के समय मे ब्राह्मण अशुचि हो जाय तो हाथ मे ग्रहण किये हुए ग्रास को भूमि मे रख देना चाहिए और फिर उठकर स्नान करने से शुद्ध हो जाया करता है ॥७॥

भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुद्धयति ।
 अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥८॥
 अशनतश्चेद्वमि स्याद्वै ह्यस्वस्थः स्रशता जपेत् ।
 स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्या शोधन परम् ॥९॥
 चाण्डालं श्वपच स्मृतो विष्मूने च कृत द्विज ॥१०॥
 त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भक्तोच्छिष्ट पडाचरेत् ।

उदकया सूतिका वापि सस्पृशेदन्यजौ यदि ॥११
 निरात्रेण विशुद्धि स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ।
 रजस्वला त सस्पृष्टा श्वभिर्मतिङ्गवायसै ॥१२
 निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्काले स्नानेन शुद्धयति ।
 रजस्वल यदा नायावन्योन्य स्पृशत ववचित् ॥१३
 शुध्येते ब्रह्मकूर्चेन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ।
 उच्छिष्टेन च सस्पृष्टो यो न स्नान समाचरेत् ॥१४

यदि जो मध्यम य स मुख्य म डालकर खा चुका हो तो फिर शुद्धि के लिये उपवास का करना नित्य त आवश्यक होता है और यदि खूब डट कर पूरा भोजन कर चुका हो ता तीन दिन पय त अशुद्धि रहा करती है ॥८॥ यदि भोजन करते हुए वो दमन हो जावे तो यदि अस्वस्थता होवे तो शुद्धि के लिये तीन सौ गायत्री मंत्र का जाप करे और स्वस्थ हो तो उसको तीन सहस्र गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिए । तभी परम पवित्रता होती है ॥९॥ यदि मन मंत्र के त्याग करने के समय में द्विज का किसी चाडाल अथवा श्वपच से स्पर्श हो जावे तो तीन रात्रि पय त उपवास करना चाहिए । यदि भोजन करने के पश्चात् अथवा उच्छिष्ट दशा म स्पर्श हो जावे तो छै रात्रि पय त उपवास करना चाहिए । यदि किसी रजम्बला अथवा मूतिका स्त्री को छ त्याज स्पर्श कर लेवे तो वह फिर तीन रात्रि वे वाद श्चि हुआ करती है । ऐसा शास्त्रो के ज्ञाता मुनियो का मत है । यदि रजस्वला का श्वान कौआ और किरात से स्पर्श हो जावे तो उस निराहार रहना चाहिए ॥१० १२॥ और आहार का त्याग कर फिर उसे समय आने पर स्नान करना चाहिए तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है । यदि रजम्बला स्त्रिया परस्पर म स्पर्श करे तब तो ब्रह्मकूच व्रत के करने शुद्धि हुआ करती है जिसका वणन पराशर स्मृति म किया गया है । से जो उचित पुरुष से छुट स्नान न कर सके तो ब्रह्मकूच व्रत करना चाहिए ॥१३ १४॥

दिव्य भङ्गनाओ के साथ समस्त कामनाओ को प्राप्त कर पांच बत्स
तब स्वर्ग लोक में निवास किया करते हैं ॥१४७॥

देवतामन्दिरे कुर्वन्नर शखरव नृप ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुर्ना सह मोदते ॥१४८॥

तालकास्यादिनिन्द कुर्वन् विष्णुर्गृहे नर ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोमवाप्नुयात् ॥१४९॥

यो देव सर्वं दृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः ।

सर्वधर्मफल पूर्णं सत्पुष्टं प्रददाति च ॥१५०॥

यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः ।

सललानि भवन्त्येव सर्वकर्मणि भूपते ॥१५१॥

परमात्मा जगन्नाथ सर्वकर्मफलप्रदः ।

सत्कर्मकर्तृभिर्निहत्य स्मृतं सर्वातिनाशनम् ।

तमुद्दिश्य कृत्वा यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५२॥

धर्माणिविष्णुश्च फलानि विष्णु कर्माणिविष्णुश्च फलानिभोक्ता
कार्यचविष्णु करणानिविष्णुरस्मान्किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥१५३॥

हे राजन् ! जो मनुष्य किसी भी देव मन्दिर में शख की ध्वनि

किया करना है वह सभी पापों से छुटकारा प्राप्त करके सदा भगवान्

विष्णु की सन्निधि में आनन्द को प्राप्त किया करता है ॥ १४८ ॥ जो

मनुष्य विष्णु मन्दिर में काँसे की शंखनादि बजा कर देवेश्वर को रिझा

है वे सर्व पाप विमुक्त होकर विष्णु लोक की प्राप्ति किया करते हैं ॥१४९॥

भगवान् विष्णु देव ज्ञान रूपी निरञ्जन और सब दृष्टा हैं उनके पूज

सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाने पर वे सभी धर्मों का पूण फल प्रदान क

दिय करते हैं ॥ १५० ॥ हे राजन् ! उन शख चक्रादि आयुधों के

धारण करने वाले देवेश्वर के स्मरण मात्र से ही समस्त कर्म सफल हो

जाया करते हैं और फिर कुछ भी शेष नहीं रहा करता है ॥१५१॥

जो मनुष्य किसी भी देव मन्दिर में शख की ध्वनि किया करना है वह सभी पापों से छुटकारा प्राप्त करके सदा भगवान् विष्णु की सन्निधि में आनन्द को प्राप्त किया करता है ॥ १४८ ॥ जो मनुष्य विष्णु मन्दिर में काँसे की शंखनादि बजा कर देवेश्वर को रिझा है वे सर्व पाप विमुक्त होकर विष्णु लोक की प्राप्ति किया करते हैं ॥१४९॥ भगवान् विष्णु देव ज्ञान रूपी निरञ्जन और सब दृष्टा हैं उनके पूज सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाने पर वे सभी धर्मों का पूण फल प्रदान कदिय करते हैं ॥ १५० ॥ हे राजन् ! उन शख चक्रादि आयुधों के धारण करने वाले देवेश्वर के स्मरण मात्र से ही समस्त कर्म सफल हो जाया करते हैं और फिर कुछ भी शेष नहीं रहा करता है ॥१५१॥

परमात्मा इम सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, सभी कर्मों के फल दाता हैं । जो सदा सत्कर्मों का अनुष्ठान करने वाले यदि उनका स्मरण किया करते हैं तो वे सभी पीडाओं से मुक्त होकर परम सुखी रहा करते हैं । क्योंकि भगवान् उनको कोई भी व्यथा रहने ही नहीं दिया करते हैं । भगवान् के निमित्त से जो भी कुछ भक्ति पूर्वक किया जाता है वह अनन्त और अक्षय फल का देने वाला हुआ करता है ॥१५२॥ यह परम सिद्धांत सम्पन्न बात है कि धर्म धर्मं फल, कर्म और कर्मों का फल, भोजना, कार्य और कारण सब में भगवान् विष्णु व्याप्त होते हैं तथा भगवान् विष्णु से भिन्न इस ससार में अन्य कुछ भी नहीं है ॥१५३॥



॥ द्विज-धर्म निरूपण ॥

श्रुतिस्मृत्युदित धर्म वर्णानामनुपूर्वश ।
 प्रब्रवीमि नृपश्चेष्ट त गृणुष्व समाहित ॥१
 यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डाल पतिरा स्पृशेत् ।
 क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥२
 त्रिरात्र वाथ षड्रात्र यथासख्य समाचरेत् ।
 स्नान त्रिपवण विप्र पचगव्येन शुध्यति ॥३
 भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।
 उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शुद्धि वदामि ते ॥४
 पूर्वं कृत्वा द्विज शौच पश्चादप उपस्पृशेत् ।
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पचगव्येन शुध्यति ॥५
 निगिरन्परि मेहेत भुव-वा वा मेहन कृते ।
 अहोरात्रोपितो भूत्वा जुहुयात्पिपाज्जलम् ॥६
 यदा भोजनकाले स्वादशुचिर्ग्राह्याण क्वचित् ।
 भूनी निधाय त प्रासा स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥७

ऋतौ तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।
 अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१५॥
 उभावप्यनुची स्यात्ता दम्पती याभसागतौ ।
 शयनादुत्थिता नारी शुचिं स्यादशुचिं पुमान् ॥१६॥
 भर्तुः शरीरशुभ्रूपा दौरात्म्यादप्रकुर्वती ।
 दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं त्रिणा ॥१७॥
 त्यजन्तो पतितान्वन्धून्दण्ड्यानुत्तमसाहसम् ।
 पिता हि पतितं चाम न तु माता कदाचन ॥१८॥
 आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।
 मृते मेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥१९॥
 दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पाणिकं दमम् ।
 प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्ग्रन्थाशास्त्रप्रचोदितम् ॥२०॥
 जलान्मयुद्धं धनभ्रष्टा प्रव्रज्यानाशकच्युता ।
 विषप्रपत नध्वस्ता शस्त्रघातहताश्च ये ॥२१॥
 न चैते प्रत्यवसिता सर्वलोकवहिष्कृता ।
 चान्द्रायणन शुद्धचन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥२२॥

ऋतु काल में यदि कोई गर्भ की आशङ्का होवे तो मैथुन करने वाले को स्नान करने का विधान बतलाया गया है । ऋतु में स्त्री के समीप जान पर मूत्र पुरीष के समान ही पवित्रता करनी चाहिए ॥१५॥ मैथुन करने के समय में स्त्री पुरुष दोनों ही अपवित्र हो जाया करते हैं । नारी तो शय्या को छोड़कर उठ जाने पर ही पवित्र होजाया करती है परन्तु पुरुष अपवित्र ही रहता है ॥१६॥ जो स्त्री दुष्ट स्वभाव के कारण अपन स्वामी की सेवा न करे तो उस प्रकार की स्त्री को बारह वर्ष तक त्याग देने का दण्ड देना चाहिये । स्त्री का उसके साथ सम्बन्ध न करने का ही दण्ड होता है । धन का दण्ड उसको नहीं दवे ॥१७॥ पतित और दण्ड के पान बन्धुओं को त्यागकर उत्तम साहस का

प्रदर्शन करना चाहिए । पतित पुत्र को पिता भले ही त्याग देवे किन्तु माता को उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥१८॥ जो रस्सी आदि के द्वारा आत्मघात करना चाहे त। उसके मृत हो जाने पर पवित्र वस्तुओं से उसके शरीर का लेपन करना चाहिए और वह जीवित रह जावे तो उसे दो सौ पण दण्ड करना चाहिए ॥१९॥ उसके जो पुत्र एवं मित्र हो उन पर एक एक पण का दण्ड करना चाहिये । इसके उपरान्त उन्हें शास्त्र में वर्णित विधान के अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए तब शुद्धि हुआ करती है वयो कि आत्मघात करने का बड़ा अपराध शास्त्र में बताया गया है ॥२०॥ जो जल, अग्नि और बन्धन से मरने की इच्छा करके भ्रष्ट हो गये हा—सग्यासी का व्रत भङ्ग करने से पतित होगय होवें—विषपान कर या बूद कर मरने के पाप से दूषित होगये होवे —जो शस्त्र का प्रहार कर आत्म हत्या करने के दोष से दूषित होगये होवे वे मनुष्य फिर व्यवहार के पात्र नहीं रहा करते हैं । सब को चाहिए इनका बहिष्कार कर देवे ऐस। मरने की चेष्टा करने वाले लोगो की शुद्धि पराशर स्मृति में वर्णित चान्द्रायण व्रत अथवा दो तप्त कृच्छ्र व्रतों के करने पर ही विशुद्धि हुआ करती है ॥२१-२२॥

उभयावसित पापश्यामच्छवलकाच्च्युत ।

चान्द्रायणाभ्या शुद्धयेत दत्त्वा धेनु तथा वृषम् ॥२०

श्वशृगालप्लवङ्गद्य मनुषैश्च रति विना ।

स्पृष्टा स्नात्वा शुचि सद्यो दिवा सध्यासु रात्रिषु ॥

अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाडालान्न कथंचन ।

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्धयति ॥२५

गोब्राह्मणगृह दग्ध्वा मृत चोद्वन्धनादिना ।

पाश छित्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेक चरेद् द्विज ॥२६

चाडालपुत्कसाना च भुक्त्वा हत्वा च योपितम् ।

कृच्छ्राद्धं माचरेज्जानाज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२७

जो पुरुष महा पातक और उप पातक दोनों प्रकार से भ्रष्टता प्राप्त कर चुके होवे अथवा अन्य कनेक प्रकार के पापों के समाचरण करने से भ्रष्ट हो गये होवे, उनको शुद्ध होने के लिये दो चाण्डायण व्रत और धेनु या वृष के दान करने पर ही शुद्धता प्राप्त हुआ करती है ॥२३॥ रति के अतिरिक्त दिन, रात अथवा सन्ध्या के समय में कुत्ता, शीशु, बन्दर और पतित पुरुष से स्पर्श हो जाये तो स्नान कर पर तत्काल में ही पवित्र हो जाया करते हैं ॥२४॥ यदि अज्ञानता के वश में आकर किसी चाण्डाल का अन्न खा लेवे तो पन्द्रह दिन तप गो मूत्र में बने हुए जोके भोजन करने से पवित्र हो जाया करता है। गो अथवा किसी ब्राह्मण के घर को प्रज्वलित करने पर अथवा दास के द्वारा वाघने से मरने की चेष्टा करते हो तो इनके पाश को काट कर द्विज को एक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥२५॥२६॥ यदि अज्ञान होने के कारण किसी पुल्कस या चाण्डाल के अन्न का भक्षण कर लेवे और इनकी स्त्रियो को मारे तो शुद्धि के लिये अर्धं कृच्छ्र व्रत करने का प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि ज्ञान पूर्वक भोजन करे तो दो चाण्डायण व्रतों को करना चाहिए ॥२७॥

कोपालिकान्नभोक्तृणा तन्नारोगामिन तथा ।

अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमासभक्षणे ॥२८

तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्धयति ।

महापातककर्त्ताश्चत्वारोऽथ विशेषतः ॥२९

अग्निं प्रविश्य शुद्धयति स्थित्वा वा महति व्रतौ ।

रहस्यररणोऽप्येव मासमभ्यस्य पूरुषः ।

अघमपणसूक्तं वा शुद्धघेदन्तर्जले जपन् ॥३०

रजकश्चमंवारश्च नटो दुरड एव च ।

कंवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः ॥३१

भुक्त्वा चैषा स्त्रियो गत्वा पीत्वा य. प्रतिगृह्यते ॥३२

कृच्छ्राद्धं माचरेज्जानादज्ञानाद्धैन्दवद्वयम् ॥३३

अमूपु पितृगोत्रासु मानृगोत्रगतासु च ॥३४

परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्राद्धं तपने चरेत् ॥३५

कोपालिका अर्थात् एक श्रन्त्यजो की विशेष जाति का नाम है । इसका अन्न खाने पर, उनकी स्त्री के साथ गमन करने पर, जो स्त्री गमन करने के योग्य नहीं होती है उमके साथ गमन करने पर, मदिरा तथा गो मांस का भवन करने पर ब्राह्मण की शुद्धि तप्त कृच्छ्र व्रत के करने पर और तेल के तानों से होम करने पर शुद्धि हुआ करती है । जो चार प्रकार के महा पातकी होते हैं उनकी शुद्धि तो अग्नि में प्रवेश करने पर अथवा महा ऋतु में प्रवेश करने पर ही शुद्धि हुआ करती है । यदि एकान्त में कोई भी पाप बन जावे तो एक मास पर्यन्त जलके अन्दर "ऋत च सत्यम्" इत्यादि अष्टामवर्षण मन्त्र का जाप करें तो शुद्धि हुआ करती है ॥ २८-३० ॥ पोथी, चमार, नट, पुरुड, कैवत, भेद और भिल्ल (भील) इन सात को श्रन्त्यज कहा जाता है ॥ ३१ ॥ इन उन उपर्युक्त सात जातियों का अज्ञान वश अन्न वा भक्षण कर लेवे अथवा इनकी स्त्रियों के साथ सगम कर लेवे या इनके घर के जल का पान कर लेवे या इन जातियों का दान ग्रहण कर लेवे तो पराशर स्मृति में बताया हुआ अर्ध कृच्छ्र व्रत करें और जान बूझ कर ऐसा करे तो शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण व्रत करने चाहिए इस पाप का यही प्रायश्चित्त है ॥३४॥ माता पिता के गोत्र की पराई दाराओं से गमन करने पर भी शुद्धि के लिये अर्ध कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥३२-३५॥

वेष्याभिगमने पाप व्यपोहन्ति द्विजास्तथा ॥३६

पीत्वा सवृत्सुतप्त च पञ्चरात्र कुशोदकम् ।

गुरुतल्पगतो कुर्याद् ब्राह्मणो विधिवद् व्रतम् ॥३७

गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ।

दण्डादूर्ध्वं प्रहारेण यस्तु गा विनिपातयेत् ॥३८

द्विगुण गोव्रत तस्य प्रायश्चित्त विशोधयेत् ।

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणक ॥३९

साद्र्कस्सपलाशश्च गोदण्ड परिकीर्तितः ।

गवा निपातने चैव गर्भोऽपि सभवेद्यदि ॥४०

एकं कशश्चरेत्कृच्छ्र एषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ।

बन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवा रुजाम् ॥४१

द्विजो के वेश्या गमन का पाप भी इस भाति दूर हो सकता है ॥३६॥ गुरु पत्नी गामी ब्राह्मण एक बार तो अत्यधिक गरम जल और पांच रात तक कुशोदक का पान कर विधि पूर्वक व्रत करना चाहिए ॥३७॥ कोई-कोई आचार्य गौ का वध करने वाले और अवकीर्णी (धर्म से भ्रष्ट) को भी इसी प्रायश्चित्त को कहा करते हैं। जो कोई गाय के ऊपर दण्ड से चोट मारे और वह प्रहार से भूमि पर गिर पड़े तो उसकी शुद्धि दुगुणित प्रायश्चित्त से हुआ करती है। एक अंगुष्ठ के बराबर स्थूल और भुजा के समान प्रमाण वाला गीला ढाक या दण्ड ही गोदण्ड कहा जाया करता है। यदि गाय को इतना या ऐसा पीटा जावे कि उसका गर्भ गिर जावे तो उसकी शुद्धि के लिए एक कृच्छ्र व्रत करना आवश्यक है। यह तो केवल कष्ट देने मात्र को ही प्रायश्चित्त होता है। बांधने से, रोधने से, पोषण करने से अथवा पीटा देने से गाय का प्राणान्त हो जावे तो एन-एक पाद कृच्छ्र व्रत करे ॥४०-४१॥

सपद्यते चेन्मरण निमित्तो नैव लिप्यते ।

मूर्च्छित्तन पतितो वापि दण्डेनाभिहतस्ततः ॥४२

उत्थाय पट्पद गच्छेत्सत पञ्चदशापि वा ।

ग्रास वा यदि गृहणीयात्तोय वापि पिवेद्यदि ॥४३

सर्वव्याधिग्रनष्टाना प्रायश्चित्त न विद्यते ।

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गादं शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥४४
 प्रायश्चित्ता स्मृता तत्रशस्त्रे शस्त्रे निगद्यते ।
 काष्ठे सान्तमन प्रोक्त प्राजापत्य तु लोष्टके ॥४५
 तप्तवृच्छं तु पापागे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छकम् ।
 औषधा स्नेहमाहार दद्यादनोब्राह्मणेषु च ॥४६
 दीयमाने विपत्ति स्यात्प्रायश्चित्त तदा नहि ।
 तैलभेषजपाने च भेषजाना च भक्षणे ॥४७
 निशत्यकरणे चैव प्रायश्चित्ता न विद्यते ।
 वत्साना कण्ठवन्धेन क्रियया भेषजेन तु ॥४८
 साय सागोपनार्थं च त्वदोपो रोपवन्धयो ।
 पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥४९

यदि दण्ड से पिटने पर मूर्च्छित होकर गिरने पर फिर उठकर दश पाँच कदम तक चल लेवे और घास खाकर जल पान कर लेवे तो इस तरह से उनके पिटने की व्याधि दूर हो गई है अतः फिर कोई भी प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं रहती है । यदि काष्ठ पापाण डला या शस्त्र से गाय की मृत्यु हो जावे तो शास्त्र में उनके भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त कहे गये हैं । यथा काष्ठ से मौत हाने पर सा तमन व्रत दण्ड से मरने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥४२-४५॥ पापाण के द्वारा मृत्यु होने पर तप्त वृच्छ और शस्त्र द्वारा मर जाने पर अति वृच्छ व्रत करना चाहिए । गौ तथा ब्राह्मणों के निमित्त औषध घृत तैलादि स्नेह एव आहार का वितरण करे ॥ ४६ ॥ यदि तल या किसी औषध के खाने पीने से ऐसी विपत्ति आ जावे तो उस देन वाले को किसी प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं होती है । यदि बछड़ी के गले में बाधकर कोई दवा पिलाई जावे अथवा सायङ्काल में रक्षा के लिए कण्ठ में रस्सी बांधी जावे तो उसके राप अथवा बाधन से भी कोई दोष नहीं हाना है । एक पाद जो प्रायश्चित्त होता है उसमें लामो का मुण्डन कराव । द्विपाद प्रायश्चित्त में मूछ मुड़ावे ॥४७-४९॥

त्रिपादे तु शिखावर्तं मूले सर्वं समाचरेत् ।
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्य दृष्टयेदगुलद्वयम् ॥५०॥
 एवमेव तुं नारीणां मुण्डनं शिरसं स्मृतम् ।
 न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥५१॥
 न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनृघ्नजेत् ।
 राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुत ॥५२॥
 अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
 केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥५३॥
 द्विगुणे तु व्रते चार्णो द्विगुणा व्रतदक्षिणा ॥५४॥
 पापं न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् ।
 अश्रीतस्मार्तं विहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥५५॥

त्रिपादमे शिखा का मुण्डन करावे । पूर्ण प्रायश्चित्त मे पूरा मुण्डन कराना चाहिए । स्त्रियो के सब केशो को पकडकर दो अगुल बाट देना चाहिए । नारियो का यही शिरोमण्डन शास्त्र विधान मे बताया गया है । इसके अतिरिक्त स्त्रियो के लिए मुण्डन और वीरासन करना शास्त्र मे निषिद्ध होते है ॥५०-५४॥ स्त्री गोट मे न रहे और गाय के पीछे-पीछे घूमे । यदि राजा या राज-पुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण को पाप दुर्भाग्य से लग जावे तो उनका प्रायश्चित्त मुण्डन रहित कराना चाहिए और केशो की रक्षा के बदले मे दुगुना व्रत करना चाहिए ॥५५-५६॥ दुगुने व्रत प्रायश्चित्त मे जब किये जाते हैं तो उन व्रतो की दक्षिणा भी दुगुनी होनी चाहिए ॥५७॥ अगर श्रुति, स्मृतियो मे जो नही बताया गया है ऐसा प्रायश्चित्त बताया जाता है तो अपराधी के पाप का कभी भी क्षय नही हुआ करता है और वह प्रायश्चित्तो का उपदेश देने वाला स्वयं नरक गामी हो जाया करता है ॥५५॥

तान्धर्मविघ्नवन्तृश्च राजा दण्डेन पीडयेत् ।
 न चैतान्पीडयेद्राजा वद्यचित्काममोहित ॥५६॥

तत्पाप शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ।
 प्रायश्चित्ते ततश्चोर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥५७
 विशतिर्गा वृष चैक दद्यात्तोषा च दक्षिणाम् ।
 किमिभिस्तृणसभूतैर्मक्षिकादिनिपातितै ॥५८
 कृच्छ्रं स प्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।
 प्रायश्चित्त च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥५९
 सुवर्णमानिक दद्यात्तन शुद्धिविधीयते ।
 चाण्डालश्वपचै स्पृष्टे निशि स्नान विधीयते ॥६०
 न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्य स्नानेन शुद्धयति ।
 वसेदथ यदा रात्रावज्ञानादविचक्षण ।
 तदा तस्य तु तत्पाप शतधा परिवर्तते ॥६१
 उद्नच्छन्ति च नक्षत्राण्युपरिष्ठाच्च ये ग्रहा ।
 सास्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदकस्नानमाचरेत् ॥६२
 याश्चान्तर्जलवल्मीकमूपिकोपरवर्त्मसु श्मशाने ।
 शौचशेषे च न ग्राह्या सप्त मृत्तिका ॥६३

इस तरह के अशास्त्रोक्त प्रायश्चित्त को बनाकर धर्म के कार्य में जो विघ्न डाला करते हैं उनको तत्कालीन राजा को दण्ड अवश्य ही देना चाहिए । यदि मोह के कारण इन लोगों को दण्ड नहीं देता है तो वही पाप सैकड़ों भागों में बँट जाता है और राजा पर भी जाकर चढ़ बैठा करता है । प्रायश्चित्त पूर्ण कर लेने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा उनको समुचित दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥५६-६०॥ एक वृष और बीस गायों को दक्षिणा देवे । यदि गौ के शरीर पर प्रहार करने से कोई क्षत हो गया हो और उस घाव में घास से कीड़े पड़ जायें और उसमें मक्खी पड़ जावे तो अर्घकृच्छ्र व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिए यथा शक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा छोटा सुवर्ण भी देवे तभी शुद्धि होती है । यदि किसी चाण्डाल अथवा श्वपच

से रात्रि के समय में स्पर्श हो जावे तो प्रातः काल में स्नान करने से शुद्धि होती है ॥६१-६३॥ यदि उनके स्पर्श होन पर रात्रि में न रहे तो तत्काल ही में स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है । यदि चातुर्य हीन पुरुष अज्ञान होने के कारण रात्रि में चाण्डालों के पास में रहता है तो उनका पाप शत गुना होकर लिपट जाया करता है ॥६१॥ मनुष्यों के ऊपर जो भी ग्रह तथा नक्षत्र निकले उनकी किरणों का स्पर्श हो जाने पर फिर जल में स्नान करे ॥६२॥ जल के अन्दर रहने वाली, सप के बमर्द की बूहे के बिलषी, कलङ्ग भूमि की मार्ग, की श्मशान भूमि की ओर शौच शेष की इन सात स्थलों की मिट्टी कभी ग्रहण नहीं करनी चाहिए ॥६३

इष्टापूर्ता तु कर्त्तव्य ब्राह्मणेन प्रयत्नत ।

इष्टेन लभते स्वर्ग मोक्ष पूर्त्तेन चाप्नुयात् ॥६४

वित्तक्षेपो भवेदिष्ट तडाग पूर्त्तामुच्यते ।

आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥६५

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।

पतिताभ्युद्धरेद्यस्तु स पूर्त्तफलमश्नुते ॥६६

शुक्लाया आहरेन्मूत्र कृष्णाया गो शकृत्तथा ।

ताम्रायाश्च पयो ग्राह्य श्वेतायाश्च दधि स्मृतम् ॥६७

कपिलाया घृत ग्राह्य महापातकनाशनम् ॥६८

पुशैस्तीर्थनदीतीर्थैः सर्वद्रव्य पृथक्-पृथक् ।

आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥६९

प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव सपिवेत् ॥७०

ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि उस इष्ट और पूर्त्त बर्गों को प्रयत्न प्रयत्नों के साथ करना चाहिए । इष्ट बर्ग के बरन से स्वर्ग प्राप्त का लाभ हुआ करता है तथा पूर्त्त बर्गों के बरने से मोक्ष मित्रा करता है ॥६४॥ घन का दान दान इष्ट बर्ग जाता है तथा तागाव, उद्यान

तथा देवार्पणं की'हुई यावडी पूर्त' कर्म कहा जाया करता है ॥६५॥
 जो कोई तालाब, यावडी और कूप तथा देवालय जीर्ण-शीर्ण दशा में
 होकर नष्ट हो रहे हों उनका जो उद्धार करता है यह भी पूर्त' कर्म
 कहा जाया करता है । इस का वही फल भी मिलता है ॥६६॥ शुक्ल
 वर्ण वाली गौ का मूत्र और कृष्ण वर्ण की गौ का गोबर ग्रहण करना
 चाहिए । ताम्र के समान जिस का वर्ण हो उम गौ का दूध और सफेद
 रङ्ग वाली गौ का दही लना चाहिए । जो कपिला गौ हो उसका सदा
 घृत लेवे । ये सब महा पातका के नाश करने वाले हैं । पञ्चगव्य
 जो बनाया जावे तो, ऐसा ही बनाना चाहिए वही पञ्चगव्य परमोत्तम
 हुआ करता है ॥६७-७८॥ कुश, नदी और तीर्थ जल इनसे सभी द्रव्यो
 का पृथक् २ लना चाहिए । जब भी इन वस्तुओं को उठावे तो उम
 समय म प्रणव का उच्चारण करना चाहिए और प्रणव (ॐकार के)
 जप करत हुए ही आलोडन करे तथा प्रणव का उच्चारण कर के पान
 भी करना चाहिए ॥६६ ७०॥

पालाशे मध्यमे पर्णे भाण्डे ताम्रमये शुभे ।

पिवेत्पुष्करपर्णे वा मृन्मये वा कुशोदकम् ॥७१

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ।

द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति ॥७२

जातेन शुध्यते जात मृतेन मृतक तथा ।

गर्भसास्त्रग मासे शोष्यहानि विनिर्दिशेत् ॥७३

रात्रिभिर्मासितुत्याभिर्गर्भस्त्रावेविशुद्धयति ।

रजस्युपगतेमाध्वी स्नानेन स्त्री रजम्बला ॥७४

स्त्रगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पद ।

स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्या पिण्डोदनक्रिया ॥७५

उद्देश्य पिण्डदान स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामत ।

पण्णा देरास्त्रय पिण्डा एव दाता न मुह्यति ॥७६

स्वेन भर्ता सहस्राब्द माता भुक्ता सुदैवतम् ।
 पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥७७
 वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ।
 अदैव भोजयेच्छ्राद्ध पिण्डमेक तु निर्वपेत् ॥७८

इस पञ्चगव्य को पलाश (ढाक) के पत्ते में जो एक दोना के रूप में होता है लेवे अथवा ताम्र के परम शुभ पात्र में, मृत्तिका के पात्र में कुशोदक का पान करना चाहिये ॥७९॥ किसी एक आशौच (सूतक) में यदि कोई दूसरा भी सूतक आजावे तो फिर दूसरे का दोष नहीं लगा करता है ॥७२॥ जनना शौच के साथ ही जनना शौच उतर जाया करता है तथा इसी शौच मृता शौच के साथ मृता शौच दूर हो जाया करता है । गर्भ का स्नाव होजावे तो तीन दिन के लिये सूतक लगा करता है ॥७३॥ जितने मास के गर्भ का स्नाव होता है उतने ही दिन का सूतक भी होता है फिर उतनी ही रात्रियों के पश्चात् शुद्धि होजाया करती है ॥७४॥ सप्तपद में नारी अपने पिता के गोश्र में पृथक् होजाया करती है । इसके पश्चात् उसका पिण्डदान और जलदान उसे अपने स्वामी के गोश्र में ही करना चाहिए ॥७५॥ प्रथम पिण्ड पर दो दो नाम बोलना चाहिए । माता-पिता को, पिता-मह पितामही को और प्रपितामह प्रपितामही को तीन पिण्ड देवे । इस रीति से दाता कभी मोह में नहीं पडा करता है ॥७६॥ माता अपने स्वामी अर्थात् पिता के साथ महस्रो वष तक पिण्ड का उपभोग किया करती है । इसी रीति से पितामही अपने स्वामी (पितामह) के साथ और प्रपितामही अपने स्वामी (प्रपितामह) के साथ भी पिण्ड का उपभोग किया करती है ॥७७॥ प्रत्येक वर्ष में माता-पिता मरण के दिन दिन श्राद्ध मन्त्रार करना चाहिए । विश्वरथा रहित श्राद्ध में त्रिमासे तथा एक पिण्ड दान देवे ॥७८

नित्य नैमित्तिक ताम्य वृद्धिश्राद्धमथाप्यम् ।

पार्वण चेति विज्ञेय श्राद्ध पञ्चविध बुधै ॥७६
 ग्रहोपरागे सक्रान्तौ पर्वोत्सवनहालये ।
 निर्वपेत् त्रीन्नर पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि ॥८०
 अनूढा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके ।
 पाणिग्रहणमन्त्राभ्या स्वगोत्राद्भ्रश्यते तत ॥८१
 येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ।
 तत्समा सूतक याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥८२
 विवाहे चैव सवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
 एकत्व सा व्रजेद्भर्तुं पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥८३
 प्रथमेऽहनि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ।
 अस्थिसचयन कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभि ॥८४

विद्वान् पुरुषो का पाच तरह से श्रद्ध सप्तज्ञ लेना चाहिए ।
 वे पांच ये होते हैं—नित्य, नैमित्तिक काम्य, वृद्धि श्राद्ध और पार्वण
 श्राद्ध ॥७६॥ ग्रहण सक्रांति, महालय पर्वोत्सव (कनागत) म मनुष्य को
 तीन पिण्ड देने चाहिए ॥८०॥ जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ हो
 वह पिण्ड, गोत्र और सूतक म पृथक् नहीं होती है और जिस समय
 म उस कन्या का पाणिग्रहण होजाया करता है तो वह फिर अपने
 गोत्र स पृथक् हो जाया करती है और अपने स्वामी के गात्र म जाकर
 मिल जाया करती हैं ॥८१॥ जिस जिस वर्ण की कन्या विवाही जाया
 करती हैं उन २ वर्णों के अनुसार ही सूतक, पिण्ड तथा उदक क्रियाए
 हुआ करती है ॥८२॥ विवाह के सम्पन्न होने पर चौथे दिन म रात्रि
 के समय में कन्या पिण्ड, गोत्र और सूतक म अपने पति से मिल जाया
 करती है ॥८३॥ मरण हान पर हिनचिन्तक बन्धुजा का प्रथम, द्वितीय,
 तृतीय अथवा चतुर्थ दिन में अस्थि सचय करना चाहिए ॥८४

चतुर्थे पञ्चम चैव सप्तमे नवमे तथा ।

अस्थिसचयन प्रोक्त वर्णानामनुपूर्वश ॥८५

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृष ।
 मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥८६
 नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत् ।
 आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताजलाजलीन् ॥८७
 हस्तौ कृत्वा तु मयुक्ती पूरयित्वा जलेन च ।
 गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये विनिक्षिपेत् ॥८८
 आकाशे च क्षिपेद्धारि वारिस्थो दक्षिणामुख ।
 पितृणा स्थानमाकाश दक्षिणादिक् तथैव च ॥८९
 आपो देवगणा प्रोक्ता अप पितृगणास्तथा ।
 तस्मादस्य जल देव पितृणा हितमिच्छता ॥९०
 दिवासूर्याशुसतप्त रात्रौ नक्षत्रमारुतै ।
 मध्ययोरप्युभाभ्या च पवित्र सर्वदा जलम् ॥९१

चतुर्थ, पंचम और सप्ताह तथा नवम दिन में भी वर्णों के क्रम से अश्विनियों का नक्षत्र बताया गया है ॥८५॥ जिस प्रेत के एकादशाह में वृष का उत्सर्ग किया जाता है वह प्रेत लोक से मुक्त होकर स्वर्ग निवास का आनन्द भोग करता है ॥८६॥ नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर हृदय में विचार करे कि मेरे पितरगण भायें और मेरे द्वारा प्रदत्त जलाजलियों को ग्रहण करे ॥८७॥ अपने दोना हाथों को मिला कर जल से भरे और गी की मीन की ऊँचाई तक उठाल कर जल में ही उस जल का छोड़ देवे ॥८८॥ दक्षिण दिशा की ओर मुख करके आकाश में जन को प्रशिक्षण कर दास चाहिए क्यों कि दक्षिण दिशा में ही आकाश में पितरों का स्थान है ॥८९॥ जल ही देवता और जल की ही पितरगण कहा गया है अतएव जो अपने पितृगण की भलाई चाहता है उस जन का दास करना चाहिए । जलदान में पितर वृत्त हो जाया करते हैं ॥९०॥ जन दिन में गर्वस्थ की विरणों के साथ न तप्त पाया रहा करना है तथा रात्रि के समय में नक्षत्रों

की वायु से वह विशुद्ध होता है एव दानो सन्ध्याओ मे भी दोनो के योग होने से उसकी शुद्धि होती है अतएव सदा परम पवित्र रहता है ॥६१

स्वभावयुक्तमव्यक्तममध्येन सदा शुचि ।
भाडस्थ धरणीस्थ वा पवित्र सर्वदा जलम् ॥६२
देवताना पितृणा च जला दद्याज्जलाजलीन् ।
असस्कृतप्रमीताना स्थले दद्याद्विबक्षण ॥६३*
श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ।
उभाभ्या तर्पणे दद्यादेप धर्मो व्यवस्थित ॥६४

किमी भी अशुचि वस्तु जिससे जल का स्पश न हुआ हा और वह अपने ही स्वभाव मे स्थित हो, चाहे वह किमी भी पात्र मे रहे या भूमि में रहे वह सर्वदा परम पवित्र होता है । चतुर पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह देवगण एव पितृगण को जलाजलि अर्पित करे । जो बिना ही मस्कार हुए मृत हो गये हो उनको स्थल में जल की अर्जलि देनी चाहिये ॥६२-६३॥ श्राद्ध और हवन मे एक हाथ से जल देना चाहिये और जब केवल तर्पण करना हो तो दोनो ही हाथों से जल दान करना चाहिए, यह इसी प्रकार से धर्म की व्यवस्था है ॥६५॥



॥ पापियों को नरक दण्ड वर्णन ॥

पाप भेदान्प्रवक्ष्यामि यथा स्थूलाश्च यातना ।
शृणुस्व धैर्यमास्थाय रौद्रा ये नरका यत ॥१
पापिनो य दुरात्मानो नरकाग्निपु सन्ततम् ।
पच्यन्ते येषु तान्वक्ष्ये भयकरफलप्रदान् ॥२

तपनो वालुकाकुम्भी महारीवरौखौ ।

कुम्भीपाको निरुच्छ्वासः कालसूत्रः प्रमर्दन ॥३

असिपत्रवनं घोर लालामक्षो हिमोत्कटः ।

मूढावस्था वसाकूपस्तथा वंतरणी नदी ॥४

भक्ष्यन्ते मूत्रपान च पुरीषहनद एव च ।

तप्तशूल तप्तशिला शात्मलीद्रुम एव च ॥५

तथा शोणितकूपश्च घोर. शोणितभोजन. ।

स्वमासभोजन चैव वह्निज्वालानिवेशनम् ॥६

शिलावृष्टि शस्त्रवृष्टिर्वह्निवृष्टिस्तथैव च ।

क्षारोदक चोष्णतोय तप्रायः पिण्डभक्षणम् ॥७

अथ शिरः शोषण च मरुत्प्रपतन तथा ।

तथा पापाणवर्षा च कृमिभोजनमेव च ॥८

धर्मराज ने कहा—अब मैं ममस्त पापों के भेद-प्रभेद तथा महान् भीषण यातनाओं में पूर्ण नरकों के विषय में वर्णन करता हूँ । आप बहुत ही धीरज के साथ उनका श्रवण करिये क्योंकि नरकों का वर्णन बहुत ही भयानक सा प्रतीत हुआ करता है और उसे सुनकर दिल काप उठता है ॥ १ ॥ दुष्ट पापात्मा नर नरक की भीषण अग्नि में निरन्तर जला करते हैं उन्हीं महान् भयावह नरकों का वर्णन अब किया जाता है ॥२॥ उन नरकों का सर्व प्रथम नामों को श्रवण कराया जाता है, तपन, वालुका, कुम्भ, रौरव, महारीव, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र और प्रमर्दन ये नरकों के नाम हैं ॥३॥ असिपत्रवन, हिमोत्कट मूढावस्था, वसाकूप, वंतरणी सरिता जहाँ पर मूत्र का पान करना पड़ता है, पुरीष हनद, तप्तशूल, तप्तशिला और शात्मली द्रुम ये सभी नामों वाले बड़े भीषण नरक हैं ॥४-५॥ शोणित कूप, घोर शोणित भोजन, स्वमास भोजन, वह्नि ज्वाला निवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, वह्नि वृष्टि, क्षारोदक, उष्णादक, तप्राय पिण्ड भक्षण ये सभी नरकों के नाम

है ॥ ६-७ ॥ शिरशोषण, मरुत्प्रयतन, पापाण वर्ष और कृमि भोजन ये सभी नामो वाले महान् घोर नरक होते हैं ॥८॥

क्षारो दपान भ्रमण तथा क्रकचदारणम् ।

पुरीपलेपन चैव पुरीपस्य च भोजनम् ॥६

रेत पान महाघोर सर्वसन्धिषु दाहनम् ।

धूमपान पाशवन्ध नानाशूलानुलेपनम् ॥१०

अङ्गारशयन चैव तथा मुसलमर्दनम् ।

वहूनि काष्ठयन्त्राणि कर्षण छेदन तथा ॥११

पतनोत्पन चैव गदादण्डादिपीडनम् ।

गजदन्तप्रहरण नानासर्पेश्च दशनम् ॥१२

शीताम्युमेचना चैव नासाया च मुद्ये तथा ।

घोरक्षाराम्बुपान च तथा लवणभक्षणम् ॥१३

स्नायुच्छेद स्नायुवन्धमस्थिच्छेद तथैव च ।

क्षाराम्बुपूर्णनन्ध्राणा प्रवेश मामभोजनम् ॥१४

पित्तपान महाघोर तथैव श्लेष्मभोजनम् ।

वृक्षाग्रात्पातन चैव जलान्तर्मज्जन तथा ॥१५

क्षारोदकपान, भ्रमण, क्रकच विदारण पुरीष लेपन, पुरीषा हार, रेतःपान, महाघोर भवं सन्धि विदाहन, धूमपान, पाशवन्ध नाना शूलानु लेपन ये सभी नरक होते हैं ॥६-१०॥ अङ्गार शयन मुसलमर्दन, जिसमें अधिक काष्ठ के यन्त्र बने हुए हैं जो खींचकर काटने वाला नरक है पतनोत्पतन जिसमें गर्त में गिराया जाता करता है, ऊपर वा नीचे म धुमारण पंख दिया जाता है । जिस नरक में गदा तथा दण्डों से नाटित किया जाता है तेसा गदा दण्डादि पीडन नाम वाला नरक है । इस नरक में शिरशोषण भी नरक है जहाँ पर दाता म प्रहार होता है जबकि नरक में विषघ्न गणों से डमाया जाता करता है ॥११-१२॥ मुख तथा नाक में अधिक शीतल जल चुमेड दिया जाता है अथवा गारी जल बरवश

पिलाया जाता है तथा केवल नमक ही खिलाया जाता है ऐसे भी नरक यमलोक में होते हैं ॥१३॥ नरको में बड़ी-बड़ी भयानक यातनाये दी जाया करती है, वहाँ पर शरीर की नस काटी जाती है, नसें बाधी जाया करती हैं, हड्डियाँ तोड़ी जाती है, अत्यन्त खारी जल में डुबा दिया जाता है, मास, पित्त, कफ खिलाया जाता है तथा वृक्ष पर चढ़कर मिराया जाता है और जल में डुबा दिया जाता है ॥१४-१५॥

पापाणधाण चैव शयनं कण्ठकोपरि ।

पिपीलिकादशन च वृश्चिकैश्चापि पीडनम् ॥१६

व्याघ्रपीडा शिवापीडा तथा महिषपीडनम् ।

कदर्दमे शयन चैव दुर्गन्धपरिपूरणम् ॥१७

बहुशश्चार्धशयनं महातिक्तनिषेवणम् ।

अत्युष्णतैलपानं च महाकट्टुनिषेवथम् ॥१८

कपायोदकपान च तप्तपापाणतक्षणम् ।

अत्युष्णशीतस्नान च तथा दशनशोर्णनम् ॥१९

तप्ताय शयन चैव ह्ययोभारस्य बन्धनम् ।

एवमाद्या महाभाग यातना. कोटिकोटिश. ॥२०

अपि वर्षसहस्रेण नाह निगदितु क्षमः ।

एतेषु यस्य यत्प्राप्त पापिनः क्षितिरक्षक ॥२१

ऐसे भी नरक होते हैं जहाँ पर शिर पर भारी पत्थर की शिलाए रख दी जाती हैं, काटो पर मुलाया जाता है, धीटियो से बटाया जाता है और भयानक बिच्छुओं से दशन कराया जाता है ॥१६॥ व्याघ्र- गीदड और भैंसों से मुठभेड कराई जाती है बीच में निटा दिया जाता है और घोर दुर्गन्ध ऊपर न छाड दी जाती है ॥१७॥ जब तब नींद नहीं भरती है उठकर बिटा दिया जाता है, ऐसे भी नरक हैं जहाँ पर अत्यन्त अमत्प्र तीक्ष्ण पदार्थ खिलाय जात हैं, खीरता डुबा तप्त तैल पिलाया जाना है तथा महान् नदरी वस्तु खिलाई जाया करती है

॥१८॥ नारकीय यातनाओ म कसैला जल पिलग्या जाता है, जलते हुए पत्थर तुडवाये जाते हैं, अत्यन्त ठण्डे और अधिक खोलते हुए पानी म स्नान कराया जाता है ॥ १६ ॥ अ फन्त तस लौह की चादर पर लिटाया जाता है, लोहे का भार मस्तक पर रख दिया जाता है । हे महाभाग । नरको मे ऐसी करोडा प्रकार की यातनायें दी जाती हैं जिनको मैं स्वय भी हजारो वर्षों मे भी पूरा वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥२०-२१॥

तत्सर्वं सप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदत शृणु ।
 ब्रह्महा च सुगपी च स्तेयी च गुरुतल्पग ॥२२
 महापातकिनस्त्वेते तत्ससर्गो च पञ्चम ।
 पवित्रभेदी वृथापाकी नित्य ब्राह्मणदूषक ।
 आदेशी वेदविक्रेता पचैते ब्रह्मघातका ॥२३
 ब्राह्मण य समाहूय दास्यामीति धनादिकम् ।
 पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२४
 स्नानार्थं पूजनार्थं वा गच्छन्तो ब्राह्मणस्य य ।
 समायात्यन्तरायत्व तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२५
 परनिन्दासु निरतश्चात्मात्कर्परतश्च य ।
 असत्यनिरतश्चैव ब्रह्महा परिकीर्तित ॥२६
 अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तित ।
 अन्याद्वेग रतश्चैव अन्येषा दोषसूचक ॥२७
 दम्भाचाररतश्चैव ब्रह्महेत्यभिधीयते ।
 नित्य प्रतिग्रहरतस्तथा प्राणिवधे रत ॥२८

हे भूमिपाल । अब मैं आपषा यह मक्षण मे बतलाता हूँ कि किन किन पापियो का वहाँ पर क्या-क्या नरक की यातनाएँ भोगनी पडती हैं । जो ब्राह्मण को हत्या करने वाला, मदिखावान करने वाला, पार धीर गुफ पानी के साथ गमन करने वाला ये चारा और पाचवाँ

मुरापानसमं पापं लभते स नराधमः ।

एव बहुविधं पापं सुरापानसमं स्मृतम् ॥३४

अब मैं सुरापान के तुल्य होने वाले पापों का अति मक्षेप में वर्णन करता हूँ गणिकाओं के अन्न का भोजन तथा गणिकाओं का सेवन करना, पतितों के अन्न का भोजन करना भी सुरापान के ही समान होता है । उपासना करने का त्याग, देवों का भोजन, शराव पीने वाली स्त्री के साथ गमन करना भी सुरापान के समान ही पाप होता है । जो विप्र शूद्र के यहाँ पर बुलाया जाने पर उनके यहाँ भोजन करता है उमके भी शराबी ही समझना चाहिए और ऐसे ब्राह्मण को कभी भी किसी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं देना चाहिए । जो शूद्रों की आज्ञा में पुण्य कर्म करता है उस नराधम को भी सुरापान के ही समान पाप लगता है । ऐसे अनेक तरह के पाप भी सुरापान के ही तुल्य ही होते हैं ॥२६-३४॥

हेमस्तेयसम पापं प्रवक्ष्यामि निशामय ।

कन्दमूलफलाना च कस्तूरीपटवाससाम् ॥३५

सदा स्तेय च रत्नाना स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।

ताम्रायस्त्रपुकास्थानामाज्यस्य मधुनस्तथा ॥३६

स्तेय सुगन्धद्रव्याणा स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।

क्रमुकस्यापि हरणमम्भसा चन्दनस्य च ॥३७

पर्णरसापहरण स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।

पितृयज्ञपरित्यागो धर्मकार्यविलोपनम् ॥३८

यताना निन्दन चैव स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ॥३९

भक्ष्याणा चापहरण धान्याना हरण तथा ॥४०

सूद्राक्षहरण चैव स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ॥४१

अब हम सुवर्ण की चोरी के तुल्य होने वाले पापों के विषय में बतलाते हैं, कन्द, मूल, फलों की चोरी करना, कस्तूरी, वस्त्र और रत्नों

की चोरी करना भी सदा सुवर्ण की चोरी के ही समान होती है । ताम्र लोहा, शीशा, काँसा, घृत, शहद, सुपारी तथा चन्दन से मिश्रित जल की चोरी भी सुवर्ण की चोरी के ही समान पाप होता है ॥ ३५-३७ ॥ शरवत की चोरी, पितृ यज्ञ का त्याग कर देना और किसी भी धर्म के कार्य का लोप कर देना भी सुवर्ण को चोरी के समकक्ष ही पाप होता है ॥ ३८ ॥ सन्यामियों की निन्दा, भक्ष्य पदार्थों का अपहरण और धान्यों का अपहरण करना भी सुवर्ण चोरी के ही समान है ॥ ४०-४१ ॥

धर्मलोपः शास्त्रनिन्दा गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥४२

इत्येवमादयो राजन्महापातकसञ्जिताः ॥४३

एतेष्वेकतमेनापि सङ्गकृत्तत्समो भवेत् ॥४४

यथाकथञ्चित्पापानामेतेषां परमर्षिभिः ॥४५

शान्तैस्तु निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तादिकल्पनैः ।

प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते ॥४६

समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च ।

ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥४७

ब्राह्मणं द्वेष्टि यस्तस्य निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।

विश्वस्तघातिना चैव कृतघ्नानां नरेश्वर ॥४८

शूद्रस्त्रीसङ्गिना चैव निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।

शूद्रान्नपुष्टदेहानां वेदनिन्दारतात्मनाम् ॥४९

धर्म का लोप और शास्त्रों की निन्दा ये समस्त पाप गुरु तल्प गमन के ही समान होते हैं । हे राजन् ! इन उपर्युक्त महान् पापियों का माथ देने वाला भी उसी के समान पानकी हो जाया करता है । शमादि गुणों से विभूषित महर्षियों ने प्रायश्चित्त आदि के द्वारा इन सब पापों से विरह होने का मार्ग बतलाया है किन्तु हे भूपते ! कुछ ऐसे भी महान् पाप होते हैं जिनका कि कोई भी प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता है । मैं अब आपके सामने उन पापों का वर्णन करता हूँ, आप

श्रवण करिये ॥४२-४६॥ ऊपर मे बतलाये हुए सभी पाप महान् घोर नरकों को देने वाले होते हैं किन्तु ब्रह्म हत्या आदि के महान् पापों से भी किसी प्रकार से छुटकारा हो भी जाया करता है क्योंकि ये जैसे महान् पाप हैं वैसे ही इसके परम उग्र प्रायश्चित्त भी बतलाये गये हैं ॥४७॥ किन्तु जो मनुष्य ब्राह्मणों से द्वेष करता है उसके पाप से छुटकारा किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता है । हे नरेश्वर ! विश्वासघातियों की, किये हुए उपकार को न मानने वालों की, शूद्र की स्त्री से गमन करने वालों की, शूद्रान्न से पुष्ट शरीर वालों की और देवों की निन्दा करने वालों की निष्कृति (उद्धार होने की गति) तो कहीं पर है ही नहीं ॥४८-४९॥

सत्कथानिन्दकानां च नेहामुत्र च निष्कृति ॥५०
 बौद्धालय विशेषस्तु महपाद्यपि वै द्विज ।
 न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ॥५१
 बौद्धा पापण्डिन प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दका ।
 तस्माद् द्विजस्तान्नेक्षेत यो धर्मवहिष्कृता ॥५२
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालय विशेषत् ।
 ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः ॥५३
 एतेषां पापवाहुल्यान्नरककोटिकल्पकम् ।
 प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो ॥५४
 पापानि तेषां नरकान्गदतो मे निशामय ॥५५
 महापातकिनस्तेषु प्रत्येकं युगवासिनः ।
 तदन्ते पृथिवीमेत्य सप्तजन्ममु गर्दभा ॥५६

जो सत्कथा की निन्दा करने वाले लोग हैं उनकी निष्कृति तो हम लोक में तथा परलोक में कहीं भी नहीं है ॥५०॥ महान् आपदा में प्रसन्न हो जाने पर भी जो द्विज बौद्धों के मन्दिर में प्रवेश करता है उसकी शतश प्रायश्चित्तों से भी शुद्धि नहीं हो सकती है ॥५१॥ इसका कारण

यही है कि बौद्ध लोग वेदों के महान् निन्दक होते हैं, वे पापण्डी हैं और धर्म से बहिष्कृत होते हैं, अनएव द्विज को तो उनकी ओर अपनी दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिए ॥५२॥ इन्ही बातों के कारण से द्विज यदि जान-बूझकर ऐसा करता है तो फिर उसका छुटकारा कभी भी नहीं होता है, ऐसा धर्म शास्त्रों का सत्य सिद्धांत है ॥५३॥ इन ऐसे बहुत से पापों का फल भी करोड़ी कल्पों तक नरकों में यातनाएँ सहन करना ही होता है । हे प्रभो ! जिन महा पापों का कुछ भी कही प्रायश्चित्त नहीं है ऐसे भी बहुत से पापों का वर्णन किया गया है । अब उन महा पापों से प्राप्त होने वाले नरकों के विषय में आप मुझसे श्रवण कीजिए । मैं उन्हें अब बतलाता हूँ ॥५४-५५॥ जो पातकी होते हैं वे प्रत्येक नरक में एक-एक युग पर्यन्त रहा करते हैं । फिर इसके अनन्तर दस पृथ्वी में आकर उनको सात चार गधों की योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है ॥५६॥

ततः स्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु ।
 आशताब्द विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु ॥५७
 ततः सहस्रजन्मानि मृगाद्याः पशवो नृप ।
 शताब्द स्थावराश्चैव ततो गोघ्राशरीरिणः ॥५८
 ततस्तु सप्तजन्मानि चण्डाला पापकारिणः ।
 ततः षोडश जन्मानि शूद्राद्या हीनजातयः ॥५९
 ततस्तु जन्मद्वितये दरिद्रा व्याधिषोडिताः ।
 प्रतिग्रहपरा नित्य ततो निरयगाः पुनः ॥६०
 असूयाविष्टमनसो रौरवे नरके स्मृतम् ।
 तत्र कल्पद्वय स्थित्वा चाण्डाला शतजन्मसु ॥६१
 मा ददस्वेति यो ब्रूयान्दवाग्निब्राह्मणेषु च ।
 शुना यो योनिशतं गत्वा चाण्डालेषूपजायते ॥६२
 ततो विष्टाकृमिश्चैव ततो व्याघ्रस्त्रिजन्मसु ।

तदते नरक याति युगानामेकविंशतिम् ॥६३

इसके उपरान्त दश जन्मों तक के फटे हुए शरीर वाले कुत्ते की योनि में जन्म धारण किया करते हैं । फिर एकसौ वर्ष तक विष्ठा के बीड़े होते हैं । इसके पश्चात् बारह जन्मों तक सर्प हुआ करते हैं ॥५७॥ इसके अनन्तर एक हजार जन्म मृग आदि पशुओं में लिया करते हैं । इसके पश्चात् सौ वर्ष तक उनको स्थावर योनि प्राप्त हुआ करती है । फिर गेहूँ का शरीर प्राप्त होता है ॥५८॥ इसमें भी सात जन्म तक पापकारी चाण्डालोंके यहाँ उत्पन्न हुआ करता है । इसके पश्चात् हीन जातियों में सोलह बार जन्म लिया करता है ॥५९॥ इसके पीछे वे दूसरे जन्मों में रोग ग्रस्त एवं दरिद्र होते हुये जन्म ग्रहण किया करते हैं और मर्कदा प्रतिग्रह ग्रहण किया करते हैं । उस समय में भी अमूया होने के कारण से रौरव नरक में जाकर यातनायें भोगा करते हैं । वहाँ दो कल्पों तक निवास करके फिर एक सौ जन्म चाण्डाल के घर में ग्रहण किया करते हैं ॥६०॥६१॥ जो कोई गौ, अग्नि और ब्राह्मणों के लिये यह कहता है कि इनको कुछ भी मत दो, इनको देने में क्या होता है वह एक सौ जन्मों तक कुत्ते की योनि को भोगा करता है और फिर चाण्डाल होता है ॥६२॥ इसके पश्चात् विष्ठा का बीड़ा होता है तथा इसके पश्चात् तीन जन्मों तक घाघ का शरीर धारण किया करता है और इसके बाद में इक्कीस युगों तक नरक यास किया करता है ॥६३

परनिन्दापरा ये च ये च निष्ठुरभाषिण ।

दानाना विघ्नकर्तारिस्तेषा पपफल शृणु ॥६४

मुण्णोलूखलाभ्या तु चूष्यन्ते तस्करा भृशम् ।

तदन्ते तप्तपापाणग्रहण वत्तमत्रयम् ॥६५

ततश्च कालभूषेण भिद्यन्ते सप्त वत्तरान् ।

शोचन्त. स्वानि कर्माणि परद्रव्यापहारका ॥६६

कर्मणा तत्र पच्यन्ते नरकाग्निषु सन्ततम् ॥६७
 परस्वसूचवाना च नरका शृणु दारुणम् ।
 यावद्युगसहस्र तु तप्ताय पिण्डभक्षणम् ॥६८
 सपीडयते च रसना सदशैर्भृशदारुणैः ।
 निरुच्छ्वास महाघोरे कल्पाद्धं निवसन्ति ते ॥६९
 परस्त्रीलोलुपाना च नरक कथयामि ते ।
 तप्तताम्रस्त्रियस्तेन सुरूपाभरणैर्युता ॥७०
 यादृशीस्तादृशीस्ताश्च रमन्ते प्रसभ बहु ।
 विद्रवन्त भयेनासा गृह्णन्ति प्रसभ च तम् ॥७१

जो मनुष्य दूसरो की निन्दा किया करते है, कठोर वचन मुख से बोला करते हैं, दान देने में विघ्न बाधाये उपस्थित किया करते हैं उनको जो इस बात का फल प्राप्त हुआ करता है उसका फल श्रवण कर लो ॥६४॥ वे चोर होते हैं और उनको नरको में लोहे के मूसल तथा काठ के मूसलो से पीटा जाता करता है फिर इसके पश्चात् तीन वर्ष तक तपे हुये पत्थर को पकडा करते है । इसके उपरान्त वे काल सूत्र से सात वर्ष तक विधा करते हैं । उस समय में दूसरो का द्रव्य हरण करने वाले प्राणी अपने किये हुये कर्मों के विषय में सोचते हुए नरक की अग्नि में पका करते है ॥६६॥६७॥ अब मैं उनके पापो के विषय में बतलाता है जो चोरो को दूसरो के धन का पता ठिकाना बता कर माल का अपहरण कराया करते हैं उनको भी महा दारुण नरको की यातनाये भोगनी पडती है । ऐसे पापी एक सहस्र वर्षों तक तप्त लोहे के पिण्डो को खाया करते है ॥६८॥ इन लोमी की जीभ को यमदूत चीमटी से खीचा करते है क्योंकि जीभ से ही कहकर उन्होंने दूसरो के धन का पता बताया था । ये लोम आधे कल्प तक उच्छ्वास रहित दशा में पडे रहा करते हैं ॥६९॥ अब हम पराई स्त्री से सङ्गम करने के लालचियों को प्राप्त होने वाले नरको का वर्णन करते है ।

ये लोग जिस प्रकार की स्त्रियों के साथ भोग करने की कामना किया करत थे उसी प्रकार की तपे हुये ताम्र की आभूषणों से भूषित हुयी स्त्रियाँ उनके साथ बल पूर्वक रमण किया करती हैं ॥७०॥७१

कथयन्तश्च तत्कर्म नयन्ते नरकान्क्रमात् ।

अन्य भजन्ते भूपाल पतिं त्यक्त्वा च या स्त्रिय ॥७२

तप्ताय पुरपास्तास्तु तप्ताय शयने बलात् ।

पातयित्वा रमन्ते च बहुकाल बलान्विता ॥७३

ततस्तौर्योपिनो मुक्ता हुताशनसमोज्ज्वलम् ।

अयस्तम्भ समाश्लिष्य तिष्ठन्त्यब्दसहस्रकम् ॥७४

तत क्षारोदकस्नान क्षारोदकनिषेवणम् ।

तदन्ते नरकान् सर्वान् भुञ्जतेऽब्दशत शतम् ॥७५

यो हन्ति ब्राह्मणं वा च क्षत्रियं च नृपोत्तमम् ।

स चापि यातना सर्वा भुक्ते कल्पेषु पञ्चसु ॥७६

वे ताम्र की तप्त स्त्रियाँ इनके किये हुये कुवर्माँना बखान करके पुन नरकों में ढकेन लाया करती हैं । हे भूपाल ! जो स्त्रियाँ अपने पति का त्याग करके दूसरे जार पुरुषों का सेवन किया करती हैं । उनको भी लोहेके जलते हुए शरीर वाले पुरुष लोहेके तप्त पलङ्गों पर लिटा कर बलपूर्वक उनके साथ रमण क्रिया बहुत समय तक करा करते हैं ॥७२॥७३॥ इनसे पिंड छूट जाने पर अग्नि के समान लाल धधकते हुये लाहे के खम्भों से एक हजार वर्ष तक चिपटा दी जाया करती हैं ॥७४॥ इसके उपरान्त उनको अत्यन्त खारी जल से स्नान कराया जाता है खारी पानी ही पिलाया जाता है फिर एकसौ वर्षों तक वे सभी नरकों की यातनाय भोगा करती हैं ॥७५॥ जो पुरुष गो ब्राह्मण तथा परम श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा का वध किया करते हैं वह पांच कल्प तक नरक की ममता घोर यातनाओं को भोगा करते हैं ॥७६॥

य शृणोति महन्निन्दा सादर तत्फलं शृणु ।

तेषा कर्णेषु दाप्यन्ते तन्नाय कीलसचया ॥७७
 ततश्च तेषु छिद्वेषु तैलमत्पुष्पमुत्वणम् ।
 पूर्यन्ते च ततश्चापि कुम्भीपाक प्रपद्यते ॥७८
 नास्तिकाना प्रवक्ष्यामि विमुखाना हरे हरी ।
 अब्दाना कोटिपर्यन्त लवण भुञ्जते हि ते ॥७९
 ततश्च कल्पपर्यन्त रौरवे तप्तमकते ।
 भज्यते पापकर्माणोऽन्येष्वप्येव नराधिप ॥८०
 ब्राह्मणान्ये निरीक्षन्ते कोपदृष्ट्या नराधमा ।
 तप्तसूचीसहस्रेण चक्षुस्तेषा प्रसूर्यते ॥८१
 तत धाराम्बुधाराभि सेच्यन्ते नृपसत्तम ।
 ततश्च ऋकचैर्घोरैर्भिद्यन्ते पापवर्मण ॥८२
 विश्वासघातिना चैव मर्यादाभेदिना ताथ ।
 परान्नलोलुपाना च गरक शृणु दारुणम् ॥८३

जो अपने से बड़ो की बुराई किया करते हैं या बड़ो की निन्दा को सादर श्रवण किया करते हैं उनके कानो में गर्म लोहे की कीलो को यमपुर में ठोका जाया करता है ॥७७॥ जब कानो में घाव होजाते हैं तो उन पर गर्म तेल डाला जाया करता है । इसके पश्चात् उम पापी को कुम्भीपाक नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥७८॥ अब उन पापियों की गति का वर्णन किया जाता है जो नास्तिक भगवान शिव तथा भगवान विष्णु से विमुखता रक्खा करते है उनको एक करोड वर्ष तक नमक का आहार करना पडता है ॥७९॥ ह राजन् । इसके अनन्तर उन पापियों को एक कल्प तक जलनी हुई रेत वाले रौरव नरक में पड कर भुजना होता है ॥८०॥ जो अधम मनुष्य ब्राह्मणो को क्रोध में पूर्ण दृष्टि से देखा करते हैं उनको आंखे तपी हुई एक महस्य मुद्दयो से फाडी जाती हैं ॥८१॥ हे श्रेष्ठ नृप । इसके बाद उसके ऊपर खारी जल छिडका जाया करता है और उनके शरीर को

कृकडियों में खूब गोदा जाता है ॥८२॥ अब हम विश्वाम का घात करने वाले पराये अन्न के लालची तथा मर्यादा का भङ्ग करने वाले लोगों को जो महा दाम्प्य नरक यातना भोगनी पड़ती है उनका वर्णन करते हैं । आप गावधान होकर श्रवण करेंगे ॥८३

स्वमामभोजिनो नित्य भक्षमाण रवमिन्नु ते ।

नरकेषु ममस्तेषु प्रत्येक ह्यवदनाग्नि ॥८४

प्रतिग्रहरता ये च ये वै नजप्रपाठरा ।

ये च देवत्वान्नाना भोजिनस्ताञ्चृणुत्व मे ॥८५

राजन्नावपपयन् यातनाम्बामु दुषिता ।

पच्यन्ते सतत पाषाविष्टा भोगरता मदा ॥८६

ततस्मैत्रेण पर्यन्ते तानमूत्रप्रपीडिता ।

तत क्षारोदरम्भान मूत्रविष्टानिरेषणम् ॥८७

तदन्ते भुवमागाद्य भवन्ति श्वेच्छजावय ।

अयोद्वेगरता ये तु यानि वैतरणी नदीम् ॥८८

त्यक्तपञ्चमहायज्ञानानामथ यजन्ति हि ।

उपागनापस्त्रियागी रौरव नरक प्रजम् ॥८९

त्रिप्रथामत्तरान युचता क्षुणु भूपते ।

यातनान्नाम् पच्यन्ते गावदान-द्राग्यम् ॥९०

से आक्रान्त होकर एक कल्प पर्यन्त परम दुःखित होकर घोर नरको में पड़े रहा करते हैं ॥८६॥ इसके अनन्तर उनको तेल के कुण्डों में जला दिया जाता है और फिर काल सूत्र से उत्पीड़ित किया जाता है। इसके पश्चात् वे लोग खारी जल से स्नान करके विष्ठा तथा मूत्र का सेवन किया करते हैं ॥८७॥ जब नरको की यातनायें समाप्त हो जाती हैं तो यहाँ पृथ्वी पर ये लोग शेष पाणों को भोगने के लिये म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण किया करते हैं। जो दूसरों को घडवडाया करते हैं वे वीतरणी नदी में जाकर पड़ा करते हैं ॥८८॥ जो मनुष्य सन्ध्या, तर्पण आदि पाँच महा यज्ञों में से कोई सा एक यज्ञ भी नहीं किया करते हैं वे नर लालाभक्ष नरक में जाया करते हैं और वहाँ पर गोते खाया करते हैं। जो मनुष्य देवोपामना वा त्याग कर देता है वह रौरव नरक में गिरा करता है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! जो भूमिपति ब्राह्मणों के परिवार से बहुत कडाई के साथ धमूलयात्री किया करता है उसकी यह गति होती है कि वह जब तक सूर्य-चन्द्र स्थित रहा करते हैं तब तक नरको में पड़ा रहा करता है ॥९०॥

ग्रामेषु भूपालवरो य कुर्यादिधिक करम् ।
 स सहस्रकुलो भुङ्क्ते नरक कल्पपञ्चसु ॥९१॥
 विप्रग्रामकरादाने योज्जुमन्ता तु पापकृत् ।
 स एव कृतवान् राजन्ग्रह्यहत्यासहस्रकम् ॥९२॥
 कालसूत्रे महाघोरे स वसेद् द्विचतुर्युगम् ।
 अयोनी च वियोनी चपशुयोनी च यो नर ॥९३॥
 त्यजेन्द्रेतो महापापी स रेतोभोजन लभेत् ।
 वसाकूप तत प्राप्य स्थित्वा दिव्याब्दसप्तकम् ॥९४॥
 रेतोभो जी भवेन्मर्त्यं सबलोकेषु निन्दित ।
 उपवासदिने राजन्दन्तधावनट्टन्नर ॥९५॥
 स घोर नरक याति व्याघ्रपक्ष चतुर्युगम् ।

य. स्वकर्मपरित्यागी पापण्डीत्युच्यते बुधै ॥६६

तत्सगकृतमोघ स्यात्तावुभावतिपापिनो ।

कल्पकोटिसहस्रेषु प्राप्नुतो नरकाक्रमान् ॥६७

देवद्रव्यापहर्तारो गुरुद्रव्यापहारका ।

ब्रह्महत्याव्रतसम दुष्कृत भुञ्जते नृप ॥६८

जो राजा अपनी प्रजा से अधिक कर खींच लिया करता है वह अपनी एक हजार पुस्त तक पाँच कल्प पर्यन्त नरक की यातनायें भागा करता है ॥६१॥ जो ब्राह्मणों के ग्राम पर अधिक कर लगाने की या कर में वृद्धि करने की सम्मति एवं अनुमति दिया करता है उसको ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि हजारों ही ब्रह्महत्या कर चुका है ॥६२॥ इस महा पाप का यह परिणाम होता है कि वह महान घोर काल मूत्र नरक में चतुर्युगा की दो कड़ियों तक पड़ा रहता है । जो गमन के अयोग्य पुत्र वधू आदि नारियों की योनि-अयोनि में अथवा अन्य वर्णों की योनि-वियोनि में या किसी पशु की योनि में अपना वीर्यपात किया करता है वह महा पापी नरक में वीर्य का खाया करता है । इसके पश्चात् चर्चों के गर्त में सात दिव्य वर्षों तक पड़ा हुआ वीर्य भक्षण किया करता है और इसकी लोक में भी सब निन्दा किया करते हैं । हे राजन् ! जो जो मनुष्य उपवास के दिन दन्त घावन (दाँतुन) किया करता है वह व्याघ्र पञ्च चौयुगी तक परम घोर नरक में जाकर गिरा करता है जो अपने कर्त्तव्य कर्म का परित्याग कर दिया करता है विद्वज्जन उसको पाषण्डी कहा करते हैं ॥६३ ६६॥ जो पाषण्डी पुरुष की गति किया करता है वह म्लच्छ कहा जाता करता है और दाना ही अति पापी हैं जो कि दण्ड रख कराना नर क्रमण सभी नरका में वास करते दृश्य यातनायें भोगा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे नृप ! जो मनुष्य देवद्रव्य या गुरुद्रव्य का अपहरण किया करते हैं वे ब्रह्महत्या के ही समान पाप के भागी होते हैं ॥६८॥

अनाथधनहर्तारो ह्यनाथ ये द्विपन्ति च ।
 कल्पकोटिसहस्राणि नरके ते वसन्ति च ॥६६
 स्त्रोशूद्राणा समीपे तु ये वेदाध्ययने रता ।
 तेषा पापफल वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहित ॥१००
 अध शीर्षोर्ध्वपादाश्च कीलिता स्तम्भकद्वये ।

धूम्रपानरता नित्य तिष्ठन्त्याब्रह्मवत्सरम् ॥१०१
 जले देवालये वापि यस्त्यजेद्देहज मलम् ।
 भ्रूणहत्यासम पाप संप्राप्तोत्यतिदारुणम् ॥१०२
 दन्तास्थिकेशनखरान्ये त्यजन्त्यमरालये ।
 जले वा भुक्तशेष च तेषा पापफल शृणु ॥१०३
 प्रासप्रोता हर्षभिन्ना आर्त्तारावविराविण ।
 अत्युष्णतैलपाकेऽतितप्यन्ते भृशदारुणे ॥१०४

जो पुरुष किसी अनाथ का द्रव्य अपहृत किया करता है और अनाथ से द्वेष किया करते हैं वे करोड़ों हजारों कल्पों तक नरका में सड़ा करते हैं ॥६६॥ जो पुरुष स्त्रिया अथवा शूद्रों के निकट वेदों के अध्ययन में परायण रहा करता है उनको जो फल प्राप्त होता है उसे आप सावधानता के साथ श्रवण करिय ॥१००॥ वे लोग ब्रह्मा के एक दिग्ग वष पर्यन्त नीचे की ओर मस्तक और ऊपर की ओर टांगें बरके दो खम्भा के बीच में टांग दिया जाता करते हैं और किलें ठोक दी जाती करती है । उस समय में नीचे का धुआं उनको बरबश पीना पड़ता है ॥१०१॥ जो मनुष्य देवालय में या किसी जलाशय में अपने मल का त्याग किया करता है उसको भ्रूण हत्या का महान् पार एव परम दारुण पाप हुआ करता है ॥१०२॥ जो मनुष्य किसी भी देवता के आलय में अथवा किसी जलशय में दूध, हड्डी, केश, नापून अथवा भोजन में बच हुए उच्छिष्ट अन्न का डाल दिया करता है उनका जो पाप का पात्र होता है उसका भी आप मुझमें श्रवण करिए ॥ १०३ ॥

इन पापियो को भालो से छेदे जाते हैं, हलो से भेदित किया जाता है और अत्यन्त घोर उष्ण खोलते हुए तैल में डाल दिया जाता है जिसकी वेदना से वे चीखा करते हैं ॥१०४॥

कुर्वन्ति दु खसतप्तास्ततोऽन्येषु ब्रजन्ति च ।
 ब्रह्म सहस्ते यस्ते गन्धकाष्ठ तथैव च ॥१०५॥
 स याति नरक घोर यावदाचन्द्रतारकम् ।
 ब्रह्मस्वहरण राजनिहामुत्र च दु खदम् ॥१०६॥
 इह सपद्विनाशाय परत्र नरकाय च ।
 कूटसाध्य वदेद्यस्तु तस्य पापफल शृणु ॥१०७॥
 स याति यातना सर्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
 इह पुत्राश्च पौत्राश्च विनश्यन्ति परत्र च ॥१०८॥
 रौग्व नरक भुङ्क्ते ततोऽन्यान्पि च क्रमात् ।
 ये चातिकामिनो मर्त्या ये च मिथ्याप्रवादिन ॥१०९॥
 तेषा मुखे जलोकास्तु पूर्यन्ते पन्नगोपमा ।
 एव पाष्टिमहस्त्राब्दे तत क्षाराम्बुसेचनम् ॥११०॥
 ये वृथामासनिरतास्ते यान्ति क्षारकदंमम् ।
 ततो गर्जनिपात्यन्तो मरुत्प्रपतन यथा ॥१११॥

इसी भाति परम दुःख से मतल होने हुए फिर दूसरे नरको में जाकर पड़ा करते हैं । जो शब्द ब्रह्म (वेद) और गुणघित काष्ठ (चन्दनादि) की चोरी करता है वह महा पापी पुरुष जब तक चन्द्र, सूर्य ममात्र में स्थित रहते हैं तब तक नरको में पड़ा रहा करता है । हे राजन् । ब्राह्मण के धन का हरण करने में इम लोग और पन्नोस दोनों में ही दुःख पाया करता है ॥१०५॥१०६॥ इमका तात्पर्य यह है कि इम लोक में उमकी सम्पत्ति नष्ट होजाती है और पन्नोस में उमके नरक प्राप्त हुआ करता है । जो शूरी गवाही दिया करता है उमके पाप का पत्र धरी होता है कि उमकी एक कल्प गर्मा-त सभी नरको में

जाकर यातना भोगनी पड़ती हैं । इस लोक में उसके पुत्र पौत्रादि सब नष्ट होजाया करते हैं और परलोक में रौरव आदि नरको का कष्ट क्रमशः भोगना पड़ता है ॥१०७ १०६॥ जो अधिक कामी और झूठे होते हैं इनके मुख में साप के सदृश जोक डाल दी जाती है । इस रीति से साठ हजार वर्षों के पश्चात् खारी जल उन पर छिड़कवाया जाता है ॥११०॥ वृथा मांस खाने वाले लोग क्षारकदम नाम वाले नरको में डाले जाया करते हैं । वहाँ उनका बड़े २ हाथी पछाड लगाते हैं और वायु दक्का दिया करता है ॥१११

तदन्ते भवमासाद्य हीनाङ्गा प्रभवन्ति च ।
 यस्त्वृत्ती नाभिगच्छेत त्वस्त्रिगय मनुजेश्वर ॥११२
 स याति रौरव घोर ब्रह्महत्या च विन्दति ।
 अत्याचाररत दृष्ट्वा य शक्तो न निवारयेत् ॥११३
 तत्पाप समवाप्नोति नरक तावुभावपि ।
 पापिना पापगणना कृत्वान्येष्यो दिशान्त च ॥११४
 अस्तित्वे तुल्यपापास्तो मिथ्यात्वे द्विगुणा नृप ।
 अपापे पातक यस्तु समारोप्य विनिन्दति ॥११५
 स याति नरक घोर यावच्चद्रार्कतारकम् ।
 पापिना निन्द्यमानाना पापाद्ध क्षयमेति च ॥११६
 यस्तु व्रतानि सृष्ट्य असमाप्य परित्यजेत् ।
 सार्जसिपगञ्जुभूयाति हीनाङ्गो जायते भुवि ॥११७
 अन्ये सृष्ट्यमाणाना व्रताना विघ्नकृन्नर ।
 अतीव दुःखद रोद्र स याति श्लेष्मभोजनम् ॥११८
 न्याये च धमशिक्षाया पक्षपात वरोति य ।
 न तस्य निष्कृतिर्भूय प्रायश्चित्तायुतीरपि ॥११९

इसके पश्चात् दृग गमार म हीन जन्म वाच हातर ही जन्म दिया करत है । हे मनुजेश्वर । जो पुण्य कृतज्ञान म भी अपनी स्त्री

से सङ्गम नहीं किया करता है वह रौरव नरक में पड़ता है और उमको ब्रह्महत्या का भी पाप लगता है । जो सामर्थ्य रखने पर भी अत्याचार करने वाले को देखकर नहीं रोका करता है उमका भी पाप लगा करता है और वे दाना ही नरक में गमन किया करते हैं । जो पापियों के पापों की गणना करके दूसरे को बताने जाते हैं वे पाप हान पर तो उनके ही बराबर पाप किया करते हैं और जो हे राजा । मिथ्या ही दोष लगाया करते हैं उनको दुगुना पाप लगा करना है । जो बिना पाप वाले का पाप लगाकर उसकी बुराई किया करता है वह जबतक चन्द्र-सूय लोक में स्थित रहतहैं तबतक नरका का ही सबन किया करता है । पापा का जो कर्त्तन किया जाता है उससे पापियों का आधा पाप नष्ट हो जाया करता है ॥ ११२-११६ ॥ जो कोई भी मनुष्य किसी व्रत को प्रथम तो ग्रहण कर लेता है और पीछे उसको बिना पूरा हुआ ही छोड़ दिया करता है वह मनुष्य अमिषव्रत नामक नरक में निवास किया करता है । वहा पर बहुत नरक की यातनाय भोगकर फिर इस ससार में बिक्लाङ्ग होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥ ११७ ॥ जो कोई व्रत को ग्रहण करने वाला दूसरे क व्रत में विघ्न डाल दिया करते हैं वह अधिक दुख देने वाले महान् भयङ्कर शनष्म भोजन नाम वाले नरक में गमन किया करते हैं ॥ ११८ ॥ जो न्याय तथा धर्म की शिक्षा में पक्षपात किया करता है उसका एक-दो क्या दश हजार भी प्रायश्चित्त करे तो भी उद्धार नहीं हुआ करता है ॥ ११९ ॥

अभोज्यभोजी सप्राप्य विड्भोज्य तु समायुतम् ।

ततश्चाण्डालयानो तु गोमासाशी सदा भवेत् ॥१२०॥

अवमान्य द्विजान्वाग्भिर्ब्रह्महत्या च विन्दति ।

सर्वाश्च यातना भुक्त्वा चाण्डालो दशजन्मसु ॥१२१॥

विप्राय दीयमाने तु यस्तु विघ्न समाचरेत् ।

ब्रह्महत्यामम तेन कर्तव्यं व्रतमेव च ॥१२२॥

अपहृत्य परस्वार्थं यः परेभ्यः प्रयच्छति ।
 अपहर्त्ता तु निरयी यस्वार्थस्तस्य तत्फलम् ॥१२३॥
 प्रतिश्रुत्याप्रदानेन लालाभक्ष ब्रजेन्नरः ।
 यतिनिन्दापारो राजन् शिलामात्रे प्रयाति हि ॥१२४॥
 आरामच्छेदिनो यान्ति युगानामेकविंशतिम् ।
 श्वभोजनं ततः सर्वा भुञ्जते यातनाः क्रमात् ॥१२५॥
 देवतागृहभेत्तारस्तडागाना च भूपते ।
 पुष्पारामभिदश्चैव या गतिं यान्ति तच्छृणु ॥१२६॥

जो अभक्ष्य पदार्थों को खाया करता है वह दश सहस्र वर्षों तक विष्ठा खाया करता है और इस नरक यातना भोगने के पीछे भी गाय के मांस का भक्षण करने वाले चाडाल के घर में जन्म लिया करता है ॥१२०॥ विप्रों का अपमान करने से ब्रह्महत्या लग जाती है और इस अपराध से वह समस्त नरकों को भोगने के बाद चाडालों में ही दश बार जन्म लिया करता है ॥१२१॥ ब्राह्मणों के दिये जाने वाले दान में जो विघ्न उपस्थित किया करता है उसको भी एक ब्रह्महत्या करने वाले के तुल्य ही व्रत प्रायश्चित्त के लिये करने चाहिए ॥१२२॥ जो दूसरों का धन छीन कर दूसरों को दान देता है वह अपहरण करने वाला नरकगामी हुआ करता है और जिसका वारत्तव में धन होता है उसको उस दान का पुष्प-फल प्राप्त हुआ करता है ॥ १२३ ॥ जो पहिले देने की प्रतिज्ञा करले और पीछे नहीं दे वह लालाभक्ष नाम वाले नरक में गमन करता है और सन्यासियों की निन्दा करने वाला प्राणी पापाण हो जाया करता है ॥१२४॥ अब हे राजन् ! जो देव मन्दिर, जलाशय और पुष्पित उद्यानों को नष्ट-भ्रष्ट किया करते हैं उनकी जो गति हुआ करती है उसके विषय में भी मुझ से आप श्रवण करें ॥१२५॥ उद्यान को उजाड़ने वाले पापी को इक्कीस युग पर्यन्त मुत्ते खाया करते हैं । फिर जो महापातकी होते हैं वे प्रत्येक

नरक म एक-एक युग पर्यन्त रहा करते हैं । फिर वह क्रमशः सभी नरका म भाग भोगा करते हैं ॥१२६॥

यातनास्वासु सुर्वासु पच्यन्ते वै पृथक् पृथक् ।
 ततश्च विष्ठाकृमय कल्पानामेकविंशतिम् ॥१२७
 ततश्चाण्डालयोनी तु शतजन्मानि भूपते ।
 ग्रामविध्वंसकाना तु दाहकाना च लुम्पताम् ॥१२८
 महत्पाप तदादेष्टु न क्षमोऽह निजायुषा ।
 चच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ॥१२९
 एतेषा यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारवम् ।
 उच्छिन्नापितृदेवेज्यावेदभागंवहि स्थिता ॥१३०
 पापण्डा इति विरुप्रातास्तेषा वै सर्वयातना ।
 एव बहुविधा भूप यातना पापकारिणाम् ॥१३१
 तेषा तासा च सख्यान कर्तुं नालमह प्रभो ।
 पापाना यातनाना च धर्माणाचापि भूपते ॥१३२
 मद्यया निगदितु लोके क क्षमो विष्णुना विना ।
 एतेषा सर्वपापाना धर्मशास्त्रविधानत ॥१३३

इन सभी नरको म वे पृथक्-पृथक् दुःख भागा करते हैं और पीछे इबकीस कल्प तक विष्ठा क कीड़े हुआ करते हैं ॥१२७॥ हे राजा ! इनके भी पीछे उनसे भी बार जन्म चाण्डाल योनि म हुआ करते हैं । जो ग्रामो क विध्वंसक हान है या ग्रामो म भाग लगा कर नष्ट-ध्वस्त कर दिया करते हैं उनके पापों की मर्यादा इतनी बढ़िब हानी है कि मैं अपनी पूरी आयु भी लगा दूँगा भी उनसे पापों की गणना नहीं कर सकता हूँ । जो मदा उच्छिष्ट भोजन करने वाला है और अपने मित्रो म ही दाह दिया करते हैं उनका जब तक मृत्यु शक्ति की शक्ति रहा करती है तभी तक नरका के बटु भागन पडा है । जो

देव-यजन और पितृ तर्पण नहीं किया करते हैं तथा वेदोक्त मार्ग के विपरीत चला करते हैं वे महान् पाखण्डी कहे जाया करते हैं और उनको सभी तरह के नरको के कष्ट भोगने पडते हैं । हे राजन् ! इस प्रकार के पाप करने वालों को अनेक प्रकार की यातनाये भोगनी पडा करती हैं ॥१३०॥१३१॥ हे प्रभो ! उन ऐसे पापियो और नरको की गणना मुझसे नहीं की जा सकती है । हे भूप ! पापियो की, धर्मों की और नरको की गणना भगवान् विष्णु ही करने की शक्ति रखते हैं उनके बिना अन्य कौन कर सकता है ? धर्म शासन के विधानानुसार प्रायश्चित्त करने पर पाप राशि नष्ट होजाया करती है ॥१३२॥१३३॥

प्रायश्चित्तेषु चीर्णेषु पापराशि प्रणश्यति ।
 प्रायश्चित्तानि कार्या ण समीपे कमलापते ॥१३४
 न्यूनातिरिक्तकृत्याना सपूर्तिकरणाय च ।
 गङ्गा च तुलसी चैव सत्सङ्गो हरिकीर्त्तनम् ॥१३५
 अनसूया ह्यहिंसा च सर्वेष्येते हि पापहा ।
 विष्ण्वर्षितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ॥१३६
 अनर्पितानि कर्माणि भस्मविन्यस्तहव्यवत् ।
 नित्य नैमित्तिक काम्य यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥१३७
 विष्णो समर्पित सर्व सात्त्विक सफल भवेत् ।
 हरि भक्ति परा नृणा सर्वपापापप्रणाशिनी ॥१३८
 सा भक्तिदंशधा ज्ञेया पापारण्यदबोपमा ।
 तामहो राजसौश्र्चैत्र सात्त्विकैश्च नृपोत्तम ॥१३९
 यच्चान्यस्य विनाशार्थ भजन श्रीयतेनृप ।
 सा तामस्यधमा भक्ति खलभावधारा यत ॥१४०

धर्मों की न्यूनाधिपता सागोपागता सम्पादन करने के लिये ये सभी प्रायश्चित्त भगवान् विष्णु की प्रतिमा के समीप में ही करने

चाहिये । गङ्गा, तुलसी, सत्संगति, अनमूया, अहिंसा और श्री हरि भगवान् के नाम गुण और लीला-धामो की महिमा का कीर्तन ये सभी पापा का विनाश करने वाले होते हैं । जो कर्म सभी पापो का विनाश करने को किये जाते हैं, जो कर्म श्रीभगवदर्पण करने की बुद्धि से किये जाते हैं वही सांग सफल हुआ करते हैं और उनका फल भी पूर्ण होता है ॥१३४-१३६॥ जो कर्म भगवान की सेवा में समर्पित किये जाते हैं वे सभी कृत कर्म राख में हवि के होम के ही समान निष्फल हुआ करते हैं । नित्य कर्म, नीमित्तक कर्म, काम्य अनुष्ठान तथा अन्य मोक्ष के बन्धन स्वरूप सभी कार्य-बलाप श्री भगवान की सेवा में ही सादर समर्पित कर देने पर परम मात्त्विक एव सफल हुआ करते हैं । श्री हरि की भक्ति मनुष्य के सम्पूर्ण पापा को भगा दिया करता है ॥१३७-१३८॥ हे राजन् । दूसरे प्राणिया का विनाश करने के लिये श्री भगवान का भजन करना अत्यन्त तामसी भक्ति कही जाती है क्योंकि इसमें हृदय के अन्दर दुष्टता का भाव निहित रहा करता है । हे भूपाल । पापरूपी वन के लिये भगवान् की भक्ति दावानल की तरह ही हुआ करती है । यही हरि भक्ति सात्त्विक, राजस और तामस भेद से दश प्रकार की हुआ करती है ॥१३६।१४०॥

योऽर्चयेत्कैतवधिना स्वैरिणी स्वपतिं यथा ।

नारायण जगन्नाथ तामसी मध्यमा तु सा ॥१४१

देवपूजापरान्दृष्ट्वा मात्सर्याद्योऽर्चयेद्धरिम् ।

सा भक्ति पृथिवीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता ॥१४२

धनधान्यादिक यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम् ।

श्रद्धया परया युक्त सा राजस्यधमा स्मृता ॥१४३

य सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम् ।

अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता ॥१४४

सालोक्यादि पद यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम् ।

सा राजस्युत्तमा भक्ति कीर्तिता पृथिवीपते ॥१४५

यस्तु स्वकृतपापाना क्षयार्थं प्राचंयेद्वरिम् ।

श्रद्धया परयोयेपेत. सा सात्त्विक्यधमा स्मृता ॥१४६

हरेरिद प्रियमिति शुश्रूषा कुरुते तु य ।

श्रद्धयासयुती भूय सात्त्विकी मध्यमा तु सा ॥१४७

जो धूर्तता के साथ व्यभिचारिणी स्त्री अपने ही पति के समान जगत् के स्वामी श्री भगवान् नारायण की अर्चना किया करता है वह मध्यम श्रेणी की तामसी भक्ति हुआ करती है ॥१४१॥ जो दूसरे लोगो को देव-यजन करते हुए देखकर मत्सरता के वशीभूत हो कर स्वयं भी श्री भगवान् का पूजन किया करते हैं वह भक्ति भी तामसी अवश्य है क्योंकि मांस्य ही उसका महान् दाप हुआ करता है किन्तु वह उत्तम श्रेणी की तामसी कही जाया करती है ॥१४२॥ धन-धान्यादि के लाभ की कामना रखकर परम श्रद्धा के साथ श्री हरि के चरणों की उपासना करना अत्यधम राजसी भक्ति कही जाया करती है ॥१४३॥ जो मनुष्य अपने हृदय में ऐसी भावना रखता है कि मेरी कीर्ति सर्वत्र विस्तृत होकर फैल जावे और इसी उद्देश्य को लेकर भगवान् की भक्ति भाव से पूजा किया करता है वह मध्यम श्रेणी की राजसी भक्ति हुआ करती है ॥१४४॥ हे पृथिवीपते ! जो सालोक्य मुक्ति आदि की उपलब्धि की इच्छा से श्री हरि की पूजा-अर्चा किया करता है वह उत्तम-कोटि की राजसी भक्ति कही जाया करती है ॥१४५॥ जो मनुष्य अपने इस जन्म के तथा पूर्वजन्मोंजित समस्त मर्चि पापों के क्षय कराने के लिये परम श्रद्धा की भावना से श्री हरि का यजन किया करता है वह स्वार्थ की भावना हृदय में भरी होने के कारण से अधम सात्त्विकी भक्ति होती है क्योंकि भगवान् से कुछ अपना मनचय पूर्ण करता है ॥१४६॥ भक्ति का करना श्री हरि को परम प्रिय लगा करना है यही समझकर उनको प्रीति का सम्पादन कर शृपापात्र बनने की भावना में श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा

किया करता है वह मध्यम श्रेणी की सात्विक भक्ति कही जाया करती है ॥१४७॥

विधिवद्व्याचयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप ।
 भक्तीना प्रवरा सा तु उत्तमा सात्विकी स्मृता ॥१४८॥
 महिमान हरेर्यस्तु किञ्चित्कृत्वा प्रियो नर ।
 तन्मयत्वेन सानुष्ट सा भक्ति रुत्तमोत्तमा ॥१४९॥
 अहमेव परो विष्णुर्मति सर्वमिद जगत् ।
 इति य सनत पश्येत्ता विशादुत्तामोत्तामम् ॥१५०॥
 एव दशधर्वा भक्ति सासारच्छेदकारिणी ।
 तथापि सात्विकी भक्ति सर्वकामफलप्रदा ॥१५१॥
 तस्माच्छणुष्व भूपाल सासारविजिगीषुणा ।
 स्वकर्मणोऽविरोधेन भक्ति कार्या जनार्दने ॥१५२॥
 य स्वधर्म परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति ।
 न तस्य तुप्यते विष्णुराचारेणैव तुप्यते ॥१५३॥
 सर्वागमानामाचार प्रथम परिकल्पते ।
 आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत ॥१५४॥

हे नृप । शास्त्र सम्मत विधान को समझ कर अपने कर्तव्य का परिपालन करने के लिये दास का भाव लेकर उसी के समान श्रीपति की समाराधना किया करता है वह समस्त प्रकार की परमोत्तम सात्विकी भक्ति कही जाती है ॥ १४८ ॥ जो नर नारायण की महान् महिमा को हृदय में धारण करके उनका परम प्रिय दास बनकर तन्मय होता हुआ सदा सन्तुष्ट रहा करता है वही उत्तमोत्तम परम श्रेष्ठ भक्ति हुआ करती है ॥१४९॥ जो मैं स्वयं ही परम विष्णु का स्वरूप हूँ जो कि मनुज के चोले में रहकर ससार में भ्रमण किया करता हूँ और यह सम्पूर्ण जगत मुझमें ही व्याप्त है । इस रीति से जो सदा विचार किया करता है उसको परमोत्तम भक्ति समझना

आहिए क्योंकि उसे सर्वदा ही विष्णु के स्वरूप का ध्यान बना रहा करता है और उसका दृष्टिकोण परम निश्चल होता है ॥ १५० ॥ ये दशो प्रकार की भक्ति चाहे तामस ही क्यों न हो इस ससार का समच्छेद कर देने वाली हुआ करती है क्योंकि भगवान की भक्ति तो होती ही है । इतने जो सात्विकी भक्ति होती है वह सम्पूर्ण कर्मों के स्वप्नः ही पुण्य फलों को प्रदान करने वाली हुआ करती है ॥१५१॥ अतएव हे राजन् ! आप समाहित होकर सिद्धान्त की बात का श्रवण करिए । जो इस ससार यात्रा में आकर अपनी पूर्ण विजय चाहता है उसका परम कर्तव्य है कि अपने वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण पालन करते हुए उसे इस प्रकार से भगवान की भक्ति करनी चाहिए ॥१५२॥ जो अपने वर्णाश्रम का परित्याग करके केवल भगवान की भक्ति का करना अपना कर्तव्य समझा करता है उस पर भगवान् पूर्णतया प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं क्योंकि उसकी प्रसन्नता तो सर्वदा सदाचार से ही हुआ करती है ॥१५३॥ इसका एक मात्र कारण यही है कि सभी शास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि सर्व प्रथम धर्म आचार ही है । धर्म आचार से ही हुआ करता है और उस धर्म के स्वामी भगवान् श्री विष्णु देव ही हैं ॥१५४॥

तस्मात्कार्या हरेर्भक्त. स्वधर्मस्थाविरोधिनी ।
 सदाचारविहीनाना धर्मा अप्यसुखप्रदाः १५५
 स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ।
 यत्तु पृष्टं स्वया भूयस्तत्सर्वं मदित मया ॥१५६
 तस्माद्धर्मपरोभूत्वा पूजयस्व जनार्दनम् ।
 नारायमणीयास मुखमेप्यसि शाश्वतम् १५७
 शिव एव हरिः साक्षाद्वरिरेव शिवः स्वयम्
 द्वयोरन्तरदृग्भाति नरकान्कोटिश. चल. ॥१५८
 तस्माद्विष्णुं शिवं वापि मम बुद्ध्वा ममर्चय ।

भेदकृद् दुःखमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥१५६
तदर्थमहमायातस्त्वत्समीप जनाधिप ।

तत्तो वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय ॥१६०
आत्मघातकपाप्मानोदग्धाः कपिलकोपतः ।

वसन्ति नरके ते तु राजंस्तव पितामहाः ॥१६१

अतएव भगवद्भक्त मानव का परम कर्त्तव्य यही है कि अपने वर्णाश्रम प्रयुक्त धर्म का किसी प्रकार से भी भूल कर भी विरोध न करे । ऐसी ही स्वधर्म विरुद्ध श्री हरि भगवान की भक्ति करनी चाहिये क्योंकि जो सदाचार से विहीन पुरुष होते हैं वे यदि धर्म भी करते हैं तो वह दुःखप्रद ही हुआ करता है ॥१५५॥ अपने धर्म का त्याग करके जो भगवान की भक्ति की जाया करती है उमका करना भी व्यर्थ ही माना जाता है । हे राजन् ! आपने मुझ से जो भी कुछ प्रश्न किये थे उन सबका समाधान मैंने भली भाँति कर दिया है ॥१५६॥ अतएव आप परम धर्म परायण रहते हुए अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप भगवान श्री नारायण जनार्दन का यजन करें तो आप निश्चय ही परम सुख को प्राप्त कर लेंगे ॥१५७॥ भगवान् शिव साक्षात् श्री हरि का ही एक स्वरूप होता है और उमी भाँति श्री हरि साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप हुआ करता है । वस्तुतः इन दोनों स्वरूप में तार्किक रूप में कोई भी भेद नहीं होता है । वैसे इनके रूपों में ही भेद है जो दर-असल भेद नहीं होता है । इन दोनों के रूपों में जो भी मूढ़ मानव भेद समझा करता है उस दुष्ट पुरुष को करोड़ों नरकों की भीषण यातनाएँ सहन करनी पड़नी हैं ॥१५७॥ अतएव आपका परम कर्त्तव्य यही है कि शिव तथा विष्णु का समान ही समझकर पूजित किया करो । जो इन दोनों के स्वरूपों में भेदभाव समझता है उसको दम सौर तथा परमाव में वही भी सुख प्राप्त न होकर केवल दुःख ही उठाना पड़ता है ॥१५८॥ हे राजन् ! इस समय में मैं त्रिमया के त्रिंशत् आपसे

समीप मे उपस्थित हुआ है उसको आप परम समाहित होकर श्रवण कीजिए ॥१६०॥ हे राजन् ! आपके साठ हजार पितामह भगवान् कपिल देव के कोपभाजन बनकर भस्म हो गये थे एव अपने आत्मघात के पाप को भोगते हुए नरको मे पड़े हुए हैं ॥१६१॥

तानुद्धर महाभाग गङ्गानयनकर्मणा ।

गङ्गा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६२

केशास्थिनखदन्ताश्च भस्मापि नृपसत्तम ।

नयति विष्णुमदन स्पृष्टा गागेन वारिणा ॥१६३

यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गाया क्षिप्यते नरै ।

स सर्वपापानिमुंक्त प्रयाति भवन हरे ॥१६४

यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तत्र भूपते ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाविन्द्वभिवेचनात् ॥१६५

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराज भगीरथम् ।

धर्मात्मन धर्मराज सद्यश्चान्तदंघे तदा ॥१६६

स तु राजा महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।

निक्षिप्य पृथिवी सर्वा सचिवेषु ययौ वनम् ॥१६७

तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणश्रमात् ।

पश्चिमे तुहिनाक्रान्ते शृङ्गे पाण्डशयोजने ॥१६८

तपस्तप्तवानयामास गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥१६९

हे महाभाग ! अब आप त्रिपयगा था गङ्गा देव नदी को यहाँ भूमण्डल मे लाने के कर्म मे प्रवृत्त हो जाइये और उन सब का उद्धार करिये । हे राजन् ! गङ्गा का जल सभी पाप का श्राभूत मूल विनाश कर दिया करता है ॥१६२॥ हे परम श्रेष्ठ भूपते ! यदि गङ्गा जल से मनुष्यो क केश आन्ध्र नाखन दात या भस्म वा चाड़ा सा भी स्पृश हो जावे तो गङ्गा मे यह मामध्य है कि उनको विष्णु लोक मे पहुँचा दिया करती है ॥१६३॥ जो वाग्धव अपन मृत मनुष्य की अस्थियाँ या भस्म को गङ्गा मे प्रवान मे प्रक्षिप्त कर दिया करत है । वे पुण्य

समस्त पापों के समुदाय से मुक्ति पाकर सीधे विष्णुलोक में चले जाया करते हैं ॥१६४॥ हे राजन् । मैंने आप के समक्ष में जितने भी पापों का वर्णन किया है वे सभी पाप एक ही गङ्गाजल की बूँद के पड़ जाने पर नष्ट भ्रष्ट होजाया करते हैं ॥१६५॥ श्री सीतकजी ने कहा—हे मुनि शार्दूल नारद । धर्मराज ने परम धार्मिक राजा भगीरथ से ये बातें समाप्त करके तुरन्त ही वही पर अन्तर्धान होगये थे ॥१६६॥ उस समस्त शास्त्रों के अर्थों के ज्ञाता और पारगामी वह महान् बुद्धिमान राजा भगीरथ भूमण्डल के सम्पूर्ण शासन के भार को मन्त्रियों के लिये सौंप कर तपश्चर्या करने के लिये वन को चला गया था ॥१६७॥ वहाँ पर भगवत् न नरनारायण के आश्रम में पश्चिम दिशा की ओर हिम से समाच्छादित ६४ कोस के परिमाण वाले शिखर पर तपस्या करके त्रैलोक्य में व्याप्त रहने वाली पवित्र पावना गङ्गाजी को लेकर आया था ॥१६८-१६९॥

शुभं पुण्यं मे भवति

॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाना ॥

हिमवद्विनरिमाद्य वि चकार महीपति ।
 कथमानी त्वान्गङ्गामेतन्मे ववनुमहंसि ॥१
 भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने ।
 गच्छन्हिमाद्रि तपसे प्राप्तो गोदावरतटम् ॥२
 तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम् ।
 वृष्णमारममाकीर्णं मानङ्गणमेवितम् ॥३
 ध्रमदभमरसवृष्टं ब्रूजद्विहगमवुत्तम् ।
 अजद्वराहनितरं चमरीपुच्छमीजितम् ॥४
 नृत्यन्मयूरनितरं मारङ्गादिनिषदितम् ।
 मन्त्रिन्याभिरादरात् ॥५

शालतालतमालाढ्य नूनहिन्तालमण्डितम् ।

॥६॥

वेदशास्त्रमहाघोषमाश्रम प्राविशद् भृगो ॥७॥

गृणन्त परम प्रह्व वृत शिष्यगणैर्मुनिम् ।

तेजसा सूर्यसदृश भृगु तत्र ददर्श स ॥८॥

देवपि श्री नारद जी ने कहा— राजा भगीरथ ने हिमालय पर्वत पर पहुँच कर क्या किया था और वह किस रीति से गङ्गाजी को लाये थे—इसका स्पष्ट वर्णन मुझे करके कृपा कर मुनाइये ॥१॥ श्री सनक जी ने कहा—हे मुनिवर ! जटाचीर घारी राजा भगीरथ हिमालय पर्वत पर तपस्या करने के लिए विचरण करये हुए, गोदावरी के तट पर पहुँच गये थे ॥२॥ उस महावन में भगीरथ नृप ने भृगु जी के परम श्रेष्ठ आश्रम का निरीक्षण किया था जहाँ पर कि कृष्णसार मृग और वाय हाथी भ्रमण कर रहे थे ॥३॥ चारो आर मँडराते हुए भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे—पक्षियों की चहचहाहट क्रान्तो को परम प्रिय पुनीत हो रही थी—इधर-उधर मूकरा के झुण्ड के झुण्ड घूम रहे थे और चमरी गाये अपनी श्वेत पूँछो को हिला रही थी ॥३-४॥ मयूरो का वहाँ पर नृत्य हो रहा था । सारङ्ग (पहीहा) बोल रहे थे और वहाँ पर मुनि कन्याओ के द्वारा सीजे गये पौधे जो बड़े प्रेम से समारोपित किये गये थे बड़े होकर परम शोभायमान दिखाई दे रहे थे ॥५॥ वह परम शुभ आश्रम साखू, ताड तथा तमाखू के पेड पौधो से ममन्वित था एव शहतूत, क्षिताल (बाड वृक्ष का ही एक भिन्न रूप) के वृक्षो की उसमें बहुत अधिक शोभा हो रही थी । जही, बन्नेर, चमेली, चम्पा और अश्वत्य के वृक्ष एव लताओ से वह आश्रम परम विभूषित हो रहा था ॥ ६ ॥ वहाँ पर चारो आर विबभित पुत्रो की अद्भुत छटा पँची हुई थी । दधर-उधर शृपियो का समुदाय निवाग

किया करता था। सब ओर वेदों के मन्त्रों के उच्चारण का बड़ा भारी घोष सुनाई दे रहा था। उस आश्रम में राजा भगीरथ ने भृगुमुनि का दर्शन किया था जो परम ब्रह्म का विस्तृत वर्णन करते हुए चारों ओर में शिष्यों से घिरे हुए थे और तेज में सूर्य के समान दिखलायी दे रहे थे ॥७८॥

प्रणनामाय विप्रेन्द्र पादसंग्रहणादिना ।
आतिथ्य भृगुरप्यस्य चक्रे सन्मानपूर्वकम् ॥६॥
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमपिणा ।
उवाच प्राञ्जलिभूर्त्वा विनयान्मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
पृच्छामि भवभीतोऽहं नृणामुद्धारकारणम् ॥११॥
भगवास्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम ।
तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१२॥
राजस्तवेप्सिता ज्ञाता त्वं हि पुण्यवता वर ।
अन्यथा स्वकुल सर्वं कथमुद्धर्तुं महिषि ॥१३॥
यो वा को वापि भूपाल स्वकुल शुभकर्मणा ।
उद्धर्तुं कामस्ता विद्यान्नररूपधर हरिम् ॥१४॥

राजा भगीरथ ने उस महं महर्षि प्रवर के चरणों का स्पर्श करके सादर प्रणाम किया था। भृगु मुनि ने भी बहुत ही सम्मान के साथ राजा का अतिथि सत्कार एवं आदर किया था ॥६॥ महामुनि भृगु से आतिथ्य ग्रहण करके राजा भगीरथ को मुनिवर से सविनय एवं साञ्जलि प्रार्थना की थी ॥१०॥ राजा भगीरथजी ने कहा— हे समस्त शास्त्रों के महान पण्डित भगवन ! इस महान भयङ्कर से भयभीत हुआ मैं कुछ मानवों के उद्धार का उपाय आप से पूछन की इच्छा रखता हूँ ॥११॥ हे सबज्ञ ! आप तो मुनिवों में परम श्रेष्ठ हैं। यदि मुझ से रकपर अपना अनुग्रह करना चाहते हैं तो जिस कर्म के करने

पर भगवान को प्रसन्नता होवे उस कलाप का वर्णन मेरे समक्ष मे करने की कृपा कीजिए ॥ १२ ॥ श्री भृगु मुनि ने उत्तर दिया—हे राजन् ! आपका हार्दिक मनोरथ मैं समझ गया हूँ । आप तो पुण्यात्मक पुरुषों में परम श्रेष्ठ पुरुष हैं अन्यथा अपने सम्पूर्ण कुल के उद्धार करने का विचार ही कैसे करते ? ॥१३॥ हे भूमिपते ! जो आपके शुभ कर्म के द्वारा अपने कुल के उद्धार करने की इच्छा करे वह भले ही कोई भी कथो न हो, उसको मनुष्य के स्वरूप का धारण करने वाला साक्षात् श्री हरि ही समझ लेना चाहिए ॥१४॥

कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रद ।

तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहित ॥१५

भव सत्यपरो राजन्नहिंसानिरतस्तथा ।

सर्वभूतहितो नित्य मानता वद वै क्वचित् ॥१६

त्यज दुजनसासर्गं भज साधुसमागमम् ।

कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर विष्णु सनातनम् ॥१७

कुरु पूजा महाविष्णोर्याहि शान्तिमनुत्तमाम् ।

द्वादशाष्टाक्षर मन्त्रं जप श्रेयो भविष्यति ॥१८

सत्य तु कीदृशं प्रोक्तं सर्वभूतहितं मुने ।

अनृतं कीदृशं प्रोक्तं दुर्जनाश्चापि कीदृशा ॥१९

साधवः कीदृशा प्रोक्तास्तथा पुण्यं च कीदृशम्

स्मृतं च कीदृशं कथं विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी ॥२०

शान्तिश्च कीदृशी प्रोक्ता की मन्त्रोऽष्टाक्षरो मुने ।

को वा द्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वायकोविदः ॥२१

हे राजेन्द्र प्रवर ! देवश्वर भगवान विष्णु जिस कम से मानवों को अभीष्ट फल प्रदान किया करते हैं उसको ही मैं अब आपका वतलाता हूँ आप परम समाह्वत हार्दर उभवा श्रमण करिये ॥१५॥ हे राजन् !

आ करत हैं उ-ह में आपका वत-

लाता हूँ—आप सदा सत्य भाषण करो, पूर्णत अहिंसा व्रत का परिपालन करो, सर्वदा समस्त प्राणियों के हित का सम्पादन करो और भूल कर भी किसी भी दशा में झूठ मत बोलो ॥१६॥ दुष्ट दुर्जन पुरुषों की सङ्गति कभी मत करो और सदा सत्पुरुषों का सङ्ग करते रहा करो और अहर्निश परम पुण्यमय सत्वमों को करते हुए मृत्यु एव सनातन विष्णु भगवान का भजन करते रहना चाहिए ॥१७॥ महा विष्णु भगवान का अर्चन करने से परमोत्तम शान्ति का लाभ होगा तथा द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वामुदेवाय) एव अष्टाक्षर (श्री कृष्ण शरणं मम) मन्त्र का जाप किया करो । इसमें आपका परम कल्याण होगा ॥१८॥ राजा भगीरथ ने कहा—हे मुनिवर । सत्य का क्या लक्षण होता है ? समस्त भूतों (प्राणियों) का हित किसको कहा जाता है ? मिथ्या किसका नाम है और दुर्जनो का स्वरूप कैसा होता है ? ॥ १९ ॥ साधु तथा पुण्य किसको कहा जाया करता है ? पुण्य का वास्तविक स्वरूप क्या हुआ करता है ? भगवान विष्णु का स्मरण किस रीति से किया जाता है ? तथा उन भगवान का अर्चन किस विधान में किया जाता है ॥ २० ॥ शान्ति का सच्चा स्वरूप क्या बतलाया गया है ? अष्टाक्षर मन्त्र कौनसा है ? हे पला के अर्थों के जानन वाले महा पण्डित ! हे मुनिवर । आप यह भी बतलाइये कि वह द्वादशाक्षर मन्त्र कौनसा है ॥२१॥

कृपा कृत्वा मयि परा सर्वं व्याख्यातुमहसि ।
 साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा ॥२२
 यत्पृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सर्वं प्रवदामि ते ।
 यथार्थकथनं यत्तत्सत्यमाहुर्विपश्चित ॥२३
 धर्माविरोधतो वाच्यं तद्विधर्मपरायणं ।
 देशकालादि विज्ञाय स्वयमम्याविराधत ॥२४
 यद्वचं प्रोच्यते सद्भिस्तसत्यमभिधीयते ।
 सर्वेषामेव जतूनामवनेशजननं हि तत् ॥२५

अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
 कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपन्थिता ॥२६॥
 सर्वलोकहितत्व वै प्रोच्यते धर्मकोविदै ।
 इच्छानुवृत्तकथन धर्माधर्माविवेकिन ॥२७॥
 अनृत तद्वि विज्ञय सर्वश्रेयोविरोधि तत् ।
 ये लोके द्वेषिणो मूर्खा कुमार्गरतबुद्धय ॥२८॥

हे महामुने । इन सभी मेरे प्रश्नों की आप कृपा वर विशद व्याख्या कीजिए । श्री भृगुमुनि ने कहा— हे महान् बुद्धि वाले राजन् । बहुत ही अच्छी बातें आपने जनहित करने वाली पूछी हैं क्योंकि आप आपकी बुद्धि तो बहुत ही श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ हे राजन् । आपने इस समय जो भी कुछ पूछा है । उसका मैं यथातक वर्णन करता हूँ—विद्वान् पुरुष जो यथार्थ कहा जाता है उसको ही स य कहा करते हैं । सत्य वही है जिसका श्रवणकर मनुष्य सही बात को ठीक समझ जावे ॥२३॥ उस सत्य को ऐसी रीति से धर्म में तत्पर पुरुष को कहना चाहिए कि धर्म में कोई भी विरोध न आये । देश और काल को भी भली भाँति समझकर जिसमें कोई विरोध न होवे ऐसा जो वचन कहा जाता है उसी को सत्पुरुष सत्य वचन कहा करते हैं । जिसमें किसी प्राणी को कोई बट्ट नहीं पहुँचता है ॥२४-२५॥ हे नृपोत्तम ! अहिंसा उसी का नाम है जिसमें समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करती हैं । सभी सत्त्वगुणों में सहायता देना और क्रुत्सिन कर्मों से दूर रहना ही धर्म में चतुर पुरुषों के द्वारा सर्व लोको का हित कहा करते हैं । धर्म और अधर्म का कुछ भी विचार न कर विवेक रहित होकर स्वेच्छा पूर्वक कार्य करना ही झूठ है ॥२६-२७॥ इस झूठ में सभी कल्याणों का दरघाजा बन्द हो जाया करता है । जो दम जगत में द्वेष करने वाले लोग हैं तथा मूर्ख हैं इनकी मति गर्वदा बुरे मार्गों की ओर ही जाया करती है ॥२८॥

ते राजन्दुज्जना ज्ञेया सर्वधर्मव हृष्टकृता ।
 धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिण ॥२६
 सर्वलोकहितासक्ता साधव परिकीर्त्तिता ।
 हरिभक्तिकर यत्तत्सद्भिश्च परिञ्जितम् ॥३०
 आत्मन प्रीतिजनक तत्पुण्य परिकीर्त्तितम् ।
 सर्व जगदिद विष्णुविष्णु सर्वस्य कारणम् ॥३१
 अह च विष्णुर्यज्ज्ञान तद्विष्णुस्मरण विदु ।
 सर्वदेवमयो विष्णुविधिना पूजयामि तम् ॥३२
 इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्ति प्रकीर्त्तिता ।
 सर्वभूतभयो विष्णु परिपूर्ण सनातन ॥३३
 इत्यभेदेन या बुद्धि समता सा प्रकीर्त्तिता ।
 समता शत्रुमत्रेषु वशित्व च तथा नृप ॥३४
 यदृच्छालाभसतुष्टि सा शान्ति परिकीर्त्तिता ।
 एते सर्वे समाख्यातास्तय सिद्धिप्रदा नृणाम् ॥३५

हे राजन् । उन्ही पुरुषों को दुष्ट एवं दुर्जन समझना चाहिए
 और ऐसे लोग समस्त धर्म कृत्यों से बहिष्कृत रहा करते हैं । जो पुरुष
 सदा धर्म एवं अधर्म का विचार गहराई के साथ करते ही वेद प्रतिपा-
 दित मार्गों पर गमन किया करते हैं । सर्वदा सब प्राणियों का हित
 सम्पादन करने में परायण रहा करते वे ही साधु पुरुष कहे जाया करते
 हैं, जिससे श्री हरि भगवान के चरणा की प्रीति बढ़ती है और सज्जन
 जिससे परम प्रसन्नता प्राप्त करें और अपने हृदय में भी जिवन्ने करने
 में प्रसन्नता उत्पन्न होती है उसी को पुण्य कहा जाया करना है । यह
 सम्पूर्ण विश्व भगवान विष्णु का ही एक व्यापक स्वरूप है और इस सब
 के भगवान विष्णु ही परम कारण हैं ॥२६-३१॥ मैं भी विष्णु का ही
 एक स्वरूप हूँ, ऐसा ज्ञान का होना ही विष्णु का स्मरण कहा जाया
 करता है । भगवान विष्णु तो सर्व देवमय हैं, मैं उनकी सविधि अर्चना

करूँ, इस प्रकार की श्रद्धा-भावना का समुत्पन्न होना ही भक्ति कही जाती है। परिपूर्ण सनातन भगवान विष्णु सर्वभूतमय होते हैं ॥३२-३३॥ इसी प्रकार की जो ये दया से शून्य बुद्धि है वही समता कही जाती है। हे राजन् शत्रु-मित्र मे समता का व्यवहार रखना, इन्द्रियो को अपने वश मे रखना, जो कुछ भी यदृच्छया प्राप्त हो जावे उसी मे सन्तुष्ट रहना शान्ति कही जाया करती है। ये सभी बातें, सिद्धान्त पूर्ण हैं और मनुष्यो को ये तपस्या की सिद्धि प्रदान करने वाली हुआ करती हैं जिन्को मैंने अभी आपको बतलाया है ॥३४ ३५॥

समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतवः ।

अष्टाक्षर महामन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३६

वृक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम् ।

विष्णोः प्रियकर चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३७

नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ।

नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥३८

प्रणवाद्यं महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम् ।

द्वयोः सम फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयो ॥३९

प्रवृत्ती च निवृत्ती च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः ।

शंखचक्रधर शान्त नारायणमनयमयम् ॥४०

लक्ष्मीनश्रितवामाङ्कं तथाभयङ्कर प्रभुम् ।

किराटकुण्डलधर नानामण्डनशोभितम् ॥४१

भ्राजत्कोस्तुभमालाढ्य श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।

पीताम्बरधर देव सुरासुरनमस्कृतम् ॥४२

ध्यायेदनादिनिधन सर्वकामफलप्रदम् ।

अन्तर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः ॥४३

इन सब का परिपालन करने से शीघ्र ही सब पापों के समुदाय

का विनाश हो जाया करता है। अष्टाक्षर महामन्त्र सभी पापों का नाश कर देने वाला होता है ॥३६॥ हे राजन् ! यह महामन्त्र सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति का एकमात्र साधन है और यह भगवान विष्णु को प्रिय बना देने वाला है तथा सभी मिद्धियों को प्रदान करने वाला है। उसे अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥३७॥ “ॐ नमो नारायणाय”, यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका जाप करना चाहिए। “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। आठ और धारह अक्षरों से युक्त इन दोनों ही मन्त्रों का फल सम्मान ही हुआ करता है ॥३८-३९॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति में इन उपयुक्त दोनों मन्त्रों को समता बतलाई गयी है। सासारिक कर्मों से अनुराग सहित सम्पादन करने को प्रवृत्ति कहा जाता है और सभी लौकिक कार्यों से निर्वेद प्राप्त कर उनसे दूर हटने को निवृत्ति कहा करते हैं। अब भगवान के ध्यान करने के लिए उनके स्वरूप का वर्णन किया जाता है—शख-चक्रं धारण करने वाले, परम शान्त स्वरूप, अनामय अर्थात् परमानन्दमय, अपने बाये भाग में सर्वदा लक्ष्मी देवी को साथ रखने वाले, किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले, सदा अभय का प्रदान करने वाले, विविध बहु मूल्य भूषणों से विभूषित, दमकने वाली कौस्तुभ मणियों की माला को धारण करने वाले, श्री वत्स के चिह्न से युक्त वक्षस्थल वाले, पीताम्बर को पहिने हुए, सब देवासुरों के द्वारा बन्द्यमान, अनादि निघ्न और सब कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले भगवान विष्णु हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिए। ये भगवान विष्णु अन्तर्यामी हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, परिपूर्ण एवं सनातन है ॥४०-४३॥

एतत्सर्वं समाख्यात तत्तु पृष्ट त्वया नृप ।
 स्वस्ति तेऽस्तु तपःसिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम् ॥४४॥
 एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमपिणा ।
 परमा प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम् ॥४५॥

१५३। देवों ने प्रार्थना की थी—हे भगवान आप तो अपने स्मरण करने वालों की सभी पीड़ाओं को दूर कर दिया करते हैं । आप सर्वोपरि विराजमान परमात्मा हैं । आप अपने स्वभाव से परम विशुद्ध हैं और सब प्रकार से परिपूर्ण हैं । इस जगत के एक मात्र आप ही स्वामी हैं । ऐसे भगवान श्री विष्णु की सेवा में हम सबका सादर एवं सखिनय प्रणाम समर्पित है । आपके स्वरूप का ज्ञान करने वाले मनीषी आपको ज्ञानात्मक ही कहा करते हैं ॥१५४॥ योगी लोग जिस महान् आत्मा वाले का हमेशा ध्यान किया करते हैं और जो स्वेच्छा से ही शरीर धारण करके देवगणों का काय सफल किया करते हैं । यह सम्पूर्ण ससार जिनका ही स्वरूप है तथा द्रव्य समस्त विश्व के जो आदि स्वामी हैं उन महा पुरुष की सेवा में हम सब नमस्कार करते हैं ॥१५५॥ जिनके परम पावन नामों का सकीर्तन करने से दुष्टों के सब पापों का नाश होजाया करता है उन्हीं परम पूजनीय महान् पुराण पुरुष भगवान् विष्णु को हम लोग अपने अर्थ की सुसिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रणाम करते हैं ॥१५६॥

यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमत्यस्य कदापि शिक्षा ।
 कालात्मक त त्रिदशाधिनाथ नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ॥१५७॥
 जगत्करोऽप्यब्जभवोऽस्ति रुद्र पुनाति लोकाञ् श्रुतिभिश्च विप्रा ।
 तमादिदेव गुणसन्निधान सर्वोपदेशारमिता शरण्यम् ॥१५८॥
 वर वरेण्य मधुकैटभारि सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम् ।
 सद्भक्तसकल्पितसिद्धिहेतु ज्ञानैकवेद्य प्रणता स्म देवम् ॥१५९॥
 अनादिमृध्यान्तमज परेशमनाद्यविद्य ख्यतमोविनाशम् ।
 सच्चित्परातन्दघनस्वरूप रूपादिहीन प्रणता स्म देवम् ॥१६०॥
 नारायण विष्णुमनन्तमीश पीताम्बर पद्मभवादिसेव्यम् ।
 यज्ञप्रिय यज्ञवर विशुद्ध नता स्म सर्वोत्तममव्यय तम् ॥१६१॥

इति स्तुतो महाविष्णुर्देवरिन्द्रादिभिस्तदा ।
 चरित तस्य राजर्षेदेवाना सन्यवेदयत् ॥६२
 ततो देवान्त्रमाश्रयास्य दत्त्वाभयमनञ्जन ।
 जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद ॥६३

सूर्य आदि समस्त ग्रह जिनके तेज के द्वारा ही प्रकाश प्रदान किया करते हैं और आज्ञा एव शिक्षा का कभी उल्लंघन नहीं किया करते हैं उन्ही क्लारूप देवों के प्रभु परम पुरुषार्थ स्वरूप भगवान् विष्णु की सेवा में हमारा प्रणाम सादर निवेदित किया जाता है ॥५७॥ जो ब्रह्म का स्वरूप धारण कर इस विश्व की रचना किया करते हैं । श्री रुद्रदेव के स्वरूप में अवस्थित होकर इस जगत का सहार किया करते हैं और विप्र के स्वरूप में आकर सब लोगों को धृतियों के द्वारा पवित्र करते हैं उन्ही आदि देव गुणों के सन्निधान, सबको उपदेश देने वाले और शरण करने के योग्य भगवान् विष्णु की हम शरणागति लेते हैं ॥५८॥ परम श्रेष्ठ शिरोमणि, मधु और वृंढभ दैत्यों के विनाश करने वाले, देवासुरों के द्वारा पूजित चरण, अपने भक्तों के मनोरथों की सिद्धि के कारण स्वरूप और केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य भगवान् विष्णु देव को हम सब प्रणाम करते हैं ॥५९॥ जो आदि मध्यान्त से रहित है, जिनका जन्म कभी नहीं होता है, जो परम परेश आदि पुरुष और जो अविद्या के अन्धकार का नाश करने वाले तथा स्वरूप विहीन, सच्चिदानन्द हैं उन भगवान् विष्णु देव की सेवा में हम सब लोगों का प्रणाम है ॥६०॥ जो साक्षात् नारायण, ईश, अनन्त विष्णु, पीताम्बर धारण करने वाले, ब्रह्मादि सद्य देवों के वन्दनीय, यज्ञ प्रिय, यज्ञकर, परम विशुद्ध स्वरूप, सर्व शिरोमणि और अविनाशी हैं उन देवेश्वर की सेवा में हम सबका प्रणाम है ॥६१॥ इस भाँति इन्द्रादि सब देवताओं ने भगवान् का स्तवन करके फिर प्रार्थना की थी तो उन्होंने राजर्षि भगीरथ के परम चरित्र का

वर्णन किया था और हे नारद ! उस समय मे भगवान विष्णु ने समस्त देवों को समास्वासन दिया था । जहाँ पर राजर्षि भगीरथ तपश्चर्या कर रहे थे वहा भगवान स्वयं पहुँच गये थे ॥६२॥६३

शखचक्रधरो देव सच्चिदानन्दविग्रह ।
 प्रत्यक्षतामगात्तस्य राज्ञ सर्वजगद्गुरु ॥६४
 त दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भाभासितदिगन्तरम् ।
 अतसीपुष्पसकाश स्फुरत्कुण्डलमण्डितम् ॥६५
 स्निग्धकुन्तलवक्राब्ज विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् ।
 श्रीवत्सकौस्तुभधर वनमालाविभूषितम् ॥६६
 दीर्घबाहुमुदारान्ग लोकेशाजितपकजम् ।
 नमामि दण्डवद् भूमौ भूपतिर्नम्रकधर ॥६७
 अत्यन्तहर्षसापूर्णं सरोमाञ्च सगद्गद ।
 कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् ॥६८
 तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ह्यन्तर्यामी जगद्गुरु ।
 उवाच कृपयाविष्टो भगवान्भूतभावन ॥६९
 भगीरथ महाभाग तवाभीष्ट भविष्यति ।
 आगमिष्यन्ति मल्लोक तव पूर्वपितामहा ॥७०

इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु सच्चिदानन्द भगवान् विष्णु राजा भगीरथ के समक्ष भ शख-चक्र आदि को धारण कर प्रकट होगये थे वह राजर्षि भगीरथ ने अपनी दिव्य प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये जिस समय मे भगवान के अलसी के पुष्प के समान कान्ति वाले हिलत हुए कुण्डलो से विभूषित परम स्निग्ध और घुँघराले केशों से शोभायमान मुख कमल वाले, ददीप्यमान समुज्ज्वल मुकुट को मग्नक पर धारण करने वाले, वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स को धारण किये हुए, वनमालाधारी, परम विशाल भुजाओं से युक्त, सोव-

पालो द्वारा वन्द्यमान, उदार अङ्गो से शोभित पुण्डरीकाक्ष भगवान का दर्शन किया तो वे अपना शिर झुका कर भगवान के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करने लगे थे ॥६५—६७॥ उस समय मैं भगवान का दर्शन प्राप्त करके राजा भगीरथ के मन में अत्यधिक आह्लाद हो रहा था । उनका प्रत्येक रोम हर्षोल्लास के कारण खड़ा हो गया था, उनकी वाणी गद्गद् हो गई थी वे केवल मुख से श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण उच्चारण करने लग गये थे ॥६८॥ भगवान विष्णु के हृदय में भक्त की भाव विह्वल दशा को देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई और उस समय में अन्तर्यामी सब प्राणियों पर कृपा करने वाले जगद्गुरु राजा भगीरथ से कहने लगे थे ॥६९॥ भगवान ने कहा—हे महाभाग । भगीरथ । तेरा हार्दिक मनोरथ पूर्ण होगा और तेरे पूर्वजों का उद्धार होकर वे सब मेरे लोक को प्राप्त होजायेंगे ॥७०

मम मूर्त्यन्तर शम्भु राजन्स्तोत्रं स्वशक्ति ।
 स्तुहि ते सकल काम स वै सद्य करिष्यति ॥७१
 यस्तु जग्राह शशिन शरण समुपागतम् ।
 तस्मादाराधयेशान स्तोत्रं स्तुत्य सुखप्रदम् ॥७२
 अनादि निघ्नो देव सर्वकाम फलप्रद ।
 त्वया सपूजितो राजन्सद्य श्रेयो विधास्यति ॥७३
 इत्युक्त्वा देवदेवो जगता पतिरच्युत ।
 अन्तर्दधे मुनिर्धेय उत्तम्यौ सोऽपि भूपति ॥७४
 किमिदं स्वप्न आहोस्वित्सत्य साक्षाद् द्विजोत्तम ।
 भूपतिर्विस्रय प्राप्त किं करोमीति विस्मित ॥७५
 अथान्तरिक्षे वागच्चै प्राह त भ्रान्तचेतसम् ।
 सत्यमेतदिति व्यक्त न चिन्त्वा कर्तुं महंसि ॥७६
 तन्निशम्भावनोपाल ईशान सर्वकारणम् ।
 समस्तदेवताराजमस्तोपीद्भक्ति तत्पर ॥७७

भगवान ने कहा—हे राजन् ! यह शम्भु मेरी ही दूसरी मूर्ति हैं । अब तुमको चाहिए कि उन शम्भु भगवान का स्तवन अपनी शक्ति के अनुसार करो । वे तुम्हारे सभी मनोरथो को पूर्ण अवश्य ही कर देगे क्योंकि शम्भु बहुत ही दयालु हैं ॥७१॥ भगवान् शम्भु ने शरण मे समागत चन्द्र को ग्रहण किया है । अब उन्ही स्तुत्य भगवान परम सुहृदायक ईश्वर की स्तोत्रो के द्वारा स्तुति करो ॥८२॥ जन्म-मरण से रहित सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले भगवान शङ्कर की हे राजा ! यदि तुम अर्चना करोगे तो वे भोलेनाथ परम कृपालु प्रभु अति शीघ्र आपका कल्याण कर देंगे ॥७३॥ हे मुनि शिरोमणि ! देवो के भी देव भगवान जगत के स्वामी अच्युत राजा भगीरथ से यह कहकर वही पर अन्तर्हित हो गये थे । तब राजा भगीरथ उठकर खड़ा हो गया था ॥७४॥ उस समय मे राजा ने मन मे विचार किया था कि क्या यह मेरा स्वप्न था अथवा सर्वथा सत्य घटना घटित हुई है । मैं इस समय मे क्या करूँ । राजा भगीरथ को उस समय मे ऐसा विस्मय-सा हो रहा था ॥७५॥ उमी समय मे इस भ्रान्ति से पूर्ण राजा को आकाशवाणी सुनाई दी थी कि यह सब स्पष्टतया सत्य है, तुमको अब कुछ भी मनमे चिन्ता नही करनी चाहिये ॥७६॥ इस प्रकार से उम नभोवाणी के द्वारा श्रवण करके राजा भगीरथ ने सब वे कारण स्वरूप और सब देवो मे महान भगवान शङ्कर की स्तुति करने मे भक्ति भाव से सलग्न हो गये थे ॥७६

प्रणमामि जगन्नाथ प्रणतार्तिप्रणाशनम् ।

प्रमाणागोचर देवमीशान प्रणवात्मकम् ॥७८

जगद्रूपमज नित्य सर्गस्थित्यतकारणम् ।

विश्वरूप विरूपाक्षं प्रणतोऽम्भ्युप्ररेतसम् ॥७९

वि . . . यम ।

समामनन्ति योगीन्द्रास्त वन्दे पुष्टिवर्धनम् ॥८०

नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते ।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूना पतये नमः ॥८१

नमचैश्वर्यरूपाय पुष्टाना पतये नम ।

नमोऽकल्पप्रकल्पाय भूताना पतये नम ॥८२

नम. पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ।

नम. कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे ॥८३

नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नम. ।

नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणा पताये नम ॥८४

नमः समस्त भूतानामादिभूताय भूभूते ।

अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने ॥८५

राजपि भगीरथ ने प्रार्थना की थी—मैं इस समस्त जगत् के परम प्रभु प्रगतिशील पुरुषो के दुखो के विनाशक, प्रमाणो के द्वारा अगोचर और प्रणयस्वरूप भगवान् शम्भु की सेवा में अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७८॥ यह सम्पूर्ण जगत् ही जिनका स्वरूप है, जो अजन्मा और नित्य हैं । उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में जो मूल कारण है उन विरूपाक्ष, विश्वरूप एव उग्र वीर्य वाले भगवान् शिव के चरणों में मेरा प्रणाम है ॥७९॥ बड़े २ योगी जन जिन प्रभु को आदि मध्यान्त न रहित, अनन्त, अज और अव्यय बतलाया करते हैं उन्हीं पुष्टि के बढ़ाने वाले भगवान् शङ्कर को मैं प्रणाम करता हूँ । ८० आप सभी लोको के स्वामी हैं अपनी अद्भुत अचिन्त्य माया के द्वारा सबको मोह जात में डाले हुए हैं उन्हीं नीलकण्ठ, अज जीवों को ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर के चरण कमलों में मेरा प्रणाम है ॥८१॥ जो स्वयं चैतन्य स्वरूप से युक्त हैं । परिपुष्टो को मुमार्ग में लगाने वाले भगवान् शम्भु की सेवा में मेरा प्रणाम प्रस्तुत है । असम्भव को भी सम्भव कर देने वाले, पाँच भूतों पर प्रभुता रखने वाले भगवान् शङ्कर को मेरा प्रणाम है । ८२॥

कपाल को धारण करने वाले तथा पाश और मृदङ्ग को ग्रहण करने वाले भगवान शङ्कर को मेरा प्रणाम है ॥८३॥ सर्वभूत, हाथ में घण्टा धारण करने वाले, पाँच मुखों से युक्त, क्षेत्र रक्षक भगवान शम्भु की सेवा में समादर सहित मेरा प्रणाम है ॥८४॥ सब भूतों में आदि भूत, भूभूत, अनेक स्वरूपों वाले, निर्गुण निरजन भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम है ॥८५॥

नमो गणाधिदेवाय गणाना पतये नम ।
 नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नम ॥८६॥
 हिरण्यरेतसे तुभ्य नमो हिरण्यवाहवे ।
 नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥८७॥
 नमस्ते ध्यानसस्थाय ध्यानगम्याय ते नम ।
 येनेद विश्वमखिल चराचरविराजितम् ॥८८॥
 वर्षवाभ्रेण जनित प्रधानपुरुषात्मना ॥८९॥
 स्वप्रकाश महात्मान पर ज्योति सनातनम् ।
 यमामनन्ति तत्त्वज्ञा सवितार नृचक्षुषाम् ॥९०॥
 उमाकान्तन्नन्दिवेश नीलकण्ठ सदाशिवम् ।
 मृत्युञ्जय महादेव परात्परतर् विभुम् ॥९१॥
 पर शब्दब्रह्मरूप त वन्देऽखिलवारणम् ।
 कर्पाद्दिने नमस्तुभ्य सद्योजाताय वै नम ॥९२॥

समस्त गणों के आदि देव, सब गणों के अधिदेव तथा गणों के पति आपसों मेरा प्रणाम है । हिरण्यगर्भ और हिरण्य पति को मेरा प्रणाम है ॥८६॥ जिसका यह गुण धीय है उन हिरण्यवाहु भगवान शिव का मेरा प्रणाम है । ध्यान के स्वरूप में समर्पित तथा ध्यान के साक्षी के लिए भरा प्रणाम है ॥८७॥ सदा ध्यान में मग्न रहने वाले तथा परम ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम समाहित है । तब परम प्रधान पुरुष त यह सम्पूर्ण स्थावर,

जङ्गम विश्व मेघ वर्षा के ममान ही प्रकट हुआ है और जिनको तत्त्व-
वेत्ताजन मनुष्य दृष्टि का सूर्य बहते हैं उन स्वप्रकाश, महान् आत्मा
वाले, परम ज्योति रूप भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८८-
९०॥ जगदम्बा उमा देवी के पति, नन्दिवेश, नील कण्ठ, मृत्युञ्जय
सदाशिव, महान् देव, परम श्रेष्ठतम, विभु, शब्द ब्रह्म स्वरूप और
सबके कारण स्वरूप भगवान् शिव को भरा प्रणाम है । मस्तक पर
जटा जूट धारण करने वाले, अपने भक्तजनो की रक्षा करने के लिए
तुरन्त प्रकट होने वाले सद्योजात भगवान् शङ्कर को मेरा प्रणाम
है ॥९१-९२॥

भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे ।
मन्यवे त इषे त्रय्या पतये यज्ञतन्तवे ॥९३
ऊर्जे दिशा च पतये कालायाघोररूपिणे ।
कृशानुरेतसे तुभ्य नमोऽस्तु सुमहात्मने ॥९४
यत् ससुद्रा सरितोऽद्रयश्च गन्धर्वयक्षात्युरसिद्धसघा ।
स्थाणुश्चरिण्णुर्महदल्पक च असञ्च सज्जीवमजीवमास ॥९५
नतोऽस्मि त योगिनताघ्रिपद्म सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम् ।
स्वतन्त्रमेक गुणिना गुण च नमामि भूय प्रणमामि भूय ॥९६
इत्य स्तुतो महा देव शङ्करो लोकशङ्कर ।
आविर्बभूव भूपस्य सततस्तपसोप्रत ॥९७

इससमस्त जगत् के उत्पत्ति स्थान, सर्वव्यापक, महान् और परम
मूक्ष्म स्वरूप वाले, यज्ञ स्वरूप, वेदत्रयी (ऋक्, यजु और साम) की रक्षा
करने वाले, यज्ञ तन्तु, महाबलवान्, दिशाओ के स्वामी कार्त्तरूप, अघोर
रूपी और कृशानुरेता, महान् आत्मा भगवान् शिव को प्रणाम है ॥९३
-९४॥ जिन भगवान् से य समुद्र, नदियाँ, पवत, यक्ष, गन्धर्व, असुर,
सिद्ध समुदाय, स्थावर जङ्गम, छोटे-बड़े सत् असत् और चेतन एव
अचेतन समुत्पन्न हुए हैं उन प्रभु शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥९५॥

योगीजन जिनके चरणों की सदा वन्दना किया करते हैं उन शिव को मेरा प्रणाम है। जो सबके अन्तरात्मा है, रूप रहित ईश, एक, स्वतन्त्र और गुणीजनों के गुण हैं, उन भगवान शङ्कर की मैं वन्दना करता हूँ ॥६६॥ जिस समय मे समस्त ससार का कल्याण करने वाले भगवान शिव की इस भाँति स्तुति की गई तो वे उस भगीरथ के अत्युग्र तप से सन्तुष्ट होकर वही पर प्रकट हो गये थे ॥६७॥

पञ्चवक्त्र दशभुज चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।

त्रिलोचनमुदाराङ्ग नागयज्ञोपवीतिनम् ॥६८

विशालवक्षस देव तुहिनाद्रिसमप्रभम् ।

गजचर्माम्बरधर सुरार्चितपदाम्बुजम् ॥६९

दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दण्डवद्भुवि नारद ।

तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताञ्जलि ॥१००

प्रणनाम महादेव कीर्तयञ्चङ्कगह्वयम् ।

विज्ञाय भक्ति भूपस्य शङ्कर शशिशेखर ॥१०१

उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वर वरय वाञ्छितम् ।

तोषितोऽस्मि त्वया सन्यक् स्तोत्रेण तपमा तथा ॥१०२

एवमुक्त स देवेन राजा सतुष्टमानभ ।

उवाच प्राञ्जलिभूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥१०३

अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर ।

तदा गङ्गा प्रयच्छास्मत्पितृणा मुक्तिहेतवे ॥१०४

दत्ता गङ्गा मया तुभ्य पितृणा ते गति परा ।

तुभ्य मोक्ष परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिव ॥१०५

हे नारद ! राजपि भगीरथ ने अपन समक्ष मे जब भगवान शङ्कर व स्वरूप का दर्शन किया था तो उम समय मे उनका स्वरूप परम सुन्दर था । शिव वे पाँच मुख थे दश भुजाये थी, माथे पर अर्ध चन्द्र शाशित था, तीन नेत्र थे, विशाल अङ्ग था जिम पर नागों का यज्ञ-पवीत धारण किया हुआ था । विशाल वक्षस्थल था, हिमालय के

सदृश कानि सम्पन्न थे । गज के चर्म को धारण करने वाले, देवों द्वारा वन्दित चरण वाले भगवान शङ्कर को साक्षात् सामने उपस्थिति देखते ही भगीरथ प्रेम विभोर होकर उनके चरणों में लोट गया था । दण्डवत् लेटकर उन चरणों का स्पर्श किया और फिर उठकर दोनों हाथ जोड़कर शिव के शुभ श्रेयस्कर नामों का कीर्तन करने लग गया था । भगवान शङ्कर उम राजा की भक्ति को भली-भाँति समझ गये थे ॥६८-१०१॥ भगवान शङ्कर राजा भगीरथ से कहने लगे—मैं तुझ पर बहुत ही प्रसन्न हूँ अब तू जो भी इच्छा हो वही वरदान मुझसे माँग ले । तुम्हारे इस स्तोत्र से और तपश्चर्या क्षया से मैं बहुत ही अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ ॥१०२॥ भगवान शिव के इस कथन से भगीरथ के मन को बहुत कुछ सन्तोष हो गया था और फिर वह हाथ जोड़कर जगदीश्वरों के भी ईश्वर से प्रार्थना करने लगा था ॥१०३॥ राजर्षि भगीरथ ने कहा—हूँ महेश्वर ! यदि आप वरदान प्रदान करके मुझ सेवक पर पूर्ण अनुग्रह करना चाहते हैं तो मेरे भस्मीभूत पितरों के उद्धार करने के लिए गङ्गाजी को दीजिए ॥१०४॥ भगीरथ की इस प्रार्थना पर भगवान शिव ने उत्तर दिया था कि मैं तुमको गङ्गा देता हूँ । इससे तेरे पितरों की तो परम श्रेष्ठ गति हागी ही और तेरी भी मुक्ति हो जायगी, इतना ही कहकर शङ्कर का वही पर अन्तर्धान हो गया था ॥१०५॥

कपर्दिनो जटाम्बस्ता गङ्गा लोकेऽपाविनी ।
 पावयन्ती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥१०६॥
 तत प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी ।
 भागीरथीति विख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥१०७॥
 मगरम्यात्मजा पूर्वं यत्र दग्धा म्वपाप्मना ।
 त देश प्लावयामाम गङ्गा मवसरिद्वरा ॥१०८॥
 यदा सप्लावित भस्म सागराणा तु गङ्गया ।
 तदैव नरये मग्ना उद्धृताश्च गर्ननरा ॥१०९॥

पुरासक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिता ।

तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैतस ॥११०

गतपापान्स विजाय यम सगरसभवान् ।

प्रणम्याभ्यच्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतमानस ॥१११

इधर भगवान को जटाओ की लट से नटखट गङ्गा जो सम्पूर्ण ससार को पवित्र करने वाली है इस ससार को पवित्र करती हुई राजा भगीरथ के पीछे पीछ चल रहा थी ॥११०६॥ उमी दिन से यह गङ्गा हे मुनिवर । मल को दूर करने वाली परम निमल तीनों लोको म भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी ॥११०७॥ सब प्रथम सगर के पुन अपने पाप के कारण भस्मीभूत हो गये थे उसी स्थान पर पहुँचकर गङ्गा नदी ने पवित्र एव प्लवित किया था ॥११०८॥ गङ्गाजी न सगर के साठ हजार पुत्रो की भस्म को प्रक्षालित किया था कि नरको म पडे हुए मगर मुत निष्पाप होकर परम शुद्ध हो गये थे और उनका उद्धार हो गया था ॥११०९॥ इसके पूव यमराज ने बहुत ही डाट डपट कर घोर दण्ड जिनको दिया था उ ही की गङ्गा जल से स्नात से स्नान करने पर बहुत आदर के साथ पूजा की थी ॥१११०॥ यमराज ने जब सगर के पुत्रो का निष्पाप हुआ जान लिया तब उनको प्रणाम और सत्कार करके परम प्रमनता से कहने लगा था ॥११११॥

भो भो राजसुता यूय नरवाद् भृशदारुणात् ।

मुक्ता विमानमारुह्य गच्छव विष्णुमन्दिरम् ॥११२

इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषा ।

दिव्यदहधरा भूत्वा विष्णुलोक प्रपदिरे ॥११३

एवप्रभावा सा गङ्गा विष्णुपादाग्रसभवा ।

सदलावपु विद्याता महापातकनाशिनी ॥११४

य इद्र पुण्यमाद्यान महापातानाशनम् ।

पठच्च शृणुयाद्वापि गङ्गास्नानकालमव् ॥११५

यस्त्वत्पुण्यमाद्यान वथवदाह्वणायत ।

स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥११६

यमराज ने कहा—हे राज पुत्रो ! अब आप इस परम भयानक नरक से मुक्त हो गये हैं । अब तो श्री गङ्गाजी की कृपा से आप लोग दिव्य विमानों का पर समारूढ होकर सीधे विष्णु लोक को गमन करिए ॥११२॥ यमराज के द्वारा इस तरह से कहने पर उन समस्त सगर के पुत्रों ने दिव्य देह धारण करके निष्प्राण होते हुए विष्णु भगवान के लोक में गमन किया था ॥११३॥ भगवान विष्णु के चरणों के नखों से प्रकट हुई गङ्गा का ऐसा अद्भुत प्रभाव है । फिर वह गङ्गा समस्त लोको में महान् से भी महान् पापों का विनाश करने वाली पवित्रपावनी प्रतिष्ठ हो गई थी ॥११४॥ जो मनुष्य पाप नाशक परम पवित्र आश्रयान का श्रवण किया करना है अथवा इसको पढता है उसको गङ्गाजी के स्नान करने के तुल्य ही पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥११५॥ जो इस परम पवित्र आश्रयान का विशेष की सभा में वर्णन किया करता है वह भी पुनर्जन्म से छूटकर विष्णु लोक को गमन किया करता है ॥११६॥



॥ शुक्ला द्वादशी वृत का उद्यापन ॥

साधु सूत महाभाग त्वयातिकरुणात्मना ।
 श्रावितं सर्वपापघ्नं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥११
 श्रुत्वा तु गङ्गामाहात्म्यं नारदो देवदर्शनं ।
 किं पप्रच्छ पुन सूत सनक मुनिसत्तमम् ॥२
 शृणुध्वमृषयः सर्वे नारदेन मुरारिणा ।
 पृष्टं पुनर्यथा प्राह प्रवक्ष्यामि तथैव तत् ॥३
 नानाख्यानेतिहासाद्यं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।
 श्रुत्वा ब्रह्मसुतो भूयः पृष्टवानिदमादरात् ॥४

अहोऽतिधन्य मुकृतैकसार श्रुत मया पुण्यमसंवृतार्थम् ।
 गाङ्गायमाहात्म्यमघप्रणाशि त्वत्तो मुने कारुणिकादभीष्टम् ॥५॥
 ये साधव साधु भजन्ति विष्णुं स्वार्थं परार्थं च यतन्त एव ।
 नानोपदेशै सुविमुग्धचित्त प्रबोधयन्ति प्रसन्नं प्रसन्नम् ॥६॥
 तत समाख्याहि हरेर्ब्रह्मैतानि कृतैश्च ये प्रीतिमुपैति विष्णुः ।
 ददाति भक्तिं भजता दयालुमुक्तिस्तु तस्या विदिता हि दासी ॥७॥

शौनकादि महर्षियो ने श्री सूतजी से कहा—हे महाभाग ! आपने समस्त महान् भीषण पापों के विनाश करने वाली गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करा कर हम लोगों पर अत्यधिक कृपा का प्रदर्शन किया है । अब आप हम को यह बताइये कि देवर्षि नारद जी ने गङ्गा जी के इस माहात्म्य का श्रवण कर इसके पीछे मुनि श्रेष्ठ श्री सनकजी से क्या जिज्ञासा की थी ॥१-२॥ इस पर सूतजी ने कहा—हे ऋषि-गणों ! देवर्षि श्री नारद जी के पूछने पर महर्षि सनक देव ने जो उनसे कहा था उस सबको मैं बिलकुल उसी भाँति आप लोगों को सुनाता हूँ ॥३॥ ब्रह्मा क पुत्र नारदजी विविध कथानको तथा इतिहास से परिपूर्ण गङ्गाजी के इस उत्तमोत्तम आख्यान को सुनकर फिर सनकजी से बड़े ही समादर के साथ पूछने लगे थे ॥४॥ श्री नारद जी ने कहा था— हे मुनिवर ! आपके मुखारविन्द से परम पुण्यो का सार और परम पुण्य स्वरूप एव महा पाप विनाशक गङ्गा माहात्म्य सुना है ? आप तो स्वय ही बहुत दयालु हैं आपको धन्यवाद है ॥५॥ साधु पुरुषों का ऐसा स्वभाव ही हाता है कि वे सर्वदा भगवान् विष्णु का भजन किया करते हैं और वे अपने तथा दूसरों के उद्धार की सदा चेष्टा किया करते हैं । जिनका मन महान् घोर मोह म पडा रहता है उनको अनेक प्रकार का सदुपदेश प्रदान कर उन्हें वह यश प्रसन्नता दिया करते हैं ॥६॥ अतएव जिन वनों के करने ने भगवान् विष्णु की प्रसन्नता हुआ करती है उन वनों का अवश्य वर्णन कीजिए । भगवान् तो स्वय ही बहुत दयालु हैं ।

जो लोग उनका भजन किया करते हैं। उनको भक्ति दे दिया करते हैं और मुक्ति तो उनकी परम प्रसिद्ध दामी है ॥७॥

ददाति मुक्ति भजता मुकुन्दा व्रतार्चनध्यानपरायणानाम् ।
भक्तानुमेवामु महाप्रयासा विमृश्य कस्यापि न भक्तियोगम् ॥८॥

प्रवृत्ता च निवृत्ता च यत्कर्म परितोषणम् ।
तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तोऽसि मानद ॥९॥

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ भक्तस्तव पुरुषोत्तमे ।
भूयो भूयो यत् पृच्छेश्वरिण शाङ्गधन्वन ॥१०॥

व्रतानि ते प्रवक्ष्यामि लोकोपकृतिमन्ति च ।
प्रमीदति हरिर्येस्तु प्रयच्छत्यभय तथा ॥११॥

यस्य प्रसन्नो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।
इहामुत्र सुख तस्य तपोवृद्धिश्च जायते ॥१२॥

येन केनाप्युपायेन हरिपूजापरायणा ।
प्रयान्ति परम स्थानमिति प्राहुर्महर्षय ॥१३॥

मार्गशीर्षे सितेपक्षे द्वादश्या जन्मशायिनम् ।
उपोषितोऽच्येत्सम्यङ् नर श्रद्धाममन्वित ॥१४॥

जो लोग भगवान का व्रत-पूजन और ध्यान किया करते हैं उनको भगवान मुक्ति दे दिया करते हैं किन्तु भक्तों को सेवा करने में बहुत झगड़ भोगना पड़ता है—ऐसा समझ कर किसी को भी भक्ति-योग देना नहीं चाहते हैं ॥८॥ हे मानद । भते ही प्रवृत्ति मार्ग का हो या चाहे निवृत्ति मार्ग का हो, जो यत्कर्म भगवान श्री हरि की प्रसन्नता समुत्पन्न कराने वाला हो उसी का अब आप मेरे सामने वर्णन करिए । आप तो स्वयं भगवान विष्णु के परम गिरोमणि भक्त हैं और आप सभी कुछ जानते हैं ॥९॥ श्री मनस्वी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मूने । बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह अत्यधिक अच्छी बात है । आप भी तो भगवान पुरुषोत्तम के परम भक्त हैं क्योंकि शाङ्ग धनुष के धारण करने

वाले भगवान के चरित्र को बारम्बार पूछते ही चले जा रहे हैं । बिना भक्ति के ऐसी बात अन्य कौन पूछ सकता है ? ॥१०॥ मैं अब आपके प्रश्न के अनुसार ही अपने समक्ष मे रासार का परम उपकार करने वाले व्रतो का विशद वर्णन करता हूँ जिन व्रतो के करने पर भगवान विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं और अभय का दान दिया करते हैं ॥११॥ यज्ञ स्वरूप भगवान की जिस जीव पर प्रसन्नता होती है उस जीवात्मा को दोनो लोको मे सर्वदा सुख की प्राप्ति हुआ करती है और उसकी तपस्या की वृद्धि हुआ करती है ॥१२॥ महर्षियो का ऐसा कहना है कि हरि का पूजन करने वाले चाहे जिस प्रकार स उनका अर्चन करने वाले चाहे जिस प्रकार से उनका अर्चन करने वाले हो उनको अवश्य ही परम पद की प्राप्ति हो जाया करती है ॥१३॥ जो परम श्रद्धा से समुत्त होते हैं वे मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन को व्रत धारण कर जलशायी भगवान का भली-भाति पूजन किया करते हैं ॥१४॥

स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो दन्तधावनापूर्वकम् ।

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यपूर्वकैः ॥१५

वाग्यतो भक्तिभावेन मुनिश्रेष्ठार्चयेद्धरिम् ।

केशवाय नमस्तुभ्यमिति विष्णुं च पूजयेत् ॥१६

अष्टोत्तरशतं हुत्वा वह्नो घृततिलाहुतीः ।

रात्रौ जागरणं कुर्याच्छालग्रामसमीपतः ॥१७

स्नापयेत्प्रस्थपयसा नारायणमनामयम् ।

गोतैर्वाद्यैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यैर्भोज्यैश्च केशवम् ॥१८

त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या महालक्ष्म्या समन्वितम् ।

पुनः कल्पे समुत्थाय कृत्वा कर्मा यथोचितम् ॥१९

पूर्ववत्पूजयेद्देव वाग्यतो नियतः शुचिः ।

पायसा घृतसमिश्रं नालिकेरफनान्वितम् ॥२०

नारायणपरो भूत्वा स्वय भुञ्जोत वाग्यत ।
 इति य कुरुते भक्त्या केशवार्चनमुत्तमम् ॥२३॥
 स पौण्डरीकयज्ञस्य फलमष्टगुण लभेत् ।
 पौषमास सिते पक्षे द्वादश्या समुपापित ॥२४॥
 नमो नारायणायेति पूजयेत्प्रयतो हरिम् ।
 पयसा स्नाप्य नैवेद्य पायस च समर्पयेत् ॥२५॥
 रात्रौ जागरण कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्पर ।
 धूपैर्दोषैश्च नैवेद्यगन्धै पुष्पैर्मनोरमै ॥२६॥
 तृणैश्च गीतवाद्याद्यै स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्धरिम् ।
 कृशरान्न च विप्राय दद्यात्सघृतदक्षिणम् ॥२७॥
 सर्वात्मा सर्वलोकेश सर्वव्यापी सनातन ।
 नारायण प्रसन्न स्यात्कृशरान्नप्रदानत ॥२८॥
 मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा वै दानमुत्तमम् ।
 द्विजाश्च भोजेच्छक्त्या स्वयमद्यात्सवान्धव ॥२९॥

इसके अनन्तर अपनी वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए
 नारायण का ध्यान रखकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करना चाहिये । इस
 विधान के अनुसार जो भी कोई भक्तिभाव पूर्वक भगवान् केशव का
 पूजन किया करता है ॥२३॥ वह मनुष्य पौण्डरीक यज्ञ का अष्टगुना
 पुष्प-फल प्राप्त किया करता है । फिर पौष शुक्ला द्वादशी के दिन भी
 अन्न रक्थे तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर 'नमो नारायण'
 इस मन्त्र का उच्चारण कर श्री हरि का पूजन करना चाहिये । दूध
 से भगवान् का स्नान कराकर फिर नैवेद्य और क्षीर का भाग लगाना
 चाहिये ॥२४॥२५॥ रात्रि के समय में जागरण करे तथा तीनों कालों
 में भगवान् का सविधि अर्चन करना चाहिये । धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प,
 गन्ध, घसादि तृण, गान वाद्य और स्तौत्र आदि से श्री हरि का पूजन
 करे । 'सर्वात्मा, सब लोकेश सर्वव्यापी सनातन । नारायण प्रसन्न

स्यात्कृशरान्न प्रदानतः' अर्थात् सर्वव्यापी, समस्त लोको के स्वामी, सब मे अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले सनातन भगवान नारायण इस खिचड़ी के दान में प्रसन्नता प्राप्त करें, इस मन्त्र के द्वारा घृत तथा दक्षिणा द्रव्य रखकर ब्राह्मण को दान देवे । इस विधि से ब्राह्मण को श्रेष्ठ दान देकर फिर अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों को भोजन करावे और अपने बन्धुबान्धवों के सहित स्वयं भी भोजन करे ॥२६-२६॥

एव सपूजयेद्भक्त्या देव नारायण प्रभुम् ।
 अग्निष्टोमाष्टकफल स सपूर्णमवाप्नुयात् ॥३०
 माघस्य शुक्लद्वादश्या पूर्ववत्समुपोषितः ।
 नमस्ते माघवायेति हुत्वाष्टौ च धृताहुतीः ॥३१
 पूर्वमानेन पयसा स्नापयेन्माघव तदा ।
 पुष्पगन्धाक्षतैरर्चेत्माघधानेन चेतसा ॥३२
 रात्रौ जागरण कुर्यात्पूर्ववद्भक्तिसयुत ।
 कल्पकर्म च निर्वृत्य माघव पुनरर्चयेत् ॥३३
 प्रस्य तिलाना विप्राय दद्याद्द्वि मन्त्रपूर्वकम् ।
 सदक्षिण स वस्य च सर्वपापविमुक्तये ॥३४
 माघव सर्वाभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रद ।
 तिलदानेन महता मर्वान्कामान्प्रयच्छन् ॥३५

इस विधि से भगवान् नारायण का अग्निपूर्वक अर्चन करने में आठ अग्निष्टोम यज्ञों का पुष्प-फल मिला करना है । भगवान् हममें परम प्रसन्न होते हैं । इसी भाँति माघ मास की द्वादशी तिथि के दिन भी दान रखना चाहिये । इस दिन 'नमस्ते माघवाय इमं मन्त्रं वा उच्चारण करके घृत की आठ आहुतियों अग्नि में देनी चाहिए । एवं प्रस्य दुग्ध मे भगवान् माघव की प्रतिमा को स्नान करना चाहिये और परम ममाहित वित्त मे गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा भगवान् का

पूजन करना चाहिये ॥३०-३२॥ पूर्ववत् भक्तिभाव पूर्वक रात्रि मे जागरण करे और प्रात काल का सर्व कर्म करके भगवान माधव का पुन. पूजन करना चाहिए ॥३३॥ इसके उपरान्त मन्त्र पढ कर एक प्रस्थ तिल तथा दक्षिणा एव वस्त्र रख कर ब्राह्मण को दान देना चाहिये । ऐसा करने से ममस्त पापो का विनाश होजाया करता है ॥३४॥ इसका मन्त्र यह है—'माधव सर्वभूतात्मा सर्व कर्म फल-प्रद । तिल दानेन महता सर्वान् कामान् प्रयच्छतु—अर्थात् समस्त प्राणियो की आत्मा, सब कर्मों का फल प्रदान करने वाले भगवान माधव इन तिलो के दान से समस्त मनोरथों को पूर्ण करें ॥३५

मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा भक्तिसमन्वित ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या सस्मरन्माधव प्रभुम् ॥३६

एव य कुरुते भक्त्या तिलदाने व्रत मुने ।

वाजपेयशतस्यासौ सपूर्ण फलमाप्नुयात् ॥३७

फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्या तमुपोषित ।

गोविन्दाय नमस्तुभ्यमिति सपूजयेद् व्रती ॥३८

अष्टोत्तरशत हुत्वा घृतमिश्रितिलाहुती ।

पूर्वमानेन पयसा गोविन्द स्नापयेच्छु चि ॥३९

रात्री जागरण कुर्यात्त्रिकाल पूजयेत्तथा ।

प्रात कृत्य समाप्याथ गोविन्द पूजयेत्पुन ॥४०

ग्रीह्याढक च विप्राय दद्याद्द्वस्तन सदक्षिणम् ।

नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥४१

अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।

एव कृत्वा व्रत सम्यक् सर्गपापविर्वाजित ॥४२

गोमेघमखज पुण्य सम्पूर्ण लभते नरः ।

चैत्रमासेमिते पक्षे द्वादश्या तमुपोषित ॥४३

इम मन्त्र से ब्राह्मण को भक्तिभाव के साथ दान देकर भगवान

माधव का हृदय मे स्मरण करता हुआ अन्य ब्राह्मण को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥३६॥ हे मुनिवर ! इस विधि से भक्ति की भावना से दिलो को दान मे प्रदान किया करता है उसको एक सौ वाजपेय यज्ञो के करने का फल मित्त करता है ॥३७॥ व्रत करने वाले पुरुष को फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन पूर्व की ही भाँति व्रत रखकर 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके भगवान का पूजन करना चाहिये तथा घृत मिश्रित तिनी से एकसौ अःठ आहुतिया देकर एक प्रम्य दुग्ध से पवित्रता के साथ श्री गोविन्द को स्नान करावे ॥३८॥३९॥ व्रत के दिन मे रात्रि मे जागरण करे, तीनों कालो मे भगवान का पूजन करे और प्रातः-कालीन सम्पूर्ण कृत्य समाप्त करके फिर श्री गोविन्द भगवान का यजन करना चाहिये ॥४०॥ 'नमो गोविन्द सर्वेण गोपिका जन वल्लभ । अनेन धान्य दानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।' अर्थात् हे गोपीजनो के पद्म प्रिय गोविन्द ! आप सबके ईश है । आपकी सेवा मे भेरा प्रणाम समर्पित है । इस धान्य के दान से आप पृथ पर प्रसन्न होइये । इस रीति से प्रार्थना करने पर चार सेर (एक जाटक) धान, वस्त्र और दक्षिणा ब्राह्मणो को दान देवे । इस विधि से व्रत कराने पर मनुष्य सब पापो मे मुक्त होकर गोमेध यज्ञके पूरे फल को प्राप्त किया करना है ॥४१ - ४३॥

नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यमिति पूर्ववदच्येत् ।
 क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पूर्वमानेन शक्तित ॥४४
 तथैव स्नापयेद्विप्रघृतप्रम्येन सादरम् ।
 कृत्वा जागरण रात्री पूजयेत्पूर्ववद्वती ॥४५
 तत कल्पे ममुत्थाय प्रात कृत्य समाप्य च ।
 अष्टोत्तरशत हुत्वा मध्वाज्यतिलमिश्रितम् ॥४६
 सदक्षिण च विप्राय दद्याद्वै तण्डुलाढकम् ।

प्राणरूपी महाविष्णु प्राणद सर्ववल्लभ ॥४७

तण्डुलाढकदानेन प्रीयता मे जनार्दन ।

एव कृत्वा नरो भक्त्या सर्वपापविवर्जितः ॥४८

अत्यग्निष्टोमयज्ञस्य फलमष्टगुण लभेत् ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यामुपोष्य मधुसूदनम् ॥४९

द्रोणक्षीरेण देवेश स्नापयेद्भक्ति सायुत ।

जागर तत्र कर्त्तव्य त्रिकालार्चनसायुतम् ॥५०

इसी रीति से चैन शुक्ला द्वादशी के दिन व्रत करना चाहिये । इस दिन पे 'नमोऽस्तुऽविष्णवे'—इस मन्त्र से पूर्व के समान ही भगवान का पूजाचर्न करे तथा एक मेर दुग्ध से भगवान विष्णु का स्नान करावे ॥४४॥ इसके अनन्तर एक सेर घृत से स्नान कराना चाहिये । व्रती पुरुष को पूर्वा की भाँति ही रात्रि जागरण करके पुन पूजन करना चाहिय ॥४५॥ प्रातः काल मे उठ कर सम्पूर्ण कृत्यो से निवृत्त होकर मधु, घृत और विला से निमित्त शाकत्य से एकसौ आठ अग्नि मे आहुतिया देनी चाहिये ॥४६॥ प्राण रूपी महा विष्णु प्राणद सर्व वल्लभ । तण्डुलाढक दानेन प्रीयता मे जनार्दन' अर्थात् जो भगवान् विष्णु प्राणो के स्वरूप वाले हैं, प्राणो का बल का प्रदान करने वाले हैं और सभी के परम प्रिय हैं वे भगवान जनार्दन मेरे इस चार सेर चावलो के दान से प्रसन्न होंगे, भक्तिभाव से ममन्वित होकर ऐसी विधि करन पर मनुष्य समस्त पापो से मुक्त होकर परम विशुद्ध होजाया करता है ॥४७॥४८॥ वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके अष्टगुण पुण्य-फल को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । इसी भाँति वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन भी व्रत रख और परम भक्ति की भावना मे मधुसूदन भगवान की प्रतिमा का एन द्रोण (३२ मेर) दूध मे अग्निवेश करा दे तथा तीना समय मे शविधि पूजन कर और रात्रि मे जागरण भी पूर्ववत् करना चाहिय ॥४९॥५०

नमस्ते मधुहन्त्रे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम् ।
 अष्टोत्तरशत प्राच्यविधिवन्मधुसूदनम् ॥५१
 विपापो ह्यश्वमेधानामष्टाना फलमाप्नुयात् ।
 ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यापुपवासकृत् ॥५२
 क्षीरेणाढकमानेन स्नापयेद्यस्त्रिविक्रमम् ।
 नमस्त्रिविक्रमायेति पूजयेद्भक्तिसायुत ॥५३
 जुहुयात्पायसेर्नैव ह्यष्टोत्तरशताहुती ।
 कृत्वा जागरण रात्रौ पुन पूजा प्रकल्पयेत् ॥५४
 अपूपविशतिं दत्त्वा ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ।
 देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥५५
 उपायन च सगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव ।
 ब्राह्मणान्भौजयेच्छक्त्या स्वय भुञ्जीत वाग्यत ॥५६

नमस्ते मधुहन्त्रे इस मन्त्र का उच्चारण करके धी की
 अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में अर्पित करे । इस तरह अपनी शक्ति
 के अनुसार शास्त्रों में वर्णित विधि विधान से भगवान का अर्चन करने
 से सब पापों से छुटकारा प्राप्त कर ब्रती मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञों
 के समाचरण का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥ ५१।५२ ॥
 इसी प्रकार से ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन में उपवास करने वाला
 पुरुष चार मेर दूध में त्रिविक्रम प्रभु का स्नान करावे और 'नभ-
 स्त्रिविक्रमाय' - इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव पूर्वक भगवान त्रिवि-
 क्रम का पूजन करे ॥५३॥ गोदुग्ध में पायस बना कर उसकी एकमो
 आठ आहुतियाँ देवे । रात्रि जागरण और पूजन करना चाहिये
 ॥५४॥ इसके अनन्तर बीस गुलगुले और दक्षिणा 'देव देव जग-
 न्नाथ प्रसीद परमेश्वर । उपायन च सगृह्य ममाभीष्ट प्रदोभव'
 अर्थात् हे देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी ! आप मुझ पर प्रसन्न
 होइए । हे परमात्मन् ! आप मेरी इस तुच्छ भेट को स्वीकार करके

मेरी मनोवाछिन वस्तु का दान मुझको कृपा कर प्रदान कीजिये । इसका उच्चारण करे और ब्राह्मण को दान देवे । फिर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी मौन रहकर भोजन करे ॥५५॥५६॥

एव यः कुस्ते विप्र व्रत त्रैविक्रम परम् ।
 सोऽष्टाना नरमेघाना विपाप फलमाप्नुयात् ॥५७
 आपाढशुक्लद्वादश्यामुपवासी जितेन्द्रियः ।
 वामन पूर्वमानेन स्नापयेत्पयसा व्रती ॥५८
 नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याष्टोत्तर शतम् ।
 हुत्वा च जागर कुर्याद्द्वामन चार्चयेत्पुनः ॥५९
 सदक्षिण च दध्यन्न नालिकेरफलान्वितम् ।
 भक्त्या प्रदद्याद्विप्राय वामनार्चनशीलिने ॥६०
 वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थ वामनः सदा ।
 वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः ॥६१
 अनेन दत्त्वा दध्यन्न शक्तितो भोजयेद् द्विजान् ।
 कृत्वैवमग्निष्टोमाना शतस्य फलमाप्नुयात् ॥६२
 श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यानुपवासकृत् ।
 क्षीरेण मधुमिश्रेण स्नापयेच्छीघर व्रती ॥६३

हे विप्र । जो कोई भी मनुष्य इस विधि-विधान में इस परम श्रेष्ठ त्रिविक्रम व्रत को किया करता है उस मानव के समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं और वह फिर आठ नरमेघ यज्ञों के द्वारा होने वाले पुण्यों को प्राप्त कर लिया करता है ॥५७॥ इसी रीति से आपाढ मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी का भी व्रतोपवास का विधान है । जो इस दिन उपवास किया करता है उसको जितेन्द्रिय रहकर प्रथमोक्त ताल के गमान ही दुग्ध में वामन देव प्रभु का अभिषेचन करावे ॥५८॥ फिर दध और घी की—'नमस्ते वामनाय' इग मन्त्र में

अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिये । रात्रि में जागरण तथा वामनदेव का यजन करे और इसके पश्चात् उस उपवास एव पूजन करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह किसी सुयोग्य ब्राह्मण को 'वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यम्यो वामनो सदा वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमोनम.' इसका अर्थ यह है कि वामन भगवान बुद्धिदाता हैं और इन सब द्रव्यों में वामन देव विराजमान हैं । वामन देव के द्वारा बुद्धि देने से ही मैं इस समय में हवन कर रहा हूँ । इस जगत में वामन देव ही उद्धार करने वाले हैं । ऐसे वामन देव भगवान की सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है । इस मन्त्र से दधि, अन्न और नारियल तथा दक्षिणा का दान करे ॥६०॥६१॥ इसी मन्त्र के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार ही ब्राह्मणों को दधि और अन्न से भोजन कराना चाहिये । ऐसी रीति इस व्रत दान और पूजन से एक ही अग्निष्टोम यज्ञों के यजन करने का फल प्राप्त हुआ करता है ॥६२॥ इस प्रकार से श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन का भी उपवास होता है । इस दिन व्रती व्यक्तियों को चाहिये कि दूध और मधु से भगवान श्रीधर प्रभु को स्नान करावे ॥६३

नमोऽस्तु श्रीधायेति गन्धाद्यै पूजयेत्क्रमात् ।
जुहुयात्पृषदाज्येन शतमष्टोत्तर मुने ॥६४
कृत्वा च जागर राश्री पुन पूजा प्रकल्पयेत् ।
दातव्य चैव विप्राय क्षीराढकमनुत्तमम् ॥६५
दक्षिणा च सवस्त्रा वै प्रदद्याद्दे मकुण्डले ।
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥६६
क्षीराविश्रायिन्देवेश रमाकान्त जगत्पते ।
क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रद ॥६७
सुखप्रदत्वाद्दिप्राश्च भोजयेच्छक्तिव्रती ।
एव कृत्वाश्वमेधाना सहस्रम्य फल लभेत् ॥६८

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्या समुपोषितः ।
 स्नापयेद् द्रोणपयसा हृषीकेश जगद्गुरुम् ॥६६॥
 हृषीकेश नमस्तुभ्यमिति सपूज्येन्नर ।
 चरुणा मधुयुक्तेन शतमष्टोत्तर हुनेत् ॥७०॥

‘तमोऽस्तु श्रीधराय’—इस मन्त्र का मुख से उच्चारण करते हुये गन्धाक्षत पुष्पादि पूजन के औपचारिक द्रव्यों से भगवान का पूजन करना चाहिये । फिर हे मुनिवर । फिर पृषदाज्य दधि घृत मिश्रित हव्य मे एकसौ आठ आहुतियाँ अग्नि मे देवे ॥६४॥ रात्रि मे यथा विधि जागरण करके पुन भगवान् का अर्चन करे और इस मन्त्र को पढता हुआ हे विप्र । फिर चार सेर उत्तम दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण के कुण्डल तथा दक्षिणा विसी मुयाग्य सत्पात्र ब्राह्मण को दान मे देना चाहिए । इससे मनुष्यों की सम्पूर्ण मनोकामनाये सिद्ध हो जाया करती है ॥६५॥६६॥ ‘क्षीरान्धि शाधिन् देवेश रमाकान्त जगत्पते । क्षीर दानेन सप्रीतो भव सर्वत्सखद्रद’ । अर्थात् हे क्षीर सागर मे मुख शयन करने वाले, भगवती लक्ष्मी के पति तथा देवो के ईश जगत्पते । आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस क्षीर के दान से परम प्रसन्न होकर मुझे सभी प्रकार के सुखो को प्रदान कीजिए । इसका उपरान्त व्रती को ब्रह्मभोज कराना चाहिये क्योंकि विप्रो को भोजन कराना परम सुखो का देने वाला हुआ करता है । ऐसी विधि से इस व्रत को साङ्ग सम्पादित करने पर एक सहस्र अश्वमेधो का फल मिला करता है ॥ ६७॥६८ ॥ इसी भाँति भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के व्रत का भी विधान है । इस दिन उपवास करके ३२ सेर दूध से भगवान जगत् के गुरु हृषीकेश का स्नान कराना चाहिए ॥६६॥ ‘हृषीकेश नमस्तुभ्यम्’ इस मन्त्र का पढकर भगवान का अर्चन करे तथा मधु मिश्रित चर की अष्टोत्तर गत आहुतियाँ दनी चाहिये ॥७०॥

जागरादीनि निर्वर्त्य दद्यादात्मविदे तत ।

सार्धाढिकं च गोधूमान्दक्षिणां हेम शक्तितः ॥७१
 हृषीकेश नमस्तुभ्य सर्वलोकैकहेतवे ।
 मह्यं सर्वसुख देहि गोधूमस्य प्रदानतः ॥७२
 भोजयेद्ब्राह्मणाशक्त्या स्वय चाशनीत वाग्यतः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्ममेघफल लभेत् ॥७३
 आश्विने मासि शुक्लाया द्वादश्या समुपोषितः ।
 पद्मनाभ च पयसा स्यापयेद्भक्तितः शुचिः ॥७४
 नमस्ते पद्मनाभाय होम कुर्यात्स्वशक्ति ।
 तिलव्रीहिवाज्यैश्च पूजयेच्च विधानतः ॥७५
 जागर निशि निर्वर्त्य पुन पूजा समाचरेत् ।
 दद्याद्विप्राय कुडव मधुनस्तु सदक्षिणम् ॥७६
 पद्मनाभ नमस्तुभ्य सर्वलोकपितामह ।
 मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्व सुखप्रदः ॥७७

इसके अनन्तर पूर्ववत् जागरण कर पुन पूजन करे । उम समस्त
 कृत्य के अवसान मे किसी आत्मवेसा ब्राह्मण को ६ सेर गेहूँ तथा
 शक्ति के अनुरूप द्रव्य दक्षिणा अर्पित करे । दान करने के समय मे—
 'हृषीकेश नमस्तुभ्या सर्वलोकैक हेतवे । मह्यं सर्व सुख देहि गोधूमस्य
 प्रदानतः ॥ जय्या हे हृषीकेश । आपकी सेवा मे सादर प्रणाम है ।
 आप ही समस्त लोको के एक मात्र कारण हैं । अब इन गेहूँओ के दान
 मे मुझे सभी प्रकार के सुखो को प्रदान कीजिए ॥७१॥७२॥ इसके
 उपरान्त अथाशक्ति ब्रह्मभोज करावे और स्वय भी मौन रहकर भोजन
 करे । ऐसा विधान करने से मनुष्य समस्त वृत्त महा पापो से मुक्त
 होकर ब्रह्ममेघ यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥ ७३ ॥
 इसी रीति से आश्विन मास की शुक्ला द्वादशी के दिन उपवाम रख
 कर परम पवित्र होता हुआ भक्ति के सहित दूध के द्वारा यज्ञनाभ
 भगवान का स्नान कराना चाहिए ॥७४॥ "नमस्ते पद्मनाभाय"—उम

मन्त्र का उच्चारण करके तिल, धान जो और घृत की अपनी शक्ति के अनुसार अग्नि में आहुतिया देवे और शास्त्र वर्णित विधि से ही पूजन करना चाहिए ॥ ७५ ॥ रात्रि में भी सविधि जागरण करके पुन रात्रि में भी पूजन करना चाहिए तथा एक कुडव (एक पाव) शहद और द्रव्य दक्षिणा किसी सत्पात्र विप्र को—पद्मनाभ नमुस्तभ्य सब लोक पितामह ! मधु दानेन सुप्रीतो भव मव सुखप्रद' अर्थात् हे समस्त लोको की रचना करने वाले पितामह ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । आप इस मधु के दान से परम सन्तुष्ट होकर मुझे सब सुखो को दीजिए । इसका उच्चारण कर दान देना चाहिये ॥७७

एव य कुरुते भक्त्या पद्मानभव्रत सुधी ।
 ब्रह्ममेधसहस्रस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥७८
 द्वादश्या कार्तिके शुक्ले उपवामी जितेन्द्रिय ।
 क्षीरेणावढकमानेन दध्ना वाज्येन तावता ॥७९
 नमो दामोदरायेति स्नापयेद्भक्तिभावन ।
 अष्टोत्तरशत हुत्वा मध्वाज्याक्ततिलाहुता ॥८०
 जागर नियत कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्पर ।
 प्रात सपूजयद्द व पद्मपुष्पमनारम ॥८१
 पुनरष्टोत्तरशत जुहुयात्सघृतेस्तिले ।
 पञ्चभक्ष्ययुत चान्न दद्याद्विप्राय भक्तित ॥८२
 दामादर जगन्नाथ सबकारणवारण ।
 ग्राहि मा कृपया देव शरणागतपालव ॥८३
 अनेन दत्त्वा दान च श्रोत्रियाय कुटुम्बिन ।
 दक्षिणा च यथा शक्त्या ग्राह्यणारचापि भाजयेत् ॥८४

जा बुद्धिमान पुत्रप इस रीति में भक्ति भाव पूर्वक इस पद्म नाम भगवान् व वा का शिवा करता है उमका एक महान् अर्थ-

भेद्य यज्ञो के यजन करने का पुष्य-फल मिला करता है ॥७८॥ इसी रीति से कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी का फल हाता है । इस दिन अपनी सब इन्द्रियो को पूर्ण नियन्त्रण में रख कर उपवास करना चाहिये । व्रत में चार सेर दूध, दही अथवा घृत से 'नमो दामोदराय' इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव से समन्वित होकर भगवान का स्नान करना चाहिये तथा पुनः घृत, मधु मिश्रित तिलो के सकल्य से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में डाल कर होम करे । प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालों में भगवान का अर्चन करे । रात्रि में जागरण करे । प्रातः काल में कमल के परम सुन्दर पुष्पो से भगवान का पूजन करना चाहिए और फिर घृत मिश्रित तिलो की एक सौ आठ आहुतियाँ देवे । "दामोदर जगन्नाथ सर्व कारण । प्राहिमा कृपया देव शरणागत पालक अर्थात् हे दामोदर । हे जगत् के नाथ । आप सब कारणों के कारण हैं । हे देव । कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए । आप भक्तोंका पालन करने वाले हैं । इस मन्त्र से ब्राह्मणों को भक्ति भाव के साथ पाँच प्रकार के व्यजनों का दान करे ॥७९—८३॥ इस मन्त्र के द्वारा किसी कुटुम्ब वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान एवं द्रव्य दक्षिणा देकर यथा शक्ति ब्रह्मभोज करावे ॥८४

एव कृत्वा व्रत सम्यगश्नीयाद्वन्धुभिः सह ।
 अश्वमेघसहस्राणा द्विगुण फलमश्नुते ॥८५
 एव कुर्याद्विती यस्तु द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।
 सवत्सर मुनिश्रेष्ठ स याति परम पदम् ॥८६
 एकमासे द्विमासे वा य कुर्याद्भक्तितत्परः ।
 तत्तत्फलमवाप्नोति प्राप्नोति च हरेः पदम् ॥८७
 पूर्ण सवत्सर कृत्वा कुर्यादुद्यापन व्रती ।
 मार्गशीर्षासिते पक्षे द्वादश्या च मुनीश्वर ॥८८
 स्नात्वा प्रातर्यथाचार दन्तधावनपूर्वकम् ।

शुक्लमाल्याम्बरधर. शुक्लगन्धानुलेपन ॥८६
 मण्डप कारयेद्दिव्य चतुरस्रं सुशोभनम् ।
 घण्टाचामरसयुक्त किङ्किणीरवशोभितम् ॥८७
 अलकृत पुष्पमाल्यैर्वितानध्वजराजितम् ।
 छादित शुक्लवस्त्रेण दीपमालाविभूषितम् ॥८८

इस विधि से व्रत पूर्ण करके फिर अपने बान्धवों के साथ
 बैठ कर स्वयं भी भोजन करना चाहिए । इस उपवास को करके
 दो सहस्र अश्वमेध यज्ञों के यजन का पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है
 हे मुनिवर ! जो कोई भी मनुष्य इस विधान से पूरे वर्ष भर के उप-
 वास किया करता है उस द्वादशी के व्रती को अन्त में परमपद की
 प्राप्ति होती है ॥८६॥ जो कोई मनुष्य भक्ति भाव पूर्वक एक या
 दो मास भी इस व्रत का अनुष्ठान करता है उसको उन मासों का
 पुण्य फल प्राप्त होजाया करता है और अन्त में विष्णु लोक की प्राप्ति
 हुआ करती है ॥८७॥ यदि पूरे वर्ष तक सभी मासों में यह व्रत पूर्ण
 करे तो उस उपवास करने वाले पुरुष का इस व्रत का उद्यापन भी
 अवश्य ही करना चाहिये । उद्यापन का विधान यह है कि मार्गशीर्ष
 मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन प्रातः काल के
 समय में दौनुन करके स्नानादि नित्य कृत्य समाप्त करे इसके
 पश्चात् श्वेत एव सुगन्धित पुष्पों की माला बनवा कर उसे धारण
 करे और श्वेत चन्दन का लेपन करे । एक चौकोर परम दिव्य मण्डप
 की रचना कर उसमें सब ओर घण्टे, चमर और घुँघरू लटकाने
 चाहिए ॥८८—९०॥ इस सुन्दर मण्डपको भली भाँति पुष्पों की
 मालायें लटका कर विभूषित करे । बीच में चँदोवा, उस पर ध्वजा
 और चारों ओर शुक्ल वस्त्र की सुन्दर झालर लटकानी चाहिये
 तथा दीपमालाओं से उसे दीप्ति युक्त करे ॥९१
 तन्मध्ये सर्वतोभद्र कुर्यात्सम्यगलकृतम् ।

तस्यापरि न्यमेत्तुम्भान्द्वादगाम्पुप्रपूरितान् ॥६२
 एवेन शुक्लवस्त्रेण सम्यक्शोधितेन च ।
 सर्वानाच्छादयेत्तुम्भान्पञ्चरत्नममन्वितान् ॥६३
 नक्ष्मीनारायण देव कारयेद्भक्तिमान्प्रती ।
 हेम्ना वा रजनेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ॥६४
 स्यापयेत्प्रतिमा ता च कुम्भापरि मुमयमी ।
 तन्मूल्य वा द्विजश्रेष्ठ काञ्चन च स्वशक्तित ॥६५
 सर्वश्रतेषु मतिमान्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
 यदि कुर्यात्क्षय यान्ति तस्यायुद्धं नसापद ॥६६
 अनन्तशायिन देव नारायणमनामयम् ।
 पञ्चानृतेन प्रथम स्नापयेद्भक्तिसायुत ॥६७
 नामभि केशवाक्षरं ह्युपचारान्प्रबल्पयेत् ।
 राश्री जागरण कुर्यात्पुराणश्रवणादिभि ॥६८

उम मण्डित मजुल मण्डप के मध्य म सुन्दर सर्वतोभद्र
 मण्डप की रचना करवावे । उसके ऊपर जल स भरे हुए बारह घट
 रखे ॥६२॥ भनी भानि स्वच्छ शुक्ल वस्त्र से पञ्चरत्न जिनमे पडे
 हुए है उन घटो को ढाँक देना चाहिए ॥६३॥ हे द्विजवर्य । भक्त व्रत
 धारी पुरुष को चाहिए कि सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्र की श्री लक्ष्मी
 नारायण भगवान् की प्रतिमा बनवावे ॥६४॥ उस समयमशील उपवास
 करने वाले पुरुष के द्वारा उस सुन्दर भगवान् की प्रतिमा की स्थापना
 घट के ऊपर करनी चाहिए । यदि किसी विशेष कारणवश भगवान्
 की मूर्ति का निर्माण न कराया जा सके तो उतने ही मूल्य वा अथवा
 वित्तशाठ्य से रहित होकर अपनी शक्ति क अनुसार वहाँ पर सुवर्ण
 रख देना चाहिए ॥६५॥ बुद्धिमान् पुरुष को अत्यन्त उदारता से
 भक्ति पूर्वक इस कर्म का समाचरण करना चाहिए । इन भगवान्
 के प्रीति के लिये किए हुए व्रतो म कजूमी कभी न करे । यदि वृषणता

से काम करता है तो भगवान् असन्तुष्ट हो जाया करती हैं ॥ ६६ ॥
 सर्व प्रथम अनन्तशायी लक्ष्मीनारायण प्रभु का भक्ति के सहित पंच-
 मृत से स्नान अर्थात् अभिषेक कराना चाहिए ॥६७॥ फिर केशव
 आदि भगवान् के परम पावन एवं शुभ नामों से भगवान् की सेवा
 करते हुए तथा पवित्र पुराणादि की कथा का श्रवण करते हुये रात्रि
 में जागरण करना चाहिये ॥६८॥

जितन्द्रो भवेत्सम्यक्सोपवासो जितेन्द्रियः ।
 त्रिकालमर्चयेद्देव यथाविभवविस्तरम् ॥६९॥
 ततः प्रातः ससुत्याय प्रायः कृत्य समाप्य च ।
 तिलहोमान्व्याहृतिभिः सहस्रं कारयेद्द्विजैः ॥७०॥
 ततः संपूजयेद्देव गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
 देवस्य पुरतः कुर्यात्पुराणश्रवणं ततः ॥७१॥
 दद्याद् द्वादशविप्रेभ्यो दध्यन्नं पायसं तथा ।
 अपूर्वैर्दशभिर्भुक्तं सघृतं च सदक्षिणम् ॥७२॥
 देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह ।
 गृहाणोपायनं कृष्णं सर्वाभीष्टप्रदो भव ॥७३॥
 अनेनोपायनं दत्त्वा प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः स्थितः ।
 आधाय जानुनी भूमौ विनयावनतो व्रती ॥७४॥
 नमो नमस्ते सुरराजराज नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास ।
 कुरुष्व संपूर्णफलं ममाद्य नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय ॥७५॥

न्द्रो न कर उसको जीत लेवे । उपवास करते हुए अपनी
 समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देकर अपने वश में ही
 रखे । अपने वैभव के अनुरूप ही तीनों समयों में भगवान् का अर्चन
 करना चाहिए । इसके अनन्तर जागरण समाप्त कर प्रातः काल में सब
 कृत्य करके ब्राह्मणों के द्वारा व्याहृतियों से अग्नि में एक सहस्र आहु-
 तिया डलवानी चाहिए । वे व्याहृतियाँ ये हैं—“ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ

स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सरयम् ॥६६-१००॥ इसके अन-
न्तर सुषन्धित पुष्प और गन्धाऽनादिके द्वारा भगवान् का अर्चन
करे । इसके उपरान्त भगवान् ने समीप में ही स्थित होकर पुराणों का
श्रवण करे ॥१०१॥ इसके पश्चात् दश विप्रों को दधि, अन्न, क्षीर,
दश-दश गुणगुने, घृत और द्रव्य दक्षिणा देकर "देवदेव जगन्नाथ भक्ता-
नुग्रह निग्रह । गृहाणो पायन वृज्ज सर्वाभीष्ट प्रदोभव ।" अर्थात् हे देवों
के देव ! अपने भक्तजनों पर अनुकम्पा करने के ही लिये शरीर धारण
करने वाले अर्थात् अवतार लेने वाले । जगत् के स्वामिन् हे वृष्णि !
मेरे द्वारा समर्पित इस भेंट को अङ्गीकार करके मुझे भरी सभों-
वाछिन वस्तुएँ प्रदान कीजिए । इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए ॥१०२-
१०३॥ इस विधि से उपयुक्त मन्त्र का पाठ करते हुए भेंट समर्पित
करे और पीछे घृतधारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपने दोनों घुटने
भूमि पर टेक कर हाथ जोड़ते हुए सविनय श्री भगवान् से प्रार्थना करे
॥ १०४॥ प्रार्थना इस भाँति है—“नमोनमरते सुरराज राजन्मोस्तुते
देव जगन्निवास । कुरुष्व सम्पूर्णं फल ममाय नमोस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय”
अर्थात् हे देवों के देवों के भी राजा ! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार
प्रणाम निवेदित है । हे जगत् के निवास ! हे देव आपको मेरा अनेकशः
प्रणाम है । आप अब मुझे सम्पूर्ण फल प्रदान कीजिये ॥ १०५ ॥

इति सप्रार्थयेद्विप्रान्देव च पुरुषोत्तमम् ।

दद्यादर्घ्यं च देवाय महालक्ष्मीयुताय वै ॥१०६

लक्ष्मीपते नमस्तुभ्य क्षीरार्णवनिवासिने ।

अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च त्रिहित. प्रमो ॥१०७

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।

न्यून संपूर्णता यति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१०८

इति विज्ञाप्य देवेश तत्सर्वं सयमो व्रते ।

प्रतिमा दक्षिणायुक्तामाचार्याय निवेदयेत् ॥१०९

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।

भुञ्जीत वाग्यतः पश्चात्स्वयं बधुजनैर्वृतः ॥११०

आसायं शृणुयाद्विष्णोः कथां विद्वज्जनैः सह ।

इत्येव कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम् ॥१११

सर्वान्कामान्स आप्नोति परत्रेह च नारद ।

त्रिसप्तकुलसमुक्तः सर्वपापविवर्जितः ।

प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥११२

य इदं शृणुयाद्विप्र द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।

वाचयेद्वापि स नरो वाजपेयफल लभेत् ॥११३

इस रीति से श्री भगवान् से तथा तत्कालीन समुपस्थित ब्राह्मणों से प्रार्थना करनी चाहिए । फिर देवी महालक्ष्मी और भगवान् श्री नारायण की सेवा में—“ लक्ष्मीपते नमस्तुभ्य क्षीराण्वनिवासिने । अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो ।” अर्थात् हे क्षीरसागर में निवास करने वाले हे प्रभो ! हे लक्ष्मीदेवी के स्वामिन् ! आपको मेरा प्रणाम है । हे प्रभो ! आप अपनी प्रियतमा लक्ष्मी माता के सहित मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये । इस मन्त्र उच्चारण करता हुआ भगवान् को अर्घ्य अर्पित करना चाहिए ॥ १०६, १०७ ॥ इसके पश्चात् समयशील व्रतधारी पुरुष को देवेश्वर की सेवा में प्रार्थना करनी चाहिए । “यस्य स्मृत्या च नामोत्तमा तपोयज्ञ क्रियादिषु । न्यून सम्पूर्णता याति सद्यो बन्दे तमच्युतम्” अर्थात् जिस भगवान् का स्मरण करने से अथवा जिनके नाम लेने से समस्त तप-यज्ञ तथा सत्कर्मों की न्यूनता भी पूर्ण हो जाया करती है उन्हीं अच्युत भगवान् की सेवा में मैं अपना समादर सहित प्रणाम अर्पित करता हूँ । इसके अनन्तर वह सम्पूर्ण सामग्री और प्रतिमा तथा दक्षिणा आचार्य की सेवा में भेंट कर देनी चाहिये ॥ १०८, १०९ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मभोज कराना चाहिए और अपनी शक्ति अनुरूप उन विप्रों को दक्षिणा देनी चाहिए । तथा

पीछे मौन व्रत में रहकर वा-धवों के साथ बैठकर स्वयं भी आहार का ग्रहण करना चाहिए ॥ ११० ॥ इसके उपरान्त सुयोग्य विद्वानों की परिपद में स्थित होकर सायंकाल पर्यन्त भगवान् विष्णु की कथाओं का श्रवण करना चाहिए । इस प्रकार से द्वादशी-व्रत का विधान है ॥ १११ ॥ जो भक्त इस व्रत को इसी विधान से साङ्गोपाङ्ग किया करता है । हे नारद । उसको इस लोक में सभी कामनायें पूर्ण हुआ करती हैं और परलोक में सब पापों से छूटकर अपनी इक्कीस पुरतों के पूर्व पुरुषों के साथ विष्णुलोक का निवास प्राप्त किया करता है जहाँ पर उसको किसी भी शोक का मुकाबला नहीं करना पड़ता है ॥ ११२ ॥ हे विप्रवर । जो भक्त इस परमोत्तम द्वादशी व्रत के विधान का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढ़ता है उस मनुष्य को भी वाजपेय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है ॥ ११३ ॥



॥ पूर्णिमा व्रत का उद्यापन ॥

अन्यद्ब्रतवर वक्ष्ये शृणुष्व मुनिसत्तम ।
 सर्वपापहर पुण्य सर्वदुःखनिवर्हणम् ॥१
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा योपिता तथा ।
 समस्तकामफलत् सर्वव्रतफलप्रदम् ॥२
 दुःस्वप्ननाशन धर्म्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।
 सर्वलोकेषु विख्यात पूर्णिमाव्रतमुत्तमम् ।
 येन चोर्णेन पापाना राशिकोटि प्रशाम्यति ॥३
 मार्गशोर्षे सिते पक्षे पूर्णिया नियत शुचि ।
 स्नान कुर्याद्यथाचार दन्तधावनपूर्वकम् ॥४
 शुल्काम्बरधर शुद्धो गृहमागत्य वाग्यत ।
 प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायण प्रभुम् ॥५

नित्य देवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् ।
 लक्ष्मीनारायण देवमर्चयेद्भक्तिभावतः ॥६॥
 आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्ब्रूती ।
 नमो नारायणायैति पूजयेद्भक्तितत्परः ॥७॥

श्री सनक जी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मुने ! अब मैं आपके समक्ष मे समस्त पापो एव दुःखो को दूर भगाने वाले एक अन्य परम पवित्र व्रत का वर्णन करता हूँ । यह ऐसा व्रत है जो चारों ही वर्णों के पुरुषों की तथा स्त्रियों की भी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी कर दिया करता है और सभी व्रतों के करने का पूरा पुण्य-फल प्रदान किया करता है ॥ १ । २ ॥ यह कहे जाने वाला व्रत बुरे स्वप्नों के फल को नष्ट किया करता है तथा दुष्ट ग्रहों के फल को भी दूर भगा दिया करता है । यह परमोत्तम व्रत सभी लोको में “पूर्णिमा व्रत” के नाम से प्रसिद्ध है । इस व्रत का अनुष्ठान करने से करोड़ों पापों का समुदाय नष्ट हो जाया करता है ॥ ३ ॥ मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन इस व्रत की साधना करने वाले को परम पवित्रता और सयम-नियम के साथ दांतुन कर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त श्वेत वस्त्र धारण करके घर में बैठकर मौन व्रत में समास्थित होकर अपने चरणों को धोकर भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए आचमन करना चाहिए ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् नैतिक देव-पूजन करके सङ्कल्प पढ़े और फिर परम भक्तिभाव के साथ श्री लक्ष्मीनारायण देवेश्वर की अर्चना करनी चाहिए ॥ ६ ॥ जो इस व्रत को करे उसे भक्ति भाव के साथ “नमोनारायण”—इसका उच्चारण करके भगवान का गन्ध पुष्पादि से अर्चन करना चाहिए । प्रथम उनका आवाहन करे और फिर आसनादि को अर्पित करे ॥ ७ ॥

गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।
 स्तोत्रैर्वाराधयेद्देव व्रतकृत्सुसमाहित ॥८॥

देवस्य पुरत कृत्वा स्थण्डिल चतुरस्रकम् ।
 अरत्निमात्र तत्राग्नि स्थापयेद् गृह्यमार्गते ।
 आज्यभागान्तर्पयन्त कृत्वा पुरुषसूक्तत ।
 चरुणा च तिलैश्चापि घृतेन जुहुयात्तथा ॥६
 एकवार द्विवार वा त्रिवार वापि शक्तित ।
 होम कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये ॥१०
 प्रायश्चित्तादिक सर्वं स्वगृह्योक्तविधानत ।
 समाप्य होम विधिवच्छान्तिसूक्त जपेद्बुध ॥११
 पश्चाद्देव समागत्य पुन पूजा प्रकल्पयेत् ।
 तथोपवास देवाय ह्यर्पयेद्भक्तिसयुत ॥१२
 पौर्णमास्या निराहार स्थित्वा देव तत्राज्ञया ।
 भोक्ष्यामि पुण्डरीवाक्ष परेऽह्नि शरण भव ॥१३
 इति विज्ञाप्य देवाय ह्यध्य दद्यात्तथेन्दवे ।
 जानुभ्यामवनी गत्वा शुक्लपुष्पाक्षतान्वित ॥१४
 क्षीरोदार्षावसभूत अत्रिगोनसमुद्भव ।
 गृहाणार्घ्यं मया दत्त रोहिणीनायक प्रभो ॥१५

(जो भी इस व्रत को करे उसे बहुत ही सावधानी के सहित
 गायन—वादन—नृत्य—पुराण—पठन और स्तोत्र पाठादि के द्वारा
 भगवान् की समाराधना करनी चाहिए ॥ ८ ॥) भगवान् के समक्ष में
 एक चौकार वेदी की रचना करावे उस वेदी में गृह्य सूत्र के कथना-
 नुसार पाँच भूसंस्कार करे । उसमें फिर अरत्नि प्रमाण (कनिष्ठ अँगुलि
 से रहित मुट्ठी के बराबर) अग्नि की स्थापना करनी चाहिए । फिर
 पुरुष सूक्त से आज्य भाग तक कर घृतमिश्रित तिलों की आहुतियाँ
 अग्नि में डाल कर होम करना चाहिए ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण पापों को दूर
 भगवान् के साथ अपनी शक्ति के अनुरूप एक—दो अथवा तीन बार होम
 करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए

कि अपने गृह्य सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त प्रभृति करके होम समाप्त करे और अन्त में शान्ति सूक्त का पाठ भी करना चाहिए ॥ ११ ॥ पुनः श्री भगवान् के निकट उपस्थित होकर फिर उनका यजन करे तथा भक्ति सहित भगवान् को उपहारों का समर्पण करे ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर भगवान् से निम्न मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करनी चाहिए—“पूर्णिमास्या निराहार स्थिता देव नवाज्ञया । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणभव —अर्थ इसका यह है कि—हे पुण्डरीक के तुल्य नेत्रों वाले देव । मैं पूर्णिमा तिथि में आहार न करते हुए उपोषित होकर आपको आज्ञा से कल भोजन करूँगा । आप मेरे रक्षक हो जाइए । इसके उपरान्त शुक्ल एवं सुगन्धित पुष्प और चावल हाथ में लेकर भूमि पर अपने घुटनों को टेकते हुए चन्द्रमा को अर्घ्य समर्पित करके यह प्रार्थना करे—“क्षीरोक्षर्णव सम्भूत अग्निगोत्र समुद्भव । गृहाणाढ्यं भया दत्त रोहिणी नायक प्रभो ।” अर्थात् हे क्षीर सागर के नाथ प्रभो । आप मेरे द्वारा अर्पित किये गये इस अर्घ्य को अङ्गीकार करिए । ॥ १४-१५ ॥

एवमर्घ्यं प्रदायेन्दो प्राथयेत्प्राञ्जलस्ततः ।
 तिष्ठ-पूर्वमुखो भूत्वा पश्यन्निन्दु च नारद ॥१६
 नमः शुक्लाशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः ।
 रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते ॥१७
 ततश्च जागर कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ।
 जितेन्द्रियश्च सशुद्ध पापण्डालोऽरुवर्जितः ॥१८
 ततः प्रातः प्रकुर्वीत स्वाचारं च यथाविधि ।
 पुनः स पूजयेद्देवं यथाविभवविस्तरम् ॥१९
 ब्राह्मणं भोजयेत्कृत्वा ततश्च प्रयतो नरः ।
 बन्धुभृत्यादिभिः साधु स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२०
 एव पौषादिमानेषु पूर्णमास्यामुपोषितः ।

अर्चनेद्भक्तिसयुक्तो नारायणमनामयम् ॥२१

हे नारद । इस विधि से चन्द्रदेव को वर्ष देखकर अपना मुख पूर्व दिशा में करके हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १६ ॥ “नमः शुक्लाशवे तुभ्य द्विजराजायते नमः । रोहिणी पतये तुभ्य लक्ष्मी ध्याये नमोऽस्तुते ।” अर्थात्—परम शुद्ध किरणों वाले द्विजराज आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे रोहिणी के स्वामिन् । हे लक्ष्मी देवी के भाई । मेरा आपको सादर प्रणाम है ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर सब पाखण्डियों से दूर रहते हुए परम शुद्धता और जितेन्द्रियतापूर्वक पुराणों का श्रवण करते हुए रात्रि में जाग्रण करना चाहिए ॥ १८ ॥ प्रातःकाल में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने नैत्यव आचार को करके अपने ऐश्वर्य के ही अनुरूप भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् यथाशक्ति ब्रह्मभोजन करा कर स्वयं सवान्धव भोजन करे ॥ २० ॥ इसी विधि से पीप आदि मांसों की पूर्णिमा तिथियों में व्रत करके भक्तिभाव से अनामय भगवान् श्री नारायण का अर्चन करना चाहिए ॥ २१ ॥

एव सवत्सर कृत्वा कार्तिकेया पूर्णिमादिने ।
 उद्यापनं प्रकुर्वीत तद्विधानं वदामि ते ॥२२
 मण्डपकारयेद्दिव्यचतुरस्रसुमङ्गलम् ।
 शोभितपुष्पमालाभिवितानध्वजराजितम् ॥२३
 बहुदीपसमाकीर्णं किङ्किणीजालशोभितम् ।
 दर्पणैश्चामरैश्चैव कलशैश्च समावृतम् ॥२४
 तन्मध्ये सर्वतोभद्रपञ्चवर्णविराजितम् ।
 जलपूर्णं ततः कुम्भं न्यसेत्तस्योपरि द्विज ॥२५
 पिधाय कुम्भं वस्त्रेण सुमूक्ष्मेणातिशोभितम् ।
 हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ।
 लक्ष्मीनारायणदेवकृत्वा तस्योपरि न्यसेत् ॥२६

पञ्चामृतेन सस्नाप्याभ्यर्च्यं गन्धाग्निभिः क्रमात् ।

भक्ष्यैर्भोज्यादिनैवेद्यैर्भक्तितः सयतेन्द्रियः ॥२७

जागर च तथा कुर्यात्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ।

परेऽह्नि प्रातर्विधिवत्पूर्वंवद्विष्णुमचंयेत् ॥२८

इसी विधि से पूरे वर्ष की पूर्णिमाओ का उपवास करे और फिर कार्तिक मास की पूर्णिमा में इस परम पावन व्रत का उद्यापन साल भर पूरे होने पर करना चाहिए । उस उद्यापन का विधान भी अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ चार कोणों वाला एक परम दिव्य और माङ्गलिक मण्डप की रचना करवावे उस मण्डप को भली भाँति विभूषित करे और उसमें सब ओर फूलों की सुन्दर मालाएँ—चेंदोवा और ध्वजा—पताकाएँ लटकानी चाहिए ॥ २३ ॥ मण्डप में बहुत—से दीपक जलावे और घुँघरू, दर्पण—चमर और कलश आदि पदार्थों से भली भाँति मण्डप को सुशोभित करना चाहिए ॥ २४ ॥ इसकी पूरी सजावट करके हे द्विजवर ! उस मण्डप के बीच में पाँच वर्णों का सर्वतोभद्र मण्डल की रचना करवावे । उसके ऊपर 'जल' से भरे हुए कलशों की स्थापना करे ॥ २५ ॥ उस कलश को बारीक श्वेत वस्त्र से समाच्छादित करे और फिर उसके ऊपर शक्ति के अनुसार सुवर्ण—रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मी नारायण की मूर्ति की स्थापना करे ॥ २६ ॥ उस देव मूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप—दीप—रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मीनारायण की मूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप—दीप—नैवेद्य आदि पूजन के तमस्त उपचारों के द्वारा अर्चन भक्तिभाव के सहित करना चाहिए ॥ २७ ॥ फिर श्रद्धा के सहित रात्रि जागरण कर पुनः प्रातः काल में विधि के सहित देव—यजन करना चाहिए ॥ २८ ॥

आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता ।

हेमभारसहस्रं तु यो ददाति कुटुम्बिने ।
 तत्फल तुल्यमात्र स्याद्ध्वजारोपणकर्मणः ॥३॥
 ध्वजारोपणतुल्य स्याद्गङ्गास्नानमनुत्तमम् ।
 अथवा तुल्यारोवा णिवलिङ्गप्रपूजनम् ॥४॥
 अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोपूर्वमिदं द्विज ।
 सर्वपापहर कर्म ध्वजारोपणसञ्चितम् ॥५॥
 सन्ति वै यानि कार्याणि ध्वजारोपणकर्मणि ।
 तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥६॥
 कार्तिकस्य सिते पक्षे दशम्या प्रयतो नरः ।
 स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥७॥

श्री सनवानार्य ने कहा—अब मैं एक अन्य ध्वजारोपण नाम वाले व्रत के विषय में सुनाता हूँ । यह परमोत्तम व्रत भी भगवान् विष्णु की प्रसन्नता करने वाला है । तथा इस व्रत से समस्त सञ्चित पाप दूर भाग जाया करते हैं और परम पुण्य का लाभ इसके करने वाले को हुआ करता है ॥१॥ यह व्रत भगवान् श्री विष्णु के मन्दिर में उत्तम ध्वजा के समारोपण करने वाला है । जो भी कोई मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर में उत्तम ध्वजा लगाता है उसका इतना अधिक पुण्य प्रभाव होता है कि ब्रह्मादिक देव भी उस भक्त की पूजा किया करते हैं—इससे अधिक इस व्रत की महिमा को क्या वर्णन किया जा सकता है ॥२॥ एक कुटुम्बी पुरुष को एक सहस्र भार सुवर्ण का दान करने से जो पुण्य-फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य का फल ध्वजा के समारोपण करने वाले भक्त को प्राप्त हुआ करता है ॥३॥ इस विष्णु मन्दिर में ध्वजारोपण व्रत की समानता रखने वाला पुण्य श्रेष्ठ गङ्गा स्नान—तुलसी सेवन और शिव लिङ्ग के पूजन का हो सकता है ॥४॥ हे द्विजवर ! यह ध्वजारोपण नामक व्रत एक परम अद्भुत एवं अपूर्व होता है इसका अपरिमित महत्व होने से यह अपूर्व ही है । इस ध्वजा-

रापण व्रत के करने में जो लाभ हुआ करते हैं उन सबका वर्णन मैं आपके सामने करता हूँ । आप परम समाहित होकर सुनिए ॥५॥६॥ इस व्रत के करने वाले मनुष्य को कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन प्रातः काल में दांतुन आदि वृत्तों से निवृत्त होकर स्नान करना चाहिए ॥७॥

एकाशी ब्रह्मचारी च स्वपेन्नारायण स्मरन् ।
 धीताम्बरधर शुद्धो विप्रो नारायणाग्रतः ॥८
 ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वाचम्य यथाविधि ।
 नित्यकर्माणि निर्वृत्य पश्चाद् विष्णु समर्चयेत् ॥९
 चतुर्भिर्ब्राह्मणैः साढं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ।
 नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि ॥१०
 ध्वजस्तम्भौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद् वस्त्रसयुतौ ।
 सूर्यं च वैनतेयं च हिमाशु तत्परोर्जयेत् ॥११
 घातारं च विघातारं पूजयेद् ध्वजदण्डके ।
 हरिद्राक्षतगन्धाद्यैः शुक्लपुष्पैर्विशेषतः ॥१२
 ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चोपलिप्य वै ।
 आध्यायान्नि स्वगृहोक्त्या ह्याज्यभागादिकं क्रमात् ॥१३
 जुहुयात्पायसं चैव साज्यमष्टोत्तरं शतम् ।
 प्रथमं पीरुषं सूक्तं विष्णोर्नुक्त्वमिरावतीम् ॥१४

उस दिन एक बार भोजन करे—ब्रह्मचर्य व्रत का पूणतया परिपालन करे—धुले हुए परम विशुद्ध वस्त्र धारण कर भगवान् श्री नारायण का ही मन में स्मरण एवं ध्यान करके उन्हीं के सामने रात्रि में भूमि पर शयन करना चाहिए ॥८॥ प्रातः काल में उठकर यथाविधि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर स्नानाचमन करे तथा भगवान् विष्णु का सविधि अर्चना करना चाहिए ॥९॥ चार अन्य सुयोग्य विप्रों को अपने साथ लेकर सब प्रथम स्वरित वाचा करके ध्वजारोपण

कर्म मे पहिले नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए ॥२०॥ फिर गायत्री महा मन्त्र के द्वारा एक वस्त्र से लिपटे हुए ध्वजा तथा स्तम्भ दोनो का सविधि प्रोक्षण करना चाहिए । इसके पश्चात सूर्यदेव, गरुड और चन्द्रदेव का पूजन करे ॥११॥ उस ध्वजा के दण्ड मे हल्दी, गन्ध, अक्षत और विशेष रूप से श्वेत, सुगन्धित पुष्पो के द्वारा धाता-विधाता का यजन करना चाहिए ॥१२॥ इसके पश्चात गौ चर्म मात्र अर्थात् सौ गीयें और साँड जिनकी भूमि मे बैठ सके उतनी भूमि पर गोमय को लीप कर वहा पर फिर अपने गृह्य सूत्र के अनुसार विधि पूर्वक अग्नि की स्थापना करनी चाहिए और उसमे क्रम से घृत और पायस का अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देकर होम करना चाहिये । पहिले पुरुष सूक्त का पाठ कर 'विष्णोतु'कम्' मन्त्र से और 'इरावतीम्' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिये ॥१३१४

ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तथा ।
 सोमो धेनुमुदुत्य च जुहुयाच्च ततो द्विज ॥१५
 सौरमन्त्राञ्जपेत्तत्र शान्तिमूक्तानि शक्तित ।
 रात्रौ जागरण कुर्यादुपवण्ठ हरे शुचि ॥१६
 तत प्रात समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च ।
 गन्धपुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूववत्क्रमात् ॥१७
 ततो मङ्गलवाद्यंश्च सूक्तपाठेश्च शोभनम् ।
 नृत्यंश्च स्तोत्रपठनं नयद्विष्ण्वालये ध्वजम् ॥१८
 देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वित ।
 मुश्चिर स्थापयेद्विप्र ध्वज सुस्तम्भसयुतम् ॥१९
 गन्धपुष्पाक्षतैर्देव धूपदीपैर्मनोहरै ।
 भक्ष्यभाज्यादिमशुपनैर्नैवेद्यंश्च हरि यजेत् ॥२०
 एव देवालय म्थाप्य शोभन ध्वजमुत्तमम् ।
 प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तागमेतद्दीरयेत् ॥२१

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।

नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥२२

इसके अनन्तर 'वेननेयाय स्वाहा' इसका समुच्चारण करके आठ आहुतिया देवे । दूसरे उपरान्त 'सोमो घेनुम्' और 'उहुत्यम्' इनसे आहुतियाँ देनी चाहिए । इसके अनन्तर यथा शक्ति ऐसे अन्य मनो का जिनका देवता मूय है तथा शान्ति सूक्त का जाप करे और उम दिन भी श्री हरि के सामने बैठ कर रात्रि जागरण करना चाहिये ॥१४-१६॥ इसके पश्चात् प्रातः काल उठ कर नित्य कर्म को पूर्ण करके पूर्वाह्नानुसार ही गन्ध पुष्पादि के द्वारा देव पूजन करे ॥१७॥ यह सब पूजा करने के पश्चात् परम मागलिक वाद्य, मून पाठ, स्तौत्र पाठ और नृत्य करता हुआ उम ध्वजा को श्री विष्णु के मन्दिर में ले जाना चाहिए ॥१८॥ वहाँ विष्णु मन्दिर के द्वार देश में अथवा शिखर भाग में परम प्रसन्नता के साथ उस दण्ड सहित ध्वजा का समारोपण करे ॥१९॥ वहाँ पर भी ध्वजा की स्थापना करने के पश्चात् पुनः गन्ध पुष्पादि के द्वारा भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥२०॥ इस विधि से देव मन्दिर में उस उत्तम ध्वजा को स्थापित करके उसकी प्रदक्षिणा करे और उस समय में 'नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । इमं पक्षं से (२२वें मूल में लिखित श्लोक से) आरम्भ करके ३८ वें मूलोक्त श्लोक पर्यन्त स्तौत्र का पाठ करे । अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष । हे सम्पूर्ण विश्व पर कृपा करने वाले । आपकी मर्मा में प्रणाम है । हे महान् पुरुष पूर्वज । हे हृषीकेश । आपकी मर्मा में प्रणाम है ॥२१॥२२

येनेदमखिलं जातं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

लयमेप्यति यत्रैव तं प्रपन्नोऽस्मि केशवम् ॥२३

न जानन्ति परं भावं यस्य ब्रह्मादयः सुराः ।

योगिनो यं न पश्यन्ति तं वन्दे ज्ञानरूपिणम् ॥२४

अन्तरिक्ष तु यन्ताभिद्योर्मूर्द्धा यस्य चैव हि ।
 पादोऽभूद्यस्य पृथिवी त वन्दे विश्वरूपिणम् ॥२५॥
 यस्य श्रोत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छशी ।
 ऋक्सामयजुषी वाग्वै त वन्दे ब्रह्मरूपिणम् ॥२६॥
 यन्मुखाद् ब्राह्मण जाता यद्वाहीरभवन्नृपा ।
 वैश्या यस्योरुतो जाता पद्भ्या शूद्रो व्याजयत ॥२७॥

यह सम्पूर्ण जगत् जिन आपसे प्रादुर्भूत हुआ है और जिस
 थापके ही स्वरूप में यह समस्त जगत प्रतिष्ठित है और जन्तु में यह
 सम्पूर्ण विश्व लय को प्राप्त हुआ करता है उन्ही भगवान केशव की
 मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२३॥ जिन भगवान के परमोत्तम भाव
 का ज्ञान ब्रह्मा आदि महान देवता भी नहीं रख सकते हैं और योगी-
 जन अपने योग मार्ग के द्वारा जिनका दर्शन नहीं कर पाते हैं उन्ही
 ज्ञान स्वरूप वाले भगवान को मैं सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ
 ॥२४॥ यह व्यापक अन्तरिक्ष जिन भगवान की नाभि है, दिव लोक
 जिनका मस्तक है, पृथ्वी जिनके चरण हैं उन्ही विश्वरूपी भगवान को
 सेवा में मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ ॥२५॥ ये समस्त दिशायें जिन
 प्रभु के श्रोत्र हैं—सूर्य और चन्द्र ये दोनों प्रभु के नेत्र हैं। वेद-
 रूपी (ऋक्, यजु और सामवेद) जिन प्रभु की वाणी हैं ऐसे प्रह्म-
 स्वरूप वाले भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥ जिनके मुख
 कमल से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण की
 उत्पत्ति हुई है। जिनके उरुओं में वैश्य जाति का आविर्भाव हुआ है
 और चरणा से शूद्रों का समुद्भव हुआ है ॥२७॥

मायासङ्गममात्रेण वदन्ति पुरुष त्वजम् ।
 स्वभावविमल शुद्ध निर्विकार निरञ्जनम् ॥२८॥
 क्षीराधिशायिन देवमनन्तमपराजितम् ।
 सद्भक्तवत्सल त्रिष्णु भक्तिगन्ध नमाम्यहम् ॥२९॥

ही सबत्र प्राप्त होने वाले हैं वही भगवान् विष्णु पर मुझ प्रसन्न होवे ॥३४॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्या पञ्चभिरेव च ।
 हूयते च पुनर्द्वाभ्या स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३५॥
 ज्ञानिना कर्मिणा चैव तथा भाक्तमता नृणाम् ।
 गतिदाता विश्वमृष्य स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३६॥
 जगद्धितार्थं ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरे ।
 तानचयन्ति विबुधा स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३७॥
 यमामनन्ति वै सन्त सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
 निगुंण च गुणाधार स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३८॥
 इति स्तुत्वा नमेद्विष्णुं ब्राह्मणाश्च प्रपूजयेत् ।
 आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभिः ॥३९॥
 ब्राह्मणाभाजयेच्छक्त्या भक्तिभावसमन्वित ।
 पुत्रमित्त्रकलत्रार्थं स्वयं च सह वन्दुभिः ॥४०॥
 कुर्वीत पारण विप्र नारायणपरायण ।
 यस्त्वेतकर्मकुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् ।
 तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहित ॥४१॥
 पटो ध्वजस्य विप्रेन्द्र यावच्चलति वायुना ।
 तावन्ति पापजालानि नश्यन्त्येव न सशय ॥४२॥

ओ चारों वर्णों से—चारों आश्रम वालों के द्वारा—दिन तथा रात्रि में और पाचा प्रकार के मनुष्यों से जिनकी पूजा की जाया करती है व ही भगवान् विष्णुद्वय मुझ पर प्रसन्न होवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ साधुगुण्य जिन भगवान् का सच्चिदानन्द—निगुण और सगुण भी वहाँ करते हैं वह भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ इस प्रकार से भगवान् का स्तवन कर विष्णु या तथा ब्राह्मणों का अर्चन करे और दक्षिणा द्रव्य तथा यस्त्रादि समर्पित कर आचार्य का सत्कार करना

चाहिए ॥ ३६ ॥ फिर भक्ति भाव के सहित अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणा को भोजन करावे । इसके अनन्तर पुन-मित्र-श्री और समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ४० ॥ हे विप्रवर ! इस प्रकार मे भगवान् नारायण—परायण होकर पारणा करनी चाहिए । जो पुरुष इस ध्वजारोपण कर्म को सुविधि किया करते हैं उनके पुण्य-फल का मैं अब वर्णन करता हूँ । आप सावधान होकर श्रवण करिए । ॥ ४१ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस समारोहित ध्वजा झण्डा शत्रु से जब तक चला करता है उतन ही पापों का समुदाय भस्म हो जाया करता है ॥ ४२ ॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकं ।
 ध्वज विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकं ॥४३
 यावदिदृशानि तिष्ठेत ध्वजो विष्णुगृहे द्विज ।
 तावद्युगसहस्राणि हरिमान्प्यमश्नुते ॥४४
 आरोपित ध्वज दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति धार्मिकाः ।
 तेऽपि सर्वं प्रमुच्यन्ते महापातककोटिभिः ॥४५
 आरोपितो ध्वजो विष्णुगृहे धुन्वन्पट स्वकम् ।
 कर्तुं सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषाद्धृत ॥४६
 यस्त्वारोप्य गृहे विष्णोर्ध्वजं नित्यमुपाचरेत् ।
 स देवयानेन दिव यातीव मुमतिर्नृप ॥४७

जो कोई मनुष्य महापातका से अथवा अन्य सभी प्रकार के महान् पापों से दूषित हा गया हो वह भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा चढ़ाकर समस्त पापों से विमुक्त होजाया करता है ॥४३॥ हे द्विजवर ! वह ध्वजा जिनन दिना तक विष्णु के मन्दिर में रहा करती है उतन ही मह्य युगों तक वह श्री हरि की मन्दिषि में निवास किया करता है । ॥ ४५ ॥ जो कोई भी धार्मिक पुरुष उन चढ़ी हुई ध्वजा को दृष्टकर उगकी वन्दना किया करते हैं व भी किय हुए अपन कराया पातकों से

छूटकर विशुद्ध हो जाया करते हैं ॥ ४५ ॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में चढ़ाई हुई ध्वजा अपने झण्डे को फहराती हुई उस ध्वजारोपण करने वाले व्यक्ति के सभी पापों को आधे निमेष में ही कम्पित कर दिया करती है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष श्री विष्णु के मन्दिर में ध्वजा को चढ़ाकर सबदा उसकी वन्दना किया करता है । वह राजा सुमति के समान ही देव यान में बैठ कर सीधा स्वर्ग लोक को चला जाया करता है ॥ ४७ ॥

॥ सुमति विभाण्डक संवाद ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।
 सर्वकर्मवरिष्ठ च त्वयोक्त ध्वजधारणम् ॥१
 यस्तु वै सुमतिर्नाम ध्वजारोपणपरो मुने ।
 त्वयोक्तस्तस्य चरित्त विस्तरेण ममादिश ॥२
 शृणुष्वैकामना पुण्यमितिहास पुरातनम् ।
 ब्रह्मणा कथित मह्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥३
 आसीत्पुरा कृतयुगे सुमतिर्नाम भूपति ।
 सोमवशोद्भव श्रीमान्सप्तद्वीपैकनायक ॥४
 धर्मात्मा सत्यसपन्न शुचिचक्ष्योऽतिथिप्रिय ।
 सर्वलक्षणमपन्न सर्वमपद्विभूषित ॥५
 सदा हरिकथासेवी हरिपूजापरायण ।
 ह्यभिक्तिपराणा च शुश्रूषुर्निरहकृति ॥६
 पूज्यपूजारतो नित्य समदर्शी गुणान्वित ।
 सर्वभूतहित शान्त वृत्तज्ञ कीर्तिमास्तथा ॥७

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—ह भगवन् । आप तो समस्त शास्त्रों के वास्तविक प्रयोजनों के ज्ञाता हैं और सभी धर्मों के तत्त्व भी

भी मनी भौंति जानने हैं । आपने परम श्रेष्ठ ध्वजागेपण वर्णन किया है । हे मुने । आपने इसी प्रसङ्ग में राजा मुमति की जो चर्चा की है जिसने ध्वजारोपण किया था अब आप महीनी वृषा करके उस राजा मुमति का चरित्र विम्बृत रूप में मुझे श्रवण कराइये ॥ १ । २ ॥ इस तरह में नारदजी के पूछने पर सनक मुनि ने कहा—यह परम प्राचीन ऐतिहासिक घटना है । इसको आप मन लगाकर अब परम पवित्र एव प्राचीन इतिहास को एकाग्रता में श्रवण करिए । ब्रह्माजी ने मुझमें इस समस्त पापों को दूर करने वाले इतिहास का वर्णन किया था ॥ ३ ॥ बहुत पहिले सत्ययुग में एक मुमति नामधारी राजा हुए थे । वह राजा सोमवश में समुत्पन्न हुआ था तथा मातो द्वीपों का एक छत्र राजा हुआ था ॥ ४ ॥ यह राजा बहुत ही धार्मिक, मत्स्यभाषी पवित्र वश में समुद्रमूत, समागत, अतिथियों में अत्यधिक प्रेम किया करते थे । यह सभी मुन्दर लक्ष्णों से युक्त और सभी तरह की सम्पदाओं में समन्वित एव भूपित थे ॥ ५ ॥ राजा मुमति नित्य ही श्री हरि भगवान की कथा का श्रवण किया करते थे और अर्हनिश भगवान विष्णु के पूजन करने में मग्न रहा करते थे और अभिमान में रहित होकर सर्वदा भगवान् विष्णु के भक्तों की सेवा में तत्पर रहा करते थे ॥ ६ ॥ जो भी पूजा के करण के योग्य सत्पात्र होते थे उनकी पूजा किया करते थे । यह सबको समान दृष्टि से देखने वाले—गुण गणों से युक्त—ममस्त प्राणियों के हितैषी—शम का परिपालन करने वाले एव परम वृत्तज थे । इसीलिये उस राजा की कीर्ति का चारों तरफ विस्तार हो रहा था ॥ ७ ॥

तस्य भार्या महाभागा सर्वलक्षणसयुता ।
 पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यमतिर्मुने ॥८
 तावुभौ दम्पती नित्य हरिपूजापरायणा ।
 जातिस्मरौ महाभागौ सत्यज्ञौ सत्परायणौ ॥९

अन्नदानरतौ नित्य जलदानपरायणी ।

तडागारामवप्रादीनसख्यातान्वितेनतु ॥१०

सा तु सत्यमतिनित्य शक्तिविष्णुगृहे सती ।

नृत्यत्यन्तसन्तुष्टा मनोज्ञा मञ्जुवादिनी ॥११

सौर्षि राजा महाभागो द्वादशीद्वादशोदिने ।

ध्वजमारोपयत्येव मनोज्ञ बहुविस्तरम् ॥१२

एव हरिपर नित्य राजान धर्मकोविदम् ।

प्रिया सत्यमति चास्य देवा अपि सदास्तुवन् ॥१३

त्रिलोके विश्रुती ज्ञात्वा दम्पती धर्मकोविदौ ।

आययी बहुभि शिष्यैर्द्रष्टुकामोविभाण्डक ॥१४

हे मुनिवर ! उस राजा की पत्नी का नाम सत्यमती था । वह भी महान् भाग्य वाली, समस्त शुभ लक्षणों से समुत्पन्न, अपने पति की प्राण के समान समझने वाली परम पतिव्रता थी ॥ ८ ॥ ये दोनों ही पति-पत्नी सर्वदा श्री हरि के अर्चन में सलग्न रहा करते थे । इन दोनों को अपने प्रथम जन्म का भी स्मरण था । ये दोनों ही सत्य प्रतिज्ञा रखने वाले और सत्परायण रहा करते थे ॥ ९ ॥ ये सदा अन्न और जल का दान दिया करते थे । इन्होंने अगणित उद्यान—तालाब आदि स्थापित एवं निर्मित किये थे ॥ १० ॥ (वह रानी सती सत्यमती विष्णु भगवान् के मन्दिर में जाकर सर्वदा परम पवित्रता पूर्वक नृत्य किया करती थी तथा सन्तोष के साथ अतीव मनोहर वाद्यों का वादन कर भगवान् को रित्याया करती थी ॥ ११ ॥) इसी प्रकार से परम महाभाग वह राजा भी द्वादशी तिथि के दिन जो कि प्रत्येक मारा में आनी भी भगवान् के मन्दिर में मुन्दर ध्वजा का ममारोहण किया करता था ॥ १२ ॥ इन प्रकार के अत्यन्त धर्म-तत्पर परम धार्मिक राजा और सती सत्यमति रानी की देवगण भी प्रशंसा किया करते थे ॥ १३ ॥ त्रैलाक्य में परम प्रतिष्ठ धार्मिक दम्पती के विषय

म श्रवण करके विभाण्डक मुनि अपने समस्त शिष्य वर्ग के साथ उस दम्पति का दर्शन करन के लिये एक बार वहाँ पर समागत हुए थे ॥ १४ ॥

तमायात मुनि श्रुत्वा स तु राजा विभाण्डकम् ।
 प्रत्युद्ययौ सपत्नीक पूजाभिवंहुविस्तरम् ॥१५
 कृतानिथ्यक्रिय शान्त कृतासनपरिग्रहम् ।
 नीचासनस्थितो भूप प्राञ्जलिमुनिमब्रवीत् ॥१६
 भगवन्कृतकृत्योऽस्मि त्वदभ्यागमनेन वै ।
 सतामागमन सन्त प्रशसन्ति सुखावहम् ॥१७
 यत्र स्थान्महता प्रम तत्र स्यु सवसम्पद ।
 तेज कीर्तिर्धन पुत्रा इति प्राहुर्विपश्चत ॥१८
 तत्र वृद्धिमुयायान्ति श्रेयास्यनुदिन मुने ।
 यत्र सन्त प्रकुर्वन्ति महती वरुणा प्रभो ॥१९
 यो मूर्ध्नि धारयेद् ब्रह्मन्महत्पादजल रज ।
 स स्नात सर्वतीर्थेषु पुण्यात्मा नात्र सशय ॥२०
 मम पुत्राश्च दाराश्च सपत्त्वयि समर्पिता ।
 मामाज्ञापय विप्रन्द्र किं प्रिय करवाणि ते ॥२१

राजा न जब मुना कि विभाण्डक मुनि वहाँ पर पधार रह है तो उपन श्पनी पत्नी का साथ म सक्कर उनकी अगवानी करन क लिय आमन स उठ कर बाहर आगमन किया था । जब व आगम तो उनका बहुत ही अच्छी तरह म आतिथ्य तब सत्कार किया था । जब मुनिवर समर्पित उच्चामन पर विराजमान हा ग्य तो तब राजा नीच तब आगमन पर बैठ गया था और हाथ जाड कर मुनिवर म प्रापता करन लगा था ॥ १५।१६ ॥ राजा न कहा—ह भगवन् । आज आपक शुभागमन म मे परम कृनाय हा गया है क्योंकि मगजना क आगमन म बड़े भारी मुष्ट की प्राप्ति हुआ करती है—यह एका म्पुत्रपा

के दर्शन की महिमा ही होती है ॥२७॥ विद्वान् लोग कहा करते हैं कि जहा पर उदार सत्पुरुष प्रेम किया करते हैं वहाँ पर निश्चित रूप से कीर्ति—सम्पदा और पुत्रादि की प्राप्ति होने लगा करती है ॥१८॥ हे मुनिवर ! हे प्रभो ! सत्पुरुष जहाँ पर अपनी बड़ी कृपा किया करते हैं वहा पर प्रतिदिन मङ्गल ही मङ्गल हुआ करते हैं ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य अपने पूज्य तम बडो के चरणोदक तथा चरण से स्पर्श की गई धूलि को अपने मस्तक पर धारण किया करते हैं उन परम पुण्यात्मा पुत्र्यो ने सभी पवित्र तीर्थों मे स्नान कर लिया है—इसमे लेशमात्र भी सशक्य नहीं है ॥२०॥ मैं अपने पुत्र—स्त्री और सम्पूर्ण वैभव को आपकी सेवा मे समर्पित करता हूँ । हे विप्रवर ! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए मैं इस समय मे आप का परम प्रिय कार्य क्या करू ? ॥२१॥

विनयावनत भूप स निरोक्ष्य मुनीश्वर ।
 स्पृशन्क्रेण त प्रीत्या प्रत्युवाचातिर्हपित ॥२२
 राजन्यदुक्त भवता तत्सर्वं त्वत्कुलोचितम् ।
 विनयावनत सर्वो बहुश्रेयो लभेद्विह ॥२३
 धर्मश्चार्यश्च कामश्च मोक्षश्च उपसत्तम ।
 विनयाल्लभते मर्त्यो दुर्लभ किं महात्मनाम् ॥२४
 प्रीतोऽस्मि तव भूपाल सन्मार्गं परिर्वत्तिन ।
 स्वस्ति ते सतत भूयाद्यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥२५
 पूजा बहुविधा सन्ति हरितुष्टिविधायिका ।
 तासु नित्यं ध्वजारोपे वर्त्तसे त्वं सदोद्यत ॥२६
 भार्याणि तव चाध्वीय नित्यं नृत्यपरायणा ।
 विमथंमेतद् वृत्तान्तं यथावद्वक्तमहंमि ॥२७
 मृणुष्व भगवन्सर्वं यत्पृच्छसि वदामि तत् ।
 आश्चर्यंभूतलोकानामात्रयोश्चास्ति त्विह ॥२८

वह महा मुनि उस राजा की ऐसी नम्रता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और बड़े ही प्रेम के साथ उस पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—॥२२॥ श्री ऋषिवर ने कहा—हे राजन् । आपने जो कुछ भी मुझ से प्रार्थना की है वह सब आपके इम परमोच्च एव पवित्र कुलके योग्य ही है । ऐसा निश्चित नियम है कि जो विनम्र होता है उसे अनेक तरह के कल्याणों की स्वतः ही प्राप्ति हो जाया करती है ॥२३॥ हे नृप श्रेष्ठ । यह विनय ऐसा उत्तम गुण है कि इसके द्वारा धर्म-अर्थ काम और मोक्ष सभी कुछ प्राप्त हो जाया करते हैं । महान् आत्मा वालों को इस ससार में कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है । २४॥ हे राजन् । आप तो परम श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहे हो—मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपका सदा कल्याण होवे । अब मैं आपसे जो कुछ भी पूछना है उमरा उत्तर आप मुझे दीजिए ॥२५॥ ऋषि ने कहा— भगवान् विष्णु का प्रसन्न करने वाली अनेक प्रकार की अर्चन-पद्धतियाँ हैं उन मन्त्रों से आप केवल ध्वजारोपण नाम वाली पूजा ही क्यों किया करते हैं ? ॥२६॥ (यह आपकी परम साध्वी पत्नी भी विष्णु मन्दिर में सदा नृत्य ही किया करती हैं—यह सब क्या बात है ?) आप जानो ऐसा ही क्यों किया करते हैं जब कि अन्य अनेक भगवान् के प्रसन्न करने के उत्तमोत्तम साधन विद्यमान हैं ? इसका मत्प-मत्प उत्तर मुझे दीजिए ॥२७॥ राजा ने कहा—हे भगवन् । आपने जो कुछ भी मुझ में इस समय में पूछा है उगको मैं बताना हूँ, आप सुनिए । हम दोनों के चरित्र में मोग आशय्यं में पडे रहा करते हैं ॥२८॥

अहमाम पुरा शूद्रो मानिनिर्नाम मत्तम ।
 कुमार्गनिर्गतो निःस्य मर्षलोकाहिते रत ॥२९॥
 पिशुनो धर्मविद्धो देवद्रव्यापहारः ।
 गोघ्नश्च ब्रह्महा चोर मर्षप्राणघ्ने रत ॥३०॥

नित्य निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः ।
 एव स्थित कियत्कालमनादृत्य महद्ब्रह्म ॥३१
 सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागतः ।
 मृगमासाशनो नित्य तथा पान्थविलुम्पक ॥३२
 एकाकी दुःखबहुलो न्यवसन्निर्जने वने ।
 एकदा क्षुत्परिश्रान्तो निदाघार्त्तः पिपासितः ॥३३
 जीर्ण देवालय विष्णोरपश्य विजने वने ।
 हसकारण्डवाकीर्ण तत्समीपे महत्सर ॥३४
 पर्यन्तवनपुष्पोघच्छादित तन्मुनीश्वर ।
 अपिब तत्र पानीय तत्तीरे विगतश्रमः ॥३५
 फलानि जग्ध्वा शीर्णानि स्वयं क्षुच्च निवारिता ।
 तस्मिञ्जीर्णालये विष्णोर्निवास कृतवानहम् ॥३६

हे मुनिवर ! मैं पहिले जन्म मे मलिन नाम वाला शूद्र था ।
 मैं बहुत ही अधिक कुमार्गगामी था और सदा दूसरो के अहित के ही
 कार्य करने मे लगा रहा करता था ॥२६॥ मैं बडा जुगलछोर—धर्म
 से द्वेष रखने वाला—देवद्रव्य का चोर और गौ ब्राह्मणो को मारने वाला
 था और सभी प्राणियो की हिंसा किया करता था ॥३०॥ मैं सदा
 बडवी बातें कहा करता था और पाप कर्म ही किया करता था । मैं
 वेश्यागामी था और अपने बडो की बातें नही मानता था । इसी प्रवार
 मे बहुत सा समय व्यतीत हो गया था ॥३१॥ ऐसी दशा मेरी देखकर
 मेरे सभी बान्धवो ने मुझे त्याग दिया था । तब मैं परम दुःखित होकर
 जगल मे चला गया था और वहा पर मैं मृगो के मांस का आहार करने
 लग गया था तथा मैं रात्रो मे जाने आने वाले मुमाणियो का सुटो
 का काम करने लग गया था ॥३२॥ दृग प्रसार मे मैं बटन मे दुःखो मे
 सन्तप्त होकर वन मे रहन लगा था । एक समय मे भूयम घण्टा कर
 ती मे पीडित होकर त्यागा घुम रहा था । उम समय मे मेरे

उस निर्जन वियावान जङ्गल में भगवान विष्णु के जीर्ण-शीर्ण एक मन्दिर को देखा था । उस मन्दिर के समीप में ही एक सरोवर भी था जो हंस और कारण्डवों में घिरा रहता था ॥ वह सरोवर हे मुनि-वर । जल पर्यन्त पुष्पो वाली लताओं से सुशोभित था । उसने तट पर मैंने पहुँच कर जल पान किया था । उससे मेरी थकान दूर होगई थी । उस समय पर मैंने देखा कि भूमि पर कुछ फल वृक्षों पर से टूट कर गिर गये हैं । मैंने उनको उठा कर अपनी धुंधा को भी शान्त किया था । इसके उपरान्त मैं उसी जीर्ण मन्दिर में रहने लग गया था ॥३५॥३६॥

जीर्णस्फुटितसधान तस्य नित्यमकारिपम् ।
 पर्णस्तृणैश्च काष्ठैर्घृहं सम्यक् प्रकल्पितम् ॥३७
 स्वमुखार्थं तु तद्भूमिर्मया लिप्ता मुनीश्वर ।
 तत्राह व्याघ्रवृत्तिस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥३८
 आजीव वर्ततन्नित्य वर्षाणां विशति स्थित ।
 अथेयमागता माध्वा विन्ध्यदेशसमुद्भवा ॥३९
 निपादकुलजता विप्र नाम्ना ह्याताऽवकोकिला ।
 वन्धुवर्गपरित्यक्ता दुःखिता जीर्णविग्रहा ॥४०
 क्षत्तुर्घर्मपरिश्रान्ता शोचन्ती स्ववृत्तह्यधम् ।
 दैवयोगात्ममायाता भ्रमन्ती विजने वने ॥४१
 श्रीष्मतापाहिता बाह्ये स्वान्ते चाधिनिपीडिता ।
 इमा दुःखादिता दृष्ट्वा जाता मे त्रिपुत्रा दया ॥४२

जो उस मन्दिर के भाग टूट फूट हुए थे उनको धीरे-धीरे मुण जोर बाँटा न ठीक करता रहता था । इस तरह में कुछ समय में बहुत अच्छा निवास रहना बना लिया था ॥३७॥ हे मुनीश्वर । शनैः शनैः वही को जा भूमि भी उसको भी मैंने अपन ही मुख के दृष्टिरोप में लीप कर ठीक बना लिया था । उस स्थान पर ही एन

बहेलिया का क्रम करता हुआ मैं नित्य ही बहुत-से मृगों को मार कर बीस वर्ष तक रहा था । हे विप्रवर ! इसके अनन्तर विध्यदेश के एक निपाद्र कुल में उत्पन्न अवकोकिला नाम वाली परम साध्वी स्त्री वहा पर आगयी थी । जिसको उसके बन्धु-बान्धवी ने त्याग कर निकाल दिया था । इसका शरीर बहुत जीर्ण हो गया था और वह भूख प्यास धूप से बहुत घबडाई हुई उस निजन वन में इधर उधर घूम रही थी । वह अपने किय हुए पापों का पश्चात्ताप कर रही थी । इस तरह से वह दैवयोग से मेरे पास आ निकली थी ॥३८-४१॥ वह विचारी बाहिर तो धूप की गरमी से झुलस रही थी और अपने मनके अन्दर इन प्राप्त हुए बलेशों के कारण बहुत ही सन्ताप वाली थी । उस समय मैं उम अत्यन्त दुखिनी को देख कर मेरे हृदय में अत्यन्त करुणा उत्पन्न हो गई थी ॥४२

दत्ता मया जल चास्यै मास वन्यफलानि च ।
 गतश्रना त्विय ब्रह्मन्मया पृष्टा यथा तथम् ॥४३
 अवेदयत्स्ववृत्तान्तं तच्छृणुष्व महामुने ।
 नाम्नावकोकिला चाह निपादकुलसम्भवा ॥४४
 दाह्वस्य सुता चाह विन्ध्यपवतवासिनी ।
 परस्वहारिणी नित्यं तदा पैशु-जवादिनी ॥४५
 पुश्चलात्येवमुक्त्वा तु बन्धुवर्गे समुज्जिता ।
 कियत्कालं ततः पत्या भूताह लोकिनिन्दिता ॥४६
 नैवात्सोऽपि गतो लोकः यमस्यात्र विहाय माम् ।
 बान्तारे विजने चैवा भ्रमन्ती दुःखपीडिता ॥४७
 देवात्स्वत्सविधं प्राप्ता जीविताह त्वयाधुना ।
 इत्येव स्वकृतं वमं मह्यं सर्वं न्यवेदयत् ॥४८
 ततो दवालय तस्मिन्दम्पतीभावमाश्रितो ।
 स्थितो वर्षाणि दश च आवा मासपचाशिनो ॥४९

एकदा मद्यपानेन प्रमत्तो निर्भर मुने ।
तत्र देवालये रात्रौ मुदितौ मासभोजनान् ॥५०

अतएव मैंने उसको जल और मांस तथा जङ्गली फल दे दिये थे अब । वह अपनी थकान दूरकर शान्त होगई थी तब मैंने उसका सब कारण पूछा था ॥४३॥ हे महामुने । उसने अपना सारा हाल सुनाया था उमे मैं आपको सामने कहता हूँ आप श्रवण कीजिये । उसने कहा था—मैं निपाद कुल मे समुत्पन्न हुई हूँ और मेरा नाम अब काकिला है ॥४४॥ मेरे पिता का नाम दारुक है, मैं विन्ध्याचल पर्वत पर रहती थी, मैं सदा दूसरो का धन चुराया करती थी और सर्वादा दूसरो की चुगली खाया करती थी ॥४५॥ मेरे कुल वालो ने 'यह छिनाल है' यह कह कर घर से निकाल दिया था किन्तु मुझे लोक में निन्दित होने पर भी मेरे पति ने कुछ समय तक मेरा पोषण किया था ॥४६॥ मेरे दुर्भाग्य से वह भी मुझे असहाय छोडकर परलोक-गामी हो गया है । अब मैं इस निर्जन वन मे अत्यन्त पीडित होकर अबेली घूम रही थी ॥४७॥ भाग्यवश मैं तेरे समीप मे आ निकली हूँ । तूने मुझको मौत से उबार लिया है । ऐसे उसने मुझको अपना सब ममाचार मुना दिया था ॥४८॥ इसके अनन्तर हम दोनो गृहस्थी बनकर उमी मन्दिर मे माम खाकर तथा मदिरा पान करके मत्त होत हुये प्रमत्न हो रहे थे ॥४९॥५०

तनुवस्त्रापरिज्ञानी नृत्य चकृव मोहितौ ।
प्रारब्धकर्म भोगान्तभावा युगपदागतौ ॥५१
यमदूतास्तदायाता पाणहस्ता भयकरा ।
नेतुमावा नृत्यरतौ मुघोरा यमयातनाम् ॥५२
तत प्रसन्नो भगवाःकर्मणा मम मानद ।
देवावमथमस्वारमजितेन कृतेन न ॥५३
स्वदूतान्प्रेषयामास स्वभक्तायनतत्पर ।

ते दूता देवदेवस्य शखचक्रगदाधरा ॥५४

सहस्रसूयसकाशा सर्वे चारुचतुर्भुजा ।

किरीटकण्डलधरा हारिणो वनमालिन ॥५५

दिशो वितिमिरा विप्र कुवन्त स्वेन तेजसा ।

भयकरान्पाशहस्तान्दष्टिणो यमकिङ्करान् ॥५६

भावयोर्ग्रहण यत्तानूचु कृष्णपरायणा ॥५७

(उस समय मैं अपने शरीर की सब मुष्ण खोकर हम मोह में नृत्य करने लगे थे) हमको अपने शरीर और वस्त्रों का भी कुछ होश हवास नहीं रहा था । उस समय में हम दोनों का ही प्रारब्ध भोग का अन्त आ गया था ॥५१॥ (हम दोनों नृत्य में मस्त हो रहे थे कि महान् भयकर यमदूत हाथ में फाँसी के पाश लिये हुये वहाँ नरकों में ले जाने के लिये आ पहुँचे थे ॥५१॥) हे मानद ! उसी समय मैं भगवान् विष्णु ने भी अपने देवानय की स्वच्छता रखने के कारण परम प्रसन्न होकर अपने दूतों को भेज दिया था ॥५३॥ भगवान् सदा अपने भक्तों की सुरक्षा का ध्यान रखत हुये तत्पर रहा करते हैं । देवैश्वर के दूत शख चक्र और गदा धारण करने वाले थे ॥५४॥ वे सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाश से युक्त थे सबके चार भुजाय थीं किरीट कुण्डल और वनमाला धारण किये हुये थे ॥५५॥ हे परमपद ! उसी परम दिव्य कारित से जिज्ञासा से समस्त आधिकार दूर हो गया था । इस प्रकार से श्रीकृष्ण भगवान् के पार्यन्त ने हम दाना की घात में प्रस्तुत उन महान् भयकर यमदूतों में जो बड़ी २ दाढ़ी वाला पाशधारी वहाँ पर थे उनसे कहा था ॥५६॥५७

भाभां नरादुरानारा विवकपरिवर्जिता ।

मुञ्चध्वमती निष्पापो दम्पती हरिश्च लभा ॥५८

विवकस्त्रिणुलागु मपदामादिधारणम् ।

अपापपापधीयन्तु । विद्यात्पुपाधमम् ॥५९

पापे त्वपापघोर्यस्तु तं विद्यादधमाधमम् ॥६०
 युष्माभि सत्यमेवोक्तं किं त्वेतीपापिसत्तमौ ।
 यमेन पापिनो दण्डवास्तन्नेप्यामो वय त्विमौ ॥६१
 श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
 धर्माधर्मविवेकोऽयं तन्नेध्यामो यमान्तिकम् ॥६२
 एतच्छ्रुत्वात्किमुपिता विष्णुदूता महींजसः ।
 प्रत्यूचूस्तान्यमभटानधर्मो धर्ममानिनः ॥६३

श्री विष्णुदूतो ने कहा—अरे क्रूर पुरुषा । तुम बहुत ही विवेक-
 हीन और दुराचारी हो । तुम इन हरि क निष्ठाप दम्पतियों को छोड़
 रा ॥५८॥ वैलोक्य मे विवेक ही ममस्त सम्पदाओं का आदि कारण
 माना जाय करता है । जो पाप रहित प्राणी में पाप वृद्धि रखता है
 तथा पापी का पाप रहित समझता है उसका महान अधम पुरुष ही
 समझना चाहिए ॥५९॥६०॥ यमराज के दूतो ने उत्तर दिया—हे
 पापंदो । आपन जो कुछ भी कहा वह अक्षरशः सत्य है किन्तु ये दोनों
 तो छटे हुए बदमाश हैं । यमराज ऐसे महा पापियो को ही दण्ड दिया
 करते हैं । इसीलिए हम इनका पकड़ कर लिए जाते हैं ॥६१॥ वेद
 जिस कर्म का प्रतिपादन किया करता है वही धर्म होता है और वेद
 जिस कर्म का निषेध किया करता है वही अधर्म है । यही धर्माधर्म
 का विचार हम जानते हैं । इसीलिए हम इनको यमराज के सामने
 लिये जाते हैं ॥६२॥ इस उनके उत्तर को सुनकर महा पराक्रमी विष्णु
 के पापंदो को बड़ा क्रोध हो गया और अधर्म वा धर्म समझने वाले
 इन यमराज के दूतो न उन्होंने कहा—॥६३

अहो कष्ट धर्मदृशामधर्मं स्पृशते सभाम् ।
 सम्यग्विवेकशून्याना निदानं ह्यापदा महत् ॥६४
 तर्कणाद्यविशेषेण नरकाध्यक्षता गता ।
 यूय किमर्थमद्यापि कर्तुं पापानि सोद्यमा ॥६५

स्वकर्मक्षयपर्यन्तं महापातकिनोऽपि च ।
 तिष्ठन्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥६६
 पूर्वसंचितपापानामदृष्ट्वा निष्कृतिं वृथा ।
 किमर्थं पापकर्माणि करिष्येऽथ पुनः पुनः ॥६७
 श्रुतिप्रणिहितो धर्मः सत्य सत्य न सशयः ।
 किन्त्वाभ्या चरितान्धर्मान्प्रवक्ष्यामो यथातथम् ॥६८
 एतो पापविनिर्मुक्तौ हरिशुश्रूपणे रतौ ।
 हरिणा त्रायमाणौ च मुञ्चध्वमविलम्बितम् ॥६९
 एषा च नर्तन चक्रे तथैव ध्वजरोपणम् ।
 अन्तकाले विष्णुगृहे तेन निष्पापता गतौ ॥७०

विष्णु दूतों ने कहा—अहो ! अत्यन्त ही दुःख की बात है कि धर्म के द्रष्टाओं की सभा को अधर्म स्पर्श करने की इच्छा कर रहा है । यह अधर्म जिसका ठीक २ विचार ही नहीं कर सकते हैं उनको बहुत अधिक आपत्ति में डाल दिया करता है ॥६४॥ अरे ! तुम तो बहुत ही विवेक शून्य हो । तुमको ऐसा होने पर भी किसने नरको का जेलर बना दिया है । अरे ! तुम अभी भी पाप करने के लिये ही बमर कसे खड़े हुए हो ? ॥६५॥ अरे ! जिस समय तक पाप कर्मों का क्षय नहीं हुआ करता है तब तक घोर महापातकी भीषण नरको में रहा करते हैं और प्रलय काल तक भी वहीं पर घोर यातनायें सहन किया करते हैं ॥६६॥ अरे ! तुम लोगो का अभी तक पहिले किये हुए सञ्चित पापो से तो छुटकारा नहीं हुआ है और फिर भी तुम लोग पाप कर्मों के ही करने पर उतारू क्यों हो रहे हो ? ॥ ६७ ॥ तुमने जो यह कहा था कि धेद में जिसका विघ्न है वही धर्म है । यह सर्वथा सत्य है । अब हम इन दोनों प्राणियों के किए हुए धर्मों को बतलाते हैं ॥६८॥ ये दोनों ही भगवान् विष्णु की पूजा करने से विरह्नु न पाप रहित हो गये हैं । अब भगवान् विष्णु इनकी रक्षा करना

चाहते हैं अब आप लोग इन दोनो को तुरन्त ही छोड़ दो ॥ ६६ ॥
(इतने इस अन्तिम समय में इस भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा
सगाई है और नृत्य किया है। इसीलिये बिल्कुल निष्प होकर विशुद्ध
भक्त हो गये हैं ॥७०॥)

अन्तकाले तु यन्नाम श्रुत्वोक्त्वापि च वै सकृत् ।
लभते परम स्थान किमु शुश्रूषये रत्ता ॥७१
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकै ।
कृष्णसेवी नरोऽन्तेऽपि लभते परमागतिम् ॥७२
यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणः ।
ते दूता सहसा यान्ति पापिनोऽपि परा गतिम् ॥७३
मुहूर्तं वा मुहूर्ताद्धं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे ।
सोऽपि याति पर स्थान किमु द्वार्शिशवत्सरान् ॥७४
उपलेपनकर्तारो समार्जनपरायणौ ।
एतौ हरिगृहे नित्य जीर्णशीर्णाधिरोपकौ ॥७५
जलसेचनकर्तारौ दीपदौ हरिमन्दिरे ।
कथमेतौ महाभागौ यातनाभोगमर्हथ ॥७६
इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते च्छित्त्वा पाशास्तदैव हि ।
आरोप्यावा विमानाप्रच यमुविष्णो पर पदम् ॥७७

जो प्राणी अपने जीवन के अन्त काल में एक वार भी भगवान्
के परम पावन नाम का उच्चारण कर लेता है अथवा भगवन्नाम का
श्रवण कर लेता है तो उसको परम पद की प्राप्ति हुआ करती है फिर
जो स्वयं ही भगवान् की सेवा में लग्न हो उनको परम पद प्राप्त होता
है तो क्या आश्चर्य की बात है ॥७१॥ चाहे कोई पापी हो या महा
पातकी हो श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले को अन्त में परम गति प्राप्त
हुआ करती है ॥७२॥ अरे हे यमदूतों ! देखो, जो संन्यासियों और
विष्णु भक्तों की सेवा शुश्रूषा में निरत रहा करते हैं वे वैसे भी पापी हा

तो भी परम गति के पाने के अधिकारी होते हैं ॥७३॥ अरे महामूढो ! जो एक बार भी या आधे मुहूर्त भी हरि मन्दिर में निवाम विया करता है वह भी परम पद प्राप्त कर लेता है फिर ये दोनों प्राणी तो बत्तीस वर्ष तक इस विष्णु मन्दिर में रहे हैं ॥७४॥ ये दोनों इस विष्णु भगवान के मन्दिर को लीपते रहा करते थे इसमें कुहारी लगा कर स्वच्छ रखते थे तथा जहाँ-तहाँ इसकी मरम्मत किया करते रहते थे जोकि इसका अत्यन्त जोर्ण-शीर्ण भाग था ॥७५॥ ये इस मन्दिर में जल का छिडकाव किया करते थे और दीपक जलाया करते थे । इतनी सेवा करने पर ये महाभागी नरक में जाने के पात्र कैसे बने रह गये हैं ? ॥७६॥ विष्णुदूतो ने यह कहते हुए यमदूतो के पाशों का छेदन कर दिया था और हम दानो को एक दिव्य विमान में बिठाकर वे विष्णु लोक को लेकर चल दिए थे ॥७७॥

तत्र सामीप्यमापन्नौ देवदेवस्य चक्रिणः ।
 दिव्यान्भोगान्भुक्तवन्तौ तावत्काल मुनीश्वर ॥७८॥
 दिव्यान्भोगास्तु तत्रापि भुक्त्वा यातौ महीमिमाम् ।
 अत्रापि सपदतुला हरिसेवाप्रसादतः ॥७९॥
 अनिच्छया कृतेनापि सेवनेन हरेर्मुने ।
 प्राप्तमीदृक् फलं विप्र देवानामपि दुर्लभम् ॥८०॥
 इच्छयाराध्य विश्वेशं भक्तिभावेन माधवम् ।
 प्राप्स्याव परम श्रेय इति हेतुनिरूपितः ॥८१॥
 अवशेनापि यत्कर्म कृतं स्यात्सुमहत्फलम् ।
 जायते भूमिदेवेन्द्र किं पुन श्रद्धया कृतम् ॥८२॥
 एतदुक्तं निशम्यासी स मृनोन्द्रो विभाण्डकः ।
 प्रशम्य दम्पती तो तु प्रयगी स्वतपोवनम् ॥८३॥
 तस्माज्जानीहि देवर्षे देवदेवस्य चक्रिणः ।
 परिचर्या तु सर्वेषां कामधेनूपमा स्मृता ॥८४॥

हरिपूजापराणा तु हरिरेव सनातन ।
 ददाति परम श्रेय सर्वकामफलप्रद ॥८५॥
 य इद पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम् ।
 पठेच्च शृणुयाद्वापि सोऽपि याति परा गतिम् ॥८६॥

ह मुनीश्वर । वहाँ पर भगवान् चक्रधारी विष्णु के समीप में पहुँच कर हमने दिव्य भागा का सुखोपभोग किया था ॥७८॥ इस तरह से वहाँ पर चिरकांत तक दिव्य भाग प्राप्त कर अब पुन इम भूमण्डल में उत्पन्न हुए हैं तो यही पर भी भगवान् विष्णु के प्रसाद से अतुल सुख-सम्पत्ति मिली है ॥७९॥ हे विप्र । हे मुनिवर । इस रीति से इच्छा न होने पर भी बनी हुई विष्णु की सेवा से ही ऐसा देव दुलभ फल मिला है ॥८०॥ हमारा अब सेवा करने का यही कारण है कि अब हम इच्छापूर्वक भक्ति-भाव से माधव की सेवा-आराधना करके परमोत्तम श्रेय की प्राप्ति करें ॥८१॥ हे भूदेवेश्वर । अवशता के होते हुए भी किया हुआ कर्म जब ऐसा महान् फल देता है तो फिर परम श्रेय के साथ किए हुए श्री हरि भजन का क्या कहना है ॥८२॥ इस कथन का श्रवण कर विभाण्डक मुनि ने उन दोनों सम्पत्ति की बहुत प्रशंसा की और फिर वे अपने तपोवन को वापिस चले गये थे ॥८३॥ अत हे देवर्षे । आप समझ लीजिए चक्रधारी भगवान की सेवा का फल सबको कामधेनु के ही समान हुआ करता है ॥८४॥ श्री हरि भगवान् की पूजा में निमग्न रहने वाले जनों को समस्त कामनायें पूर्ण करने वाले श्री हरि ही परम श्रेय प्रदान किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जो कोई भी प्राणी समस्त पापों के विनाश करने वाले इस परम पावन आख्यान का श्रवण या वाचन करता है वह भी परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥८६॥



॥ हरिपञ्चरात्र वृत ॥

अन्यद्वृत प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत ।
 दुर्लभ सर्वलोकेषु विख्यात हरिपञ्चकम् ॥१
 नारीणा च नराणा च सर्वदुःखनिवारणम् ।
 धर्मकामार्थमोक्षाणा निदान मुनिसत्तम ॥२
 सर्वाभीष्टप्रद चैव सर्वव्रतफलप्रदम् ।
 मार्गशीर्षे सिते पक्षे दशम्या नियतेन्द्रियः ॥३
 कुर्यात्स्नानादिकं कर्म दन्तधावनपूर्वकम् ।
 कृत्वा देवाचनं सम्यक्तथा पञ्च महाध्वरान् ॥४
 एकाशी च भवेत्तस्मिन् दिने नियममास्थित ।
 ततः प्रातः समुत्थाय ह्येकादश्या भुनीश्वर ॥५
 स्नानं कृत्वा यथाचारं हरिं चैवाचंयेद् गृहे ।
 स्नापयेद्देवदेवेशं पञ्चामृतविधानतः ॥६
 अर्चयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
 धूपदीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च प्रदक्षिणी ॥७

श्री रामकान्यायंजी ने कहा—हे नारद । अब मैं आपके सामने
 एक अन्य व्रत का तत्त्व बतलाता हूँ—एक हरिपञ्चक नाम वाला व्रत
 इस शैलोत्र में परम प्रसिद्ध है और यह परम दुर्लभ है ॥ १ ॥ इस
 व्रत के करने से मनुष्यों के और नारियों के सभी दुःख दूर हो जाया
 करते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस व्रत से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन
 चारों पुष्टयार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है ॥ २ ॥ इससे मानवी की
 सभी मनोकामनाएँ सफल हुआ करती हैं और अन्य सभी व्रतों का फल
 इनके करने से प्राप्त हो जाया करता है यह ऐसा ही है । मार्गशीर्ष
 मास में षडशम्या की दशमी के दिन अपनी गमस्त इन्द्रियों को यश म
 कर दोनून एक स्नान आदि नित्य एक आशयक कर्मों को करने

भस्मी भाँति से देव पूजन और पञ्च यज्ञ करे तथा उस दिन के नियमों का परिपालन करने के लिये एक समय में आहार ग्रहण करना चाहिए। एकादशी तिथि के दिन पात काल में सत्र शारीरिक कृत्यों से निपट कर श्री हरि का अर्चन करे और पञ्चामृत से भगवान् श्री हरि का स्नान कराना चाहिए ॥ ३-६ ॥ भगवान् का अर्चन भक्ति भावना के सहित सभी आवश्यक गन्ध, पुष्प, घूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल एवं प्रदक्षिणा आदि से करना चाहिए ॥ ७ ॥

संपूज्य देवेदेवेश मिम मन्त्रमुदीरयेत् ।
 नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ॥८
 नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने ।
 एव प्रणम्य देवेश वासुदेव जनार्दनम् ॥९
 वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ह्युपवास समर्पयेत् ।
 पञ्चरात्र निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ॥१०
 त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्ममाभीष्टप्रदो भव ।
 एव समर्प्य देवस्य उपवास जितेन्द्रिय ॥११
 रात्रौजागरुण कुयदिकादश्यामथो द्विज ।
 द्वादश्या च त्रयोदश्या चतुर्दश्या जितेन्द्रिय ॥१२
 पौर्णमास्या च कर्त्तव्यमेव विष्णुवर्चन मुने ।
 एकादश्या पौर्णमास्या कर्त्तव्य जागर तथा ॥१३
 पञ्चामृतादिपूजा तु सामान्या दिनपञ्चसु ।
 क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पौर्णमास्या तु शक्तित ।
 तिलहोमश्च कर्त्तव्यस्तिलद न तथैव च ॥१४

भगवान् की पूजा करके फिर उनके समक्ष में निम्न मन्त्र का उच्चारण करके प्रार्थना करनी चाहिए । 'नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तुते । नमस्त सर्वरूपाय सर्वसिद्धि प्रदायिने ।' अर्थात् हे भगवन् । आप ज्ञान के स्वरूप वाले हैं आपको मेरा प्रणाम है । आप ज्ञान के

प्रदान करने वाले हूँ आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। आप समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं आपको मेरा नमस्कार है। आप सर्व रूप के लिये मेरा प्रणाम है। इस विधि से भगवान् देवेश्वर वासुदेव का अर्चन करना चाहिए ॥ ८१ ॥ इससे अनंतर जो उपवास भगवत्प्रीत्यर्थ किया है उसे भगवान् की सेवा में समर्पित कर देवे। उसका मन यह हूँ— 'पञ्चरात्र निराहारा ह्यद्य प्रभृति केशव। त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्। ममाभीष्टप्रदोभव' अर्थात् हूँ केशव। मैं आपकी ही आज्ञा प्राप्त कर पाँच रात्रि तक निराहार रहकर उपवास करने का इच्छुक हूँ। अतएव हे इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन्! आप मेरे सभी मनोरथ पूर्ण करिये। इस रीति से भगवान् की सेवा में उपवास का अर्पण करे। हे द्विजवर! फिर उस एकादशी के दिन रात्रि में जागरण करना चाहिए। हे मुनिवर! फिर द्वादशी—त्रयोदशी—चतुर्दशी तथा पूर्णिमा का भी इसी विधान से भगवत्पूजन करे। सिर्फ एकादशी और पूर्णिमा की रात्रियों में जागरण करे ॥ १०-१३ ॥ साधारणतया पाचों दिन पञ्चामृत आदिसे पूजन करे। पूर्णिमा के दिन भगवान् को दूध से स्नान करावे और यथा शक्ति तिला का दान तथा तिलों से होम करना चाहिए ॥१४॥

तत पष्ठे दिने प्राप्ते निर्वृत्य स्वाश्रमक्रियाम् ।
 सप्राश्य पञ्चगव्यं च पूजयेद्विधिवद्धरिम् ॥१५॥
 ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्विभवे सत्यवारितम् ।
 तत स्वबन्धुभिः साद्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यत ॥१६॥
 एव पौषादिमामेषु कार्तिकान्तेषु नारद ।
 शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना नर ॥१७॥
 एव सवत्सरं वार्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।
 पुनः प्राप्ते मागंशोर्षे कुर्यादुद्यापनं व्रतं ॥१८॥
 एकादश्या निराहारो भवेत्पूर्वमिन्द्रिजः ।

द्वादश्या पञ्चगव्य च प्राशयेत्सुसमाहित ॥१६
 गन्धपुष्पादिभि सम्यग्देवदेव जनार्दनम् ।
 अभ्यर्च्योपायन दद्याद् ब्राह्मणाय ।जतेन्द्रिय ॥२०
 पायस मधुसमिथ घृतयुक्त फलान्वितम् ।
 सुगन्धजलसयुक्त पूर्णकुम्भ सदक्षिणम् ॥२१

इसके उपरान्त छठवें दिन अपने आश्रम के नित्य वृत्त्यो से निवृत्त होकर पञ्च गव्य का प्राशन करे तथा विधि पूर्वक भगवान् का यजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ यदि पास में कुछ धैभव हो तो ब्राह्मणों को भोजन करावे और इसके पश्चात् बान्धवों के सहित एकत्र बैठकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ हे नारद । इसी रीति से पौष आदि मासों में भी आगे आने वाले कार्तिक मास पर्यन्त प्रतिमास इस व्रत का समाचरण करना चाहिए । सभी मासों के व्रतों में विधान यही पूर्व में कहा हुआ है ॥१७॥ इस तरह से पूरे वर्ष में किया हुआ यह व्रत समस्त पापों का नाश कर दिया करता है । व्रतधारी पुरुष को पुनः मार्गशीर्ष मास के आने पर ही इस महाव्रत का उद्यापन करना चाहिए ॥१८॥ हे द्विजवर । एकादशी तिथि के दिन पूर्व की भांति ही निराहार रहे तथा द्वादशी के दिन सावधानता के साथ पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए ॥१९॥ देवेश्वर जनार्दन भगवान् का गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करे—जितेन्द्रिय रहे और ब्राह्मण का भेट देव । ॥२०॥ उमदान में मधु और घृत मिश्रित पायस—फल—सुगन्धित जल से पूर्ण कलश और द्रव्य दक्षिणा होने चाहिए ॥२१॥

वस्त्रेणाच्छादित कुम्भ पञ्चरत्नममन्वितम् ।
 दद्याद्दद्यात्सविदुः ब्राह्मणाय मुनीश्वर ॥२२
 सर्वात्मन् सवभूतश्च सर्वव्यापिन्सनातन ।
 परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव ॥२३
 अनन पायस दत्त्वा ब्राह्मणाभ्यजयत्तत ।

शक्तितो बन्धुभि साद्धं वय भुञ्जीत वाग्यत ॥२४
 व्रतमेतत्, य कुर्याद्वरिपञ्चकसंज्ञितम् ।
 न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥२५
 व्रतमेतत्प्रकर्त्तव्यमिच्छद्विभर्मोक्षमुत्तमम् ।
 समस्तपापकान्तारदावनलसम द्विज ॥२६
 गवाकोटिसहस्राणि दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
 तत्फल लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासत ॥२७
 यस्त्वेतच्छणुयाद्भक्त्या नारायणपरायण ।
 स मुच्यते महाधोरै पातकाना च कोटिभि ॥२८

जो कलश दिया जावे वह पञ्चरत्नो से युक्त और वस्त्र से समावृत होना चाहिए । इस दान को किसी अध्यात्मवेत्ता विद्वान् ब्राह्मण को ही देना चाहिए ॥ २२ ॥ फिर निम्न मन्त्र का उच्चारण कर प्रार्थना करे— 'सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन । गरमाघ्न प्रदानेन सुप्रीनो भवमाधव ।' अर्थात्—हे भगवन् ! आप सबके आत्म स्वरूप वाले हैं और आप सभी भूतों के प्रभु हैं । हे सर्वव्यापक ! आप सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) माधव हैं । इस परम श्रेष्ठ अन्न के प्रदान में आप मुझ पर प्रसन्न होइये । इसी मन्त्र को पढत हुए ब्राह्मण को धीरे अर्पित करे । फिर यथा शक्ति ब्रह्मभोज करवावे और सबके पश्चात् स्वयं भी अपने षोडशों के साथ बँठकर भोजन करे ॥२३॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस हरिपञ्चक नाम वाले व्रत को किया करता है वह ब्रह्मलाव से पुन यहाँ पर कभी भी चापिस नहीं आया करता है ॥ २५ ॥ हे द्विजवर ! जो मनुष्य परम श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति की अभिन्नापा रखते हैं उनको सब पापों के बन्धन के दावानल स्वरूप इस व्रत को अवश्य ही करना चाहिए ॥ २६ ॥ दश अरब गौओं के दान में जो पुण्य-पत्र प्राप्त होता है वही पुण्य-पत्र दस उपवास के करने में प्राप्त हुआ करता है ॥२७॥ जो कोई भगवद्भक्त इस उपवास करने के विधान

को सुनता है और भक्तिभाव से इसका श्रवण किया करता है वह कोटिश महापापों से विमुक्त हो जाता है ॥२८॥



॥ मासोपमास व्रत ॥

अन्यद् व्रतवर वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहित ।
 सर्वपापहर पुण्य सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥
 आपाढे श्रावणे वापि तथा भाद्रपदेऽपि च ।
 तथैवाश्विनके मासे कुयदितद्ब्र द्विज ॥२॥
 एतेष्वन्यतमे मासे शुक्लपक्षे जितेन्द्रिय ।
 पाशयेत्पञ्चगव्यं च स्वपेद्विष्णुसमीपत ॥३॥
 ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च ।
 श्रद्धया पूजयेद्विष्णुं वशी क्रोधविवर्जित ॥४॥
 विद्वद्भिः सहितो विष्णुमर्चयित्वा यथोचितम् ।
 सकल्पं तु ततः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥
 मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ।
 मासान्तपारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया ॥६॥
 तपारूपं नमस्तुभ्यं तपसा फलदायकं ।
 ममाभ्योऽष्टप्रदं देहि सर्वविघ्नान्निवारय ॥७॥

श्री सनकाचाय ने कह — हे नारद । मैं इस समय में एक अत्युत्तम व्रत के विषय में ब्रणन करके आपका सुनाता हूँ आप उसको समाहित होकर सुनिये । यह व्रत ममस्त महान् से भी महान् पापों का विनाशक है और मरुत लोको का अत्यधिक उपचार किया करता है ॥१॥ इस व्रत के करने का समय आपाढ श्रावण भाद्रपद और आश्विन मास होता है ॥२॥ इन उक्त मासों में स किसी भी एक मास में स्वच्छया एवं सुविधा के अनुसार शुक्लपक्ष में अपनी समस्त

इन्द्रियो पर नियन्त्रण करके पञ्चगव्य का प्राशन कर भगवान् विष्णु के समीप में ही शयन करना चाहिए ॥ ३ ॥ प्रातः काल में उठकर अपन नित्य कृत्य से निपट कर बहुत ही श्रद्धा के साथ भगवान् विष्णु का अर्चन करे और इस व्रत के अनुष्ठान के समाचरण के समय में अपनी सब इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए क्रोध विल्कुल भी नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ विद्वानो को साथ में रखकर विष्णु का पूजन कर स्वस्ति-वाचन करे तथा सङ्कल्प करना चाहिए । इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करे—“मासमेक निराहारो ह्यद्य प्रभृति केशव । मासान्त पारणकुर्वे देवदेव तवाज्ञया ।” अर्थात्—हे देवो के देव । हे केशव । मैं आपसे आज्ञा प्राप्त करके एक मास पर्यन्त निराहार व्रत करने की अभिलाषा रखता हूँ और मास के अवसान में मैं धारणा करूँगा ॥ ६ ॥ “तपोरूपं नमस्तुभ्य तपसा फलदायक । ममभीष्टं पदं देहि सर्वं विष्णाश्रिवान्य ।” अर्थात् हे तप के ही नाम और स्वरूप वाले प्रभो । मैं आपको प्रणाम अर्पित करता हूँ । आप ही सब तपश्चर्याओं के फल का प्रदान करने वाले हैं मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये और मेरे इस व्रत में जाने वाले विद्वानो को दूर करिये ॥ ७ ॥

एव समर्प्य देवस्यविष्णोर्मासव्रत शुभम् ।
 ततः प्रभृति मासान्तं निवसेद्धरिन्दरे ॥८
 प्रत्यहं स्नापयेद्देवपञ्चामृतविधानतः ।
 दीपनिरन्तरं कुर्यात्तस्मिन्मासे हरेर्गृहे ॥९
 प्रत्यहं खादयेत्काष्ठह्यपामार्गममुद्भवम् ।
 ततः स्नायीत विधिन्नारायणपरायण ॥१०
 ततः सस्नापयेद्विष्णुपूर्वदत्प्रयताञ्चयेत् ।
 ब्राह्मणान्भोजयेच्छुक्लघ्राभक्तियुक्तं गदक्षिणाम् ॥११
 स्वयं च वन्धुभिः साद्धं भुञ्जीत प्रयतेन्द्रियः ।

एव मासोपवासांश्च व्रती कुर्यात्त्रयोदश ॥१२
 वर्षान्ते वेदविदुषे वा प्रदद्यात् सदक्षिणाम् ।
 भोजयेद्ब्रह्मणांस्तत्र द्वादशैव विधानतः ।
 शक्त्या च दक्षिणा दद्याद्ब्रह्मण्याभारणानि च ॥१३
 मासोपवासत्रितय यः कुर्यात्सयतेन्द्रियः ।
 आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य द्विगुण फलमश्नुते ॥१४

इस प्रकार से भगवान् विष्णुदेव की सेवा में परम शुभ मास व्रत का समर्पण करके उसी दिन से एक मास पर्यन्त भगवान् विष्णु के मन्दिर में ही निवास करे ॥ ८ ॥ प्रति दिन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए और उस पूरे मास में देवालय में अखण्ड दीपक को प्रज्वलित रखना चाहिये ॥ ९ ॥ प्रतिदिन चिरचिटा की दातुन करे और भगवान् नारायण की भक्ति में मग्न रहता हुआ स्नान करे ॥१०॥ इसके अनन्तर भगवान् को स्नान करावे और पूर्ववत् परम समाहित होकर विष्णुदेव का अर्चन करना चाहिये । जब इस रीति से व्रत करते हुए मास का अन्त होवे तब उस अवसान काल में जितनी अपनी आर्थिक शक्ति हो उसी के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन श्रद्धापूर्वक कराना चाहिए । तथा उचित दक्षिणा देवे । ब्रह्मभोज और दक्षिणा के बिना कोई भी अनुष्ठान सफल नहीं हुआ करता है । पुण्यत दक्षिणा देने में कृपणता करना महान् मूर्खता है ॥११॥ अपनी समस्त इन्द्रियो को वश में रखकर फिर स्वयं भी बान्धवगण के साथ भोजन करना चाहिये । व्रतधारी पुरुष को तेरह मासोपवाम (मास भर के व्रत) करने चाहिए ॥ १२ ॥ जब वर्ष पूर्ण हो जावे तो किसी वेदो के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणा के सहित गौ का दान देना चाहिये । इस समय में सविधि बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा यथा शक्ति दक्षिणा तथा भूपण ब्राह्मणों को देवे ॥ १३ ॥ जो पुरुष तीन मास का व्रतोपवास करता है और इन्द्रियो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता

व्रती को नरमघ यज्ञ का पाँच गुना पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥१६॥ जो पुरुष नौ बार इस व्रत को कर लेता है उस पुरुष को गोमेघ यज्ञ का त्रिगुणित फल प्राप्त हुआ करता है ।२०। हे महान् श्रेष्ठ मुनिवर ! इस पराक व्रत का जो मनुष्य दस बार कर लिया करता है उम व्रतधारी पुरुष को ब्रह्ममेघ यज्ञ का त्रिगुना पुण्य फल मिला करता है ।२१।

एकादश पराकाश्च य कुर्यात्सयतेन्द्रिय ।
 स याति हरिसारूप्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥२२
 त्रयोदश पराकाश्च य कुर्यात्प्रयतो नर ।
 स याति परमानन्द यत्र गत्वा न शोचति ॥२३
 मासोपवासनिरता गङ्गास्नानपरायणा ।
 धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न सशय ॥२४
 अवीराभिश्च नारीभिर्येतिभिर्ब्रह्मचारिभि ।
 मासोपवास कर्त्तव्यो वनस्थैश्च विशेषत ॥२५
 नारी वा पुरुषो वापि व्रतमेतत्सुदुलभम् ।
 कृत्वा मोक्षमवाप्नोति योगिनामपि दुलभम् ॥२६
 गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा ।
 मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतन्मोक्षभागभवेत् ॥२७
 इद पुण्य व्रताट्यान नारायणपरायण ।
 शृणुयाद्वाचयेद्वापि सर्वपापं प्रमुच्यते ॥२८

जो कोई सुदृढ मनुष्य इन्द्रिय जित होकर ग्यारह पराक व्रत कर लेता है वह मक्ल सुखोपभोगा से परिपूण श्री हरि के सारूप्य को प्राप्त कर लिया करता है ।२२। जो कोई मनुष्य प्रयत्न पूर्वक तरह पराक व्रत वा साङ्गापाङ्ग कर लेता है । इसकी प्राप्ति करके फिर उसको कभी भी शोक करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ करता है ॥ २३ ॥ जो मासोपवास करत है गङ्गा स्नान में जो परायण रहत है

और धर्म का प्रचार करते हैं वे युक्त ही होते हैं ॥२५॥ पति-पुत्रादि से रहित नारी, सन्यासी, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारी को यह व्रत ध्यानपूर्वक करना चाहिए ॥२५॥ कोई स्त्री हो या पुरुष हो जो इस महान् दुर्लभ एव कठिन व्रत को कर लेता है उसको बड़े-बड़े योगाभ्यासियों को भी अति दुर्लभ मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ॥२६॥ जो कोई गार्हस्थ्य-श्रमी हो चाहे वानप्रस्थ हो अथवा भिक्षु (सन्यासी) हो या ब्रह्मचारी हो, मूर्ख हो अथवा विद्वान् हो इस व्रत के इस विधान एव आख्यान को श्रवण करके ही मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है ॥ २७ ॥ जो भगवान् की भक्ति में परायण पुरुष इस परम पवित्र व्रत के आख्यान का श्रवण करता है अथवा इसका पठन किया करता है वह समस्त प्रकार के महापापों से भी मुक्त होजाया करता है तथा उसकी अन्त में सद्गति हो जाती है ॥२८॥

गन्तव्यं च

॥ एकादशी व्रत—भद्रशील उपाख्यान ॥

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 सबपापप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
 ग्राह्यणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव योपिताम् ।
 मोक्षदं कुर्वता भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विज ॥२॥
 एकादशीव्रतं नाम सर्वभीष्टप्रदं नृणाम् ।
 वर्त्तव्यं सर्वथा त्रिषु विष्णुप्रीतिकरं यत ॥३॥
 एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयास्मभयारवि ।
 यो भुङ्क्ते सोऽत्र पापीयान्परत्र नरकं व्रजेत् ॥४॥
 उपवासपत्रं लिप्युज्ज्वलाद्भुक्तिरुत्तुष्टम् ।
 पूर्वापरदिने रात्रावहोरात्रे तु मध्यमे ॥५॥

एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानव ।
 स भोक्तु सर्वपापानि स्पृहयालुन सशय ॥६
 भवेद्दशम्यामेकाशी द्वादश्या च मुनीश्वर ।
 एकादश्या निराहारो यदि मुक्तिमभीप्सति ॥७

श्री सनकाचाय महर्षि ने कहा—हे नारद ! अब मैं आपके समक्ष में सम्पूर्ण पापों को शांत कराने वाले और सभी मनोकामनाओं को पूरा एवं सफल करने वाले तथा त्रिनोकी में परम प्रतिष्ठित एक अन्य महा व्रत का वर्णन करता हूँ ॥१॥ यह महा व्रत भगवान् विष्णु को परम प्रिय है । स्त्री हो या पुरुष ब्राह्मण हो या क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी इस व्रत का बड़ी भारी निष्ठा एवं भक्ति के साथ किया करता है उसको यह व्रत मोक्ष दे दिया करता है ॥२॥ यह व्रत मानवा की मन की कामनाओं को पूरा कर दिया करता है । इस व्रत का नाम एकादशी व्रत है । इस व्रत को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि यह व्रत भगवान् विष्णु को अधिक प्रसन्न करने वाला बताया गया है ॥३॥ मास में दो पक्षा में एकादशी तिथि आया करती है । इस दिन भोजन विलुप्त नहीं करना चाहिए । जो एकादशी के दिन भोजन किया करता है वह महा पापी कहा जाया करता है । परलोक में उसे घोर नरक की यातना सहनी पड़ती है ॥४॥ इस उपवास के पूरा करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति का चार समय के भोजन का त्याग करना पड़ता है । दशमी तिथि को रात्रि का भोजन, एकादशी में दोना समय का भोजन और द्वादशी तिथि को रात्रि के समय का भोजन त्याग देना चाहिये ॥५॥ जो मनुष्य एकादशी तिथि के दिन भोजन करने की इच्छा किया करता है उसको पाना सभी पापों के कुपला को भागने का श्राव है ॥६॥ हे मुनिवर ! यदि मुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा हो तो दशमी और द्वादशी को

एक २ बार ही भोजन करे और एकादशी को निराहार रहना चाहिये
॥ ७ ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि विप्र हरेर्दिने ॥८
ब्रह्महत्यादिपापाना कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ।
एकादश्या तु यो भु क्ते तस्य नैवास्ति निष्कृति ॥९
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातके ।
एकादश्या निराहार स्थित्वा याति परा गतिम् ॥१०
एकादशी महापुण्या विष्णो प्रियतमा तिथि ।
ससेव्या सर्वथा विप्रैः ससारच्छेदलिप्सुभि ॥११
दशम्या प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।
स्नापयेद्विधिवद्विष्णु पूजयेत्प्रयतेन्द्रिय ॥१२
एकादश्या निराहारो निगृहीतेन्द्रियो भवेत् ।
शयीत सन्निधौ विष्णोर्नारायणपरायण ॥१३
एकादश्या तथा स्नात्वा सम्पूज्ये च जनार्दनम् ।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् ततस्त्वेवमुदारयत् ॥१४

हे विप्रवर ! श्री हरि के दिन में ब्रह्म हत्या प्रभृति सम्पूर्ण पाप अन्न वा समाश्रय लेकर रहा करत हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातको स तो उपाय करने पर किसी प्रकार से छुटकारा प्राप्त हो भी सकता है किन्तु एकादशी के दिन अन्न का भोजन करने वाले को पाप से छुटकारा पाने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है । ९। चाहे कोई कितन ही महा पातक करन वाला हो उसमें सभी पातक एकादशी का निराहार प्रत करन से नष्ट हुआया करत है और वह प्रत करन परमगति को प्राप्त हुआया करत है ॥१०॥ यह एकादशी भगवान की परम प्रिय महा पुण्यमयी तिथि है अत जो सांसारिक बन्धन काटना चाहत है उनको इस तिथि के दिन अवश्य ही य

कग्ना चाहिए ॥११॥ दशमी के दिन प्रातः काल उठकर दांतुन करे और सब इन्द्रियो को अपने वश में करके भगवान् विष्णु को स्नान करवावे तथा स्वयं प्रथम स्नान करके फिर भगवान् का षोडशोपचार विधि में पूजन करना चाहिए ॥१२॥ एकादशी के दिन निराहार रह कर इन्द्रियजित रहे और भगवान् के चरणों में दृढ़ भक्ति रखता हुआ नारायण की प्रतिमा के समीप में ही शयन करना चाहिए ॥ १३ ॥ एकादशी तिथि के दिन स्वयं स्नान कर परम शुचि होकर जनार्दन भगवान् का गन्ध पुष्पादि से भक्ति की भावना से पूजन कर फिर भगवान् से निम्न रीति से प्रार्थना करनी चाहिए ॥१४॥

एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि ।

मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत ॥१५

इमं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिण ।

भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवास समर्पयेत् ॥१६

देवस्य पुरतः कुर्याज्जागर नियतो व्रती ।

गीतेर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणश्रवणादिभिः ॥१४

ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशीदिवसे व्रती ।

स्नात्वा च विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रिय ॥१८

पञ्चामृतेन सस्नाप्य एकादश्या जनार्दनम् ।

द्वादश्या पयसा विप्रं हरिसारूप्यमश्नुते ॥१६

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।

प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥२०

एव विज्ञाप्य विप्रेन्द्र माधव सुसमाहित ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्द्वै दक्षिणा तथा ॥२१

‘एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि । मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत’ अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं एकादशी के दिन निराहार रह कर फिर दूसरे दिन भोजन करूंगा । हे अच्युत !

आप मुझे अपनी शरण में लीजिये अर्थात् आप मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये ॥१५॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर अपने हृदय में प्रसन्न होता हुआ चक्रधारी भगवान् देवदेवेश्वर की सेवा में भक्ति के साथ अपने उपवास को समर्पित कर देवे ॥१६॥ (व्रत-धारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर भगवान् के समक्ष में गायन, वाद्य और नृत्य करते हुए पुराण श्रवण करके रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥१७॥) व्रती पुरुष को द्वादशी के दिन प्रातःकाल में उठ कर स्नान करे और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करते हुए विधि पूर्वक विष्णु का पूजन करे ॥१८॥ एकादशी में जनार्दन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान करावे और द्वादशी में दुग्ध से स्नान करावे । इस तरह करने से मनुष्य को सारूप्या भुक्ति प्राप्त हुआ बरती है ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर भगवान् से प्रार्थना करे—“अज्ञान तिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञान दृष्टि प्रदो-भव” अर्थात् हे केशव ! मैं अज्ञान के अन्धकार होने के कारण अन्धा हो रहा हूँ । मेरे इस व्रत के समाचरण से आप प्रसन्न मूख होकर कृपया मुझको ज्ञान की दृष्टि प्रदान कीजिए ॥२०॥ हे विप्रप्रवर ! इस रीति से बहुत ही सावधानता के साथ माधव भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए । इसके अनन्तर अपनी श्रद्धा एवं शक्ति के अनुसार ग्राहणों को भोजन करावे और पुष्कल दक्षिणा समर्पित करे ॥२१

ततः स्वबन्धुभिः साद्धं नारायणपरायणः ।

कृतपञ्चमहायज्ञः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२२

एवं यः प्रपतः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् ।

न याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३

उपवासव्रतपरो धर्मकार्यपरायणः ।

चाण्डालान्पतितान् चैव नेदोदपि कदाचन ॥२४

नास्ति तान्भिन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनारस्तथा ।

उपवासव्रतपरो नालपेच्च कदाचन ॥२५
 वृपलीसूतिपोष्टार वृपलीपतिमेव च ।
 अयाज्ययाजक चैव नालपेत्सर्वदा व्रती ॥२६
 कुण्डाशिनं गायक च तथा देवलकाशिनम् ।
 भिपज काव्यकर्त्तारि देवद्विजविरोधिनम् ॥२७
 परान्नलोलुप चैव परस्त्रीनिरत तथा ।
 व्रतोपवासनिरतो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२८

इसके उपरान्त भगवान् नारायण के ध्यान में तत्परता रख कर पञ्च यज्ञ करे तथा इसके पश्चात् अपने बन्धु-वर्धवों के साथ बैठ कर स्वयं भी भोजन करना चाहिए ॥२२॥ इस विधि से जो लोग सावधानी के साथ इस परम पवित्र एकादशी के महा व्रत को किया करते हैं वे सीधे विष्णु लोक को गमन किया करते हैं जहाँ से पुनः लौट कर वापिस भूलोक में नहीं आते हैं ॥२३॥ इस उपवास के परम धार्मिक कृत्य में सलग्न रहने वाले व्रतधारी पुरुष को चाहिए कि उसे चाडालो तथा पतितों को भी देखना नहीं चाहिए ॥ २४ ॥ उपवास करने वाले पुरुष को नास्तिकों से, मर्यादा के भङ्ग करने वालों से, धर्म की निन्दा करने वालों से और जो चुगली किया करते हैं उन लोगों से कभी बात भी नहीं करनी चाहिए ॥२५॥ व्रती पुरुष को शूद्रा दाई के पति और वृपली पति यज्ञ न कराने के योग्य पात्र को यज्ञ कराने वाले पुरुष से भी बातें नहीं करनी चाहियें ॥२६॥ जो पति के जीवित रहने पर भी अन्य जार से समुत्पन्न पुत्र के घर में भोजन किया करता है। गायन करने वाले भाद, जो केवल द्रव्य के लिये ही देव पूजा करता है उसके जो अन्न का सेवन करने वाला है, दया भाव से न करके केवल धन की कमाई के लिए बँध वृत्ति करता है, जो माटों की वृत्ति किया करता है और जो देव और विप्रों से विरोध किया करता है, जिसका पराया अन्न खाने के लिये

लार टपका करती है और जो दूसरे की स्त्री से व्यभिचार करता है, इन सबके साथ उपवास करने वाले ब्राह्मारी पुरुष को वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए ॥२७॥२८॥

इत्येवमादिभि शुद्धो वशी सर्वंहिते रत ।

उपवासपरो भूत्वा प । सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२६

नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।

नास्ति विष्णुसम दैव तपो नानशनात्परम् ॥३०

नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसम धनम् ।

नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसम पिता ॥३१

न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्या पर व्रतम् ।

अगात्युदाहरतीममितिहास पुरातनम् ॥३२

सवाद भद्रशीलस्य तत्पितुर्गालवस्य च ।

✓पुरा हि गालवो नाम मुनि सत्यपरायण ॥३३

उवास नर्मदातीरे शान्ती दान्तस्तपोनिधि ।

बहुवृक्षसमाकीर्णो गजभल्लुनिपेविते ॥३४

सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते ।

कन्दमूलफलै पूर्णो मुनिवृन्दनिपेविते ॥३५

गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासनकरोच्चिरम् ।

तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यात सुतो वशी ॥३६

इस विधि से परम शुद्ध होकर तब इन्द्रियो को अपने वश में रखकर सब प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाला पुरुष एकादशी का उपवास करके परमोत्तम सिद्धि का भोग किया करता है ॥ २६ ॥ गङ्गा के समान तीर्थ, माता के समान गुरु, विष्णु भगवान के समान देवता और अनशन अर्थात् उपवास के समान तप कोई भी नहीं होता है ॥३०॥ माता के समान क्षमाशील अन्य कोई भी क्षमा करने वाला नहीं होता है, कीर्ति के तुल्य इस जगत में अन्य कोई भी धन

सर्वेषां जगतां स्वस्ति भूषादित्यव्रतदिदम् ॥४१

क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्ताद्धर्मथापि वा ।

एकादशीति सकल्य व्रतं यच्छति केशवे ॥४२

इस भद्रशील पुत्र को अपने पूर्व जन्म का हाल सब स्मरण था और महान भाग्य वाला बालक अर्हनिश भगवान नारायण के ध्यान में ही तत्पर रहा करता था । महान मनुष्य वाला भद्रशील बालक अपनी शैशवावस्था में ही बालोचित क्रीडा के समय में भी मिट्टी की विष्णु की प्रतिमा का निर्माण कर उसका पूजन किया करता था और अपने समस्त साथियों से भी यही कहा करता था कि मानवों को भगवान् विष्णु देवेश्वर की पूजा सर्वदा और अवश्य ही करनी चाहिये । ३७।३८। हे मुनिवर ! यह एकादशी का महान व्रत पण्डितों को भी अवश्य करना चाहिए । इस प्रकार से महत्व समझा २ कर छोटे २ बच्चों में भी ज्ञान का प्रसार कर दिया था ॥३६॥ इसका प्रभाव यह हुआ कि वे बालक भी विष्णु-भक्ति में मग्न होकर पृथक् २ करके या सब मिलकर मिट्टी की प्रतिमा बना कर सानन्द उसका अर्चन करने लगे थे ॥४०॥ भद्रमति सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु का स्तवन करके कहा करता था । सर्व जगत् का कल्याण हो ॥४१॥ वह बालक अपने खेल के समय में ही एक या आधे मुहूर्त के लिए एकादशी व्रत का सकल्य करके फिर भगवान् के अर्पण करने का कर्म भी किया करता था ॥४२॥

एव सुचरितं दृष्ट्वा तनय गालवो मुनिः ।

अपृच्छद्विरययाविष्टं समालिख्य तपोनिधिः ॥४३

भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत ।

चरितं मगल यत्ते योगिनामपि दुर्लभम् ॥४४

हरिपूजापरो नित्यं सर्वभूतहिते रत ।

एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जितः ।

निद्वन्द्वो निर्मम शातो हरिध्यानपरायण ॥४५
 एवमेतादृशी बुद्धि कथं जाताभक्तस्य ते ।
 विनापि महता सेवा हरिभक्तिर्हि दूर्लभा ॥४६
 स्वभावतो जनस्यास्य ह्यविद्याकामकर्मसु ।
 प्रवर्त्तते मतिर्वत्स कथं तेऽलौकिकी वृत्ति ॥४७
 सत्सङ्गोऽपि मनुष्याणां पूर्वपुण्यातिरेकत ।
 जायते भगवद्भक्तिस्तदहं विस्मय गत ॥४८
 पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
 भद्रशीलो मुनिश्चेष्ट पित्रैव सुविकल्पिते ॥४९
 जातिस्मर सुकृतात्मा हृष्टप्रहसितानन ।
 स्वानुभूत यथावृत्त सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥५०

तपोमूर्ति महर्षि गालव भी अपने छोटे से पुत्र के इस तरह के सुन्दर एवं सत् चरित्र को देख कर परम विस्मित होकर उसका प्रेम-तिङ्गन कर उससे पूछने लगे थे ॥४३॥ श्री गालव महर्षि ने कहा— हे सुव्रत महाभाग भद्रशील । तुझ जैसा अतिशय माङ्गलिक चरित्र योगिराजो मे भी प्राप्त होना अति कठिन है ॥४४॥ हम देखते हैं कि तू सर्वदा समस्त प्राणियों के हित में सलग्न रहकर भगवान् विष्णु की पूजा करता है और एकादशी का व्रत किया करता है तथा कभी भी कोई निषिद्ध आचरण नहीं करता है । सासारिक ममता तथा द्वन्द्व के बन्धन से अलग रहता हुआ परम शान्त भाव से भगवान् का ध्यान किया करता है ॥४५॥ छोटे बालक की अवस्था में ही तुझे ऐसी पारमार्थिक बुद्धि कहाँ से कैसे उत्पन्न हो गई है ? बड़ा भी सेवा विना श्री हरि की भक्ति अत्यन्त दुर्लभ हुआ करती है ॥४६॥ साधारणतया सत्सङ्ग में मनुष्या की बुद्धि तो स्वाभाविक रूप से अविद्या के कर्मों में लगी रहती है किन्तु हम देखते हैं कि तेरी बुद्धि सदा सन्मार्ग की ओर ही जाया करती है—वह एक बहुत ही बड़ी अलौकिक बात

ही है ॥४७॥ सत्पुरयो वा सग होने पर भी देखा जाता है कि पूर्व पुण्यो की अधिरता होने पर ही मानवो के हृदय मे भगवद्भक्ति आ कर निवास किया करनी है अतएव मुझे आश्चर्य होरहा है ॥४८॥ मैं अधिक प्रसन्न होकर ही तुझसे सब भेद की बात जानना चाहता हूँ । वेदा, तू मुझको यह सम्पूर्ण रहस्य खोलकर स्पष्ट बतला दे । मुनिश्रेष्ठ भद्रशील को तो अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना ही था । अत अपने पिता की ये बातें सुन कर मुस्कराते हुये वह पुण्यात्मा अपना अनुभव किया हुआ सम्पूर्ण वृत्त कहने लगा था ॥४९॥१०॥

शृणु तात मुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूत मया पुरा ।
जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभाषितम् ॥५१
एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विम्मयान्वित ।
उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशील महामतिम् ॥५२
करत्वं पूर्वं महाभाग किमुक्तं च यमेन ते ।
कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५३
अहमास पुरा तात राजा सोमकुलोद्भव ।
धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तादनेयेणशासित ॥५४
नववर्षसहस्राणि मही कृत्स्नामपालयम् ।
अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहव कृता ॥५५
तत श्रिया प्रमत्तोऽहं बहवधर्ममकारिषम् ।
पापण्डजनससर्गात्पापण्डचरितोऽभवम् ॥५६

भद्रशील ने कहा—हे पिताजी, हे मुनिश्रेष्ठ । मैंने जो भी कुछ अनुभव किया है वह मेरे पूर्व जन्म मे यमराज के दिये हुये भाषण का ज्ञान पहिले जन्म की स्मृति बने रहने के कारण खूब अच्छी तरह याद है आप सुनिए ॥५१॥ महाभाग महर्षि गालव यह बात सुनकर अत्यधिक विस्मित हो गये थे । परम प्रसन्न होकर महामति भद्रशील से कहने लगे थे ॥५२॥ थ गालव मुनि ने कहा—हे महाभाग । तू पहिले

जन्म मे कौन था ? यमराज ने तुझसे क्या कहा था और किस कारण से कहा था ? तू पहिले किसका शिष्य था—ये सभी हमको सुनाओ ॥५३॥ भद्रशील ने उत्तर दिया कि हे तात । मैं अपने पूर्व जन्म मे धर्मकीर्ति नामक सोमवश मे समुत्पन्न एक राजा था और महा महर्षि श्री दत्तात्रेयजी मुझे उस जन्म मे उपदेश दिया करते थे ॥५४॥ उस जन्म मे मैंने इस सम्पूर्ण भूमण्डल का परिपालन नौ सहस्र वर्ष तक किया था । उस इतने लम्बे समय मे मुझसे बहुत से धर्म अधर्म बन गये थे ॥५५॥ मैं उस समय मैं अपने अतुल ऐश्वर्य के मद मे मत्त होकर नाना प्रकार के अधर्म कर्म करने पर उत रू हो गया था । बहुत से पाखण्डी मनुष्यो के सङ्ग-सम्पर्क से मेरा चरित्र भी महान् पाखण्ड पूर्ण हो गया था ॥५६॥

पुराजितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि ।
 पापण्डैर्वाधितोऽह तु वेदमार्गं समत्यजम् ॥५७
 मखाश्च सर्वे विध्वस्ता कूटयुक्तिविदा मया ।
 अधर्मनिरत मा तु दृष्ट्वा मददेशजा प्रजा ॥५८
 सदैव दुष्कृत चक्रु पश्याशस्तत्र मेऽभवत् ।
 एव पापसमाचारो व्यसनाभिरत सदा ॥५९
 मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविश वनम् ।
 ससैन्योऽह वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥६०
 क्षुत्तट्परिवृत श्रातो रेवातीरमुपागमम् ।
 रविनीधणातपक्लातो रेवाया स्नानमाचरम् ॥६१
 अदृष्टसैन्य एकाकी पीडयमान क्षुधा भृशम् ॥६२
 समेतास्तत्र ये केचिद्रेवातीरनिवासिन ।
 एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे ॥६३

इसके पूर्व पहिले मैं बहुत सा पुण्य का सञ्चय किया था किन्तु फिर मैंने पाखण्डी पुरुषो की सङ्गति मे पडकर उनके द्वारा

वाघायें उपस्थित करने के कारण वेद मार्ग का सर्वथा परित्याग ही कर दिया था ॥५७॥ मैं बहुत सी कूटयुक्तियों का ज्ञाता था अतएव सभी प्रकार के यज्ञादि उत्तम कर्मों का त्याग कर दिया था । मेरी प्रजा ने जब मुझे अधर्म परायण देखा था तो वह भी सर्वदा अधर्म में ही निरत हो गयी थी और उसका छठवाँ भाग मुख पर भी शास्त्र कथन के अनुसार पडने लग गया था । इस रीति से पाप कर्मों में डूबा हुआ मैं बहुत से दुष्कर्मों में रति रखने लग गया था । एक समय में मैं अपन सौनिकों के साथ मृगया करता हुआ एक परम गहन वन में प्रविष्ट हो गया था और बहुत से मृगों की शिकार की थी ॥५८-६०॥ इसके पश्चात् महान बुभुक्षित एवं तृप्ति होकर मैं शका हुआ रेवा नदी के तीर पर पहुँच गया था । उस समय में सूर्य के परम तीक्ष्ण आतप के ताप में सतप्त हुए मैंने रेवा नदी में अवगाहन किया था ॥६१॥ उस समय मैं बिल्कुल एकाकी ही था । मेरी सेना भी मुझे कहीं दिखाई नहीं दे रही थी । मैं क्षुधा से अत्यधिक बेचैन होकर तडफडा रहा था ॥ ६२ ॥ मन्थरा के समय में मैंने वहाँ एकादशी का व्रत करने वाले, रेवा नदी के तीर पर निवास करने वाले लोगों को एकत्रित हुए देखा था ॥६३॥

निराहारश्च तत्राहमेकाकी तज्जनै सह ।
जागर कृतवाश्चापि सेनया रहितो निर्णि ॥६४
अध्वथमपरिश्चात् क्षुत्पिपासाप्रपीडित ।
तत्रैव जागरान्तेऽह तात पचत्वमागत ॥६५
ततो यमभटेर्वन्द्यो महादष्ट्राभयकरै ।
दष्ट्राकरालवदनमपश्य समवर्तिनम् ॥६६
अथ कालश्चित्तगुप्तमाहूयेदमभाषत ।
अस्य शिक्षाविधानं च यथावद्वद पण्डित ॥६७
एवमुक्तश्चित्तगुप्तो धर्मराजेन सत्तम ।

चिर विचारयामास पुनश्चेदमभापत ॥६८
 अपी पापरतः सत्यं तथापि शृणु धर्मप ।
 एकादश्या निराहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६९
 एष रेवातटे रम्ये निराहारो हरेदिने ।
 जागरं चोपवासं च कृत्वा निष्पापता गतः ॥७०

उस समय मे मेरे समीप मे सैनिक लोग तो थे ही नही अत-
 एव मैंने भी उन लोगो के साथ वहाँ पर अकेला रह जाने के कारण
 विवश होकर रात्रि जागरण किया था ॥६४॥ मैं उस समय मे दिन
 भर इधर उधर वन मे भटकते रहने के कारण अधिक थान्त हो गया
 था और भूख-प्यास से भी अधिक पीडित था । अतएव हे तात । मैं
 उस रात्रि जागरण के समाप्त होते ही वही पर मर गया था ॥६५॥
 उस समय मे महान भीषण लम्बी २ दाढो वाले यमराज के दूतो ने
 आकर मुझे पाशो मे बद्ध कर लिया था और अत्यन्त पीडा देने वाले
 मार्ग मे होकर मुझे ले गये थे और यमराज के समीप मे पहुँचा दिया
 था । वहाँ पर मैंने भयङ्कर मुखाकृति वाले परम विकराल यमराज को
 देखा था ॥६६॥ उस समय मे उस काल पुरुष ने तुरन्त चित्रगुप्त को
 बुलाकर उससे पूछा था-हे पण्डित । बतलाओ, इस दुष्ट को क्या
 शिक्षा देनी चाहिए ॥६७॥ हे तात । धर्मराज के इस तरह से पूछने
 पर वह चित्रगुप्त बहुत समय तक विचारो मे निमग्न होकर उनसे कहने
 लगे थे ॥६८॥ हे धर्मराज । निस्सन्देह यद्यपि वह प्राणी पहले बहुत ही
 अधिक पापो मे निरत रहता था नो भी यह घटना हुई कि जो भी
 कोई कैंसा भी क्यों न हो एकादशी के दिन निराहार रहता है वह सभी
 पापो से छूट जाया करता है ॥६९॥ यह भी उस हरि के दिन मे
 परम रमणीय एव महान पावन रेवा के तट पर निराहार व्रत और
 रात्रि जागरण करके अब तो बिल्कुल निष्पाप होगया है ॥७०
 यानि कानि च पापानि कृतानि मुवहूनि च ।

तानि सर्वाणि मष्टानि ह्युपवासप्रभावतः ॥७१
 एवमुक्तो धर्मराजविचित्रगुप्तेन धीमता ।
 ननाम दडवद्भूमौ ममाग्रे सोऽनुकपितः ॥७२
 पूजयामास मा तत्र भक्तिभावेन धर्मराट् ।
 ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह ॥७३
 शृणुध्व मद्बचो दूता हित वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।
 धर्ममागरत्तान्मर्त्यान्मानयध्व ममान्तकम् ॥७४
 ये विष्णुपूजनरताः प्रयतः ।

कृतज्ञाश्चैकादशीव्रतपरा ।

नारायणाच्युत हरे शरणभवेति

शातावदन्ति सतत तरसात्यजध्वम् ॥७५

नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो

पद्मेशः पद्मजपितः शिव शकरेति ।

नित्य वदत्यखिललोकहिताः प्रशान्ता

दूराद्भटास्त्यजत तान्तु ममैष शिक्षा ॥७६

नारायणापितकृतान्हरिभक्तिभाजः ।

स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकाश्च ।

सत्पात्रदाननिरताश्च सुदीनपाला-

न्दूतास्त्यजध्वमनिश हरिनामसक्तान् ॥७७

इसने अपने पूरे जीवन-काल में जो भी महान् घोरतम पाप किये थे वे सभी एक साथ एकादशी के प्रबल प्रभाव से नष्ट होगये हैं और यह अत्र पूर्णतया विशुद्धात्मा ही यथा है ॥७१॥ महान् मतिमान् विचित्रगुप्त के द्वारा ऐसा बचन किय जाने पर धर्मराज ने परम अनुकम्पित होकर भूमि में मेरे समक्ष में पात करके मुझे दण्डनप्रणाम किया था ॥७२॥ इसके पश्चात् बहुत ही अधिक भक्ति की भावना से धर्मराज ने मेरा सत्कार किया था और फिर उसने अपने दूतों को

बुलाकर यह आदेश दिया था कि हे दूतो ! अब तुम लोग अपने कान खोल कर भली भाँति मेरे हितप्रद वचनों का श्रवण कर लो । जो प्राणी किसी भी धर्म के मार्ग में चल रहे हों उनको कमी भूल कर भी मेरे पास मत लाया करो ॥७३॥७४॥ जो भगवान् विष्णु देवेश्वर की अर्चना में निरत रहा करते हों—जो सयम का पूर्ण पालन करते हों—जो किये हुए उपकार को मानते हों—जो एकादशी का व्रत किया करते हों—जो इन्द्रियो को अपने वश में रखते हों—जो परम शान्त भाव से अपने मुख से ऐसा कहा करते हैं—“हे नारायण ! हे हरे ! हे अच्युत ! मुझे शरण प्रदान कीजिए” तुम्हारा यह उस समय पर आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए कि ऐसे प्राणियों को नुरन्त ही छोड़ दो ॥७५॥ अरे दूतो ! मैं तुमको तुम्हारे ही कल्याण के लिये यह शिक्षा देता हूँ कि जो भी कोई प्राणी सबका हित चाहते हुए परम शान्त भाव से एवाग्र होकर हे नारायण ! हे जनार्दन ! हे अच्युत ! हे विष्णो ! हे पद्मा के ईश ! हे ब्रह्मा के जनक ! हे शिव ! हे शङ्कर ! इस तरह में नित्य ही अपने मुख से उच्चारण किया करते हों उनसे तुमको बहुत दूर से बचकर रहना चाहिये ॥ ७६ ॥ अरे दूतो ! आप अच्छी तरह समझ लो जिन प्राणियों ने अपने आपको भगवान् नारायण के चरणों में समर्पित कर दिया हो, जो विष्णु भक्ति में रत हैं, जो सदा सदाचरण का पालन किया करते हों, जो अपन पूजनीय बड़ा का मवा सत्कार किया करते हों, जो सत्पान पुरुषों को सर्वदा दान दिया करते हों, जो दीन दुखियों का परिपालन किया करते हैं अथवा श्रीहरि नाम में ही परायण किया करते हों उनका तुम लोग सदा ही छोड़ दिया करो ॥७७॥

पापडमङ्गरहितान्द्रिजभक्तिनिष्ठान्म-

त्मगलोनूपरताश्च तथातिथेयान् ।

समौ हरौ च समपुद्धिमतस्तथैव दूतास्त्य-

जध्वमुपकारपराञ्जनानाम् ॥७८॥

ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च

नारायाणस्मृतिपरायणमानसैश्च ।

विप्रैर्द्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टास्ता-

न्वापिनो भम भटा गृहमानयध्वम् ॥७६

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च

लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च ।

देवस्वलोभनिरताञ्जनाशर्तृननानयध्वमपराधपराश्च दूता ॥७७

एकादशीव्रतपराङ्मुखग्रशील लोकापवादनिरत परनिदक च ।

ग्रामस्यना शकरमुत्तमवैरयुक्त

दूता समानयत विप्रघनेषु लुब्धम् ॥७९

ये विष्णुभक्तिविमुखा प्रणमन्ति नैव

नारायण हि शरणागतपालक च ।

विष्णुवालय च नहि याति नरा सुमुखी-

स्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य ॥८२

एव श्रुत यदा तत्र यमेन परिभाषितम् ।

मयानुतापदग्धेन स्मृत तत्कर्म निदितम् ॥८३

असत्त्वर्मानुतापेन सद्वर्मश्रवणेन च ।

तत्रैव सर्वपापानि निशेषाणि गतानि मे ॥८४

जो मनुष्य पाखण्डियो की सङ्गति से दूर रहा करते हो, जो विप्रों के परम भक्त हों, जो सत्सङ्ग के लिए पद लोलुप रहने वाले ने हादिक प्रेम करते हो, जो शदा अतिथियों का सत्कार किया करते हो, जो भगवान विष्णु और शिव में अभेद्य ब्रुद्धि रखते हो अथवा जो सवदा मानवा के उपकार करन में उद्यत रहत हो एम जीवो स तुमका बहुत दूर बचकर ही रहना चाहिए ॥७६॥ यमराज ने फिर यह कहा- ह दूतो । जो कभी भी श्री हरि की कथा रूपा अमृत का पान न किया करते हो, जो भगवान नारायण की स्मृति में अपने चित्त को लगान

नारद पुराण]

वानो से मदा दूर तथा वचकर रहा करते हो, ब्राह्मणों ने अपने चरण धुलवाकर प्रसन्न हुआ करते हो तथा विप्रों के चरणों को धोने से जिनको अप्रसन्नता होती हो, उन महा पापात्मा लोगों को ही तुम पकड़ कर मेरी सभा में उपस्थित किया करो ॥७६॥ जिनका स्वभाव ही ऐसा बन गया हो जो सदा अपने माता-पिता का तिरस्कार ही किया करें, जो हितैषी लोगों का अहित कर्म किया करते हो, जो देव धन में भी लोभ रखते हो, जो दुरी २ बातें बताकर भोले-भाले लोगों को विगाड़ते रहा करते हों, ऐसे महान् अपराध करने वालों को तुम लोग वरुण बद्ध करके मेरे सामने उपस्थित किया करो ॥ ८० ॥ जो मनुष्य एकादशों के व्रत में हटता हो, जो सदा ही मनुष्यों की निन्दा किया करते हो, जो दुरे कर्मों में ही सदा रति रखते हो, जो ग्राम को उजाड़ता हो, जो सबके साथ कठोर व्यवहार किया करते हो, जो सज्जनों से दुश्मनी रखा करते हो, ब्राह्मणों के धन पर लालच किया करते हो उन महापापियों को तुम्हारा कर्तव्य है कि हठात् पसीट कर मेरे पास लाया करो ॥८१॥ जो विष्णु भक्ति से विमुख हो, जो सदा शरणागतों के पालक नारायण प्रभु को प्रणाम न किया करते हो और कभी भी विष्णु मन्दिर में न जाँकत हो, ऐसे पाप परायण पुरुषों को जबदंस्ती पकड़ कर मेरी सभा में ले आया करो ॥८२॥ उस समय में जब मैंने यमराज का इस प्रकार का विस्तृत भाषण सुना तो मैंने अपने महान् निन्दित दून कर्मों का स्मरण किया और बड़ा भारी मुझको पश्चानाप हुआ था ॥८३॥ अपने किये हुए पाप कर्मों का पश्चाताप करने से और सद्गमों का श्रवण करने से मेरे समस्त पाप वही पर विनष्ट हो गये थे ॥८४॥

पापशेषाद्विनिर्मुक्त हरिसारूढ्यता गतम् ।
सहस्रसूर्यसकाश प्रणनाम यमश्च तम् ॥८५॥
एव दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः ।
विश्राम परम चक्रुर्ग्रमेन परिभाषिते ॥८६॥

तत सपूज्य मा काली विमानशतसकुलम् ।
 सब सप्रेषयामास तद्विष्णो परम पदम् ॥८७॥
 विमानकोटिभि सार्द्ध सर्वभोगसमन्वितै ।
 कर्मणा तेन विप्रर्षे विष्णुलोके मयोपितम् ॥८८॥
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
 स्थित्वा विष्णुपद पश्चादिद्रलोकमुपागमम् ॥८९॥
 तत्रापि सर्वभागाडच सर्वदेवनमस्कृतः ।
 तावत्काल दिवि स्थित्वा ततो भूमिमुपागत ॥९०॥
 अत्रापि विष्णुभक्ताना जागोऽह भवता कुले ।
 जातिस्मरत्वाज्जानामि सर्वमेतन्मुनीश्वर ॥९१॥

उसी समय में समस्त पापों से विमुक्त हुए श्री हरि के समान
 स्वल्प वाले और सहस्र सूर्यों के समान तेजस्वी मुझको यमराज ने
 स्वयं प्रणाम किया था ॥८५॥ उस समय में यमदूतों ने भी विस्मय
 और भय के साथ यमराज के भाषण पर विश्वास किया था ॥ ८६ ॥
 उसी समय में यमराज ने मेरा सत्कार करके सैकड़ों विमानों से
 भरे हुये भगवान विष्णु के परम पद में मुझको भेज दिया था ॥ ८७ ॥
 हे तात ! वहाँ पर सभी प्रकारके भोगों से परिपूर्ण करोड़ों विमानों के
 मध्य में मैं विष्णु लोक में रहा था । यह सब कुछ उसी कर्म का
 प्रभाव था ॥८८॥ मैं प्यारह अरब कल्पों तक निवास कर फिर इन्द्र
 लोक में गया था । वहाँ पर भी समस्त देवगणों के द्वारा वन्द्यमान हो
 कर सभी तरह के सुखोपभोगों का आनन्द पाकर उतने ही बाल पर्यन्त
 मैंने निवास किया था । अब मैं इस मू लाक में आकर समुत्पन्न हुआ
 हूँ ॥८९॥ यद्वा पर भी हे भगवन् ! अब आप जैसे परम पवित्र
 विष्णु के भक्तों के यम में उद्भूत हुआ हूँ । हे मुनीश्वर ! इन समस्त
 रहस्यमयी कथाओं में अपने पूर्व जन्मों के स्मरण करने रहने के कारण
 ही जानता हूँ ॥९१॥

तस्माद्विष्णुवर्चनोद्योगं करोमि सह बालकैः ।
 एकादशीव्रतमिदमिति न ज्ञातवान्पुरा ॥६२
 जातिस्मृतिप्रभावेण तज्ज्ञात साप्रत मया ।
 अत्र स्वेनापि यत्कर्म कृत तस्य फल त्विदम् ॥६३
 एकादशीव्रत भक्त्या कुर्वता किमुत प्रभो ।
 तस्मान्चरिष्ये विप्रं द्र शुभमेकादशीव्रतम् ॥६४
 विष्णुपूजा चाहरह परमस्थानकाक्षया ।
 एकादशीव्रत यत्तु कुर्वति श्रद्धया नराः ॥६५
 तेषां तु विष्णुभवन परमानन्ददायकम् ।
 एव पुत्रवच श्रुत्वा सतुष्टो गालवो मुनि ॥६६
 अवाप परमा तुष्टि मनसा चातिर्हपित ।
 मज्जन्म सफल जात मद्बश पावनीकृतः ॥६७
 यतस्त्व मद्गृहे जातो विष्णुभक्तिपरायणः ।
 इति सतुष्टचित्तस्तु तस्य पुत्रस्य कर्मणा ॥६८
 हरिपूजाविधानं च यथावत्समबोधयत्
 इत्येतत्तो मुनिश्चेष्ट यथावत्कथित मया ।
 सकोचविस्तराभ्यां च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९

यही कारण है कि मैं बालकों को अपने माथ में लेकर भगवान्
 विष्णु की पूजा का उद्योग किया करता हूँ क्योंकि मुझको विष्णु पूजा
 की महिमा का पूर्ण ज्ञान यमराज की वचनता से हो गया था । पूर्व
 जन्म में मुझको इसके महत्व का ज्ञान ही नहीं हुआ था कि यही
 एकादशी का व्रत होना है ॥६२॥ अथ पूर्व जन्मों का स्मरण होने से
 ही मेरी भली भाँति समझ में आ गया है कि यद्यस्मान् विवशता से बन
 जाने वाले एकादशी के व्रत के कर्म का इनका अद्भुत प्रभाव एवं सुफल
 हुआ है तो फिर ज्ञान पूर्वक इसके करने में कितना महान फल होता
 होगा ॥६३॥ हे प्रभो ! जो भक्ति भाव के माथ में एकादशी के महा

व्रत को किया करते हैं। उनको प्राप्त हुए फल के विषय का क्या वर्णन किया जा सकता है। अतः हे विप्रेन्द्र ! मैं परम शुभ एवं पावन इस एकादशी के व्रत को अवश्य ही करता रहूँगा ॥६४॥ परम पद को प्राप्त करने की अभिलाषा से मैं प्रति दिन भगवान् विष्णु की पूजा भी किया करूँगा। जो मनुष्य परम श्रद्धा के साथ एकादशी का व्रत किया करते हैं वे परम पद को प्राप्त होते हैं ॥६५॥ एकादशी के व्रत धारी पुरुष को विष्णु भवन परमानन्द दायक अवश्य ही मित्रा करता है इसमें तनिक भी सशय नहीं है। पुत्र के मुख से इस पूर्व जन्म के अद्भुत आख्यान का श्रवण कर गालव मुनि को परम प्रसन्नता हुई थी ॥६६॥ गालव महर्षि परमाधिक मन में सन्तुष्ट होकर विचार करने लगे कि मेरा जन्म आज सफल हो गया है। इस पुत्र ने मेरे घर में जन्म धारण कर मेरा कुल ही पवित्र कर दिया है ॥६७॥ ऐसा वचन मे ही परम विष्णुभक्त परम धर्मनिष्ठ पुत्र मुझको प्राप्त हुआ है। पुत्र के परम सत्कर्म से इस तरह से सन्तुष्ट होकर उन्होंने भगवान् विष्णु के पूजन की यथार्थ विधि बतलाई थी। हे मुनीश्वर ! इस रीति से मैंने विस्तृत एवं सक्षिप्त रूप से यह सब वर्णन करके बतला दिया है। अब आगे आप क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥६८॥६९॥



चारों वर्ग तथा स्त्रियों के सदाचार का वर्णन

एतन्निशम्य सनकोदितमप्रमेयं

पुण्य हरेदिनमयं निखिलोत्तमं च ।

पापीघणान्तिकरण व्रतमारमेव

ब्रह्मात्मज. पुनरभापत ह्ययंयुक्त ॥१॥

कथित भवता सर्वं मुने तत्त्वायकोविद ।

व्रताद्यान महापुण्यं यथावद्धरिभक्तिदम् ॥२॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि वर्णाचारविधिं मुने ।
 तथा सर्वाश्रमाचार प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥३॥
 एतत्सर्वं महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद ।
 कृपया परया मह्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४॥
 शृणुष्व मुनिशार्दूल यथा भक्तप्रियकर ।
 वर्णाश्रमाचारपरं पूज्यते हरिरव्यय ॥५॥
 मन्मार्द्यं रुदित यच्च वर्णाश्रमनिबन्धनम् ।
 तत्ते वक्ष्यामि विधिवद्भक्तोऽमत्प्रमघोक्षजे ॥६॥
 ✓ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूदाश्चत्वार एवते ।
 वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिक ॥७॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या द्विजा प्रोक्तास्त्रयस्तथा ।
 मातृत्वश्वोपनयनाद् द्विजत्व प्राप्यते त्रिभि ॥८॥

महामर्हण प्रवर श्री सूतजी ने कहा—समस्त पापों की शान्ति करने वाले ब्रह्मचर्यामो के सारभूत और परमोत्तम श्री हरि दिन से समुत्पन्न होने वाले और सनकाचार्य के द्वारा बताये हुए अपरिमित ब्रत का वृत्तान्त श्रवण कर ब्रह्मा के आत्मज देवर्षि श्री नारदजी हर्षोल्लास में भङ्ग कर फिर कहने लगे थे ॥ १ ॥ श्री नारदजी ने कहा—हे मुने । आप तो तार्त्विक अर्थों के परम विद्वान् हैं । आपन हरिभक्ति देने वाले महान् पुण्यमय इस एकादशी के महाव्रत का यथार्थ वर्णन किया है । २ ॥ हे महामुने । अब कृपा कर आप वर्णों की सदाचार पद्धति का श्रवण तथा समस्त आश्रमों के सदाचरण एवं प्रायश्चित्त पद्धति का श्रवण करने की उत्कट अभिजाया रचना हैं ॥ ३ ॥ हे सभी तत्वों के समग्रान म परम कुशल महाभाग । इन सबका यथार्थ वर्णन करके मुनादय । दगके निय आपका परम अनुग्रह मुझ पर हागा ॥ ४ ॥ श्री सनकाचार्य ने कहा—हे नारद ! हे मुनिशार्दूल । अब आप वर्णाश्रम धर्मों का यथार्थ पालन भक्तों के परम प्रिय एवं अभीष्ट करने वाले विष्णु भगवान्

का जिस रीति से पूजन किया करते हैं उसको सुनिए ॥ ५ ॥ आप तो भगवान् अधोक्षज के परम भक्त हो । अतएव भगवान् मनु आदि महर्षियो ने वर्णों और आश्रमों के धर्म बतलाये हैं उनका सविधि वर्णन करता हूँ । आप सावधानता से उनको अब सुनिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये ही चार वर्ण धर्मशास्त्रों में बताये गये हैं । इनमें प्रथम तीनों का एक जन्म तो अपनी माता के उदर से हुआ करता है और दसरा जन्म उपनयन संस्कार के द्वारा हुआ करता है । इसीलिये इनको द्विज या द्विजाति कहा जाता है ॥ ७ । ८ ॥

एतैर्वर्णैः सर्वधर्मा कार्या वर्णानुरूपत ।
 स्ववर्णधर्मत्यागेन पापड प्रोच्यते बुधै ॥६
 स्वगृह्यचोदित कर्म द्विज. कुर्वन्कृती भवेत् ।
 अन्यथा पतितो भूयात्सर्वधर्मवह्निभूतः ॥७०
 युगधर्मं. परिग्राह्यो वर्णैरेतैर्यथोचितम् ।
 देशाचारास्तथा ग्राह्या स्मृतिधर्माविरोधतः ॥७१
 कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत् ।
 अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ॥७२
 समुद्रयात्रास्वीकार. कमण्डलुविधारणम् ।
 द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥७३
 देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्कं पशोर्वध ।
 मासादन तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥७४
 दत्ताक्षताया कन्याया. पुनर्दानं वराय च ।
 नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ ॥७५
 महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मय ।
 एतान्धर्मान्बलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिण ॥७६

इन सभी वर्णों को समस्त धर्म—धर्म अपने वर्णों के अनुसार ही

करने चाहिए । जो अपने वर्णाश्रमों के समुचित धर्म-कर्मों का त्याग कर दिया करता है उसको विद्वान् पुरुष पाखण्डी कहा करते हैं ॥ ६ ॥ द्विज अपने गृह्य सूत्र में बधित कर्मों के करने में ही धृताय हो जाया करता है । इसके विपरीत अन्यथा आचरण में वह पतित हो जाया करता है फिर उसको किसी भी कर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ॥ १० ॥ इन सभी वर्णों के व्यक्तियों को अपने यथार्थ वर्ण-धर्म का ही उपालन करना परमावश्यक होता है । जो स्मृति धर्म के अविरोधी देशाचार होत है उनका भी ग्रहण करना आवश्यक होता है ॥ ११ ॥ मन—कर्म और वचन से प्रयत्न पूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए । जो ऐसा कर्म है जिससे (धर्म कार्य से) स्वर्ग की प्राप्ति न होवे और जिसकी लोक में निन्दा होती है उसको कभी भी नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥ समुद्र यात्रा की स्वीकृति—कमण्डलुका धारण (सन्यास ग्रहण)—द्विजों का असवर्ण कन्याओं के साथ विवाह, देवर से सन्तान की उत्पत्ति, मधुपर्क में पशुवध, श्राद्ध में मांस भक्षण, वानप्रस्थाश्रम, वाणी मात्र से दी हुई अक्षता कन्या का वर को पुनर्दान नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, नरमेघ, अश्वमेघ, महाप्रस्थान, गोमेघ इन शास्त्रोक्त धर्मों को भी विद्वान् पुरुषों ने इस कलियुग में वर्जित बताया गया है ॥ १३—१६ ॥

✓ देशाचारा परियाह्यास्तत्तद्देशगतैर्नरै ।
 अन्यथा पतितो ज्ञेय सर्वधर्मवहिष्कृत ॥१७
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा च द्विजोत्तम ।
 क्रिया सामान्यतो वध्ये ताच्छृणुष्व समहित ॥१८
 दान दद्याद् ब्राह्मणेष्वस्तथा यज्ञैर्यजेत्पुरान् ।
 वृत्त्यर्थं याजनेच्चैव अन्यानध्य पयेत्तथा ॥१९
 याजयेद्यजने योग्यान्विप्रो नित्योदकी भवेत् ।
 कुर्व्याच्च वेदग्रहण तथामेश्च पञ्चगव्यम् ॥२०

ग्राह्ये द्रव्ये च पारक्ये समवुद्धिर्भवेत्तथा ।
सवलोकहित कुर्यान्मृदुवाक्यमुदीरयेत् ॥२१

जो पुरुष जिस देश में समुत्पन्न हुआ हो उसको उस देश के सदाचार का पालन अवश्य ही कर्ना चाहिए अन्यथा करने से वह पुरुष सब धर्मों से बहिष्कृत एव पतित हो जाया करता है ॥ १७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! अब मैं चारों वर्णों के साधारण कर्मों के विषय में वर्णन करता हूँ । उनको आप परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥ १८ ॥ ब्राह्मण का सामान्य कर्म है कि वह ब्राह्मणों को दान देवे—यज्ञों के यजन के द्वारा देवों का अर्चन करे और अपनी जीविका के लिये यज्ञ करावे तथा दूसरों को अध्ययन करावे ॥ १९ ॥ जो पुरुष यजन और पूजन के पात्र हो उनके द्वारा ही यज्ञों का यजन कराना चाहिए । विप्र को चाहिए कि वह नित्योदकी रहे, वेदों का अध्ययन करे और प्रति दिन अग्निहोत्र करे ॥ २० ॥ अपने ग्रहण करने के योग्य जो द्रव्य हो अथवा दूसरे के द्वारा ग्रहण करने के योग्य हो—इन दोनों में समान बुद्धि ही रखनी चाहिए । समस्त प्राणियों के हितप्रद कार्य करने चाहिए । विप्र का कर्तव्य है कि वह सर्वदा अपने मुख से कोमल वचनों का ही उच्चारण किया करे और कभी भी कठोर वचन नहीं बहना चाहिये ॥२१॥

ऋतावभिगमः पत्न्या शस्यते ब्राह्मणस्य वै ।
न कस्याप्यहित ब्रूयाद्विष्णुपूजापरो भवेत् ॥२२
दद्याद्दानानि विप्रेभ्यः क्षात्रियोऽपि द्विजोत्तम ।
कुर्म्यर्च्च वेदग्रहण यज्ञैर्देवान्यजेत्तथा ॥२३
शस्त्रजीवी भवेच्चैत्र पालयेद्धर्मतो महीम् ।
दुष्टानां शासनं कुर्म्यर्च्छिष्टानां पालनं तथा ॥२४
पाशुपाल्य च घाणिजय कृपिश्च द्विजसत्तम ।
वेदस्याध्ययनं चैव वैश्यापि प्रकीर्तितम् ॥२५

कुर्याच्च दारग्रहण धर्माश्चैव समाचरेत् ।
 क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुक्रियोद्भवे ॥२६
 दद्याद्दानानि शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेन्न च ।
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा शुश्रूषानिरतो भवेत् ॥२७
 ऋतुकालाभिगामी च स्वदारेषु भवेत्तथा ।
 सर्वलोकहितैषित्व मङ्गल प्रियवादिता ॥२८
 अनायासो मनोहर्यस्ति तिक्षा नातिमानिता ।
 सामान्य सर्ववर्णाना मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥२९

ब्राह्मण को चाहिए कि वह केवल ऋतु के समय में ही अपनी पत्नी के साथ गमन करे— ऐसा करना ही प्रशंसित होता है । जिस बात के कथन से किसी का भी अहित होवे ऐसी बात कभी भी विप्र को नहीं कहनी चाहिये । ब्राह्मण का निरन्तर भगवान् विष्णु की पूजा में निरत रहना चाहिए ॥ २२ ॥ हे उत्तम द्विज । अब क्षत्रिय वर्ण का साधारण धर्म बतलाता हूँ—क्षत्रिय को ब्राह्मणों को दान देना चाहिए, वेदों का अध्ययन करे तथा यज्ञों के यजन के द्वारा देवों का अर्चन करे ॥ २३ ॥ शस्त्रों की वृत्ति से अपनी जीविका का अर्जन करे—धर्म के साथ पृथ्वी का परिपालन करे—दृष्टों को दण्ड देवे और साधु पुरुषों का सवताभाव से पालन एवं रक्षण करना चाहिए ॥ २४ ॥ वैश्य का सामान्य धर्म पशुओं का पालन, व्यापार, कृषिकर्म, वेदों का अध्ययन य वैश्य वर्ण के व्यवसायों के धर्म हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ अब शूद्र वर्ण के सामान्य धर्म बतलाये जाते हैं, शूद्र को भी विवाह करना चाहिए—सभी धर्मों का पालन करे—शिल्प के द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं के विक्रय एवं क्रय में जो धन प्राप्त हो उसका दान देव किन्तु शूद्र को पाक यज्ञ करने का अधिकार शास्त्रों में नहीं बताया गया है । शूद्र का वर्तव्य है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा में सतत रहना चाहिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऋतुकांठ में स्त्रियों गमन, उनके हित की

क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों के लिये ही चार आश्रमों का विधान किया गया है और पाचवा आश्रम नहीं होता है। उन चारों आश्रमों के नाम ये होते हैं—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और चौथा आश्रम संन्यास होता है ॥३२॥३३॥ इन्हीं चारों आश्रमों के द्वारा उत्तम धर्म की सिद्धि हुआ करती है। ह विप्रवर ! जो सदा कर्मयोग में तत्परता रखता है—परम निस्पृह होने के कारण जिसके मनमें पूरा शान्ति विराजमान रहा करती है—जो नित्य ही अपन समुचित धर्म कर्मों में सलग्नता रखता है उसीसे भगवान् विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और वह मर्त्या के पूर्ण रूप से परिपालन करने के कारण ऐसे उत्तम स्थान की अन्त समय में प्राप्ति किया करता है जहाँ से फिर वापिस लौटकर यहाँ ससार में नहीं आना होता है ॥३४॥३५॥



॥ स्मार्त धर्म वर्णन ॥

वर्णाश्रमाचारविधि प्रवक्ष्यामि विज्ञेयत ।
 शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ सावधानेन चेतसा ॥१॥
 ✓य स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् ।
 पापडं स हि विज्ञेय सर्वधमं बहिष्कृतं ॥२॥
 गर्भाधानादिसस्कारा कार्या मन्त्रविधानतः ।
 स्त्रीणाममन्त्रतः कार्या यथात्राल यथाविधि ॥३॥
 सीमतकर्म प्रथमं चतुर्थं मासि शस्यते ।
 पष्ठे वा सप्तमे वापि अष्टमे वापि कारयेत् ॥४॥
 जाते पुत्रे पिता स्नात्वा सचैल जातकर्म च ।
 बुध्याच्च नादीश्राद्धं च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥
 हम्ना वा रजतेनापि वृद्धिश्राद्धं प्राल्पयत् ।
 अन्नेन कारयेद्यन्तु स चटालसमा भवेत् ॥६॥

कृत्वाभ्युदयिक श्राद्ध पिता पुत्रस्य वाग्यतः ।

कुर्वीत नामनिर्देशं सूतकाते यथाविधि ॥७

✓अस्पष्टमर्थहीनं च ह्यातगुर्वक्षरान्वितम् ।

न दद्यान्नाम विप्रैर्द्र तथा च विपमाक्षरम् ॥८

श्री सनकाचार्य मह पि ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं सब वर्णों और आश्रमों के सदाचार की विधि का विशेष रूप से वर्णन करके समझाता हूँ । हे मुनिवर! आप उसको विशेष सावधानी के साथ श्रवण करिये। जो मनुष्य अपने उचित धर्म का परित्याग करके दूसरो के धर्म का समाश्रय ग्रहण किया करता है उसको पाखण्डी ही समझना चाहिए चाहे वह कोई भी क्यों न हो। फिर उसका धर्माधिकार ही नष्ट होजाया करता है और किसी भी धर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ॥२॥ समुचित समय पर विधि के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कार मन्त्रों का उच्चारण करके ही करने चाहिए । स्त्रियों के संस्कारों में मन्त्रों का पाठ नहीं करना चाहिए ॥३॥ तीमन्त्रोन्नयन संस्कार सर्व प्रथम गर्भाधान के चतुर्थ मास में परमश्रेष्ठ माना जाता है । यदि चौथे मास में किसी कारण वश इसको न कर सके तो फिर इस संस्कार को छठवें—सातवें या आठवें मास में अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४ ॥ पुत्र की उत्पत्ति होने पर उसने पिता वा वस्त्रों के महित स्नान करना चाहिए । फिर स्वस्ति वाचन के सहित नान्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म संस्कार करे ॥ ५ ॥ इस वृद्धि सूचक श्राद्ध को चौदी या सुवण के साथ ही करे । जो वेदल अन्न के द्वारा ही इस वृद्धि श्राद्ध को किया करत है उसमें और चाण्डाल में फिर कौन सा भेद रह जाया करता है ? ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर पिता को अपनी वाणी का नियमन करते हुए पुत्र वा आभ्युदयिक कर्म करना चाहिए । जातकाशोष व समाप्त हो जाने पर अन्न में विधि-विधान के अनुसार बालक का नामकरण करे । ह विप्रैर्द्र । नाम ऐसा ही हाना चाहिये जो परम स्पष्ट हो —

सायंक और स्वप्नाक्षरी चाला हो । इसके विपरीत नाम नहीं रखना चाहिये ॥७०८॥

✓ तृतीयवर्षे चोत्त च पचमे षष्ठसंमिते ।

सप्तमे चाष्टमे वापि कुर्याद् गृह्योक्तमार्यतः ॥६॥

दैवयोगादतिक्राते गर्भाधानादिकर्मणि ।

वर्तव्य पादकृच्छ्रो वै चोत्ते त्वद्धं प्रकल्पयेत् ॥१०॥

✓ गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे वटुकस्योपनायनम् ।

आषोडशाब्दपर्यन्तं गौणं कालमुद्यतिं च ॥११॥

गर्भैकादशमेऽब्दे तु राजन्यस्योपनायनम् ।

आद्वाविंशाब्दपर्यन्तं कालमाहुर्विपश्चित् ॥१२॥

वैश्वयोपनयनं प्रोक्तं गर्भास्तु द्वादशे तथा ।

चतुर्विंशाब्दपर्यन्तं गौणमाहुर्मनापिण ॥१३॥

एतत्कालावधेयस्य द्विजस्यातिक्रमो भवेत् ।

सावित्रीपतितं विद्यात्तं तु नैवालपेत्कदा ॥१४॥

गृह्यसूत्र धर्मग्रन्थ के अनुसार फिर बालक का चौथे वर्ष तीसरे पाँचवें, छठवें, सातवें तथा आठवें वर्ष में करे अर्थात् षष्ठ्यन मस्कार करना चाहिए ॥ ६ ॥ यदि दैवशास्त्र संमुचित समय पर गर्भाधान आदि मस्कार न हो सके तो चतुर्थ भाग—वृच्छ्र व्रत का प्रायश्चित्त व रूप में करना चाहिये और षड्वार्षिक मस्कार संमुचित समय पर नहीं किया जा सके तो आधा भाग वृच्छ्र व्रत का करना चाहिए तभी शुद्धि होती है ॥१०॥ गर्भाधान के समय में आठवाँ वर्ष में बालक का यज्ञोपवीत मस्कार करना चाहिए । यदि इन उचित समय पर यह मस्कार नहीं किया जाता है तो फिर गार्ग्य वर्ष तथा इग उपनयन मस्कार का गौण नाम माना गया है ॥ ११ ॥ गर्भाधान में आठवें वर्ष में शनिप या यज्ञोपवीत मस्कार करना चाहिये । विद्वान् पुराण शत्रिय गौणनाम आदि वर्ष तथा ब्रह्म व्रत हैं । गम न यान्त्रिक वर्ष में शीघ्र या उप-

नयन कराना चाहिए । विद्वान् पुष्प चौबीस वर्ष तक दीशय के इस सस्कार का गौण काल कहा करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ जिस द्विज का मुख्य और गौण दोनों ही काल व्यतीत हो जावे तो वह फिर सावित्री पतित माना जाया करता है और फिर उससे बात भी किसी को नहीं करनी चाहिए ॥१४॥

द्विजोपनयने विप्र मुख्यकालव्यतिक्रमे ।

द्वादशाब्द चरेत्कृच्छ्रं पश्चाच्चाद्रायण तथा ।

सातपनद्वयं चैव कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥१५

अन्यथा पतित विद्यात्कर्त्तापि ब्रह्महा भवेत् ।

✓मौजी विप्रस्य विज्ञेया धनुर्ज्या क्षत्रियस्य तु ॥१६

✓आवी वैश्यस्य विज्ञेया श्रूयतामजिन तथा ।

विप्रस्य चोक्तमैणय रौरव क्षत्रियस्य तु ॥१७

आज वैश्यस्य विज्ञेय दडान्वक्ष्ये यथाक्रमम् ।

✓पालाश ब्राह्मणस्योक्तं नृपस्यौदुम्बर तथा ॥१८

वैश्व वैश्यस्य विज्ञेय तत्प्रमाणं शृणुष्व मे ।

विप्रस्य केशमानं स्यादाललाटं नृपस्य च ॥१९

नासाग्रसमितं दण्डं वैश्यस्याहुर्विपश्चित ।

तथा वासांसि वक्ष्यामि विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥२०

कपाय चैव माजिष्ठं हारिद्रं च प्रकीर्तितम् ।

उपनीतो द्विजो विप्र परिचर्यापरो गुरो ॥२१

हे विप्रवर ! द्विज के उपनयन सस्कार का मुख्य काल व्यतीत होजावे तो फिर उसको बारह वर्ष तक कुछ व्रत प्रायश्चित्त के लिये करना चाहिए । इसके बाद दो चान्द्रायण व्रत और इसके पीछे दा सन्तापन व्रत करके ही कर्म करे ॥१५॥ ऐसा न करने पर यह सर्वथा पतित समझा जाता है और उस दशा में वह कर्म करके भी ब्रह्म हत्यारा ही कहा जाया करता है । उपनयन सस्कार में ब्राह्मण की

नारद पुराण]

मेखला मूत्र की होनी चाहिये । क्षत्रिय की मेखला धनुष की डोरी की, वंश्य की मेखला भेड़ के ऊन की होनी चाहिए । अब उनके चर्म धारण के विषय में भी श्रवण करिये । ब्राह्मण के लिये ऐण मृग का चर्म होना चाहिये । क्षत्रिय के लिये रुद्र मृग की होवे और वंश्य के लिये बकरे का चर्म होना चाहिये । इसी प्रकार से भिन्न-२ वर्णों के दण्ड भी भिन्न होते हैं । ब्राह्मण वटु के लिये ढाक का दण्ड होना चाहिए और क्षत्रिय वर्ण के वटु के लिये उपनयन सस्कार के समय में धारण करने के लिये गूलर वृक्ष का दण्ड होना चाहिये ॥ १७।१८ ॥ वंश्य वर्ण के लिये विल्व वृक्ष का दण्ड होना चाहिये । इन दण्डों की ऊँचाई भी भिन्न-२ होती है । ब्राह्मण का दण्ड केशो तक ऊँचा होवे, क्षत्रिय का दण्ड सलाट तक ऊँचा होवे और विद्वान् पुरुष वंश्य का दण्ड नासिका तक ऊँचा बहा करते हैं । इसके अनन्तर ब्राह्मणादि के वस्त्रों का वर्णन किया जाता है ॥१९।२०॥ ब्राह्मण वर्ण के बालक के वस्त्रों का रङ्ग गेरुआ होना चाहिये, क्षत्रिय का मँजीठ का रङ्ग और वंश्य के बालक का रङ्ग पीला होना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! उपवीत हुए द्विज को गुरु की सेवा करते हुए वेदों को ग्रहण करने के समय पर्यन्त गुरु के ही यहाँ रहना चाहिए ॥२१॥

वेदग्रहणपर्यन्त निवसेद्गुरुवेश्मनि ।

प्रातःस्नायी भवेद्वर्णा समित्कुशफलादिकान् ॥२२

गुर्वथमाहृतेन्नित्यं कल्ये कल्ये मुनीश्वर ।

यज्ञोपवीतमजिन दड च मुनिसत्तम ॥२३

नष्टे भ्रष्टे नव मत्राद् धृत्वा भ्रष्ट जले क्षिपत् ।

वणिनो वर्तन प्राहुर्भिक्षान्नेनैव केवलम् ॥२४

भिक्षा च श्रोत्रियागारादाहरेत्प्रयतेद्रिय ।

भवत्पूर्वं ब्राह्मणस्य भवन्मध्य नृपस्य च ॥२५

भवदत्यं विश प्रोक्तं भिक्षाहरणकं वच ।

सायंप्रातर्वह्निकार्यं यथाचारं जितेन्द्रिय ॥२६

कुर्यात्प्रतिदिनं वर्णो ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् ।

अग््निकार्यपरित्यागो पतितः प्रोच्यते बुधे ॥२७

ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा परिकीर्तितः ।

देवताभ्यर्चनं कुर्याच्छुश्रूषानुपदं गुरो ॥२८

गुरु के घर में ही निवास करने वाले ब्रह्मवादी को प्रातः काल में स्नान करना चाहिए । हे मुनीश्वर ! प्रातः काल में गुरुवदेव के लिए नित्य पुष्प, समिधा, फल आदि आवश्यक वस्तुएं लाना चाहिये । यदि ब्रह्मचारी के चर्म, यज्ञापवीत, दण्ड आदि नष्ट या भ्रष्ट होजावें तो मन्त्रों का वाचन कर पुनः नवीन धारण करे । जो भ्रष्ट हो जावे तो उसको किसी पवित्र जलाशय में छोड़ देना चाहिये । ब्रह्मचर्म की अवस्था में रहने वाले ब्रह्मचारी की जीविका केवल भिक्षा अन्न से ही होनी चाहिये ॥२२-२४॥ इन्द्रियो पर पूर्ण सटम रखते हुये केवल वेद पाठी ब्राह्मण के यहाँ से ही भिक्षा-न्न प्राप्त करे जब भिक्षा याचना करे तो ब्राह्मण द्विज को भवत् शब्द का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भवति । भिक्षा देहिमात' अर्थात् आप हे माता भिक्षा दो । क्षत्रिय यदि भिक्षा की याचना करे तो उसका भवत् शब्द का प्रयोग मध्य में करना चाहिए । यथा—'भिक्षा भवति । देहिमात' । यदि वैश्य द्विजाति भिक्षा की याचना करे तो उसे अन्न में भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भिक्षा दहि भवति मात' । ब्रह्मचारी को प्रति दिन प्रातः और सायंकाल दाना वक्त अग्निहोत्र करना आवश्यक होता है और आचार के अनुसार ब्रह्म यज्ञ तथा तर्पण भी करना चाहिए । विद्वान् पुरुष अग्निहोत्र का त्याग करने वाले पुरुष का पतित बताया करते हैं ॥२२-२७॥ जो ब्रह्म यज्ञ नहीं किया करता है उसको ब्रह्म हत्या करने वाला बताया गया है । ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि अपन ताचर्य गुरुदेव की सेवा करते हुए देव पूजा भी प्रति दिन करना चाहिए ॥२८॥

भिक्षान्न भोजनेनिय नोत्तमान्नी वदानन ।
 आचोयानिच्छधिप्राणा शूद्रादिभक्षा त्रिषोडशिव ॥२६

निवेद्य गुरोः शर्मासाक्षात्पश्यन्तनुजरा ।
 मधुश्रीमागवरन नान्दून दाधारनम् ॥२७

उच्छिष्टभोजनं चैव दिवाम्नाप च यत्रयेत् ।
 श्रवणादुत्तमधाश्च तथा मास्पानुत्पन्नम् ॥२९

ज्वरनेत्र नृपगोतराण्य तु पर्यिजयेत् ।
 पश्याद् चोपनाप विप्रनाप नयाजनम् ॥३२

पापण्डजनमयोग शूद्रमग च वर्जयेत् ।
 श्रमियादनशील स्याद् वृद्धेषु च यथाक्रमम् ॥३३

ज्ञानवृद्धाम्पपोवृद्धा ययोवृद्धा इति त्रय ।
 आध्यात्मिरादिदुःखानि निवारयति यो गुरु ॥३४

वेदनाम्प्रापदेनेन त पूर्वमभियादयेत् ।
 अमावहृमिति श्रूयाद् द्विजो वै स्याभियादने ॥३५

ब्रह्मचारी का नित्य भिक्षा का साया हुआ ही अन्न ग्राना चाहिए और एव ही अन्न नित्य नही ग्राना चाहिये । ब्रह्मचारी का इन्द्रियत्रिन होना परमावश्यक है । उमका अनिन्दित ब्राह्मणो मे यही मे ही भिक्षा मानी चाहिए और उन नाकर गर्व प्रथम गुरु का सम्पिन करना चाहिए । गुरुदश का आदेश प्राप्त करने ही मोन हाकर भाजन करना चाहिये । ब्रह्मचारी का मधु, श्मो, मांस, लवण, पान, दौनुन, उच्छिष्ट भोजन और दिन मे शयन का परित्याग कर दना चाहिए । (ब्रह्मचारी को छाता, छटाऊँ, गन्ध माल्य, अनुलेपन, जल-विहार, नृत्य-गान, वाद्य, निन्दा, उपनाप, बक्वाद और अश्रजन का भी त्याग कर दना चाहिए ॥२६॥३०॥) ब्रह्मचारी का पापण्ड करने वाले तथा शूद्रो का मङ्ग बमो नहीं करना चाहिए । जो भी अपन मे वृद्ध हा उनको क्रमश प्रणाम करना चाहिए । वृद्ध भी तीन तरह के

वताये गये है—ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध और तपोवृद्ध ये तीन भेद वृद्धो के होते हैं । जो वेद और शास्त्र का उपदेश देकर आध्यात्मिक और आधिभौतिक आदि दुःखा का निवारण करने वाले हैं उनको सब प्रथम प्रणाम करना चाहिये । वृद्धा को अभिवादन करने के समय में द्विज को इस विधि से कहकर प्रणाम करना चाहिए कि प्रणाम ग्रहण करने वाले को उसका परिचय भी प्राप्त हो सके । मैं अमुक गोत्र में समुत्पन्न अमुक नाम वाला आपका प्रणाम करना चाहता हूँ ॥३१-३५॥

नाभिवाद्याश्च विप्रण क्षत्रियाद्या कथंचन ।
 नास्तिक भिन्नमर्याद कृतघ्न ग्रामयाजकम् ॥३६
 स्तेन च वित्तव चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
 पापण्ड पतित द्रात्य तथा नक्षत्रजीविनम् ॥३७
 तथा पातकिन चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
 उन्मत्ता च शठ धूर्त्त धावन्तमशुचि तथा ॥३८
 अभ्यक्तशिरस चैव जपन्त नाभिवादयेत् ।
 विवादशीलिन चड वमत जलमध्यगम् ॥३९
 भिक्षान्नधारिण चैव शयान नाभिवादयेत् ।
 भर्तृघ्नी पुष्पिणी जारा सूतिका गर्भपातिनीम् ॥४०
 वृत्तघ्नी च तथा चाण्डी कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
 सभाया यज्ञशालाया देवतायतनेष्वपि ॥४१
 प्रत्येक तु नमस्वारो हति पुण्य पुरावृतम् ।
 श्राद्ध व्रत तथा दान देवताभ्यर्चन तथा ॥४२
 यज्ञ च तपण चैव कुर्वन्त नाभिवादयेत् ।
 वृत्तेऽभिवादने यस्तु न पुथा प्रतिवादनम् ॥४३

एक उम उगति का जो साहस्य, शत्रिय आदि किसी को भी प्रणाम न करे ईश्वर की मत्ता का जा न मानता हो, जो बंधी हुई पुरुषों को तोड़ दे, जो किसी भी उखार को भी न माने। चार,

जुझारी, ग्रामयाजक, पतित, पाखण्ड करने वाला, द्रात्य और जो नक्षत्र-जीवी हो, इनको भी प्रणाम ब्रह्मचारी को नहीं करना चाहिये ॥३६॥ ३७॥ महापातकी, उन्मत्त, शठ, धूर्त और जो भाग रहा हो अथवा अपवित्र हो उसको भी प्रणाम नहीं करना चाहिए ॥३८॥ जो शिर मलकर प्रक्षालन कर रहा हो, जो मन्त्र का जाप कर रहा हो । जो झगडा और कलह करने के स्वभाव से युक्त हो, क्रोधशील, जो वमन करने वाला हो और जो जल के मध्य में हो उसको कभी प्रणाम नहीं करना चाहिये ॥३९॥ जिसके पास में भिक्षा से प्राप्त अन्न हो और जो शय्या पर लोट लगा रहा हो उसको भी कभी भूज कर भी प्रणाम नहीं करना चाहिए । जो नारी अपने ही पति की ताड़ना किया करती है अथवा जो स्त्री ऋतुमती हो, सूतिका, गर्भ-पान कर देने वाली, क्रूरघ्नी और क्रोध करने के स्वभाव वाली हो, उस नारी को भी अभिवादन करने का निषेध होता है । सभा, यज्ञ-शाला अथवा देवालय में उपस्थित प्रत्येक का अभिवादन करना भी उचित नहीं होता है क्योंकि ऐसा करने से पूर्ववृत्त समस्त पुण्य का विनाश करने वाला हुआ करता है । जो कोई पुरुष चाहे वह नमन करने के योग्य क्यों न हो यदि वह श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन यज्ञों का यजन और तर्पण करने में मनग्न हो तो उसको अभिवादन नहीं करना चाहिए और उसको कभी प्रणाम न करे और जो प्रणाम करने पर कुछ भी आशीर्वाद न देने के स्वभाव वाला हो ॥४०-४३॥

नाभिवाद्याश्च स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव स ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुरोरभिमुख सदा ॥४४

तस्य पादौ च सगृह्य अधीयीत विचक्षण ।
अष्टकानु चतुदश्या प्रतिपत्पर्वणोस्तथा ॥४५॥
महाभरण्या विप्रेन्द्र श्रवणद्वादशीदिने ।
भाद्रपदापरपक्षे द्वितीयाया तर्धैव च ॥४६॥

माघस्य शुक्लसप्तम्यां नवम्यामाश्विनस्य च ।
 परिवेष गते सूर्ये श्रोत्रिये गृहमागते ॥४७
 बधिते ब्राह्मणे चैव प्रवृद्धकलहे तथा ।
 सध्याया गर्जिते मेवे ह्यकाले परिवर्षणे ॥४८
 उल्काशनिप्रपाते च तथा विप्रेऽवमानिते ।
 मन्वादिषु च देवर्षे युगादिषु चतुर्ष्वपि ॥४९
 नाधोयीत द्विजः कश्चित्सर्वकर्मफलोत्सुकः ।
 तृतीया माघवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी ॥५०
 कार्तिके नवमी शुद्धा माघे पञ्चदशी तिथिः ।
 एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥५१

ऐसे पुरुषों को अभिवादन करने का पात्र नहीं समझना, चाहिये क्योंकि जैसा मूढ़ होता है वैसे ही ऐसे पुरुष भी हुआ करते हैं। चतुर ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि अपने पंरो का प्रक्षालन कर आचमन करे और इसके पीछे अपने गुरुदेव के समक्ष में जाकर उनके चरणों का स्पर्श करे और फिर अध्ययन किया करे। कुछ दिन वेद शास्त्रों के अनध्याय दिवस माने जाते हैं उन दिनों में कभी पढ़ना नहीं चाहिये। जैसे—अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपत्, पर्व तिथि, महा भरणी नक्षत्र, श्रवण नक्षत्र से समुत्त द्वादशी, भाद्रपद मास स्थित शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि, माघ शुक्ला सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, सूर्य ग्रहण का दिन अथवा वह दिन जिस दिन कोई श्रोत्रिय का घर में समागमन हो। ये अनध्याय दिन बताये गये हैं ॥४४-४७॥ हे द्विजवर ! जो द्विज सब बर्गों के पुण्य फल प्राप्त करने की उत्सुकता रखता है उसको खोनिखिन दिवसों में भी अध्ययन नहीं करना चाहिए—विभी शाहण के कारावास होने वाले दिन, वनह की वृद्धि वाले दिन, सन्ध्या समय मेघ गर्जन, असमायिक वर्षा वाले दिन, मन्वादि की तथा युगादि की तिथियों में अध्ययन का निषेध बताया गया है।

वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया (अक्षय तृतीया)—भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी), माघ मास की पूर्णिमा में युग के आरम्भ होने वाली तिथियाँ हैं । इन तिथियों में दिया हुआ दान अक्षय हुआ करता है ॥४८-५१॥

मन्वादीश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुसमाहित ।
 अश्विपुष्यकुलनवमी कार्तिके द्वादशी ।सता ॥५२
 तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।
 आपाढशुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी ॥५३
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथापाढी च पूर्णिमा ।
 फाल्गुनस्य त्रयोमावास्या पीपस्यैकादशी सिता ॥५४
 कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठ्ये पञ्चदशी सिता ।
 मन्वादय समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिका ॥५५
 द्विजै श्राद्ध च कर्त्तव्य मन्वादिषु युगादिषु ।
 श्राद्धे निमन्त्रितेचैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ॥५६

अब मन्वादि तिथियों को बतलाया जाता है अब आप परम समाहित होकर सुनिये—आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया, भाद्रपद की तृतीया, आपाढ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आपाढ मास की पूर्णिमा, फाल्गुन की अमावस्या, पीप शुक्ला एकादशी । कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठ—इन मासों की पूर्णिमा तिथि—ये सब मनुओं के आरम्भ होने वाली आदि तिथियाँ कही जाती हैं । इन तिथियों को महा पुण्यमयी माना जाता है और इनमें दिये हुए दान का अक्षय पुण्य हुआ करता है ॥५२-५५॥ द्विज का कर्त्तव्य है कि मन्वादि और युगादि तिथियों में श्राद्ध बर्ष करे । श्राद्ध के निमन्त्रण वाले दिन में और चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण वाले दिनों में अध्ययन नहीं करना चाहिए ॥५६

अयनद्वितये चैव तथा भूकंपने मुने ।
 गलग्रहे दुर्दिदने च नाधीयीत कदाचन ॥५७
 एवमादिषु सर्वेषु अनध्यायेषु नारद ।
 अधीयता मुमुढाना प्रजा प्रजा यशः श्रियम् ॥५८
 आयुष्य वलमारोग्य निवृन्तति यमः स्वयम् ।
 अनध्याये तु योऽधीते त विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥५९
 न त सभापयेद्विप्र न तेन सह सवसेत् ।
 कु डगोलकयो. केचिज्जडादीना च नारद ॥६०
 वदति चोपनयन तत्पुत्रादिषु केचन ।
 अनधीत्य तु यो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥६१
 शूद्रतुल्य. न विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथि ।
 अनधीतश्चु त्तिविप्र आचार प्रतिपद्यते ॥६२
 नाचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तैव सः ।
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ॥६३
 अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम् ।
 शब्दब्रह्ममयो विष्णुर्वेद. साक्षाद्धरि. स्मृतः ॥६४
 वेदाध्यायी ततो विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६५

जिस दिन में उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ हो उसमें-
 भूकम्प वाले दिन में भाठ (गर्गोक्त) गलग्रह दिनों में तथा मेघा च्छन्न
 दुर्दिन में अध्ययन करना वर्जित होता है अतः वह नहीं करना चाहिये
 ॥५७॥ हे नारद ! जो महामूढ इन दिनों में अर्थान् शास्त्रोक्त अना-
 ध्यायो के दिनों में भी अध्ययन किया करता है उनके आयु, वन और
 आरोग्य का छेदन स्वयं यमराज कर दिया करते हैं । जो उपयुक्त
 अनाध्याय दिवसों में भी पढ़ता है उसको ब्रह्म हत्याकाण्ड ही समझना
 चाहिए ॥५८॥५९॥ हे विप्रवर ! ऐसे पुरुष के साथ भाषण और सह
 भी नहीं करना चाहिये । कोई २ विद्वान् पुण्ड्र और गोलकों का भी

उपनयन सस्कार या ऐसो के पुत्रो का सस्कार भी निन्दित बताया करते हैं यह अनुचित ही है । जो बिना वेदो के पढे ही स्वय ही पुस्तकें लेकर पढने में श्रम करता है वह शूद्रवत् ही होता है ॥६०॥६१॥ ऐसे पुरुष को चाहे द्विज ही क्यों न हो शूद्र ही समझना चाहिये । ऐसा पुरुष तो नरको का परम प्रिय अतिथि हुआ करता है । हे विप्र ! बिना वेदो के अध्ययन के सदाचार का पालन भी निष्फल ही होता है ॥६२॥ इस प्रकार के सदाचरण का कोई भी फल नहीं प्राप्त हुआ करता है क्योंकि वह पुरुष विल्कुल शूद्र के ही समान माना जाया करता है । जो ब्राह्मण अनधीत है अर्थात् जिमने वेदो का अध्ययन नहीं किया है उसके नीतिक, नैमित्तिक और काम्य सभी प्रकार के कर्म तथा अन्य वैदिक कर्म सभी निष्फल हुआ करते हैं । विष्णु शब्द बृहममय है । वेद साक्षात् विष्णु भगवान ही हैं ॥६३॥६४॥ अतएव वेदो के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण के सभी मनोरथ परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥६५॥



॥ वेदध्ययनादि धर्म वर्णन ॥

- वेदग्रहणपर्यंत शुश्रूषानियतो गुरोः ।
 अनुज्ञातस्ततस्तेन कुर्यादग्निपरिग्रहम् ॥११
 वेदाश्च धर्मशास्त्राणि वेदाङ्गान्यपि च द्विज ।
 अधीत्य गुरुवे दत्त्वा दक्षिणा सविशेद गृहम् ॥१२
 रूपलावण्यसपन्ना सगुणा सुकुलोद्भवाम् ।
 द्विज समुद्धहेत्कन्या सुशीला धर्मचारिणीम् ॥१३
 मातृत् पञ्चमी धीमान्पितृत् सप्तमी तथा ।
 द्विज समुद्धहेत्कन्यामन्यया गुरुनल्पग ॥१४
 रोगिणी चैव वृत्ताक्षा सारोगकुलसभवाम् ।
 अतिकेशामकेशा च वाचाला नोद्धहेद् बुध ॥१५

कोपना वामना चंद दीघदेहा विरूपिणीम् ।
 न्यूनाधिकाङ्गीमुन्मत्ता पिशुना नोद्वहेद् बुध ॥६॥
 स्फूलगुल्फा दीर्घजघा तथैत पुरुषाकृतिम् ।
 समश्रुव्यजनसमुक्ता कुब्जा चैवोद्वहेन्न च ॥७॥

श्री सनकदेवाचार्य ने कहा—ब्रह्मचारी व्यक्ति का कर्तव्य है कि अपने गुरु की सेवा करते हुये वेदों के अध्ययन को साङ्गोपाङ्ग समाप्त करके ही फिर अग्नि को धारण करे ॥१॥ ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वेद धर्मशास्त्र और वेदों के अङ्ग शास्त्रों को पढ़कर ही गुरुदेव को दक्षिणा अर्पित करके फिर गार्हस्थ्य में प्रवेश करे अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थ बन जावे ॥२॥ उस गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा वाले द्विज को ऐसी ही कन्या से विवाह करना चाहिये जो रूप लावण्य से युक्त, गुणवती, सत्कुल समुत्पन्न, शीलवती और धर्म का आचरण करने वाली हो, विद्वान् द्विज को, अपन मातृ कुल में पाँचवी पीढ़ी की और पितृ कुल में सातवी पीढ़ी की कन्या से विवाह करना चाहिए अर्थात् मौसी, मामी, भूआ आदि की कन्या से नहीं करे अन्यथा गुस्तल्पमामी महा पापी होता है ॥४॥ रोगिणी, गोल नेत्रों वाली, रोगी के कुल में समुत्पन्न, अधिन घन केशों वाली, गञ्जी, अधिक खोलने वाली कन्या से विद्वान् को कभी विवाह नहीं करना चाहिए ॥५॥ विद्वान् को क्रोध करने के स्वभाव वाली, बहुत लम्बी, बौनी, विरूपा, अधिक अङ्गो वाली, विकलाङ्गी (कानों या छद्मों) कन्या के साथ कभी भी विवाह नहीं करना चाहिये । जो अन्मुन्मत्त अथवा चुगली करने के स्वभाव वाली कन्या हो उससे भी विवाह न करे ॥६॥ मोटे टखनों से युक्त शरीर वाली, लम्बी जाँघों वाली, पुरुष के समान आकृति वाली, दाढ़ी-मूछा वाली हाँ और जो कुबड़ी हो ऐसी कन्या से भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥७॥

वृथाहाम्यमुखी चैव गदान्यगृह्णामिनीम् ।

विवादशीलां भ्रमिता निष्ठुरां नोद्वहेद् बुधः ॥८
 वह्वशिनी स्थूलदता स्थूलोष्ठी धुर्धु रस्वनाम् ।
 अतिकृष्णा रक्तवर्णा धूर्ता नैवोद्वहेद् बुध ॥९
 सदा रोदनशीला च पाण्डुराभा च कुत्सिताम् ।
 कासश्वासादिसयुक्ता निद्राशीला च नोद्वहेत् ॥१०
 अनर्थभाषिणी चैव लोकद्वेषपरायणाम् ।
 परापवादनिरता तस्करा नोद्वहेद् बुध ॥११
 दीर्घनासा च कितवा तनूरुहविभूषिताम् ।
 गर्विता वक्त्रवृत्ति च सर्वथा नोद्वहेद् बुध ॥१२
 बालभाषादविज्ञातस्वभावामुद्वहेद्यदि ।
 प्रगल्भा वाऽगुणा ज्ञात्वा सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१३
 भक्तुं पुत्रेषु या नारी सर्वदा निष्ठुरा भवेत् ।
 परानुकुलिनी या च सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१४

बिना ही किसी कारण के व्यर्थ ही मे हँसने वाली, दूसरो के घर मे निवास करने की इच्छा या रुचि रखने वाली, झगडा करने के स्वभाव से समुत भ्रम मे युक्त और अनि निष्ठुर स्वभाव की बग्या से भी विवाह नही करना चाहिये ॥८॥ विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अधिक खाने वाली, बडे दाँतो वाली, धुर्धुर ध्वनि करने वाली, अत्यधिक काले वर्ण वाली, रक्त वर्ण से युक्त और जो धूर्ता हो ऐसी बग्या के साथ विवाह न करे ॥९॥ जो सदा ही रोते रहने के स्वभाव वाली हो, पाण्डुर वर्ण की आभा से युक्त कास और श्वास रोग वाली, कुत्सित, सदा शयन ही करन वाली बग्या के साथ भी विवाह नही करना चाहिये ॥१०॥ अनर्थक एव अमस्त्रिधत बातें करने वाली, सभी से द्वेष भाव रखने वाली, दूसरो की निन्दा मे निरत रहने वाली, चारी करने वाली बग्या से भी विवाह नही करना चाहिये ॥११॥ जो लम्बी नामिका से युक्त हो, द्यूत क्रीडा करने वाली हो, सर्वाङ्ग मे

लम्बे केशो वाली, अभिमान से भरी हुई, देखने में सीधी मगर मन से चालाक कन्या ने भी विवाह नहीं करना चाहिए । यदि बालभाव वश अथवा स्वभाव का ठीक ज्ञान न होने पर ऐसी कन्या से विवाह भी हो जावे तो उसको अति प्रगल्भ और गुणहीन मानकर उसका त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥ जा नारी सदा ही अपने स्वामी और पुत्रों से निष्पूरता का व्यवहार किया करती हो अन्यो के अनुबूल रहा करती हो उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥१४॥

विवाहाश्चाष्टधा ज्ञेया ब्रह्माद्या मुनिसत्तम ।
 पूर्वं पूर्वो वरो ज्ञेय पूर्वाभावे पर पर ॥१५॥
 ब्राह्मो देवस्तथैवापि प्राजापत्यस्तथासुर ।
 गाधर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मत ॥१६॥
 ब्राह्मणे च विवाहेन वैवाह्यो वै द्विजोत्तम ।
 दैवेनाप्यथवा विप्र केचिदापि प्रचक्षते ॥१७॥
 प्राजापत्यादयो विप्र विवाहा पच गहिता ।
 अभावेपु तु पूर्वपा कुर्यादिव परान्बुध ॥१८॥
 यज्ञोपवीतद्वितय सोत्तरीय च धारयेत् ।
 सुवर्णकुण्डले चैव धौतवस्त्रद्वय तथा ॥१९॥
 अनुलोपनलिप्ताग कृत्तकेशनख शुचि ।
 धारयेद्वैणव दड सोमक च कमडलुम् ॥२०॥
 उष्णीषममल छत्र पादुके चाप्युपानहौ ।
 धारयेत्पुष्पमाल्ये च सुगध प्रियदर्शन ॥२१॥

हे परमश्रेष्ठ मुने । विवाह भी ब्राह्मणादि आठ प्रकार के होते हैं । इन आठों में प्रथम विवाह ही श्रेष्ठ विवाह माना गया है । यदि प्रथम न बन सके तो इसके अभाव में दूसरा विवाह करे । इसी क्रम से एक दूसरे में निम्न श्रेणी के विवाह हैं जो अभाव में ही करने चाहिए अन्यथा न्यूनतम विवाह कभी न करे ॥१५॥ आठ तरह के विवाहों के

नाम ये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापात्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच । ये आठ विवाह के भेद हुआ करते हैं ॥१६॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्राह्म विवाह ही करना चाहिये । हे विप्रवर । कोई २ आचार्य दैव और आर्ष विवाह करने की भी आज्ञा दिया करते हैं ॥१७॥ प्राजापत्य से लेकर अन्य जो पाँच प्रकार के विवाह होत हैं वे इन तीनों की समानता रखने वाले नहीं माने जाया करते हैं । यदि प्रथम श्रेष्ठ विवाह नहीं हो सके तो अगले दो विवाहों में जो भी बन सके विवाह विद्वान पुरुष को करना अवश्य ही चाहिए ॥१८॥ ब्रह्मचर्य को त्याग कर गृहस्थ होन पर द्विज को दो यज्ञोपवीत, दो अङ्गो का, सुवर्ण के दो कुण्डल और घोती जोडा अवश्य ही अपने समीप में रखना चाहिए ॥१९॥ उसको फिर उबटना, तैल और चन्दनादि का प्रयोग भी अवश्य करना चाहिए । अपने केश और नखों को कटवा कर परम पवित्र रहे तथा सदा अपने पास एक दाँस की यष्टि और जलसे परिपूर्ण कमण्डलु रखना चाहिए ॥२०॥ मस्तक पर स्वच्छ शिरोवेष्टन (पगडी आदि) छाता, खडाऊँ या पादत्राण (जूत) आदि पहिनना चाहिए । परम सुन्दर वस्तुओं को धारण किया करे । इस विधि से गृहस्थाश्रमी को परम प्रिय दर्शन होकर ही रहना चाहिये ॥२१

नित्य स्वाध्यायशील स्याद्यथाचार समाचरेत् ।
 परान्न नैव भुञ्जीत परवाद च वर्जयेत् ॥२२
 पादेन नाक्रमेत्पादमुच्छिष्ट नैव लघयेत् ।
 न सहताभ्या हस्ताभ्या कडयेदात्मन शिर ॥२३
 पूज्य देवालय चैव नापमव्य व्रजेद् द्विज ।
 देवार्चाचमनस्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु ॥२४
 न भवेन्मुक्तकेशश्च नैव वस्त्रधरस्तथा ।
 नारोहेद् दुष्टयान च क्षुब्धवाद च वर्जयेत् ॥२५
 अन्यस्त्रिय न गच्छेच्च पैशुन्य परिवर्जयेत् ।

नापसव्य ब्रजेद्विप्र गोश्वत्थानलपर्वतान् ॥२६

चतुष्पथ चैत्यवृक्ष देवखात नृप तथा ।

असूया मत्सरवे च दिवास्वाप च वर्जयेत् ॥२७

न वदेत्परपापानि स्वपुण्य न प्रकाशयेत् ।

स्वक नाम स्वनक्षत्र मान चैवातिगोपयेत् ॥२८

गृहस्थी को भी सदा स्वाध्याय करते रहना चाहिए और अपने वर्णार्थम धर्म के ही अनुसार आचरण करे, भरसक दूसरो के अन का सेवन कर्न से बचता रहे और कभी भी अन्य लोगो की निन्दा न करे चाहे कोई बुरे से भी बुरा क्यों न हो ॥२२॥ अपने पैर से पैर को कभी नहीं दबाना चाहिए । उच्छिष्ट पदार्थ का उल्लघन न करे, दोनो हाथो को एक साथ मिलाकर अपना शिर कभी नहीं जुलाना चाहिए । ये सब बुरे लक्षण घातक हुआ करते हैं ॥२३॥ द्विज को चाहिए हमेशा पूज्य देवालय को दाई ओर करके ही गमन किया करे । देवाघन, स्नान, आचमन, व्रत और श्राद्धकर्मादि के करने के समय में अपनी शिखा और केशो को खुला हुआ नहीं रखे या एक ही वस्त्र भी पहिन कर नहीं रहना चाहिए । कभी भी बुरी सवारी पर आराहण न करे तथा व्यर्थ प्रयोजनशून्य विवाद भी न करे ॥२४॥२५॥ व्यभिचार, चुगली कभी भी नहीं करे । हमेशा इसका ध्यान रखे कि गमन के समय में यदि गो, पीपल का वृक्ष, अग्नि और पवत पडे तो इनको अपने वाम भाग में करके गमन नहीं करना चाहिए ॥२६॥ इसी विधि के अनुसार चौराह (चतुष्पथ) चैत्यवृक्ष और देव स्थान को सदा अपने दक्षिण भाग में लेता हुआ ही गमन करना चाहिए । गृहस्थी को असूया, मत्सरता, दिवा जयन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥२७॥ भूल कर भी दूरमे क द्वारा किय हुए पाप कर्मों का अपने मुख से बणन नहीं करे और अपन द्वारा कृत पुण्य कर्मों का भी अपन मुह में प्रबट नहीं करना चाहिए । गर्वदा अपना नाम, नक्षत्र तथा धन बल का मान गुप्त रखना चाहिए ॥२८॥

न दुर्जनै सह वसेन्नाशास्त्र शृणुयात्तथा ।
 आसवद्यूतगीतेषु द्विजस्तु न रति चरेत् ॥२६
 आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्ट शूद्र च पतित तथा ।
 सर्प च भयण स्पृष्ट्वा सचेल स्नानमाचरेत् ॥२७
 चिति च चितिकाष्ठ च यूप चाडालमेव च ।
 स्पृष्ट्वा देवलक चैव सवासा जलमाविशेत् ॥२९
 दीपखट्वातनुच्छाया केशवस्त्रकटोदकम् ।
 भजामार्जनिमाजरिणुर्देव शुभ हरेत् ॥३२
 शूर्पंवात भ्रेतधूम तथा शूद्रान्नभोजनम् ।
 वृषलीपतिसङ्ग च दूरत परिवर्जयेत् ॥३३
 असच्छास्त्रार्थमनन खादन नखकेशयो ।
 तथैव नग्नशयन मर्मदा परिवर्जयेत् ॥३४
 शिरोभ्यगावशिष्टेन तैलेनाङ्ग न लेपयेत् ।
 ताम्बूलमशुचि नाद्यात्तथा मुप्त न बोधयेत् ॥३५

दुष्ट लोगो के पड़ोस में कभी निवास न करे । अशास्त्रीय बातें
 ही उन पर अपना कान ध्वज करने के नियम नहीं लगावे तथा द्विज
 को आमव, द्यूत, मादक पदार्थ और गीतों में प्रेम कभी न करे ॥२६॥
 आर्द्र अस्थि, उच्छिष्ट, शूद्र, पतित, सर्प, श्वान इनमें यदि स्पर्श होजावे
 तो यन्त्रों के महित स्नान करना चाहिए ॥२७॥ चिता और बिना की
 सक्टी, यूप, चाण्डाल और देवमन्त्र का स्पर्श होने पर भी ध्वज ही
 स्नान करना चाहिए ॥२९॥ दीपक और शरीर की छाया, केशवस्त्र कटादक
 बकरी, घुड़ारी, विनाय के नीचे की धूलि में सभी पदार्थ प्रारब्ध व्रत का
 नाश करने वाले हुआ करते हैं । गृह की श्वा, प्रत का चिता का
 धूम, शूद्रान्न का आहार, शूद्रा स्त्री का पति का मृत इनका स्पर्श दूर
 ही से कर देना चाहिए ॥३२॥३३॥ कुम्भिक द्रव्या का मनन, नग्नो
 और केशों को दाँतो में बाँटना, नग्न होकर शयन करना आदि कुल-

क्षणो वा भी अवश्य ही परित्याग कर देना चाहिए । इनके करने में धर्म नाश के साथ चुरा प्रभाव भी हुआ करता है ॥३४॥ शिर म डालन से अवशिष्ट तैल को शरीर पर कभी नहीं मलना चाहिए । अपवित्र ताम्बूल का चरण भी कभी न करे और कोई भी शयन कर रहा हो तो बिना किसी कारण के उस न जगावे ॥३५॥

नाशुद्धोऽग्निं पश्चिन्तेपूजयेद्गुरुदेवता ।

न वामहस्तेनैकेन पिवेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥३६

न चाक्रमेद गुरोश्छाया तदाज्ञा च मुनीश्वर ।

न निदेशोगिनो विप्रान्ब्रतिनोऽपि यतीस्तथा ॥३७

परस्परस्य मर्माणि न कदापि वदेद् द्विज ।

दर्शं च पूर्णमास्या च याग कुर्याद्यथाविधि ॥३८

उपासनं च होतव्यं सायं प्रातर्द्विजातिभिः ।

उपासनपरित्यागो सुरापीत्युच्यते बुधैः ॥३९

अग्ने विष्णवे चैव युगादिषु चतुर्ष्वपि ।

दर्शं च प्रोत्पक्षे च श्राद्धं कुर्याद् गृही द्विज ॥४०

मन्वादिषु मृताहे च अष्टकामु च नारद ।

नवधान्ये समायाते गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४१

श्रोत्रिये गृहमायाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पुण्यक्षेत्रेषु तीर्थेषु गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४२

अपवित्र अथवा अशुद्ध अवस्था में रहकर कभी अग्नि सेवा गुरु और देवों का यजन नहीं करना चाहिए । अकेले अपने वाम कर से पशु के समान पात्र में मुख डाल कर मुख से जल का पान नहीं करना चाहिए ॥३६॥ हे मुनिवर । अपने गुरुदेव की छाया और उनकी आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥३७॥ द्विज को चाहिए कि आपस के मर्मों का उद्घाटन न करे । अमावस्या और पूर्णिमा तिथियों में शास्त्रोक्त विधान से यज्ञ करे ॥३८॥ द्विजातियां को चाहिए कि नित्य ही निश्चय पूर्वक प्रातः व सायं दानों

कालो मे देवोपासना तथा हवन करना चाहिए । जो द्विज अपनी उचित उपामना का त्याग कर दिया करता है विद्वान लोग उसको सुरापी के समान ही समझा करते हैं ॥३६॥ गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने वाले द्विज को चाहिये कि वह दक्षिणायन और उत्तरायण के आरम्भ मे विपुष काल मे तुला तथा मेष की सक्राति के अवसर पर चारो युगो की तिथियो मे जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है—अमावस्या और पितृ पक्ष मे श्राद्ध करे ॥४०॥ हे नारद । गृहस्थी द्विज को मन्वादि की तिथियो मे, मृताह मे, अष्टका तथा नूतन धान्य के आने पर श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिये ॥४१॥ किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर मे समागत होने पर चन्द्र-सूर्य की ग्रहण वेला मे पवित्रतम क्षेत्रो तथा धामो और तीर्थ स्थलो मे गृहस्थी को अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिए ॥४२॥

यज्ञो दान तपो होम स्वाध्याय पितृतर्पणम् ।
 वृथा भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥४३॥
 उर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसी श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ।
 पराचार परित्याज्यस्तस्माच्छ्रेयोर्धिभिर्द्विजैः ॥४४॥
 इत्येवमादयो घर्मा स्मृतिमार्गप्रचेदिता ।
 कार्या द्विजातिभिः सम्यक्सर्वकर्मफलप्रदा ॥४५॥
 सदाचारपरा ये तु तेपा विष्णु प्रसीदति ।
 विष्णो प्रसन्नता याते विमसाध्य द्विजोत्तम ॥४६॥

द्विज का मस्तक कभी भी शून्य नहीं रहना चाहिए । तिलक करने को बहुत बड़ी महिमा है । वंष्णवो क मनानुसार विना ऊर्ध्व-पुण्ड्र के यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृ तर्पण सब व्यर्थ ही जाया करता है ॥४३॥ शैव, शाक्त आदि लोग ऊर्ध्व पुण्ड्र और तुलसी की श्राद्ध मे कोई आवश्यकता नहीं समझा करते हैं य लोग अपनी २ मन्त्रप्रदाय क अनुसार त्रिपुण्ड्र धारण किया करते हैं । अत-

एव परमाधिक श्रेय के अभिलाषी द्विज को दूसरे के आचार को त्याग कर अपने ही कुल क्रमागत आचार का पालन करना चाहिए ॥४५॥ स्मृति ग्रन्थों में वर्णित इस सदाचरण के नियमों का पालन द्विजों को करना ही चाहिए । ये सदाचरण सभी कर्मों का फल दिया करते हैं ॥४५॥ जो द्विजगण सदा सदाचरणों का पालन क्रिया करते हैं उन पर भगवान् विष्णु की अधिक प्रसन्नता हुआ करती है । जब भगवान् विष्णु प्रसन्न होजाया करते हैं तब फिर कोई भी कर्म असाध्य नहीं रहा करता है ॥४६



॥ गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म ॥

गृहस्थस्य सदाचार वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।
 यद्वता सर्वपापानि नश्यत्येव न शशयः ॥१॥
 ब्राह्मो मुहूर्ते चैत्याय पुरुषार्थाविरोधिनीम् ।
 वृत्ति संचितयेद्विप्र कृतकेशप्रसाधन ॥२॥
 दिवासध्यासु कर्णस्थग्रहसूत्र उदङ् मुखः ।
 कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौचेद्दक्षिणामुख ॥३॥
 शिर प्रावृत्य वस्त्रेण ह्य तर्ढाय तृणमहीम् ।
 वहन्काष्ठं करेणक तावन्मौनी भवेद् द्विज ॥४॥
 पथि गौण्डे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ ।
 तथा वृक्षस्य ञ्छायाया कातारे वह्निसन्निधौ ॥५॥
 देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे ।
 ब्राह्मणाना समीपे च तथा गोरुख्योपिताम् ॥६॥
 तुषागारकपालेषु जलमध्ये तथैत्र च ।
 एवमादिषु देशेषु मलमूत्र न कारयेत् ॥७॥

नारद पुराण]

थी सनक महर्षि ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं गृहस्थ के सदाचरणों का विस्तृत वर्णन करता हूँ—इन सदाचारों का पालन करने वालों के समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं ॥ १ ॥ हे विप्रवर ! गृहस्थी द्विज व्यक्ति को ब्राह्मण मुहूर्तों में ही जम्या से उठकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में बाधा पहुँचाने वाली आजीविका के विषय में विचार करना चाहिए । उसी समय में अपने केशों को भी सम्हाल लेवे ॥२॥ दोनों समयों में मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करने के समय में यज्ञोपवीत को कान पर चढाकर उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए । रात्रि के समय में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥ मल मूत्र के त्याग करने के समय में शिर को ममावृत रखे और भूमि पर तृण बिछाकर जिससे भूमि का साक्षात् मल का स्पर्श न आवे एक हाव से दण्ड को ग्रहण करके ही मीन होकर मल का उत्सर्ग करना चाहिए ॥ ४ ॥ निम्नलिखित स्थलों पर मल का त्याग कभी नहीं करे—मार्ग, गोठ, नदी तट, तालाब का तीर, वृक्षों की छाया, उपवन, अग्नि की मन्त्रिधि द्वालय, जुती हुई भूमि, चतुष्पथ, ब्राह्मण, गौ, गुर और स्त्रिया के समीप में भुम, अङ्गार, ठीकरो का ढेर, जल का मध्य ये सभी स्थल मल त्याग के लिये वर्जित हैं ॥५-७॥

शौचे यत्न सदा कार्यं शौचमूलो द्विज. स्मृत ।

शौचाचारविहीनस्य समस्त कर्म निष्फलम् ॥८

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्या वह्निं शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथातरम् ॥९

गृहीतशिशनश्चो याय शौचार्यं मृदमाहरेत् ।

न मूषकादिखनिता फालोन्कृष्टा तथैव च ॥१०

वापोऽनूपतडागेष्वपि नाहरेदपि मृत्तिकां ।

शौचं कुर्यात्प्रयत्नेन समादाय शुभा मृदम् ॥११

लिङ्गे मृदेका दातव्या तिस्रो वा हस्तयोर्द्वया ।

एतन्मूत्रसमुत्सर्गं शौचमाहुर्मनीषिणः ॥१२
 एका लिंगे गुदे पंच दश वामे तथोभयोः ।
 सप्त तिस्रः प्रदातव्या. पादयोर्मृत्तिकाः पृथक् ॥१३
 एतच्छौचं विदुत्सर्गं गन्धलेपापनुत्तये ।
 एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥१४
 त्रिगुणं तु वनस्थाना यतीना तच्चतुर्गुणम् ।
 स्वस्थाने पूर्णशौचं स्यात्पथ्यद्धं मुनिसत्तम ॥१५

गृहाश्रमी को सदा परम पवित्र रहने का उद्योग एव प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि द्विजत्व का मूल पवित्रता ही होती है । जो पवित्रता और सदाचरणों से शून्य रहता है उसके द्वारा विहित सभी कर्म निष्फल हो जाया करते हैं ॥ ८ ॥ यह पवित्रता बाह्य और आभ्यन्तर के भेदों से दो प्रकार की हुआ करती है । मिट्टी और जल से बाह्यी शुद्धता हुआ करती है तथा मानसिक भावों की शुद्ध से आन्तरिक पवित्रता हुआ करती है ॥ ६ ॥ फिर लिङ्ग की हाथ में धामे हुए उठकर शौच के लिये मिट्टी लेवे । जहाँ से मृत्तिका का ग्रहण करे उस स्थान को भी पहिले विचार कर देख लेना चाहिए—चूहों तथा अन्य प्राणियों के द्वारा छोड़ी हुई मिट्टी न लेवे—हलकी नोक से उखड़ी हुई मिट्टी, बावड़ी, कूप और तालाब की मिट्टी का भी इस कर्म के लिये कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए । अच्छी और शुद्ध मिट्टी लेकर ही प्रयत्नपूर्वक स्वच्छता का सम्पादन करे अर्थात् पवित्र होना चाहिये ॥ १० । ११ ॥ उपम्य मे एक वार—दोनों हाथों में दो वार मृत्तिका लगाकर ही मूत्र के उत्सर्ग करने पर विद्वान् पुष्य शुद्धता बतलाया करत है ॥१२॥ मलोत्सर्ग करने पर दुर्गन्ध का निवारण करने के लिये एक वार लिङ्ग पर—पाच वार गुदा से—दश वार वाम वर मे—दोनों हाथों में सप्त वार पैरों में तीन वार मृत्तिका लगानी चाहिये । यह शुचिता गृहस्थों की कही है । ब्रह्मचारी की शुचित इससे द्विगुनी मृत्तिका

।रद पुराण]

वगाने से होती है—वानप्रस्थियों की तिगुनी क्रिया करने से ही शुद्धि हुआ करती है। हे मुनिवर । अपन स्थान पर पूर्ण शुचिता जैसी कि शास्त्र म बताई गयी है करनी चाहिए तथा मार्ग म इससे आधी करे ॥१३-१५॥

आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च ।
 गन्धलेपक्षयकर शौच कुर्याद्विचक्षण ॥१६
 स्त्रीणामनुपनीताना गन्धने रक्षयावधि ।
 व्रतस्थाना तु सर्वेषा यतिवच्छीचभिष्यते ॥१७
 विघ्नाना च विप्रैर्द्र एतदेव निगद्यते ।
 एव शौच तु निर्त्रय पश्चाद्दे सुतमाहिन ॥१८
 प्रागास्य उदगास्यो वाप्याचामेत्प्रयनेद्रिय ।
 त्रिश्चतुर्धा पिवेदापो गन्धकेनादिव्रजित ॥१९
 द्विर्माजयेत्कपोल च तलेनोष्ठी च सत्तम ।
 तर्जन्यगुष्ठयोगेन नासारध्रद्वय स्पृशत् ॥२०
 अगुष्ठानामिकाध्या च चक्षु श्रोत्रे यथाक्रमम् ।
 कनिष्ठागुष्ठयोगेन नाभिदेशे स्पृशेद् द्विज ॥२१

रक्षावस्था म और परम घोर आपर्ति के समय मे शुचिता जितनी भी बन पडे करे वहा पर कोई भी नियम नही बताया गया है । चतुर पुरुष को दुर्गन्ध के निवारण करने तक शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिये ॥१६॥ स्त्रियों का और ऐसे बालका का जिनका उपवीत नही हुआ हो इतनी ही शुचिता पर्याप्त है जिससे गन्ध का निवारण हो जावे । जो व्रत करे उनका सन्यामिया के तुल्य ही शुद्धि करनी चाहिए ॥ १७ ॥ हे विप्रवर । विघ्नवा स्त्रियों की शुचिता के लिये यही नियम होते है । इम रीति से शुचिता करके परम समाहित होकर उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके गन्ध-रुन आदि से रहित विशुद्ध निमल जल को तीन बार बार पीकर आचमन करे ॥ १८, १९ ॥ हे मुनि सत्तम । इसके उपरान्त दो बार जल से कपालो को धोव तथा दो बार ही अपन होंठो का प्रक्षालन करे । पीछे तजनी अँगुलि बौग अँगूठे से नासिका के छिद्रा को साफ करे ॥२०॥ अँगुष्ठ और अनामिका अगुलि की सहायता

से क्रम में नेत्रों और बानी का स्पर्श कर शुद्ध करे । इसके पश्चात् द्विज का कर्त्तव्य है कि कनिष्ठिका अँगुली और अँगूठे से नाभि देश का स्पर्श करना चाहिये ॥२१॥

तलेनोर स्थल चैव अगुल्यग्रं शिर स्पृशेत् ।

तलेन चाङ्गुलाग्रं वा स्पृशेदसौ विचक्षण ॥२२

एवमाचम्य विप्रद्र शुद्धिमाप्नोत्यमुत्तमाम् ।

दतकाष्ठ तत खादेत्सत्वञ्च शस्तवृक्षजम् ॥२३

विल्वासनापामार्गाणा निम्वाभ्रार्कादिशाखिनाम् ।

प्रक्षाल्य वापिणा चैव मग्नेणाप्यभिमन्त्रितम् ॥२४

आयुर्वल यशो वर्चं प्रजा पशुवसूनि च ।

ब्रह्म प्रजा च मेधा च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥२५

कनिष्ठाग्रसम स्थोत्ये विप्र खादेद्दशागुलम् ।

नवागुल क्षत्रियश्च वैश्यश्चाष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥२६

शूद्रो वेदाङ्गुलमित वनिता च मुनीश्वर ।

अलाभे दन्तवाष्टाना गङ्गुपेर्मानुसमिते ॥२७

मुखशुद्धिविधीयेत् तृणपत्रसमन्विते ।

करेणादाय वामेन सचवेद्वातदष्टया ॥२८

हाथ की हथेली से द्विज को अपने वक्ष स्थल का स्पर्श करना चाहिये—अँगुलियों के अग्रभाग से अपने शिर का स्पर्श करे फिर चतुर पुरुष को अपनी अँगुलियों के अग्रभाग से दोनों कान्धों का स्पर्श करना चाहिए ॥२२॥ हे विप्रवर ! इस विधि से सम्पूर्ण अङ्गों का स्पर्श करके तथा आचमन करके श्रेष्ठ शुचिता हुआ करती है । इसके उपरान्त किसी श्रेष्ठ वृक्ष की छालदार दातुन करे । दन्त धावन करने के लिए देल, विजयहार, चिरचिटा, नीम आम्र और मदार की टहनियों को पहिले प्रक्षालित करे और फिर निम्न मन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित करे—
'आयुर्वल यशो वर्चं प्रजा पशु वसूनि च । ब्रह्म प्रजा च मेधां च त्वन्नो धेहि वनस्पते । अर्थम् हे वनस्पते ! तुम मुझको आयु, बल, वज्र, तेज सन्तति पशु धन, वेद ज्ञान, बुद्धि और मेधा दो । इस से पढ़ करके अभिमन्त्रण करके फिर दातुन का ग्रहण करना चाहिए ॥२३—२५॥ ब्राह्मण को कनिष्ठिका के तुल्य स्थूल दश अंगुल

प्रणाम करे । फिर रविमण्डल से भगवान् वा आवाहन करके गन्धादि से मण्डल की रचना करना हुआ जनार्दन भगवान् का स्मरण करके गङ्गा आदि तीर्थों के पावन शुभ नामों का ममुच्चारण करते हुए स्नान करे ॥३१—३२॥ तीर्थों के स्मरण करने के मन्त्रों का निम्न रीति से ही पाठ करते हुए स्नान करने का विधान है । मन्त्र ये हैं—
 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जले
 ऽस्मिन्मग्निघ जुह । पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गायाः सरितस्तथा ।
 आगच्छन्तु महाभागा' स्नान काले सदा मम । अयोध्या मथुरा माया
 काशी-काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्ष
 दायिका ।' अर्थात् हे गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु और
 कावेरी । आप सब इस जल में सन्निधान करिये और अपना पुण्य
 प्रभाव इसमें डालिये । मेरे इस स्नान-काल में गङ्गा प्रभृति समस्त
 पावन नदियाँ तथा पुष्कर आदि महाभाग समस्त तीर्थ सर्वदा यहाँ
 पदार्पण करे । अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची,
 अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारका इन सातों पुरियों को मोक्ष देने
 वाली कहा गया है ॥३३—३५॥

ततोऽधमर्पणं जप्त्वा यतामुर्वारिसप्लुत ।
 स्नानाग तर्पणं कृत्वाचम्यार्घ्यं भानवेऽर्पयेत् ॥३६
 ततो ध्यात्वा विवस्वत जलान्निर्गत्य नारद ।
 परिधायाहत धीत द्वितीय परिवार्य च ॥३७
 कुशासने समाविश्य सध्याकर्म समारभेत् ।
 ईशानाभिमुखो विप्र गायत्र्याचम्य वै द्विज ॥३८
 ऋतमित्यभिमन्याथ पुनरेवाचमेद् जुध ।
 ततस्तु वारिणात्मान वेष्टयित्वा समुध्य च ॥३९
 सकल्प्य प्रणवान्ते तु ऋपिच्छन्द सुरान्स्मरन् ।
 भूरादिभिर्व्याहृतिभिः सप्तभिः प्रौक्ष्य मस्तकम् ॥४०

न्यास समाचरे-मन्त्री पुथगेव करागयो ।

विन्यस्य हृदये तार भू शिरस्यथ विन्यसेत् ॥४१

भुव शिखाया स्वश्चैव कवचे भूर्भुवोऽक्षिपु ।

भूर्भुव स्वस्तक्षात्रास्त्र दिक्षु तालत्रय न्यसेत् ॥४२

इसके अनन्तर अघमपण मन्त्र का जप करे—प्राणायाम करे

और जल से आर्द्र रहते हुये ही स्नानाङ्ग तर्पण करे । इसके उप-
रान्त आचमन करके सूर्य देव को अर्घ्य देव ॥३६॥ हे नारद । जल से
निकलकर सूर्य देव का ध्यान करके शाटी धारण करे और दूसरा वस्त्र
भी समीप रखकर दर्भासन पर स्थित होकर मध्या व्रम करे । हे
द्विजवय । ईशान कोण त्रिदिशा की ओर मुँह करके आचमन न करे
॥३७—३८॥ 'ऋत च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करके
वेदान् पुरुष को पुन आचमन करना चाहिए । इसके पश्चात् अपन
बाँधे ओर जत से घेरा देकर ममुक्षण करे ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात्
सकल्प करे । प्रणव के अन्त में ऋषि छन्द और देवता का स्मरण
करना हुआ भू—भुव—स्व—मह जन—तप—सत्यम्—इन सात
महावाहृतियों से अपने शिर पर प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ४० ॥
इसके उपरान्त मन्त्रों के साथ वरन्यास और अङ्गन्यास करे । जोर के
साथ—ॐ भू—ऐसा उच्चारण करता हुआ हृदय का हृदयाय नमः
कहकर स्पश करे । ॐ भुव यह बोलता हुआ 'शिरस स्वाहा—
कहकर शिर पर न्यास करे । 'ॐ स्व—देवायै वषट् कहकर शिखा
का स्पर्श करे । 'ॐ भूर्भुव स्व' इसका उच्चारण करते हुए दाया
भुजाओ का स्पर्श करना चाहिए । इसी रीति से ॐ भू भुव
स्व' कहकर दोनों नत्रा का स्पर्श करे और अन्त में 'ॐ अम्नाय वषट्'
पह कह कर दिशाओ में नीचे तानियाँ बजाव ॥४१॥४२॥

तत आवाहयेत्सध्या प्रात वोक्नदस्थिताम् ।

आगच्छ वरदे देवि भ्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ॥४३

✓ गायत्रि छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ।
 मध्याह्नेवृषभारूढा शुक्लाम्बरसमावृताम् ॥४४
 सावित्री रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम् ।
 साय तु गरुडारूढा पीताम्बरसमावृताम् ॥४५
 सरस्वती विष्णुयोनिमाहवयेद्विष्णुवादिनीम् ।
 तारं च व्याहृतोः सप्तत्रिपदा च समुच्चरन् ॥४६
 शिरः शिखा च सपूर्यं कु भयित्वा विरेचयेत् ।
 वाममध्यात्परैर्वायुं क्रमेण प्राणसयमे ॥४७
 द्विराचामेत्तत पश्चात्प्रातः सूर्यश्चमेति च ।
 आप पुनन्तु मध्याह्ने साथमग्निश्चमेति च ॥४८
 आपो हिष्ठेति तिसृधिर्माजिनं च ततश्चरेत् ।
 सुमित्रिया न इत्युक्त्वा नासास्पृष्टजलेन च ॥४९
 द्विपद्वर्गं समुत्सार्यं द्रुपदा शिरसि क्षिपेत् ।
 ऋतं च सत्यमेतेन कृत्वा चैवाधमर्षणम् ॥५०

इसके अनन्तर प्रातःकाल की सन्ध्या के अवसर पर रक्त
 वर्ण के कमल पर विराजमान श्री गायत्री माता या आवाहन निम्न
 लिखित मन्त्र को पढ़ते हुए करना चाहिये । 'आगच्छ वरदे देवि ।
 व्यक्षरे ब्रह्मवादिनि । गायत्रि छन्दसा मातर्ब्रह्म योते नमोऽस्तुते'
 अर्थात् हे गायत्री माता ! आपका समुत्पत्ति स्थान वेद है, आप
 समस्त छन्दो की जननी हैं तथा तीन अक्षरो वाली हैं और ब्रह्म आदि
 को भी वरदान प्रदान करने वाली हैं । ऐसी गायत्री देवी यहाँ पधारिये
 आपही मेवा मे मंरा प्रणाम अर्पित है । तीनों कालों में तीन रूपों का
 पृथक् ध्यान होता है । मध्याह्न के समय में वृषभ पर चढ़ा हुई-शुक्ल
 वस्त्रों की धारण करने वाली-रुद्रयोनि-रुद्रवाहिनी तथा सावित्री के रूप
 वाली देवी या आवाहन करना चाहिए, गायत्र्याल के समय में गरुड पर
 समाहृत-पीताम्बर धारण करने वाली-विष्णु योनि एव विष्णु वादिनी

सरस्वती के स्वरूप वाली देवी को आवाहन करे। इसके उपरान्त उच्च स्वर में सात महाव्याहृतियों वाली त्रिपदा गायत्री का उच्चारण करते हुए शिर और शिखा पर्यन्त प्राणवायु को चढाकर विरेचन करे। प्राणायाम में वायु का पूरण—कुम्भन और विरेचन करना चाहिए। प्रातःकाल में 'सूर्यश्च या' इत्यादि मन्त्र को उच्चरित करते हुए आचमन करना चाहिए। मध्याह्न वेला में 'आप. पुनन्तु' इत्यादि मन्त्र से दो बार आचमन करे तथा माया मन्धोपासना के अवसर पर 'आश्चश्चया' इत्यादि मन्त्र से आचमन करे ॥४३-४८॥ इसके पश्चात् 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं में मार्जन करे और पीछे 'सुमंत्रिया न आप' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर नाक से स्पर्श कर शङ्खु वर्ण का समुत्सारण करे। पीछे 'दुपदादिव' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर शिर पर जल के छीटे देवे। फिर 'ऋत च सत्यम्' इत्यादि मन्त्र से अधमर्षण करे ॥४९।५०॥

अन्तश्चरसि मैत्रेण सकृदेव पिवेदप ।

तत सूर्यायविधिवदगध पुष्प जलाजलिम् ॥५१

क्षिप्तवोपतिष्ठेद्देवर्षे भास्कर स्वस्तिकाजलि ।

ऊर्ध्वंवाहुरधोवाहु क्रमात्कल्यादिके त्रिके ॥५२

उदुत्य चित्र तच्चक्षुरित्येतत्त्रितय जपेत् ।

तेजोऽसि गायत्र्यसीति प्राथयेत्सवितुमंह ।

ततोऽङ्गानि त्रिरावर्त्य ध्यायेच्छक्तीस्तदात्मिका ॥५४

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयो कुम्भ करे. सुवसयो

विभ्राणा त्वरणदुकातिवदना ऋग्पिणी वालिका ।

हसारोहणेनिग्रण्यण्मणेविवाचिता भूपिता

गायत्री परिभाविता भवतु न मपत्समृद्धये सदा ॥५५

रद्राणी नवयोयना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा

पट्वाग्निशिखाक्षमूत्रदलयाऽभीतिश्रियं चान्तु न. ।

विद्युद्दामजटाकलापविलसद्वालेंदुमौलिमुंदा

सावित्री वृषवाहना सिततनुर्धर्येया यजुरुपिणी ॥५६

इसके अनन्तर 'अन्तश्चारसि'—इत्यादि मन्त्र को पढ़ करके आचमन करे और फिर विधि पूर्वक गन्ध-पुष्प से समन्वित जलाजलि सूर्य देव को देनी चाहिए । हे देवर्षे ! स्वस्तिकाजलि करके सूर्य का उपस्थान करना चाहिए । मध्याह्न के समय में ऊर्ध्ववाहु रहे और सायंकाल के समय में अधोवाहु रहे ॥५१॥५२॥ 'उहृत्यम्'—'चित्रम्'—'तच्चक्षुः' इत्यादि तीन ऋचाओं को जपता हुआ हे नारद । उस समय में सूर्य, शिव और विष्णु सम्प्रदायो के अन्य मन्त्रों का भी उच्चारण करना चाहिए ॥५३॥ फिर 'तेजोऽसि गायत्र्यसीति' इस मन्त्र को पढ़ कर सूर्य भगवान के अपरिमित तेज का ध्यान करे । इसके पश्चात् ब्रह्म के अङ्गों का तीन नामोच्चारण करे और उसकी शक्तियों का ध्यान करना चाहिए ॥५४॥ ध्यान के मन्त्र ये हैं— 'ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयो बुम्भ करे' श्रुक्श्रुवी विभ्राणा त्वर-णेन्दु कान्तिवदना ऋग्रूपिणी यालिका । हसारोहण केलि खण्डणमणे-विदाचिता भूपिता । गायत्री परिभाविता भवतु न.सम्पत्समृद्धयै सदा'— अर्घान् चौमुखी रुद्राक्षो की माला को हाथ में धारण करने वाली, दोनों करों में श्रुव और श्रुवा और बुम्भ की धारण करने वाली, अरुण चन्द्र के समान मुख कान्तिमती, ब्रह्मा के तुल्य रूप वाली यालिका—ऋग्रूपिणी, हस पर गमारुद्र, खनखन'हट करती हुई मणियों के प्रतिबिम्ब से अर्चित ऐसी परम विभूषित गायत्री देवी ध्यान करने पर हमारी सम्पत्ति की समृद्धि करें ॥५५॥ अब मध्याह्नकालीन ध्यान बताया जाता है—'रुद्राणी नवयोयना त्रिनयना ययाघ्रनर्मा-म्बरा यद्वाङ्गात्रिग्याधनूधवनयाऽभीतिश्रियो चाम्तु नः । विद्युद्दा-मजटा कलाप विल सद्वालेंदुमौलिमुंदा सावित्रीवृषवाहना गिततनुर्धर्येया यजु रूपिणी ॥' अर्घान् रुद्र के सहण स्वप्न में समन्वित, नूतन यौवन

से भूषित, तीन नेत्र धारण करने वाली, व्याघ्र चर्म (बाघम्बर) की ओढ़े हुए, खाट का एक पाया, त्रिशूल अथवा रत्नाक्ष माला तथा वङ्गण धारण करने वाली, विद्वत् के समान कान्ति-मयी, अपनी जटाजूट में बाल चन्द्र को मस्तक पर सानन्द धारण करने वाली, वृषभ के वाहन चाली, गौर वर्ण से युक्त, यजुर्वेद में वर्णित रूप वाली, ऐसी सावित्री देवी ध्यान में लाने पर हमारी सम्पत्ति को बढ़ाने और अभीष्टि हमकी प्रदान करे ॥५६॥

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीतावरासकृता

श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद् गात्राचिता वृष्णवी ।

ताक्ष्यंस्थामणिनूपुरामदलसद्ग्रंथेषभूपोज्ज्वला

हस्तालङ्कृतगण्डकमुगदा पद्मा श्रियं चास्तु न ॥५७

एव ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातर्मध्याह्निके तथा ।

सायकाले समासीनो भक्त्या तद्गतमानसः ॥५८

सहस्रपरमा देवी रतमध्या दशावराम् ।

त्रिपदा प्रणवोपेता भूर्भुव स्वरूपक्रमाम् ॥५९

पट्टार सप्तुदो वापि व्रतिनश्च यतेज्जप ।

गृह्ण्यस्य सतार म्याज्जप्य एवविधो मुने ॥६०

ततो जप्त्वा यथाशक्ति सवित्रे विनिवेद्य च ।

गायत्र्यं च सवित्रे च प्रक्षिपेदजलिद्वयम् ॥६१

ततो विमृज्य ता विप्र उत्तरे इति मन्त्रत ।

ब्रह्मगणेशेन हरिणानुजाता गच्छ सादरम् ॥६२

दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च नमस्सृत्य गृताजनि ।

प्रातरादे पर कर्म कुर्यादिपि विधानत ॥६३

अथ गायत्रीध्यान का वर्णन किया जाता है । भयाह्निक के समय में गायत्री का ध्यान करना चाहिए । 'ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरासकृता, श्यामा श्याम तनुर्जरोपरिलसद् गात्राचिता

वैष्णवी । तादृश्यामणिन्पुराङ्गदलसद्रवैयभूपोज्ज्वला, हस्तालकृत
 शख चक्र सुगदा पद्मा श्रियै चास्तुन.' । अर्थात् सन्ध्या समय भगवती
 गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान विष्णु के समान रूपवती सरस्वती
 के तुल्य जैसा ध्यान करना चाहिए । भगवती गायत्री देवी पीत वर्ण
 के वस्त्रों को धारण करने वाली हैं । आप श्यामा हैं और श्याम ही
 आपका स्वरूप है अर्थात् शरीर है, वृद्धता की आभा से गरड़ पर
 समारूढ हैं । मणियों से निर्मित नूपुर और बाजूबन्दों से देदीप्यमान
 तथा हार के भूषण से समुज्ज्वल, हाथों में शख, चक्र, गदा और पद्म
 धारण करने वाली ऐसी जगन्माता देवी हमारी सम्पत्ति के वर्धन के
 लिये पधारें ॥५७॥ तीनों कालों में भिन्न रूपों का ध्यान करके गायत्री
 में भक्ति युक्त होकर मन को लगा कर अपने आसन पर शान्त भाव से
 बैठ कर जाप करना चाहिये ॥५८॥ हे मुनिवर ! गायत्री मन्त्र का
 एक महत्त्व जाप उत्तम कहा जाता है । एक माला का जाप मध्यम
 कोटि का जाप कहा जाता करता है तथा दश बार का जाप साधारण
 होता है । इस तीन पदों वाली गायत्री को प्रणव (३५) 'ओ३म् भू-
 भुव स्व' पहिले जोड़ कर जाप करना चाहिये । जो ब्रह्मचारी या
 सन्यासी हो उनको आदि अन्त दोनों ओर उक्त प्रणव सहित व्याह-
 तिया छोड़ कर जाप करना चाहिये । गृहस्थी द्विज उक्त रीति से
 सम्पुटित न करके भी जाप कर सकता है ॥५९—६०॥ यथा शक्ति
 जाप करके भगवान् सूर्य देव की सेवा में समर्पित कर देवे । इसके
 अनन्तर गायत्री देवी और सूर्य भगवान को दा अञ्जलि देनी चाहिए
 ॥६१॥ इसके पश्चात् 'उत्तरे शिखरे' इत्यादि मन्त्र के द्वारा गायत्री
 का विसर्जन करे । उस समय में यह प्रार्थना करे कि अब तो आप
 पधारें किन्तु त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु) में हमारे कर्म वर्धन कर उनसे अनुमत
 होकर पुन पधारियेगा ॥६२॥ फिर इसके अनन्तर दिशा विदिशाओं
 के लिए हाथ जोड़ कर अर्थात् दिग्देवों को साञ्जति प्रणाम करना

चाहिए । इसके बाद में प्रातः काल में होने वाले अन्य कृत्यों का सम्पादन करना चाहिए ॥६३॥

प्रातर्मध्यदिने चैव गृहस्थ स्नानमाचरेत् ।
 वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिपवणं यति ॥६४॥
 आतुराणां तु रोगार्थं पाथानां च सकृन्मतम् ।
 ब्रह्मयज्ञं ततः कुर्याद्दर्भपाणिर्मुनीश्वर ॥६५॥
 दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि चेत् ।
 शर्वर्था प्रथमे यामे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥६६॥
 नोपास्ते यो द्विज सध्या धूर्तयुद्धिरनापदि ।
 पापद्वयं हि यिज्ञाप सर्वधर्मवहिष्कृत ॥६७॥
 यस्तु सध्यादिवर्णाणि कूटयुक्तिविशारदः ।
 परित्यजति तं विद्यान्महापातकिना वरम् ॥६८॥
 ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसध्यादिक्रमण ।
 ते याति नरकान्घोरान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥६९॥
 देवाचंनं ततः कुर्याद्वैश्वदेव यथाविधि ।
 तत्रत्यमतिथिं सम्यगन्नाचैश्च प्रपूजयेत् ॥७०॥

हे देवर्षे ! गृहस्थी और वानप्रस्थी का प्रातः मध्य हन दो बार नित्य स्नान करना चाहिए किन्तु मन्थारी को तीनों उपासना के योग्य कालों में आवश्यक ही नित्य स्नान करना चाहिए ॥६४॥ जो रागादि में पीड़ित हो और यात्रा में हो तो उनका एक ही बार स्नान करने का सिद्धान्त है । हे मुनिरर ! इसके उपरान्त हाथ में दर्भ ग्रहण करके ब्रह्म यज्ञ करना चाहिए ॥६५॥ यदि बाद बन ऐसा है जिसका दिन वही समय में पूर्ण कर लेना आवश्यक है और किसी कारण से उक्त दिन में पूरा नहीं किया जा सके है तो उपरान्त त्याग न करके रात्रि में ही प्रथम याम में कर डालना चाहिए ॥६६॥ बिना किसी विशेष आपदा के समाप्त हुए पूरुता में अथवा प्रयाद व पशुभूत हावर काई

सन्ध्यापासना नहीं किया करता है तो उस व्यक्ति को महान् पाखंडी और धर्म के कर्मों का अनाधिकारी ही जान लेना चाहिए ॥६७॥ जो अपने मनम अनेक कूटयुक्तियों का विचार कर सन्ध्यादि परमावश्यक नित्य के कर्तव्यों का त्याग कर दिया करता है उसको महान् घोर पापात्मा पुरूप ही समझ लेना चाहिए ॥६८॥ जो ऐसे धूर्त लोग स जिनका कि सन्ध्यावन्दन जैसे अवश्यकरणीय कर्मों का भी त्याग कर दिया करते हैं, भाषण भी करते हैं तो वे भी सूर्य चन्द्र के रहने तक घोर नरको में निवास किया करते हैं ॥६९॥ इस सन्धयोपासना कम के करने के पश्चात् देवाचन और वैश्वदेव करे । उसी समय में कोई अतिथि का समागमन हो जावे तो उसका भी अन्नादि समर्पण के द्वारा स्वागत-सत्कार सर्वाधि करना चाहिये ॥७०॥

वक्तव्या मधुरा वाणी तेष्वप्यभ्यागतेषु तु ।
 जलान्नकन्दमूलैर्वा गृहदानेन चाचयेत् ॥७१
 अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
 स तस्मै दुष्कृत दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥७२
 अशातगोक्षनामानमन्यग्रामादुपागतम् ।
 विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत्ता प्रपूजयेत् ॥७३
 स्वग्रामवासिन त्वेक श्रोत्रिय विष्णुतत्परम् ।
 अन्नाद्यं प्रत्यह विप्र पितृ नुद्दिदृश्य तर्पयेत् ॥७४
 पचयज्ञपरित्यागी ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः ।
 कुर्यादहरहस्तस्मात्पचयज्ञान्प्रयत्नत ॥७५
 दवयज्ञो भूतयज्ञ पितृयरुस्तथैव च ।
 नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पचयज्ञान्प्रचक्षते । ७६
 भृत्यमित्रादिसयुक्त स्वय भुञ्जीत वाग्यत ।
 द्विजानाभोज्यमशनीयात्पात्र नैव परित्यजेत् ॥७७

जो महा पुण्य अभ्यागत स्वरूप में समागत ह्ये हा उनस

अत्यधिक मधुर और विनयान्वित वाणी से भाषण करना चाहिए और समय पर अनुपस्थित अन्न, जल, वन्द्य फलादि के द्वारा शक्ति के अनुमार उनका सत्कार करके ठहरने के लिये स्थानादि की व्यवस्था कर देनी चाहिये ॥७१॥ जिस गृहस्थी के घर पर से कोई भी आशा रहित होकर योही निराश वापिस चला जाया करता है तो वह अपना सम्पूर्ण उने देकर उसके सम्पूर्ण सञ्चित पुण्य को लेकर चला जाया करता है ॥७२॥ भारतीय मस्कृति में अतिथ्य सत्कार की विशेष महिमा पाई गई है । जो किसी अन्य ग्राम या नगर से आया हो और जिसके गोत्र तथा नाम का भी ज्ञान न हो उसको ही विद्वज्जन अतिथि कहा करते हैं । अतिथि का सत्कार एव समर्चन भगवान् साक्षात् विष्णु के ही तुल्य करना चाहिये ॥७३॥ हे विप्र ! अपने ही ग्राम में निवास करने वाले किसी एक भगवान् के परम भक्त श्रोत्रिय का पितरों की तृप्ति के निमित्त मे प्रतिदिन अन्नादि के दान द्वारा सत्कार करना चाहिये ॥७४॥ विद्वान् लोग पञ्च यज्ञों का त्याग कर देने वाले ब्राह्मण को शब्द ब्रह्म की हत्या करने वाला कहा करते हैं । अतएव प्रयत्न पूर्वक पञ्च यज्ञ अवश्य ही करने चाहिए ॥७५॥ देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ और नृपज्ञ—इनको ही यज्ञायज्ञों के नाम से कहा जाया करता है ॥७६॥ इन समस्त कर्मों के करने के पश्चात् मौन होकर मित्र एव भृत्य आदि सबको साथ लेकर स्वयं आहार को ग्रहण करे । किसी भी भोजन के पात्र का त्याग न करे उसको अवश्य ही भोजन देना चाहिये ॥७७

सस्थाप्य स्वासने पादौ वस्त्राद्धं परिधाय च ।
 मुखेन वमित भुक्त्वा सुरापीत्युच्यते वृधे ॥७८
 खादिताद्धं पुन खादेन्मोदवाश्च फला न च
 प्रत्यक्ष लवण चैव गोमासाशीति गद्यते ॥७९
 अपाशाने वाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विज ।

शब्द न कारयेद्विप्रस्त कुर्वन्नारकी भवेत् ॥८०॥
 पथ्यमन्नं प्रभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
 अमृतोपस्तरणमसि अपोशान भुजे पुर ॥८१॥
 अमृतापिधानमसि भोज्यान्तेऽप्र सकृत्पिबेत् ।
 प्राणायामा आहुतीदंत्वाचम्य भोजनमाचरेत् ॥८२॥
 ततश्चाचम्य विप्रैर्द्र शास्त्रचित्तापरो भवेत् ।
 रात्रावपि यथाशक्ति शयनासनभोजनै ॥८३॥
 एव गृही सदाचार कुर्यात्प्रतिदिन मुने ।
 यदाऽऽचारपरित्यागी प्रायश्चित्ती तदा भवेत् ॥८४॥

भोजन करने के समय में जो आसन पर पैरो को फैला कर
 बैठता है और आधा वस्त्र धारण करके भोजन करता है तथा मुख
 से उगले हुये को खाता है उसको विद्वान् लोग मद्यपी कहा करते हैं
 ॥७८॥ जो एक बार आधा खाकर छोड़े हुए मोदक एवं फल को तथा
 लवण को पुन खाया करता है उसको गोमास भक्षी ही कहा जाया
 करता है ॥७९॥ द्विज को चुल्लू भर के आचमन करने में तथा भक्ष्य
 पदार्थों के खाने में शब्द नहीं करना चाहिए । ऐसा करने से वह नरक-
 गामी हुआ करता है ॥८०॥ भोजन करने के समय में मौन रह कर
 ही अन्नादि का आहार करना चाहिए । ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है ।
 भोजन में जो भी अन्न प्राप्त हो उसकी निन्दा न करने हुये सदा
 पथ्यान्न का ही सेवन करे । भोजन करनेके पूर्वा 'अमृतोपस्तरणमसि —
 यह कहकर एक चुल्लू भर जल छिड़के ॥ ८१॥ भोजन की समाप्ति
 होने पर भी 'अमृतापिधानमसि'—यह उच्चारण कर एक बार जल का
 पान करना चाहिए । प्राणायाम स्वाहा' आदि आहुतियाँ देकर आचमन
 करने क पश्चात् भोजन का समाप्त करना चाहिए । रात्र के समय
 में भी इसी भाँति शयन, भोजन एवं आसन आदि के द्वारा अतिथि
 का समादर सत्कार करे ॥८३॥ हे मुनिवर । इसी रीति से गृह-

म्याश्रमी को पुत्र्य को प्रतिदिन सदाचरण का प्रतिपादन करना चाहिए । गृहस्थी यदि इस तरह के सदाचरण का त्याग कर देता है तो उसको प्रायश्चित्त करना बहुत ही आवश्यक हो जाता करता है ॥८५॥

दूषितां स्वतनुं दृष्ट्वा पलिनाद्यैश्च सत्तम ।
 पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वन गच्छेत्सहेव वा ॥८५
 भवेत्त्रिपवणस्नायी नखश्मश्रुजटाधरः ।
 अध शायी ब्रह्मचारी पञ्चयज्ञपरायणः ॥८६
 फलमूलाशनो नित्य स्वाध्यायनिरतस्तथा ।
 दयम्बान्सर्वभूतेषु नारायणपरायणः ॥८७
 वज्रयेद् ग्रामजातानि पुष्पाणि च फलानि च ।
 अष्टौ प्रासाश्च भुञ्जीत न कुर्पाद्रातिभोजनम् ॥८८
 अत्यन्त वर्जयेत्पील वानप्रस्थसमाश्रमी ।
 व्यवाय वर्जयेच्चैव निद्रालम्ब्ये तर्ध्व च ॥८९
 दाखचक्रयदापाणि नित्य नारायण स्मरेत् ।
 वानप्रस्थ प्रकुर्वीत तपश्चाद्रायणादिकम् ॥९०
 सहेत शीततापादिर्वह्निं परिचरेत्सदा ।
 यदा मनसि वैराग्य जात सर्वेषु वस्तुषु ॥९१
 तदैव सन्यसेद्विप्रपतितस्त्वन्यथा भवेत् ।
 चेदात्ताभ्यासनिरत शातो दातो जितेन्द्रियः ॥९२
 निर्द्वन्द्वो निरहकारो निर्ममः सर्वदा भवेत् ।
 शमादिगुणसयुक्तः कामक्रोधविवर्जितः ॥९३

हे मञ्जत महानुभाव! जब गृहस्थी पुरुष अपने शरीरमें क्षुरियाँ आदि चिह्नो को देखे तो उसका कर्त्तव्य है कि वह अपनी भार्या को पुत्रो के मुपुर्द करके या अपने ही साथ में लेकर वन में चला जावे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर लेना चाहिये ॥८५॥ वन में

तीनों बालों में स्नान करे तथा दाढ़ी, नख और जटायें धारण करके नियम से रहे । भूमि शयन, ब्रह्मचर्य पालन करके यज्ञ महायज्ञों को वहाँ पर भी अवश्य किया करे ॥८६॥ सदा फल-मूलों का आहार करे तथा निरन्तर स्वाध्याय में परायण रहना चाहिये । सब प्राणियों पर परिपूर्ण दया का भाव बनाये रख कर भगवद्भक्ति में ही तत्पर रहना चाहिए ॥८७॥ उम अवस्था में ग्राम के अन्दर निपजे हुए फल पुष्पों का उपयोग नहीं करना चाहिए । केवल वन्य फल-पुष्पों को काम में लावे । केवल आठ ग्रास भोजन करे और वह भी रात्रि के समय में नहीं करना चाहिए ॥८८॥ जो वानप्रस्थ आश्रम में रहे उसको तैल का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये । उम दिशा में निन्दा, मीन, और आलस्य नहीं करना चाहिये ॥७९॥ वानप्रस्थ आश्रम में जाकर तो सदा शख, चक्र धारण करने वाले भगवान् नारायण का ही नित्य स्मरण करना चाहिये तथा चान्द्रायण महाव्रत आदि की तपश्चर्या अवश्य ही करनी चाहिये ॥९०॥ शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करने का अभ्यास करता रहे । अग्नि की सेवा निरन्तर करता रहे । जिस समय में सभी पदार्थों के सेवन में निर्गोद की भावना जाग्रत होने लगे तो उसी समय में सन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये अन्यथा सन्यास ग्रहण न करने पर वह पतित ही जाया करता है । सन्यास होने पर परम शान्त, दयनीय और जितेन्द्रिय रहकर वेदान्त शास्त्र के अभ्यास में निरन्तर परायण रहना चाहिये ॥९१॥९२॥ सन्याश्रम में प्रवेश करके सर्वदा द्वन्द्व, अहङ्कार और ममता से रहित होकर ही शमादि गुणों से मयुक्त होकर काम, क्रोध आदि का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए ॥९३॥

नम्नो वा जीर्णकोपीनो भवेन्मुण्डो यतिद्विजः ।

सम शत्रो च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥९४॥

एकरात्र यसेद् ग्रामे त्रिरात्र नगरे तथा ।

भक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्यति ॥६५

अनिदितद्विजगृहे व्यगारे भुक्तिवर्जिते ।

विवादरहिते चैव भिक्षार्थं पर्यटेद्यति ॥६६

भवेत्त्रिपवणस्नायी नारायणपरायण ।

जपेच्च प्रणव नित्य जितात्मा विजितेंद्रिय ॥६७

जो द्विज सन्यासी होजावे उसको जग्न रहना चाहिये या फटे, पुराने वस्त्र की एक लँगोटी लगा कर रहे । सन्यासी का शिर झुण्डित रहना चाहिये । सन्यासी को सदा शत्रु, मित्र और मानापमान में सदा समान भावना रखनी चाहिये ॥६४॥ सन्यासी के लिये शास्त्रान्त नियम है कि उमे किमी ग्राम मे एक राशि तथा नगर मे तीन रात निवास करना चाहिये । सदा भिक्षा मे निर्वाह चलावे । सन्यासी को सर्वदा एक मे जग्न का सेवन नहीं करना चाहिये ॥६५॥ सन्यासियों के लिये भिक्षा करने के भी नियम हैं । ऐसे जो द्विज निन्दित न हो उन्ही के घर से भिक्षा लेनी चाहिये । जिस समय मे अग्नि बुझ गई हो और भोजन का समय व्यतीत हो तभी विवाद रहित समय मे सन्यासी को भिक्षा के लिये भ्रमण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ सन्यासी तीनों कालो मे स्नान किया करे । सदा भगवान् नारायण के ध्यान मे निमग्न रहे । चित्त एव सब इन्द्रियो को बश मे रखकर प्रणव (ॐ) का जाप निरन्तर हो सन्यासी को कर्ते रहना चाहिये ॥६७॥ जो सन्यास धारण करके भी लम्पट रहकर किसी एक ही गृहस्थी के जग्न का सेवन किया करता है वह अपने आश्रम के नियमो को मङ्गल किया करता है उसकी शुद्धि दम महत्त प्रायश्चित्तो के करने पर भी कभी नही हो सकती है ॥६७॥

एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिल्लपटो यति ।

न तस्य निष्कृतिर्ह्येष्टाप्रायश्चित्तायुतोरपि ॥६८

लोभाद्यदि यतिषिप्र तनुपोषणो भवेत् ।

स चडालममो ज्ञेयो वर्णाश्रमविर्गहित ॥६९

आत्मानं चिंतयेद्देवं नारायणमनामयम् ।
 निर्द्वन्द्वं निममं शांतं मायातीतममत्सम् ॥१००॥
 अव्ययं परिपूर्णं च सदानन्दैकविग्रहम् ।
 ज्ञानस्वरूपममलं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०१॥
 अविकारमनाद्यन्तं जगच्चैतन्यकारणम् ।
 निर्गुणं परमं ध्यायेदात्मानं परतः परम् ॥१०२॥
 पठेदुपनिषद्वाक्यं वेदातार्थाश्च चिंतयेत् ।
 सहस्रशीर्षं देव च सदा ध्यायेज्जितेन्द्रियः ॥१०३॥
 एव ध्यानपरो यस्तु यतिर्विगतमत्सरः ।
 स याति परमानन्दं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०४॥
 इत्येवमाश्रमाचारान्यं करोति द्विजः क्रमात् ।
 स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥१०५॥
 वर्णाश्रमाचाररताः सर्वंगापविर्वाजिताः ।
 नारायणपरा याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०६॥

हे विप्र ! यदि कोई भी सन्यासी होकर लोभ के बशीभूत हो
 कर अपने इस विनाशशील अनित्य शरीर के पोषण में लग जाया करता
 है तो वह वर्णाश्रम से महान निन्दित होकर एक—चाण्डाल के ही
 समान हो जाया करता है ॥ ८६ ॥ सन्यासी का कर्तव्य है
 कि आत्मा का अनामय नारायण देव, निर्द्वन्द्व, निमम, मायातीत,
 ज्ञान, अश्वय, अमत्सर, सच्चिदानन्द स्वरूप, परिपूर्ण, निमल, ज्ञानरूप
 परम ज्योति, सनातन विचार तथा शांति से रहित, जगत् के चैतन्य
 कारण, निर्गुण परम ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहे ॥१००—१०२॥
 सन्यासी को सदा उपनिषद् के वाक्यों का पाठ करना चाहिए । उसे
 सर्वदा वेदान्त के अर्थों का गहन विचार करना चाहिये । अपनी
 इन्द्रियों को निर्वाचन रखते हुए, सत्त्व फलों से मुक्त शेष भगवान् का
 ध्यान करना चाहिए ॥१०३॥ जो यति मातृगर्भ दोष से रहित होकर

इस विधि से भगवान का ध्यान किया करता है वह परम ज्योतिस्वरूप, परमानन्दमय, सनातन ब्रह्म म लीन हो जाया करता है ॥१०४॥ जो दिन इस उपपुंक्त विधि क क्रम से आश्रमा के धर्मों का परिपालन किया करता है वह ऐश परम पद को प्राप्त करता है जहाँ पर पहुँच कर कोई भी शोक नहीं करना पड़ना है ॥१०५॥ जो व्यक्ति वर्षाश्रम के धर्मों का यथावत् पालन किया करते हैं व समस्त पापों से मुक्त हो कर नारायण भगवान् के परम पद की प्राप्ति किया करते हैं जहाँ पर सदैव भगव न् क चरणा में ही मग्न रहते हैं ॥१०६॥



॥ श्राद्ध कृत्य विवरण ॥

शृणुष्व मुनिशार्ङ्गल श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥१
क्षयाहपूर्वदिवसे स्नात्वा चंकाशनो भवेत् ।
अथ शायी ब्रह्मचारी निशि विप्रान्निमत्रयेत् ॥२
दन्नधावनताम्बूने तैलाम्ब्यग तथैव च ।
रत्योपधिपरान्तानि श्राद्धवर्त्ता विवर्जयेत् ॥३
अध्वान वयह क्रोध व्यवाय च घुर तथा ।
श्राद्धवर्त्ता च भोक्ता च दिवाम्वाप च वजयेत् ॥४
श्राद्धे निमग्निं यस्तु व्यवाय कुस्ने यदि ।
ग्रहाहृत्यामवाप्नोति नरक चापि गच्छति ॥५
श्र द्धे नियोजयेद्विप्र श्राद्धिय विष्णुतत्परम् ।
यथाम्वाचारनिरत प्रशान्त मन्दु वाद्भवम् ॥६
रागद्वेषविहीन च पुराणार्थविशारदम् ।
त्रिमधुत्रिमुपर्णञ्ज सर्वभूतदयापरम् ॥७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे मुनि शादूल । अब आप श्राद्ध करने की परम श्रेष्ठ विधि का श्रवण कीजिए । इसके सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है । फिर इसमें कोई भी पाप का निवास नहीं रहता है ॥१॥ जिस दिन पितृ गण का श्राद्ध करना है उसके पूर्व दिन में स्नानादि करके केवल एक ही बार भोजन करना चाहिए । भूमि शयन और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए रहना चाहिए । प्रथम दिन में ही ब्राह्मण को श्राद्ध के लिए निमन्त्रित कर देवे ॥२॥ श्राद्ध के करने वाले पुरुष को दांतुन, तैल मदन, ताम्बूल, तर्पण, रति, औषध और पराये अन्न से बचाव रखना परम आवश्यक है ॥ ३ ॥ श्राद्ध के करने वाले और श्राद्ध में भोजन करने वाले दोनों के लिए नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है । इनको कलह, क्रोध, मधुन और बोझ का त्याग कर देना चाहिए ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्ध का निमन्त्रण स्वीकार करके भी रति क्रिया करता है वह भी ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त होकर नरकगामी हुआ करता है । ५ ॥ श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मण में विशेष गुणों का होना अत्यावश्यक है । वह विष्णु का भक्त, श्रोत्रिय, स्वधर्म पालक, सम युक्त, राग द्वेष विहीन, सत्कुल समुत्पन्न, पुराणार्थ ज्ञाता, त्रिमधु और त्रिमुपण के जानने वाला और समस्त प्राणियों पर दयालु होना चाहिए ॥६॥७॥

देवपूजारत चैव स्मृतितत्त्वविशारदम् ।

वेदान्ततत्त्वसम्पन्न सर्वलोकहितेरतम् ॥८

कृतज्ञ गुणसम्पन्न गुरुशुश्रूषणे रतम् ।

परोपदेशनिरत सच्छास्त्रकथनैस्तथा ॥९

एते नियोजितव्या वै श्राद्धे विप्रा मुनीश्वर ।

श्राद्धे वर्ज्यान्प्रवक्ष्यामि शृणु तान्मुसमाहितः ॥१०

न्यूनागश्चाधिकागश्चकदर्यो रोगितस्तथा ।

कुष्टी च कुनखी चैव लवकर्ण क्षतव्रतः ॥११

क्षत्रपाठजीवो च तथा च शवदाहक ।
 कुवादी परिवेत्ता च तथा देवलक खल ॥१२
 निदक्रोऽमपणो धूर्तस्तथैव ग्रामवाजक ।
 असच्छास्त्राभिनिरत पगन्ननिरतस्तथा ॥१३
 वृषलीसूतिपोष्टा च नृपलीपतिरेव च ।
 कुण्डश्च गोलकश्चैव ह्ययाज्याना च याजक ॥१४

श्राद्ध भोजी ब्राह्मण में देवार्चन की तत्परता, स्मृतियों के सूक्ष्म का ज्ञान, वेदान के तात्त्विक ज्ञान में युक्त, सबके हित साधन में परायण, कृतोपकार का ज्ञाता, गुणगण समन्वित, गुरु सेवा निरत और सदृशात्मो का दूसरे का सदुपदेश प्रदान, ये गुण अवश्य हान चाहिये । ऐसे ही ब्राह्मण को खाज कर श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए ॥८॥६॥ हे मुनिवर । जिस प्रकार के ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रण दिया जावे यह बतलाने के पश्चात् अब यह बतलाता हूँ कि किन २ ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित नहीं करना चाहिये । आप परम समाहित होकर मुनिय । श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण विरले ही मिला करते हैं । केवल ब्राह्मण वर्ण से इस कर्म में कार्य नहीं चला करता है ॥१०॥ जिसका अङ्ग विरत हो अर्थात् अधिक या न्यून हा वह श्राद्ध के योग्य नहीं होता है । कायर, रोगी, काढ़ी, बुरे नप्यो वाला, लम्बे कानो वाला, घ्रष्टवनी, नक्षत्र पाठ जीवो, द्रव्य ग्रहण कर शव दाह करने वाला, कुत्सित वचनो का वक्ता, परिवेत्ता दहनक, निन्दक, प्ल, असहिष्णु धूर्त, ग्राम याजक, अमत् शास्त्र पढ़न वाला परान्न भोजी, वृषली एव सूतिका के अन्न से पुष्ट शूद्रा स्त्री का पति, कुण्ड, गोलक और यज्ञो के यजन करने के अयोग्य व्यक्तियों का यजन करने वाले ब्राह्मण को कभी भूल कर भी श्राद्ध में निमन्त्रित नगो करना चाहिए क्योंकि ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध में भावन करने के पात्र नहीं हुआ करते हैं ॥११—१४॥

दभाचारो वृथामुण्डी ह्यन्यस्त्रीधनतत्पर ।
 विष्णुभक्ति विहीनश्च शिवभक्तिपराङ्मुख ॥१५
 वेदविक्रयिणश्चैव व्रतविक्रयिणस्तथा ।
 स्मृतिविक्रयिणश्चैव मत्तविक्रयिणस्तथा ॥१६
 ✓ गायका काव्यकर्तारो भिषकछास्त्रोपजीविन ।
 वेदनिंदापरश्चैव ग्रामारण्यप्रदाहक ॥१७
 तथातिकामुकश्चैव रसविक्रयकारक ।
 कूटयुक्तिरतश्चैव श्राद्धे वर्ज्या प्रयत्नत ॥१८
 निमन्त्रीत पूर्वेषु स्नस्मिन्नेव दिनेऽथवा ।
 निमन्त्रितो भवेद्विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ॥१९
 श्राद्धे क्षणस्तु कर्तव्य प्रसादश्चेति सत्तम ।
 निमन्त्रयेद् द्विज प्राज्ञ दर्भपाणिजितेन्द्रिय ॥२०
 तत प्रातः समुत्थाय प्रातः कृत्य समाप्य च ।
 श्राद्ध समाचरेद्विद्वान्काले कुतपसञ्जिते ॥२१

जो सबदा दम्भाचरण करने वाला हो वह भी अयोग्य हीता है । निष्प्रयोजन शिर को मुण्डित कराने वाला, पराई स्त्री और धन को तकने वाला, विष्णु और शिव की भक्ति में रहित, वेद, स्मृति और ग्रन्थ का विक्रय करने वाला, भांड और भाट जैसी वृत्ति रखने वाला, चीर फाड़ के कर्म को करने वाला, वेद का निन्दक, ग्राम में अग्नि लगाने वाला अत्यधिक काम कामना वाला, रम्यो को बेचने का कर्म करने वाला तथा कूटयुक्तियों के करने वाले ब्राह्मण को बन्धी भी आमन्त्रित नहीं करना चाहिये क्योंकि ये परम निन्दित बताया गए हैं ॥१५—१८॥ श्राद्ध के पूर्व दिन में अथवा प्रायः उमी दिन ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिए । निमन्त्रित विप्र भी जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य पालक होकर रहे ॥१९॥ हे श्रेष्ठ मुनिवर । श्राद्ध में विशेष उत्साह और पूर्ण प्रसन्नता के साथ ही रहकर इसको करे ।

श्राद्धवर्त्ता इन्द्रियो को वश में रखकर हाथ में डाम लेकर ब्राह्मण को निमन्त्रण देने के लिए उसके घर पर जावे ॥२०॥ श्राद्ध के दिन प्रातःकाल में उठकर प्रातःकाल के समस्त दैनिक कृत्यों से छुटकारा पाकर विद्वान् पुरुष को श्राद्ध के मनुविन समय में उमहा आरम्भ करना चाहिये ॥२१

दिवसस्याष्टमे काले यदा मदायते रधि ।

स काले कुनपस्तत्र पितृणां दत्तमक्षयम् ॥२२

अपराह्णं पितृणां तु दत्तं कालं स्वयंभुवा ।

तत्काले एव दातव्यं कव्यं तस्माद् द्विजोत्तमै ॥२३

यत्कव्यं दीयते द्रव्यैरकाले नुनिसत्तम ।

राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितृणां नापतिष्ठति ॥२४

कव्यं प्रदात्तु सायाह्नं राक्षसं तदभयेदपि ।

दाता नरकमानोति भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥२५

क्षयाहस्यं तिथेर्विप्रं यदि दडमिति भवेत् ।

विद्धापराह्णं कार्यं तु श्राद्धं कार्यं विजानता ॥२६

क्षयाहस्यं तिथियों तु ह्यपराह्णद्वयं यदि ।

पूर्वं क्षये तु कर्त्तव्यं शृद्धौ कार्यं तयात्तरा ॥२७

मुहूर्त्तद्विषयं पूर्वदिने स्यादपरेश्चि ।

तिथिं सायाह्नना यत्र परा कथ्यम्य विश्रुता ॥२८

दिसमें वे आठवें भाग में अर्थात् चारह वजन के पात्रों में

मिलकर राक्षसों को ही प्राप्त हुआ करता है ॥२४॥ जो कव्य साय-
 ङ्खाल के समय में दिया जाता है वह भी राक्षसों का ही भाग हो
 जाया करता है । इससे दाता और भोक्ता दोनों नरकों में जाया
 करते हैं ॥२५॥ हे विप्र ! यदि श्राद्ध की तिथि एक ही षण्ढ-भर
 हो तो श्राद्ध के कर्त्ता को अपराहनविद्धा तिथि का ही ग्रहण करना
 चाहिए ॥२६॥ यदि क्षय दिन की तिथि दोनों ही अपराह्णों में हों
 तो पहिली को क्षय कर्म में प्रयुक्त करे और दूसरी को वृद्धि कर्म में
 प्रयुक्त करना चाहिए ॥२७॥ यदि वह तिथि प्रथम दिन ४ घड़ी होवे
 और शेष दूसरे दिन में होवे तो सायाह्न व्यापिनी अगली तिथि को ही
 कव्य के लिए काम में लेनी चाहिए ऐसा ही प्रसिद्ध विधान है ॥२८

किञ्चित्पूर्वदिने प्राहुर्मुमूर्त्तद्वितये सति ।

नैतन्मत्त हि सर्वेषां कव्यदाने मुनीश्वर ॥२६

निमन्त्रितेषु विप्रेषु मिलितेषु द्विजोत्तम ।

प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुजा समाहरेत् ॥३०

श्राद्धार्थं समनुजातो विप्रान् भूयो मिमन्त्रयेत् ।

उभौ च विश्वेदेवार्थं पिस्यर्थं त्रीन यथाविधि ॥३१

देवतार्थं च पिस्यर्थमकेकं वा निमन्त्रयेत् ।

श्राद्धार्थं समनुजात. कारयेन्मण्डलद्वयम् ॥३१

चतुर्गत्र ब्राह्मणस्य त्रिकोण क्षत्रियस्य वै ।

वंशस्य वर्तुल ज्ञेय शूद्रम्याभ्युक्षण भवेत् ॥३३

ब्राह्मणानामभावे तु भ्रातर पुत्रमेव च ।

आत्मान वा नियुञ्जीत न विप्र वेदवर्जितम् ॥३४

प्रक्षाल्य विप्रपादाश्च ह्याचान्तानुपवेश्य च ।

यथावदर्चनं कुर्यात् स्मरन्नारायण प्रभुम् ॥३५

कुछ विद्वानों का मत है कि यदि प्रथम दिन मध्याह्न में चार
 घड़ी तिथि हो तो प्रथम दिन ही श्राद्ध में ग्रहण करना चाहिए किन्तु

यह मत सर्व सम्मत नहीं है ॥२६॥ हे द्विजोत्तम । निमन्त्रित किए जाने के योग्य ब्राह्मणों के मिल जाने पर प्रायश्चित्तों के द्वारा शुद्ध आत्मा वाले यजमान के सर्व प्रथम उन विप्रों से श्राद्ध कम को बरने की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए ॥३०॥ जब वे आज्ञा दे दें तभी उन विप्रों को सविधि निमन्त्रण देना चाहिए । विधि यही है कि विश्वेदेवाओं के लिए दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे और तीन विप्रों को पितरों के निमित्त में निमन्त्रित करना चाहिए ॥३१॥ अथवा देवों और पितरों के लिए एक २ को ही निमन्त्रित करे । श्राद्ध करने की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर दो मण्डल बनाने चाहिये ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण के मण्डल चौकोर, क्षत्रिय का त्रिकोण, वैश्य को गोल मण्डप बनावे । शूद्र का मण्डल जल के छिड़क देने मात्र सही मान लिया जाता है ॥३३॥ यदि पूर्व में बतलाये हुये युक्त ब्राह्मण श्राद्ध के लिए न प्राप्त होवे तो भाई, पुत्र अपन ही लोगों को श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण समझ लेना चाहिये किन्तु वेद विहीन ब्राह्मण को भूल कर भी कभी निमन्त्रित नहीं करना चाहिये । इससे विधि का विनाश होता है । सर्व प्रथम ब्राह्मण के चरणों का प्रक्षालन करे और जिम समय भव आमनो पर समुपस्थित होजावे और आचमन कर लेवे तब भगवान नारायण का स्मरण करते हुए उनका समुचित सत्कार करना चाहिए ॥३५

ब्राह्मणाना तु मध्ये च द्वारदेशे तथैव च ।

अपहृता इत्यृचा वै कर्ता तु विकिण्ठितिलान् ॥३६

यवेर्दूर्भश्च विश्वेपा देवानामिदमासकम् ।

दत्वेति भूयी दद्याच्च देवे क्षणप्रतीक्षणम् ॥३७

अक्षय्यामनयो पृष्ठी द्वितीयावाहने स्मृता ।

अन्नदाने चतुर्थी म्याच्छेपा मनुद्धय स्मृता ॥३८

आमाद्य पात्रद्विनय दर्भशाखासमन्वितम् ।

तत्पात्रे सेचयेत्तोय शन्नो देवीत्यृचा तत ॥३६
 यवोऽसीति यवान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे च वाग्यत ।
 आवाहयेत्ततो देवान् विश्वे देवा स इत्यृचा ॥४०
 या दिव्या इति मन्त्रेणा दद्यादर्घ्यं समाहित ।
 गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च घूपैदीपैयंजेत्तत ॥४१
 देवैश्च समनुज्ञातो यजेत् पितृगणास्तथा ।
 तिलसयुक्तदर्क्षैश्च दद्यात्तेषा मदासनम् ॥४२

श्राद्ध करने वाले पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मणों को अपने मध्य म तथा द्वार का देहली पर 'अपहना' इत्यादि ऋचा का पाठ करते हुए तिनो को बखेर देवे ॥३६॥ यवो और कुशा को विश्वे देवाओं को सम्मुख रखकर उनसे प्रार्थना करे कि यह आपके लिए आमन है । आसन समर्पित करने के पश्चात् यवो का अर्पण कर इन विश्वेदेवाओं के समागमन के लिए क्षण भर प्रतीक्षा करे ॥ ३७ ॥ 'शिवा आप सन्तु इत्यादि पढ़े तथा अशय और आसन के सङ्कल्प में पण्डि विभक्ति का 'अमुक गोत्रस्य अमुक नाम्न प्रयोग करना चाहिए तथा आवाहन में द्वितीया विभक्ति का ही प्रयोग अमुक गोत्रमुक् नामानम्' करना चाहिए तथा अन्न दान के समय म चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग 'अमुक गोत्रायाममुक नाम्ना करना चाहिए । जब सर्वत्र सम्बुद्धि का प्रयोग करें । जैसे—अमुक गोत्र, अमुक नाम आदि ॥३८॥ इसके अनन्तर दो पात्रों को रखकर उनमें डाम प्रक्षिप्त करके 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उन पात्रों में जल भर देवे ॥३९॥ फिर 'यवाऽसि' इत्यादि मन्त्र को उच्चारण करत हुए जो टाग कर मीन होत हुए गन्ध और पुष्प चढाव । इस पश्चात् 'विश्वे देवा इत्यादि ऋचा में विश्व देवाओं का आवाहन करना चाहिए ॥४०॥ या दिव्या इत्यादि मन्त्र के साथ मारधानी के साथ अर्घ्य दना चाहिए फिर 'या दिव्या' इत मन्त्र में मारधानी में अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, घूप, दीप आदि में विश्व

देवाओं का अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ इसके पश्चात् विश्वेदेवाओं से सम्मति प्राप्त करके अपने पितृगणों का पूजन करे । पितरों को सर्वदा तिल और कुशा का आसन ही समर्पित करना चाहिए ॥४२॥

पात्राण्यासार्वदयेत् त्रीणि ह्यर्घार्थपूर्ववद् द्विजः ।
 शन्नो देव्या जल क्षिप्त्वा तिलोऽमीतिक्षिपेतलता ॥४३॥
 उशान्त इत्युच्चावाह्य पितृन् विप्रः समाहितः ।
 या दिव्या इति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत् ॥४४॥
 गन्धश्च पत्रपुष्पैश्च घूपैर्दीपैश्च सत्तम ।
 वासोभिर्भूषणैश्चैव यथाविभवमर्चयेत् ॥४५॥
 ततोऽन्नाद्य समादाय घृतयुक्त विचक्षण ।
 अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा तेभ्योऽनुज्ञा समाहरेत् ॥४६॥
 करवै करवाणोति चापृष्टा ब्राह्मणा मुने ।
 कुरुष्व क्रियता वेति कुर्वति ब्रूयुरेव च ॥४७॥
 उपामनाग्निमाधाय स्वगृह्योक्तविधानत ।
 सोमाय च पितृमते स्वघा नम इतीरयेत् ॥४८॥
 अग्नये कव्यवाहनाय स्वघा नम इतीह वा ।
 स्वाहान्तेनापि वा प्राज्ञो जुहुयात् पितृयज्ञवत् ॥४९॥

इसके अनन्तर ब्राह्मणों को पूर्व के ही समान अर्घ्य के लिए तीन पात्र रखने चाहिये और 'शन्नो देवी' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर पात्रोंमें जल भर देवे और 'तिलोऽमीति' इत्यादि मन्त्र में तिलों का प्रक्षेप करे ॥४३॥ इसके अनन्तर बहुत ही मावधानता में 'उशान्त' इत्यादि श्रुत्वा में अपने पितृगणों का आवाहन करना चाहिए तथा 'या दिव्या' इत्यादि मन्त्रों में पूर्ववत् अर्घ्य का समर्पण करे ॥४४॥ हे मन्त्रज्ञ ! इसके उपरान्त अपने घन विभव की शक्ति अनुसार ही गन्ध, घूप, दीप, यज्ञ, भूषण और द्रव्य में पितृगणों का भली भाँति अर्चन करना चाहिए ॥४५॥ इसके अनन्तर कुशल पुष्प का घृत में अर्घ्य के

प्राप्त को ग्रहण कर इसकी में अग्नि में आहुति दूँगा 'अग्नी करिष्ये' इत्यादि मन्त्र से आज्ञा प्राप्त करे । ब्राह्मणों को इसके उत्तर में कहना चाहिए कि—हां, करिष्ये अर्थात् अग्नि में आहुति दीजिए ॥४७॥ फिर अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार उपासना कर अग्नि की स्थापना करके 'सोमाय पितृमते स्वधानम' इसका उच्चारण करके इस पितृयज्ञ की दो समान आहुतियाँ देनी चाहिए अथवा विद्वान् व्यक्ति को अन्त में 'स्वाहा' यह कहकर ही आहुति देनी चाहिए ॥४८-४९॥

आभ्यामेवाहुतिभ्या तु पितृणा तृप्तिरक्षया ।

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते ॥५०

यथाचार प्रकुर्वीत पाणावग्नी च वा द्विज ।

न ह्यग्निर्दूरग कार्यं पार्वणे समुपस्थिते ॥५१

सधायान्नि तत कार्यं कृत्वा त विसृजेत् ।

कृती यद्यग्निर्दूरगो विप्र पार्वणे समुपस्थिते ॥५२

भ्रातृभि कारयेच्छाद्ध साग्निर्वैविधिवद् द्विजं ।

क्षयाहे चैव साप्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि ॥५३

तथैव भ्रातरस्तत्र लौकिकाग्नावपि स्थिता ।

उपासनाग्नी दूरस्थे समापे भ्रातरि स्थिते ॥५४

यद्यग्नौजुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ।

उपामनाग्नी दूरस्थे केचिदिच्छन्ति चै द्विजा ॥५५

तच्छेष विप्रपात्रेषु विकिरेत् सस्मरन् हरिम् ।

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च स्वाद्यैर्विप्रान्प्रपूजयेत् ॥५६

इन आहुतियों के देने में पितृगण की अथवा तृप्ति हुआ करती है । यदि यजमान अग्नि होत्र करने वाला न होवे और वहाँ पर उम समय में अग्नि का अभाव हो तो उम समय ब्राह्मण के हाथ में ही अर्पण करना रूपा ही होम करना पर्याप्त होता है । हे द्विज ! आचार के अनुरूप ही कर गे अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिये । पार्वण भाद के समय में अग्नि को दूर नहीं रखा जा चाहिए ॥५१॥ पार्वण के समय

मे यदि अग्नि दूर हो ' अर्थात् पत्नी अपनी माता के यहाँ (नायके मे)
 चली गयी हो तो कुशन पुरुष को नूतन अग्नि की स्थापना करनी
 चाहिये और उसमे ही आहुतियाँ देवे । श्राद्ध के समाप्त होने पर उस
 नवीन सस्यापित अग्नि को विसर्जित कर देना चाहिये ॥५२॥ यदि
 श्राद्ध के समय की तिथि उपस्थित होजावे और अग्नि दूर हो तो
 अग्निहोत्र करने वाले अपने जो दूसरे भाई हो उनमे श्राद्ध करवाना
 चाहिए ॥५३॥ यदि अपनी अग्नि जो उपासना करने की हुआ बँरती
 है कही दूर देश मे हो और समीप मे ही कोई लौकिक अग्नि वाले भाई
 विद्यमान हो तो उस दिशा मे नवीन अग्नि की स्थापना करना या
 श्राद्ध के कर मे ही आहुति का समर्पण करना बहुत ही अनुचित है
 क्योंकि ऐसा करने पर वह पानही होजाया करता है ॥ ५४॥५५ ॥
 इन विधि मे आहुति अर्पण कर जो श्रेय अन्न बच जावे उसको भगवान्
 का स्मरण करना हुआ ब्राह्मणो के स्वयं हुये पात्रो मे परिवेषण कर
 देवे । इसके पश्चात् परम स्वादिष्ट भक्ष्य-भोग्य, लेह्य आदि पदार्थो
 मे ब्राह्मणो को भोजन करावे ॥५६॥

अन्नत्याग ततः कुर्यादुभयत्र समाहित ।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबलाः ॥५७

ये यत्र विहिताः श्राद्धे मावधाना भवन्तु ते ।

इति सप्रार्थयेद्देवान्ये देवास श्रुचा नु वै ॥५८

तया सप्रार्थयेद्विप्रान्ये च हेति श्रुचा पितॄन् ।

अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥५९

नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिना योगचक्षुषाम् ।

एव पितॄन्ममृत्त्य नारायणपरायण ॥६०

दत्ता हविश्च तत्कर्म विष्णवे विनियेदयेत् ।

तन्मन्त्रे ब्राह्मणा सर्वे भुञ्जीरन्वाग्यता द्विजाः ॥६१

हमने वशे कोऽपि राक्षस तद्भवेद्विधिः ।

यथात्तर प्रदेश च मधुमामादिक तथा ॥६२

पातादि न प्रजमेरन् वाग्यता धूनभाजनाः ।

यदि पात्रं त्यजेत्कोऽपि ब्राह्मणः श्राद्धयोजितः ॥६३

श्राद्धहता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते ।

भुञ्जानेषु च विप्रेषु ह्यन्योन्यं सस्पृशेद्यदि ॥६४

इसके अनन्तर दोनों स्थानों पर अर्थात् विश्वेदेवा और पितृ-
गण के स्थानों पर अन्न के स्वादिष्ट पदार्थों का परिवेक्षण कर साव-
धान हो प्रार्थना करे । हे महाबलवान् हे महाभाग विश्वेदेवाओ ! इस
श्राद्ध में जिनका आवाहन किया गया है वे आप अब सावधान
होजावे । 'येदेवासः०' इत्यादि ऋचा से विश्वेदेवाओ की, प्रार्थना
करे तथा 'मया चेह' ऋचा से पितरों और तत्स्थानीय ब्राह्मणों
की प्रार्थना करे और यह कहे कि—जो इस समय में यहाँ पर गुप्त
अथवा प्रकट रूप से प्रकाशवान् तेजस्वी पितर विद्यमान हैं उन योग
दृष्टि वाले ध्यान में स्थित पितृगणों की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ।
इस विधि से पितरों का अभिवादन कर भगवान् नारायण के ध्यान में
तत्पर होजाना चाहिए ॥५७—६०॥ इस अर्पित हवि, कर्म को विष्णु
भगवान् की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए । इसके पश्चात् वे सभी
ब्राह्मण मौन होकर भोजन करें ॥६१॥ उस समय किसी को भी
हँसी और बातचीत नहीं करनी चाहिए । यदि ऐसा उस समय में
किया जाता है तो वे सभी हवि राक्षस हो जाया करते हैं । फिर
देशाचार के अनुकूल मधु मास का परिवेषण करे । पत्तलों पर बैठे
हुये ब्राह्मणों को एक दम मौन रहना चाहिये और पाक आदि की
प्रशंसा नहीं करनी चाहिये । यदि श्राद्ध में समागत ब्राह्मण पत्तल का
त्याग कर उठ जाता है तो उसको श्राद्ध का हनन करने वाला ही सम-
झना चाहिए वह निश्चय ही नरकगामी होता है । भोजन करते हुए
ब्राह्मण परस्पर में एक दूसरे का स्पर्श नहीं करे ॥६२—६४॥

तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गाय-यष्टशत जपेत् ।

भुज्यमानेषु विप्रेषु वर्त्ता श्रद्धापरायणः ॥६५

स्मरेन्नारायण देवमनन्तमपराजितम् ।

रक्षोघ्नान्येष्णवाश्चैव पैतृनाश्च विशेषतः ॥६६

जपेच्च पीरुप सूक्तं नाचिकेतश्रयं तथा ।
 त्रिमधु त्रिमुपर्णं च पावमान यजू पि च ॥६७
 सामान्यपि तथोक्तानि वदेत्पुण्यप्रदास्तथा ।
 इतिहामपुराणानि धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥६८
 भृञ्जीरन्ब्राह्मणा यावत्तायदेनाञ्जपेद् द्विज ।
 ब्राह्मणेषु च भुक्तेषु विकिर विद्विषेत्तथा ॥६९
 शेषमन्न वदेच्चैव मधुसूक्तं च यं जपेत् ।
 स्वयं च पादौ प्रक्षाल्य मभ्यगावभ्य नारद ॥७०

उस अन्न को न छोड़े तो इनको आठवीं गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए । तभी उनकी विद्वि हुआ करती है । जिस समय में ब्राह्मण भोजन कर रहे हो उस समय में परम श्रद्धालु श्राद्धवर्त्ता का वर्त्तव्य है कि वह अन्न, अपराजित श्री नारायण देव का गस्मरण करे और उस समय में राक्षसों के नाशक मन्त्रों का, विष्णु के स्तोत्रों का और पितृ मन्त्रों का पाठ करना चाहिए ॥६४—६६॥ इसके साथ २ पुण्य सूक्त और यजुर्वेद के मन्त्रों का जाप करना चाहिये ॥६७॥ पुण्य प्रदान करने वाले माम वेद के मन्त्रों का तथा इतिहाम, पुराण और धर्म शास्त्र का भी पाठ करे ॥६८॥ जिस समय तक ब्राह्मण भोजन करते रहें तभी तक इन उपर्युक्त मन्त्रादि को निरन्तर पढ़ने रहना चाहिए । जब ब्राह्मण भोजन समाप्त कर चुके तब कुशों को पृषव् करके शेष अन्न खाने का विप्रों में अनुरोध करे 'मधुवाता श्यनायते' मधु सूक्त का जाप करना चाहिये । इसके अनन्तर अपने आप पैरों को धोकर भनी भानि आचमन करना चाहिये ॥६९-७०॥

आचानेषु च विषेषु पिण्ड निर्वापयेत्तत ।
 स्वस्तिवाचनकं कुर्यादक्षय्योदरमेव च ॥७१
 दत्त्वा गमाहितं कुर्यात्तथा विप्राभिवादनम् ।
 अनालयित्वा पात्रं तु स्वस्तिं कुर्यात्तं यं द्वित्रा ॥७२
 'वत्सरं दिनस्नेषा भरत्युच्छिष्टभोजिन ।
 दानारो नोऽभिवदन्नामित्याद्यं स्मृतिभाषिने ॥७३
 आजीव्यं नोऽन्भेहोम्यो नमन्तार चरन्तत ॥

दद्याच्च दक्षिणा शक्त्या तावूल गन्धसयुतम् ॥७४

न्युब्जपात्रमथानीय स्वधाकारमुदीयेत् ।

वाजेवाजे इति श्रद्धा पितृन्देवान्विसजरयेत् ॥७५

भोक्ता च श्राद्धकृतस्या रजन्या मैथुन त्यजेत् ।

तथा स्वाध्यायमध्वान प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥७६

अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनेस्तथा ।

आमश्राद्ध प्रकुर्वीत हेम्ना वास्पृशश्भार्यक ॥७७

ब्राह्मणों के द्वारा आचमन किये जाने पर पिण्ड दान करे । स्वस्तिवाचन बोने और अटूट जल धारा (अक्षय्योदक) करे । इस विधि से बहुत ही सावधानी के साथ श्राद्ध समर्पित करके ब्राह्मणों का अभिवादन करना चाहिए । जो विप्र पात्रों का परिचालन किये ही बिना तात्पर्य यह है कि पात्रों को सीधान कर्के ही स्वस्ति करते हैं उनके एक वष तक उच्छिष्ट भोजी रहा करते हैं । इसके पश्चात्— 'दातारो नाऽभिवधन्तान्' इत्यादि स्मृति के वचनों के द्वारा आशीर्वाद ग्रहण करे । पुन ब्राह्मणों को प्रणाम करके दक्षिणा देवे और सुगन्धित ताम्बूल अर्पित करना चाहिए ॥७१-७४॥ इसके पश्चात् औघे पात्र लाकर स्वधा कहे और 'वाजे वाजे' इत्यादि के द्वारा पितृर्जनो का विसर्जन कर देवे ॥७५॥ श्राद्ध कर्त्ता और श्राद्ध भोक्ता को कभी भी मैथुन नहीं करना चाहिए तथा उस दिन भर्ता से गमन और स्वाध्याय भी नहीं करे ॥७६॥ जा कोई यात्रा म हो, राग युक्त हो, धनहीन हो वह कच्चा सोधा देकर ही श्राद्ध कर देवे जिसकी पत्नी रजस्वला हो गई हो उसे सुवर्ण के द्वारा श्राद्ध कर देना चाहिए ॥७७

द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्र च पाचयेत् ।

पतृकेन तु सूक्तेन होम कुर्याद्विचक्षण ॥७८

अत्यन्तद्रव्यशून्यश्चेत् यशक्त्या तु नृग गवाम् ।

स्नात्वा च विधिवद्विप्र कुर्याद्वा तिलतपणम् ॥७९

अथवा रोदन कुर्यादित्युच्चीविजने वने ।

दरिद्रोऽह महापापो वदन्निति विचक्षण ॥८०

परेद्यु श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् ।
 तत्कुल नाशमायाति ब्रह्महत्या च विदति ॥८१
 श्राद्ध कुर्वति ये मर्त्याः श्रद्धावन्तो मुनीश्वर ।
 न तेषा सततिच्छेद सम्पनास्ते भवन्ति च ॥८२
 पितृ न्यर्जति ये श्राद्धे तंस्तु विष्णु प्रपूजित ।
 तस्मिन्स्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुप्यति देवता ॥८३
 पितरो देवताश्चैव-गन्धर्वाप्सस्तथा ।
 यक्षाश्च सिद्धा मनुजा हरिरेव सनातन ॥८४

यदि द्रव्य वा अभाव हो अथवा श्राद्धाचित द्विजो का अभाव हो तो श्राद्ध करने वाले को केवल अन्न का दान करके पैतृक सूक्त से पितृ-गण को दृष्टि के उद्देश्य से अग्नि में होम करना चाहिए ॥८१॥ हे विप्रवर ! यदि बहुत ही अधिक द्रव्य का अभाव हो तो अपनी शक्ति के अनुसार गायो को घास डलना देनी चाहिए अथवा स्नान करके विधि पूरक तर्पण कर देवे ॥८२॥ कुशल पुरुष को चाहिये कि निर्जन वन में जाकर उच्च स्वर से, मैं महाम् सापात्मा हूँ और बहुत ही दरिद्र हूँ यह कहकर उच्च स्वर से रो देना चाहिए ॥८३॥ यदि श्राद्ध करने वाला अग्न दिन में पितृ तर्पण नहीं किया करता है तो उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है और अन्त में उसका कुल ही नष्ट हो जाया करता है ॥८४॥ हे मुनिवर ! जो परम श्रद्धा से समन्वित होकर श्राद्ध किया करता है ॥८५॥ जो श्राद्ध में अपने पितृगणों का अर्चन किया करता है वे मानों साक्षात् भगवान् विष्णु का पूजन कर लिया करते हैं और भगवान् जगत् के स्वामी विष्णु के परम मन्तुष्ट होने पर सभी देवता मन्तुष्ट होत्राया करते हैं ॥८६॥ पितृगण, देववृन्द, गन्धर्वगण, यक्ष-ममूह, अप्सरा वृन्द गिद्ध और मनुष्य इन सबमें सनातन प्रभु श्री हरि हरि भगवान् ही व्याप्त रहा करते हैं ॥८७॥

येनदमश्च न जान जगत्स्यावरजगमम् ।

तस्माद्दाता च भोक्ता च सर्वं विष्णु मनानत ॥८५

यदस्ति त्रिप्र यन्नास्ति दृश्य चादृश्यमेव च ।

सर्वं विष्णुमय ज्ञेय तस्माद्दयन् विद्यते ॥८६

आधारभूतो विश्वस्य सर्वभूतात्मकोऽव्यय ।
 अनापम्यस्वभावश्च भगवान्होव्यकव्यभुक् ॥८७
 परब्रह्माभिधेयो य एक एव जनार्दन ।
 कर्ता कारयिता चैव सर्वं विष्णु सनातन ॥८८
 इत्येव ते मुनिश्रेष्ठ श्राद्धस्य विधिरुत्तम ।
 कथित कुवतामेव पाप सद्यो विलीयते ॥८९
 य इद पठते भक्त्या श्राद्धकाले द्विजोत्तम ।
 पितरस्तस्य तुप्यति सततिश्चैव वर्धते ॥९०

उही भगवान् विष्णु से यह सब स्थावर और जङ्गम जगत् प्रकट हुआ है अतः दाता और भोक्ता सबमे वही सनातन विष्णु विराजमान रहा करते हैं ॥८५॥ हे विप्रवर ! इस विश्व में जो कुछ भी दिखालाई दे रहा है तथा जो नहीं दिखाई देता है अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सत् असत् जड चेतन सबको विष्णुमय ही समझना चाहिये क्योंकि विष्णु से परे कुछ भी नहीं होता है ॥ ८६ ॥ भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्व के आधार स्वरूप हैं सब प्राणी उनके ही रूप हुआ करते हैं और यह भगवान् अपने कर्तृत्व रूप से कभी भी वे च्युत नहीं हुआ करते हैं भगवान् का स्वभाव ऐसा अद्भुत है कि उसकी किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती है और वे ही होय-व्यय सबके भोक्ता हुआ करते हैं ॥८७॥ जिनका परम ब्रह्म नाम है वही एक जनार्दन हैं । वे ही कर्ता और कराने वाले हैं । यह प्रपञ्च विष्णु का ही स्वरूप है ॥८८॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! इस रीति से आपके समक्ष मैं यह श्राद्ध का पूरा विधान वर्णित कर दिया है जोकि अत्युत्तम है । जो इस श्राद्ध को किया करते हैं उनसे समस्त पापों का समूह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है ॥८९॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य श्राद्ध करने का समय में इस श्राद्ध विधान के अध्याय का भक्तिमहित पाठ किया करता है उसका पितृगण परम से तुष्ट होजाया करता है और उसकी सम्पत्ति भी वृद्धि हुआ करती है ॥९०॥

॥ नारद पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥